॥ ओ३म् ॥

यजुर्वेदभाषाभाष्य





(प्रथम भाग)





...st of ...

...ipur.

...Jaipur.
...ur.

...Agency,

...aipur.
...r.

...ur.

...r.

...Agency, New D...
...Delhi.
...elhi.
...r.
...ur.

...jasthan Libr...
...es Printing Pr...



st of

ipur.

Jaipur.
ur.

Agency,

Jaipur.

r.

r.
Agency, New D
Delhi.
elhi.
r.
ur.

jasthan Libr
es Printing Pr

* ओ३म् *

अथ यजुर्वेदभाषाभाष्यारम्भः क्रियते ॥

यो जीवेषु दधाति सर्वसुकृतज्ञानं गुणैरीश्वरः ।
तं नत्वा क्रियते परोपकृतये सद्यः सुबोधाय च ॥
ऋग्वेदस्य विधाय वै गुणगुणिज्ञानप्रदातुर्वरम् ।
भाष्यं काम्यमथो क्रियामययजुर्वेदस्य भाष्यं मया ॥ १ ॥
चतुस्त्र्यङ्कैरङ्कैरवनिसहितैर्विक्रमसरे ।
शुभे पौषे मासे सितदलभविश्वोन्मिततिथौ ।
गुरोर्वारे प्रातः प्रतिपदमतीष्टं सुविदुषां ।
प्रमाणैर्निर्बद्धं शतपथनिरुक्तादिभिरपि ॥ २ ॥

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आसु॑व ॥ १ ॥

यजु० ३० । ३ ॥

भाषार्थः—अब यजुर्वेद के भाष्य का आरम्भ किया जाता है ॥

जो निर्गुण गुणपुञ्ज से देत सुकृत विज्ञान ।
प्रणतपाल जगदीश्वरहि करि प्रणाम तिहि ध्यान ॥ १ ॥
ज्ञानदायि ऋग्वेद का भाष्याभीष्ट विधाय ।
पर-उपकार विचारि करि शीघ्र सुबोध निधाय ॥ २ ॥
शतपथ ब्राह्मण आदि पुनि निघण्टु निरुक्त निहारि ।
यजुर्वेद जो क्रियापर वर्नौं ताहि विचारि ॥ ३ ॥
एक सहस्र नवशत अधिक विक्रमसर चौंतीस ।
पौष शुक्ल तेरसि तिथि दिन अधीश वागीश ॥ ४ ॥

विक्रम के संवत् १९३४ पौष सुदि १३ गुरुवार के दिन यजुर्वेद के भाष्य बनाने का आरम्भ किया जाता है। (विश्वानि०) इस मन्त्र का अर्थ भूमिका में कर दिया है।

ईश्वर ने ऋग्वेद में गुण और गुणी के विज्ञान के प्रकाश के द्वारा सब पदार्थ प्रसिद्ध किये हैं उन मनुष्यों को पदार्थों से जिस-जिस प्रकार यथायोग्य उपकार लेने के लिये क्रिया करनी चाहिये तथा उस क्रिया के जो-जो अङ्ग वा साधन हैं सो-सो यजुर्वेद में प्रकाशित किये हैं क्योंकि जबतक क्रिया करने का दृढ़ ज्ञान न हो तबतक उस ज्ञान से

श्रेष्ठ सुख कभी नहीं हो सकता और विज्ञान होने के ये हेतु हैं कि जो क्रिया प्रकाश अविद्या की निवृत्ति अधर्म में अप्रवृत्ति तथा धर्म और पुरुषार्थ का संयोग करना है। जो कर्मकांड है सो विज्ञान का निमित्त और जो विज्ञानकांड है सो क्रिया से फल देने वाला होता है। कोई जीव ऐसा नहीं है कि मन प्राण वायु इन्द्रिय और शरीर के चलाये बिना एक क्षण भर भी रह सके क्योंकि जीव अल्पज्ञ एकदेशवर्त्ती चेतन है इसलिये जो ईश्वर ने ऋग्वेद के मन्त्रों से सब पदार्थों के गुणगुणी का ज्ञान और यजुर्वेद के मन्त्रों से सब क्रिया करनी प्रसिद्ध की है क्योंकि (ऋक्) और (यजुः) इन शब्दों का अर्थ भी यही है कि जिससे मनुष्य लोग ईश्वर से लेके पृथिवीपर्यन्त पदार्थों के ज्ञान से धार्मिक विद्वानों का संग सब शिल्पक्रिया सहित विद्याओं की सिद्धि श्रेष्ठ विद्या श्रेष्ठ गुण वा विद्या का दान यथायोग्य उक्त विद्या के व्यवहार से सर्वोपकार के अनुकूल द्रव्यादि पदार्थों का खर्च करें इसलिये इसका नाम यजुर्वेद है। और भी इन शब्दों का अभिप्राय भूमिका में प्रकट कर दिया है वहां देख लेना चाहिये क्योंकि उक्त भूमिका चारों वेद की एक ही है।

इस यजुर्वेद में सब चालीस अध्याय हैं उन एक-एक अध्याय में कितने-कितने मन्त्र हैं सो निम्नांकित कोष्ठ में बनाके सब लिख दिया है और चालीसों अध्याय के सब मिलके १९७५ (उन्नीससौ पचहत्तर) मन्त्र हैं॥

अध्यायः	मन्त्रः	अ०	मं०	अ०	मं०	अ०	मं०
१	३१	११	८३	२१	६१	३१	२२
२	३४	१२	११७	२२	३४	३२	१६
३	६३	१३	५८	२३	६५	३३	९७
४	३७	१४	३१	२४	४०	३४	५८
५	४३	१५	६५	२५	४७	३५	२२
६	३७	१६	६६	२६	२६	३६	२४
७	४८	१७	९९	२७	४५	३७	२१
८	६३	१८	७७	२८	४६	३८	२८
९	४०	१९	९५	२९	६०	३९	१३
१०	३४	२०	९०	३०	२२	४०	१७

इषे त्वेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। इषे त्वेत्यारभ्य भागपर्य्यन्तस्य स्वराड्बृहतीछन्दः। मध्यमः स्वरः। अग्रे सर्वस्य ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

ऋग्वेद के भाष्य करने के पश्चात् यजुर्वेद के मन्त्रभाष्य का आरम्भ किया जाता है। इसके प्रथम अध्याय के प्रथम मन्त्र में उत्तम-उत्तम कामों की सिद्धि के लिये मनुष्यों को ईश्वर की प्रार्थना करनी अवश्य चाहिये इस बात का प्रकाश किया है॥

ओ३म् इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वमघ्न्याऽइन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽअयक्ष्मा मा वस्तेनऽईशत माघशंसो ध्रुवाऽअस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि ॥१॥

पदार्थान्वयभाषा:—हे मनुष्य लोगो ! जो (सविता) सब जगत् की उत्पत्ति करनेवाला सम्पूर्ण ऐश्वर्य्ययुक्त (देवः) सब सुखों के देने और सब विद्या के प्रसिद्ध करनेवाला परमात्मा है । सो (वः) तुम हम और अपने मित्रों के जो (वायवः) सब क्रियाओं के सिद्ध करानेहारे स्पर्श-गुणवाले प्राण अन्तःकरण और इन्द्रियां (स्थ) हैं उनको (श्रेष्ठतमाय) अत्युत्तम (कर्मणे) करने योग्य सर्वोपकारक यज्ञादि कर्मों के लिये (प्रार्पयतु) अच्छी प्रकार संयुक्त करे । हम लोग (इषे) अन्न आदि उत्तम-उत्तम पदार्थों और विज्ञान की इच्छा और (ऊर्जे) पराक्रम अर्थात् उत्तम रस की प्राप्ति के लिये (भागम्) सेवा करने योग्य धन और ज्ञान के भरे हुए (त्वा) उक्त गुणवाले और (त्वा) श्रेष्ठ पराक्रमादि गुणों के देनेहारे आपका सब प्रकार से आश्रय करते हैं । हे मित्र लोगो ! तुम भी ऐसे होकर (आप्यायध्वम्) उन्नति को प्राप्त हो तथा हम भी हों । हे भगवन् जगदीश्वर हम लोगों के (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये (प्रजावतीः) जिनके बहुत सन्तान हैं तथा जो (अनमीवाः) व्याधि और (अयक्ष्माः) जिन में राजयक्ष्मा आदि रोग नहीं हैं वे (अघ्न्या) जो-जो गौ आदि पशु वा उन्नति करने योग्य है जो कभी हिंसा करने योग्य नहीं कि जो इन्द्रियां वा पृथिवी आदि लोक हैं उन को सदैव (प्रार्पयतु) नियत कीजिये । हे जगदीश्वर ! आपकी कृपा से हम लोगों में से दुःख देने के लिये कोई (अघशंसः) पापी वा (स्तेनः) चोर डाकू (मा ईशत) मत उत्पन्न हो तथा आप इस (यजमानस्य) परमेश्वर और सर्वोपकार धर्म के सेवन करने वाले मनुष्य के (पशून्) गौ, घोड़े और हाथी आदि तथा लक्ष्मी और प्रजा की (पाहि) निरन्तर रक्षा कीजिये जिससे इन पदार्थों के हरने को पूर्वोक्त कोई दुष्ट मनुष्य समर्थ न हो (अस्मिन्) इस धार्मिक (गोपतौ) पृथिवी आदि पदार्थों की रक्षा चाहने वाले सज्जन मनुष्य के समीप (बह्वीः) बहुत से उक्त पदार्थ (ध्रुवाः) निश्चल सुख के हेतु (स्यात) हों । इस मन्त्र की व्याख्या शतपथ ब्राह्मण में की है उसका ठिकाना पूर्व संस्कृत भाष्य में लिख दिया और आगे भी ऐसा ही ठिकाना लिखा जायगा जिसको देखना हो वह उस ठिकाने से देख लेवे ॥ १ ॥

भावार्थभाषा:—विद्वान् मनुष्यों को सदैव परमेश्वर और धर्मयुक्त पुरुषार्थ के आश्रय से ऋग्वेद को पढ़ के गुण और गुणी को ठीक-ठीक जानकर सब पदार्थों के सम्प्रयोग से पुरुषार्थ की सिद्धि के लिये अत्युत्तम क्रियाओं से युक्त होना चाहिये कि जिससे परमेश्वर की कृपापूर्वक सब मनुष्यों को सुख और ऐश्वर्य की वृद्धि हो । सब लोगों को चाहिये कि अच्छे-अच्छे कामों से प्रजा की रक्षा तथा उत्तम-उत्तम गुणों से पुत्रादि की शिक्षा सदैव करें कि जिससे प्रबल रोग विघ्न और चोरों का अभाव होकर प्रजा और पुत्रादि सब सुखों को प्राप्त हों यही श्रेष्ठ काम सब सुखों की खान है । हे मनुष्य लोगो ! आओ अपने मिलके जिसने इस संसार में आश्चर्यरूप पदार्थ रचे हैं उस जगदीश्वर के लिये सदैव धन्यवाद देवें । वही परम दयालु ईश्वर अपनी कृपा से उक्त कामों को करते हुए मनुष्यों की सदैव रक्षा करता है ॥ १ ॥

वसोः पवित्रमित्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो । देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

वह यज्ञ किस प्रकार का होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोऽसि विश्वधाऽअसि परमेण धाम्ना दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे विद्यायुक्त मनुष्य ! तू जो (वसोः) यज्ञ (पवित्रम्) शुद्धि का हेतु (असि) है । (द्यौः) जो विज्ञान के प्रकाश का हेतु और सूर्य की किरणों में स्थिर होने वाला (असि) है । जो (पृथिवी) वायु के साथ देशदेशान्तरों में फैलनेवाला (असि) है । जो (मातरिश्वनः) वायु को (घर्मः) शुद्ध करनेवाला (असि) है । जो (विश्वधाः) संसार का धारण करनेवाला (असि) है । तथा जो (परमेण) उत्तम (धाम्ना) स्थान से (दृꣳहस्व) सुख का बढ़ानेवाला है । इस यज्ञ का (मा) मत (ह्वाः) त्याग कर । तथा (ते) तेरा (यज्ञपतिः) यज्ञ की रक्षा करनेवाला यजमान भी उसको (मा) न (ह्वार्षीत्) त्यागे । धात्वर्थ के अभिप्राय से यज्ञ शब्द का अर्थ तीन प्रकार का होता है अर्थात् एक जो इस लोक और परलोक के सुख के लिये विद्या, ज्ञान और धर्म के सेवन से वृद्ध अर्थात् बड़े-बड़े विद्वान् हैं उनका सत्कार करना । दूसरा अच्छी प्रकार पदार्थों के गुणों के मेल और विरोध के ज्ञान से शिल्पविद्या का प्रत्यक्ष करना और तीसरा नित्य विद्वानों का समागम अथवा शुभगुण विद्या सुख धर्म और सत्य का नित्य दान करना है ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्य लोग अपनी विद्या और उत्तम क्रिया से जिस यज्ञ का सेवन करते हैं उससे पवित्रता का प्रकाश, पृथिवी का राज्य, वायुरूपी प्राण के तुल्य राजनीति, प्रताप, सब की रक्षा, इस लोक और परलोक में सुख की वृद्धि, परस्पर कोमलता से वर्तना और कुटिलता का त्याग इत्यादि श्रेष्ठ गुण उत्पन्न होते हैं इसलिये सब मनुष्यों को परोपकार तथा अपने सुख के लिये विद्या और पुरुषार्थ के साथ प्रीतिपूर्वक यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये ॥ २ ॥

वसोः पवित्रमित्यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । भुरिग्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उक्त यज्ञ कैसा सुख करता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् । देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः ॥ ३ ॥

पदार्थः—जो (वसोः) यज्ञ (शतधारम्) असंख्यात संसार का धारण करने और (पवित्रम्) शुद्धि करनेवाला कर्म (असि) है तथा जो (वसोः) यज्ञ (सहस्रधारम्) अनेक प्रकार के ब्रह्मांड को धारण करने और (पवित्रम्) शुद्धि का निमित्त सुख देनेवाला है (त्वा) उस यज्ञ को (देवः) स्वयं प्रकाशस्वरूप (सविता) वसु आदि तेंतीस देवों का उत्पत्ति करनेवाला परमेश्वर (पुनातु) पवित्र करे । हे जगदीश्वर ! आप हम लोगों से सेवित (वसोः) यज्ञ है उस

(पवित्रेण) शुद्धि के निमित्त वेद के विज्ञान (शतधारेण) बहुत विद्याओं का धारण करने वाले वेद और (सुप्वा) अच्छी प्रकार पवित्र करने वाले यज्ञ से हम लोगों को पवित्र कीजिये। हे विद्वान् पुरुष वा जानने की इच्छा करने वाले मनुष्य ! तू (काम्) वेद की श्रेष्ठ वाणियों में से कौन-कौन वाणी के अभिप्राय को (अधुक्षः) अपने मन में पूर्ण करना अर्थात् जानना चाहता है ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य पूर्वोक्त यज्ञ का सेवन करके पवित्र होते हैं उन्हीं को जगदीश्वर बहुत सा ज्ञान देकर अनेक प्रकार के सुख देता है परन्तु जो लोग ऐसी क्रियाओं के करने वाले वा परोपकारी होते हैं वे ही सुख को प्राप्त होते हैं आलस्य करने वाले कभी नहीं। इस मन्त्र में (कामधुक्षः) इन पदों से वाणी के विषय में प्रश्न है ॥ ३ ॥

सा विश्वायुरित्यस्य ऋषिः स एव। विष्णुर्देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धार स्वरः ॥

जो पूर्वोक्त मन्त्र में तीन प्रश्न कहे हैं उनके उत्तर अगले मन्त्र में क्रम से प्रकाशित किये हैं ॥

सा वि॒श्वायुः॒ सा वि॒श्वक॑र्मा॒ सा वि॒श्वधा॑याः। इन्द्र॑स्य त्वा भा॒गꣳसोमे॒ना त॑नच्मि॒ विष्णो॑ ह॒व्यꣳर॑क्ष ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (विष्णो) व्यापक ईश्वर ! आप जिस वाणी का धारण करते हैं (सा) वह (विश्वायुः) पूर्ण आयु की देने वाली (सा) वह (विश्वकर्मा) जिससे कि सम्पूर्ण क्रिया-कांड सिद्ध होता है और (सा) वह (विश्वधायाः) सब जगत् को विद्या और गुणों से धारण करने वाली है। पूर्व मन्त्र में जो प्रश्न है उसके उत्तर में यही तीन प्रकार की वाणी ग्रहण करने योग्य है इसी से मैं (इन्द्रस्य) परमेश्वर का (भागम्) सेवन करने योग्य यज्ञ को (सोमेन) विद्या से सिद्ध किये रस अथवा आनन्द से (आ तनच्मि) अपने हृदय में दृढ़ करता हूं तथा हे परमेश्वर ! (हव्यम्) पूर्वोक्त यज्ञ सम्बन्धी देने लेने योग्य द्रव्य वा विज्ञान की (रक्ष) निरन्तर रक्षा कीजिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—तीन प्रकार की वाणी होती है अर्थात् प्रथम वह जो कि ब्रह्मचर्य में पूर्ण विद्या पढ़ने वा पूर्ण आयु होने के लिये सेवन की जाती है। दूसरी वह जो गृहाश्रम में अनेक क्रिया वा उद्योगों से सुखों की देने वाली विस्तार से प्रकट की जाती है और तीसरी वह जो इस संसार में सब मनुष्यों के शरीर और आत्मा के सुख की वृद्धि वा ईश्वर आदि पदार्थों के विज्ञान को देने वाली वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में विद्वानों से उपदेश की जाती है। इस तीन प्रकार की वाणी के विना किसी को सब सुख नहीं हो सकते क्योंकि इसी से पूर्वोक्त यज्ञ तथा व्यापक ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करना योग्य है। ईश्वर की यह आज्ञा है कि जो नियम से किया हुआ यज्ञ संसार में रक्षा का हेतु और प्रेम सत्यभाव से प्रार्थित ईश्वर विद्वानों की सर्वदा रक्षा करता है वही सब का अध्यक्ष है परन्तु जो क्रिया में कुशल धार्मिक परोपकारी मनुष्य हैं वे ही ईश्वर और धर्म को जानकर मोक्ष और सम्यक् क्रियासाधनों से इस लोक और परलोक के सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

अग्ने व्रतपत इत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । आर्चीत्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

उक्त वाणी का व्रत क्या है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।

अग्ने॑ व्रतपते व्र॒तं च॑रिष्यामि॒ तच्छ॑केयं॒ तन्मे॑ राध्यताम् । इ॒दम॒हमनृ॑तात् स॒त्यमुपै॑मि ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (व्रतपते) सत्य भाषण आदि धर्मों के पालन करने और (अग्ने) सत्य उपदेश करने वाले परमेश्वर ! मैं (अनृतात्) जो झूंठ से अलग (सत्यम्) वेदविद्या, प्रत्यक्ष आदि प्रमाण, सृष्टिक्रम, विद्वानों का संग, श्रेष्ठ विचार तथा आत्मा की शुद्धि आदि प्रकारों से जो निर्भ्रम, सर्वहित, तत्त्व अर्थात् सिद्धान्त के प्रकाश करानेहारों से सिद्ध हुआ, अच्छी प्रकार परीक्षा किया गया (व्रतम्) सत्य बोलना सत्य मानना और सत्य करना है उसका (उपैमि) अनुष्ठान अर्थात् नियम से ग्रहण करने वा जानने और उसकी प्राप्ति की इच्छा करता हूं । (मे) मेरे (तत्) उस सत्यव्रत को आप (राध्यताम्) अच्छी प्रकार सिद्ध कीजिये जिससे कि (अहम्) मैं उक्त सत्यव्रत के नियम करने को (शकेयम्) समर्थ होऊं और मैं (इदम्) इसी प्रत्यक्ष सत्यव्रत के आचरण का नियम (चरिष्यामि) करूंगा ॥ ५ ॥

भावार्थः—परमेश्वर ने सब मनुष्यों को नियम से सेवन करने योग्य धर्म का उपदेश किया है जो कि न्याययुक्त परीक्षा किया हुआ सत्य लक्षणों से प्रसिद्ध और सब का हितकारी तथा इस लोक अर्थात् संसारी और परलोक अर्थात् मोक्षसुख का हेतु है यही सब को आचरण करने योग्य है और उस से विरुद्ध जो कि अधर्म कहाता है वह किसी को ग्रहण करने योग्य कभी नहीं हो सकता क्योंकि सर्वत्र उसी का त्याग करना है । इसी प्रकार हमको भी प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हे परमेश्वर ! हम लोग वेदों में आप के प्रकाशित किये सत्य धर्म का ही ग्रहण करें तथा हे परमात्मन् ! आप हम पर ऐसी कृपा कीजिये कि जिससे हम लोग उक्त सत्य धर्म का पालन कर के अर्थ काम और मोक्षरूप फलों को सुगमता से प्राप्त हो सकें । जैसे सत्यव्रत के पालने से आप व्रतपति हैं वैसे ही हम लोग भी आप की कृपा और अपने पुरुषार्थ से यथाशक्ति सत्यव्रत के पालनेवाले हों तथा धर्म करने की इच्छा से अपने सत्कर्म के द्वारा सब सुखों को प्राप्त होकर सब प्राणियों को सुख पहुंचाने वाले हों ऐसी इच्छा सब मनुष्यों को करनी चाहिये ॥ शतपथ ब्राह्मण के बीच इस मन्त्र की व्याख्या में कहा है कि मनुष्यों का आचरण दो प्रकार का होता है एक सत्य और दूसरा झूंठ का अर्थात् जो पुरुष वाणी मन और शरीर से सत्य का आचरण करते हैं वे देव कहाते और जो झूंठ का आचरण करने वाले हैं वे असुर राक्षस आदि नामों के अधिकारी होते हैं ॥ ५ ॥

कस्त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । प्रजापतिर्देवता । आर्चीपंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

किसने सत्य करने और असत्य छोड़ने की आज्ञा दी है सो
अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति । कर्मणे वां वेषाय वाम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—(कः) कौन (त्वाम्) तुझ को अच्छी-अच्छी क्रियाओं के सेवन करने के लिये (युनक्ति) आज्ञा देता है (सः) सो जगदीश्वर (त्वा) तुम को विद्या आदिक शुभ गुणों के प्रकट करने के लिये विद्वान् वा विद्यार्थी होने को (युनक्ति) आज्ञा देता है (कस्मै) वह किस-किस प्रयोजन के लिये (त्वा) मुझ और तुझ को (युनक्ति) युक्त करता है (तस्मै) पूर्वोक्त सत्यव्रत के आचरण रूप यज्ञ के लिये (त्वा) धर्म के प्रचार करने में उद्योगी को (युनक्ति) आज्ञा देता है (सः) वही ईश्वर (कर्म्मणे) उक्त श्रेष्ठ कर्म करने के लिये (वाम्) कर्म करने और कराने वालों को नियुक्त करता है (वेषाय) शुभ गुण और विद्याओं में व्याप्ति के लिये (वाम्) विद्या पढ़ने और पढ़ाने वाले तुम लोगों को उपदेश करता है । ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में प्रश्न और उत्तर से ईश्वर जीवों के लिये उपदेश करता है । जब कोई किसी से पूछे कि मुझे सत्य कर्मों में कौन प्रवृत्त करता है ? इसका उत्तर ऐसा दे कि प्रजापति अर्थात् परमेश्वर ही पुरुषार्थ और अच्छी अच्छी क्रियाओं के करने की तुम्हारे लिये वेद के द्वारा उपदेश की प्रेरणा करता है । इसी प्रकार कोई विद्यार्थी किसी विद्वान् से पूछे कि मेरे आत्मा में अन्तर्यामिरूप से सत्य का प्रकाश कौन करता है तो वह उत्तर देवे कि सर्वव्यापक जगदीश्वर । फिर वह पूछे कि वह हमको किस-किस प्रयोजन के लिये उपदेश करता और आज्ञा देता है । उसका उत्तर देवे कि सुख और सुखस्वरूप परमेश्वर की प्राप्ति तथा सत्य विद्या और धर्म के प्रचार के लिये । मैं और आप दोनों को कौन-कौन काम करने के लिये वह ईश्वर उपदेश करता है । इसका परस्पर उत्तर देवें कि यज्ञ करने के लिये । फिर वह कौन कौन पदार्थ की प्राप्ति के लिये आज्ञा देता है । इस का उत्तर देवें कि सब विद्याओं की प्राप्ति और उनके प्रचार के लिये ॥ मनुष्यों को दो प्रयोजनों में प्रवृत्त होना चाहिये अर्थात् एक तो अत्यन्त पुरुषार्थ और शरीर की आरोग्यता से चक्रवर्त्ती राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति करना और दूसरे सब विद्याओं को अच्छी प्रकार पढ़ के उनका प्रचार करना चाहिये । किसी मनुष्य को पुरुषार्थ को छोड़ के आलस्य में कभी नहीं रहना चाहिये ॥ ६ ॥

प्रत्युष्टमित्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । प्राजापत्या जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

सब मनुष्यों को उचित है कि दुष्ट गुण और दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्यों का निषेध करें इस बात का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ताऽअरातयः । उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ ७ ॥

पदार्थः—मुझ को चाहिये कि पुरुषार्थ के साथ (रक्षः) दुष्ट गुण और दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्य को (प्रत्युष्टम्) निश्चय करके निर्मूल करूं तथा (अरातयः) जो राति अर्थात् दान

आदि धर्म से रहित दयाहीन दुष्ट शत्रु हैं उनको (प्रत्युष्टाः) प्रत्यक्ष निर्मूल (रक्षः) वा दुष्ट स्वभाव दुष्टगुण विद्याविरोधी स्वार्थी मनुष्य और (निष्टप्तम्) (अरातयः) छलयुक्त होके विद्या के ग्रहण वा दान से रहित दुष्ट प्राणियों को (निष्टप्ताः) निरन्तर संतापयुक्त करूं। इस प्रकार करके (अन्तरिक्षम्) सुख के सिद्ध करने वाले उत्तम स्थान और (उरु) अपार सुख को (अन्वेमि) प्राप्त होऊं ॥ ७ ॥

भावार्थः—ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों को अपना दुष्ट स्वभाव छोड़कर विद्या और धर्म के उपदेश से औरों को भी दुष्टता आदि अधर्म के व्यवहारों से अलग करना चाहिये तथा उनको बहु प्रकार का ज्ञान और सुख देकर सब मनुष्य आदि प्राणियों को विद्या धर्म पुरुषार्थ और नाना प्रकार के सुखों से युक्त करना चाहिये ॥ ७ ॥

धूरसीत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । [निचृद्] अतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

सब के धारण करनेवाले ईश्वर और पदार्थविद्या की सिद्धि हेतु भौतिक अग्नि का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

धूर॑सि॒ धूर्व॒ धूर्व॑न्तं॒ धूर्व॒ तं यो॒ऽस्मान् धूर्व॑ति॒ तं धू॑र्व॒ यं व॒यं धूर्वा॑मः ।
दे॒वाना॑मसि॒ वह्नि॑तम॒ꣳ सस्नि॑तमं॒ पप्रि॑तमं॒ जुष्ट॑तमं दे॒वहू॑तमम् ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! आप (धूः) सब दोषों के नाश और जगत् की रक्षा करने वाले (असि) हैं इस कारण हम लोग इस बुद्धि से (देवानाम्) विद्वानों को विद्या मोक्ष और सुख में (वह्नितमम्) यथायोग्य पहुंचाने (सस्नितमम्) अतिशय कर के शुद्ध करने (पप्रितमम्) सब विद्या और आनन्द से संसार को पूर्ण करने (जुष्टतमम्) धार्मिक भक्तजनों को सेवा करने योग्य और (देवहूतमम्) विद्वानों की स्तुति करने योग्य आप की नित्य उपासना करते हैं। (यः) जो कोई द्वेषी छली कपटी पापी कामक्रोधादियुक्त मनुष्य (अस्मान्) धर्मात्मा और सब को सुख से युक्त करने वाले हम लोगों को (धूर्वति) दुःख देता है और (यम्) जिस पापीजन को (वयम्) हम लोग (धूर्वामः) दुःख देते हैं (तम्) उसको आप (धूर्व) शिक्षा कीजिये तथा जो सब से द्रोह करने वा सब को दुःख देता है उस को भी आप सदैव (धूर्व) ताड़ना कीजियें। हे शिल्पविद्या को जानने की इच्छा करने वाले मनुष्य ! तू जो भौतिक अग्नि (धूः) सब पदार्थों को छेदन और अन्धकार का नाश करने वाला (असि) है तथा जो कला चलाने की चतुराई से यानों में विद्वानों को (वह्नितमम्) सुख पहुंचाने (सस्नितमम्) शुद्धि होने का हेतु (पप्रितमम्) शिल्पविद्या का मुख्य साधन (जुष्टतमम्) कारीगर लोग जिस का सेवन करते हैं तथा जो (देवहूतमम्) विद्वानों को स्तुति करने योग्य अग्नि है उस को (वयम्) हम लोग (धूर्वामः) ताड़ते हैं और जिसका सेवन युक्ति से न किया जाय तो (अस्मान्) हम लोगों को (धूर्वति) पीड़ा करता है (तम्) उस (धूर्वन्तम्) पीड़ा करने वाले अग्नि को (धूर्व) यानादिकों में युक्त कर तथा हे वीर पुरुष ! तुम (यः) जो दुष्ट शत्रु (अस्मान्) हम लोगों को (धूर्वति) दुःख देता है (तम्) उस को (धूर्व) नष्ट कर तथा जो कोई चोर आदि है उस का भी (धूर्व) नाश कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो ईश्वर सब जगत् को धारण कर रहा है वह पापी दुष्ट जीवों को उन के किये हुए पापों के अनुकूल दण्ड देकर दुःखयुक्त और धर्मात्मा पुरुषों को उत्तम कर्मों के अनुसार फल देके उन की रक्षा करता है वही सब सुखों की प्राप्ति आत्मा की शुद्धि कराने और पूर्ण विद्या का देने वाला विद्वानों के स्तुति करने योग्य तथा प्रीति और इष्ट बुद्धि से सेवा करने योग्य है दूसरा कोई नहीं। तथा यह प्रत्यक्ष भौतिक अग्नि भी सम्पूर्ण शिल्पविद्याओं की क्रियाओं को सिद्ध करने तथा उन का मुख्य साधन और पृथिवी आदि पदार्थों में अपने प्रकाश अथवा उन की प्राप्ति से श्रेष्ठ है। क्योंकि जिस से सिद्ध की हुई आग्नेय आदि उत्तम शस्त्रास्त्रविद्या से शत्रुओं का पराजय होता है इस से यह भी विद्या की युक्तियों से होम और विमान आदि के सिद्ध करने के लिये सेवा करने के योग्य है ॥ ८ ॥

अह्रुतमसीत्यस्य ऋषिः स एव। विष्णुर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब यजमान और भौतिक अग्नि के कर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अह्रुतमसि हविर्धानं दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्। विष्णुस्त्वा क्रमतामुरु वातायापहतꣳ रक्षो यच्छन्तां पञ्च ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे ऋत्विग् मनुष्य! तुम जो अग्नि से बढ़ा हुआ (अह्रुतम्) कुटिलतारहित (हविर्धानम्) होम के योग्य पदार्थों का धारण करना है उस को (दृꣳहस्व) बढ़ाओ किन्तु किसी समय में (मा ह्वाः) उस का त्याग मत करो तथा यह (ते) तुम्हारा (यज्ञपतिः) यजमान भी उस यज्ञ के अनुष्ठान को (मा ह्वार्षीत) न छोड़े। इस प्रकार तुम लोग (पञ्च) एक तो ऊपर को चेष्टा होना दूसरा नीचे को तीसरा चेष्टा से अपने अङ्गों को संकोचना चौथा उनका फैलाना पांचवां चलना फिरना आदि इन पांच प्रकार के कर्मों से हवन के योग्य जो द्रव्य हो उसको अग्नि में (यच्छन्ताम्) हवन करो। (त्वा) वह जो हवन किया हुआ द्रव्य है उस को (विष्णुः) जो व्यापनशील सूर्य्य है वह (अपहतम्) (रक्षः) दुर्गन्धादि दोषों का नाश करता हुआ (उरुवाताय) अत्यन्त वायु की शुद्धि वा सुख की वृद्धि के लिये (क्रमताम्) चढ़ा देता है ॥ ९ ॥

भावार्थः—जब मनुष्य परस्पर प्रीति के साथ कुटिलता को छोड़कर शिक्षा देने वाले के शिष्य होके विशेष ज्ञान और क्रिया से भौतिक अग्नि की विद्या को जानकर उस का अनुष्ठान करते हैं तभी शिल्पविद्या की सिद्धि के द्वारा सब शत्रु दारिद्र्य और दुःखों से छूटकर सब सुखों को प्राप्त होते हैं इस प्रकार विष्णु अर्थात् व्यापक परमेश्वर ने सब मनुष्यों के लिये आज्ञा दी है, जिसका पालन करना सब को उचित है ॥ ९ ॥

देवस्य त्वेत्यस्य ऋषिः स एव। सविता देवता। भुरिग्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

उस यज्ञ के फल का ग्रहण किस करके होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । अग्नये जुष्टं गृह्णाम्यग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि ॥ १० ॥

पदार्थः—मैं (सवितुः) सब जगत् के उत्पन्नकर्त्ता सकल ऐश्वर्य्य के दाता तथा (देवस्य) संसार का प्रकाश करनेहारे और सब सुखदायक परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए इस संसार में (अश्विनोः) सूर्य्य और चन्द्रमा के (बाहुभ्याम्) बल और वीर्य्य से तथा (पूष्णः) पुष्टि करने वाले प्राण के (हस्ताभ्याम्) ग्रहण और त्याग से (अग्नये) अग्निविद्या के सिद्ध करने के लिये (जुष्टम्) विद्या पढ़ने वाले जिस कर्म की सेवा करते हैं (त्वा) उसे (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं। इसी प्रकार (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और जल की विद्या कर के (जुष्टम्) विद्वानों ने जिस कर्म को चाहा है उस के फल को (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं ।। १० ।।

भावार्थः—विद्वान् मनुष्यों को उचित है कि विद्वानों का समागम वा अच्छे प्रकार अपने पुरुषार्थ से परमेश्वर की उत्पन्न की हुई प्रत्यक्ष सृष्टि अर्थात् संसार में सकल विद्या की सिद्धि के लिये सूर्य्य चन्द्र अग्नि और जल आदि पदार्थों के प्रकाश से सब के बल वीर्य्य की वृद्धि के अर्थ अनेक विद्याओं को पढ़ के उन का प्रचार करना चाहिये अर्थात् जैसे जगदीश्वर ने सब पदार्थों की उत्पत्ति और उन की धारणा से सब का उपकार किया है वैसे ही हम लोगों को भी नित्य प्रयत्न करना चाहिये ।। १० ।।

भूताय त्वेति ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । स्वराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

उन यज्ञशाला आदिक घर कैसे बनाने चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

भूताय त्वा नारातये स्वरभिविख्येषं दृꣳहन्तां दुर्य्याः पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि । पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्याऽउपस्थेऽग्ने हव्यꣳ रक्ष ॥ ११ ॥

पदार्थः—मैं जिस यज्ञ को (भूताय) प्राणियों के सुख तथा (अरातये) दारिद्र्य आदि दोषों के नाश के लिये (अदित्या) वेदवाणी वा विज्ञानप्रकाश के (उपस्थे) गुणों में (सादयामि) स्थापना करता हूं और (त्वा) उसको कभी (न) नहीं छोड़ता हूं । हे विद्वान् लोगो ! तुम को उचित है कि (पृथिव्याम्) विस्तृत भूमि में (दुर्य्याः) अपने घर (दृꣳहन्ताम्) बढ़ाने चाहिये । मैं (पृथिव्याः) (नाभौ) पृथिवी के बीच में जिन गृहों में (स्वः) जल आदि सुख के पदार्थों को (अभिविख्येषम्) सब प्रकार से देखूं और (उर्वन्तरिक्षम्) उक्त पृथिवी में बहुतसा अवकाश देकर सुख से निवास करने योग्य स्थान रचकर [(त्वा) आपको]

(अन्वेमि) प्राप्त होता हूं । हे (अग्ने) जगदीश्वर ! आप (हव्यम्) हमारे देने लेने योग्य पदार्थों की (रक्ष) सर्वदा रक्षा कीजिये ॥ यह प्रथम पक्ष हुआ ॥ अब दूसरा पक्ष—हे अग्ने परमेश्वर ! मैं (भूताय) संसारी जीवों के सुख तथा (अरातये) दरिद्र का विनाश और दान आदि धर्म करने के लिये (पृथिव्याः) पृथिवी के (नाभौ) बीच में [सबके स्वामी तथा उपासनीय जानकर] (स्वः) सुखस्वरूप (त्वा) आपको (अभिविख्येषम्) प्रकाश करता हूं तथा आपकी कृपा से मेरे घर आदि पदार्थ और उनमें रहने वाले मनुष्य आदि प्राणी (दृंहन्ताम्) वृद्धि को प्राप्त हों और मैं (पृथिव्याम्) विस्तृत भूमि में (उरु) बहुत से (अन्तरिक्षम्) अवकाशयुक्त स्थान को निवास के लिये (अदित्या उपस्थे) सर्वत्र व्यापक आपके समीप सदा (अन्वेमि) प्राप्त होता हूं । कदाचित (त्वा) आपका (न सादयामि) त्याग नहीं करता हूं । हे जगदीश्वर ! आप मेरे (हव्यम्) अर्थात् उत्तम पदार्थों की सर्वदा (रक्ष) रक्षा कीजिये ॥ यह दूसरा पक्ष हुआ ॥ तथा तीसरा और भी कहते हैं—मैं शिल्पविद्या का जानने वाला यज्ञ को करता हुआ (भूताय) सांसारिक प्राणियों के सुख और (अरातये) दरिद्र आदि दोषों के विनाश वा सुख से दान आदि धर्म करने की इच्छा से (पृथिव्या नाभौ) इस पृथिवी पर शिल्पविद्या की सिद्धि करने वाला जो (अग्ने) अग्नि है उसको हवन करने वा शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये (सादयामि) स्थापन करता हूं क्योंकि उक्त शिल्पविद्या इसी से सिद्ध होती है (अदित्याः) [उपस्थे] तथा जो अन्तरिक्ष में स्थित मेघमण्डल में [हव्यम्] होम द्वारा पहुंचे हुए उत्तम-उत्तम पदार्थों की [रक्ष] रक्षा करने वाला है इसीलिये इस अग्नि को (पृथिव्याम्) पृथिवी में स्थापन करके (उर्वन्तरिक्षम्) बड़े अवकाशयुक्त स्थान और विविध प्रकार के सुखों को [अन्वेमि] प्राप्त होता हूं अथवा इसी प्रयोजन के लिये [त्वा] इस अग्नि को पृथिवी में स्थापन करता हूं ॥ इस प्रकार श्रेष्ठ कर्मों को करता हुआ (स्वः) अनेक सुखों को (अभिविख्येषम्) देखूं तथा मेरे (दुर्य्याः) घर और उनमें रहने वाले मनुष्य (दृंहन्ताम्) शुभ गुण और सुख से वृद्धि को प्राप्त हों इसलिये इस भौतिक अग्नि का भी त्याग मैं कभी (न) नहीं करता हूं ॥ यह तीसरा अर्थ हुआ ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है और ईश्वर ने आज्ञा दी है कि हे मनुष्य लोगो ! मैं तुम्हारी रक्षा इसलिये करता हूं कि तुम लोग पृथिवी पर सब प्राणियों को सुख पहुँचाओ तथा तुम को योग्य है कि वेदविद्या धर्म के अनुष्ठान और अपने पुरुषार्थ द्वारा विविध प्रकार के सुख सदा बढ़ाने चाहिये । तुम सब ऋतुओं में सुख देने के योग्य बहुत अवकाशयुक्त सुन्दर घर बनाकर सर्वदा सुख सेवन करो और मेरी सृष्टि में जितने पदार्थ हैं उनसे अच्छे-अच्छे गुणों को खोजकर अथवा अनेक विद्याओं को प्रकट करते हुए फिर उक्त गुणों का संसार में अच्छे प्रकार प्रचार करते रहो कि जिससे सब प्राणियों को उत्तम सुख बढ़ता रहे तथा तुम को चाहिये कि मुझको सब जगह व्याप्त सब का साक्षी सब का मित्र सब सुखों का बढ़ानेहारा उपासना के योग्य और सर्वशक्तिमान् जानकर सब का उपकार विविध विद्या की वृद्धि धर्म में प्रवृत्ति अधर्म में निवृत्ति क्रियाकुशलता की सिद्धि और यज्ञक्रिया के अनुष्ठान आदि करने में सदा प्रवृत्त रहो ॥ इस मन्त्र में महीधर ने भ्रांति से (अभिविख्येषम्) यह पद (ख्या प्रकथने) इस धातु का दर्शन अर्थ में माना है । यह धातु के अर्थ से ही विरुद्ध होने करके अशुद्ध है ॥ ११ ॥

पवित्रे स्थ इत्यस्य ऋषिः स एव । अप्सवितारौ देवते । भुरिगत्यष्टिः छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अग्नि में जिस द्रव्य का होम किया जाता है वह मेघमंडल को प्राप्त होके किस प्रकार का होकर क्या गुण करता है इस बात का उपदेश ईश्वर ने अगले मन्त्र में किया है ॥

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः । देवीरापोऽअग्रेगुवोऽअग्रेपुवोऽग्रऽइममद्य यज्ञं नयताग्रे यज्ञपतिꣳ सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! तुम जैसे (सवितुः) परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए इस संसार में (अच्छिद्रेण) निर्दोष और (पवित्रेण) पवित्र करने का हेतु जो (सूर्य्यस्य) सूर्य्य की (रश्मिभिः) किरण हैं उन से (वैष्णव्यौ) यज्ञसम्बन्धी प्राण और अपान की गति (पवित्रे) पदार्थों के भी पवित्र करने में हेतु (स्थः) हों और जैसे उक्त सूर्य्य की किरणों से (अग्रगुवः) आगे समुद्र वा अन्तरिक्ष में चलें (अग्रेपुवः) प्रथम पृथिवी में रहने वाली सोम ओषधि के सेवन करने तथा (देवीः) दिव्यगुणयुक्त (वः) वह (आपः) जल पवित्र हों । वैसे (नयत) पवित्र पदार्थों का होम अग्नि में करो वैसे ही मैं भी (अद्य) आज के दिन (इमम्) इस (यज्ञम्) पूर्वोक्त क्रियासम्बन्धी यज्ञ को प्राप्त करके (अग्रे) जो प्रथम (सुधातुम्) श्रेष्ठ मन आदि इन्द्रिय और सुवर्ण आदि धनवाला (यज्ञपतिम्) यज्ञ का नियम से पालक तथा (देवयुवम्) विद्वान् और श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त होने वा उनका प्राप्त कराने (यज्ञपतिम्) यज्ञ की इच्छा करने वाला मनुष्य है उसको (उत्पुनामि) पवित्र करता हूं ॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । जो पदार्थ संयोग से विकार को प्राप्त होते हैं वे अग्नि के निमित्त से अतिसूक्ष्म परमाणुरूप होकर वायु के बीच रहा करते हैं और कुछ शुद्ध भी हो जाते हैं परन्तु जैसी यज्ञ के अनुष्ठान से वायु और वृष्टि जल की उत्तम शुद्धि और पुष्टि होती है वैसी दूसरे उपाय से कभी नहीं हो सकती इससे विद्वानों को चाहिये कि होमक्रिया और वायु अग्नि जल आदि पदार्थ वा शिल्पविद्या से अच्छी-अच्छी सवारी बना के अनेक प्रकार के लाभ उठावें अर्थात् अपनी मनोकामना सिद्धि कर के औरों की भी कामना सिद्धि करें । जो जल इस पृथिवी से अन्तरिक्ष को चढ़कर वहां से लौटकर फिर पृथिवी आदि पदार्थों को प्राप्त होते हैं वे प्रथम और जो मेघ में रहने वाले हैं वे दूसरे कहाते हैं । ऐसी शतपथ ब्राह्मण में मेघ का वृत्र तथा सूर्य्य का इन्द्र नाम से वर्णन करके युद्धरूप कथा के प्रकाश से मेघविद्या दिखलाई है ॥ १२ ॥

युष्मा इन्द्रो वृणीतेत्यस्य ऋषिः पूर्वोक्तः । इन्द्रो देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । अग्नेय त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । दैव्याय कर्म्मणे इत्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

उक्त जल किस प्रकार के हैं वा इन्द्र और वृत्र का युद्ध कैसे होता है
सो अगले मन्त्र में कहा गया है ॥

युष्माऽइन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्य्यें यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्य्ये प्रोक्षिता स्थ। अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि। दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि ॥ १३ ॥

पदार्थः—यह (इन्द्रः) सूर्य्यलोक (वृत्रतूर्य्ये) मेघ के वध के लिये (युष्माः) पूर्वोक्त जलों को (अवृणीत) स्वीकार करता है जैसे जल (इन्द्रम्) वायु को (अवृणीध्वम्) स्वीकार करते हैं वैसे ही (यूयम्) हे मनुष्यो ! तुम लोग उन जल औषधि रसों को शुद्ध करने के लिये (वृत्रतूर्य्ये) मेघ के शीघ्रवेग (प्रोक्षिताः) संसारी पदार्थों के सींचने वाले जलों को (अवृणीध्वम्) स्वीकार करो और जैसे वे जल शुद्ध (स्थ) होते हैं वैसे तुम भी शुद्ध हो। इसलिये मैं यज्ञ का अनुष्ठान करके वाला (दैव्याय) सब को शुद्ध करने वाले (कर्मणे) उत्क्षेपण=उछालना, अवक्षेपण=नीचे फेंकना, आकुञ्चन=सिमेटना, प्रसारण=फैलाना, गमन= चलना आदि पांच प्रकार के कर्म हैं उन के और (देवयज्यायै) विद्वान् वा श्रेष्ठ गुणों की दिव्य क्रिया के लिये तथा (अग्नये) भौतिक अग्नि से सुख के लिये (जुष्टम्) अच्छी क्रियाओं से सेवन करने योग्य (त्वा) उस यज्ञ को (प्रोक्षामि) करता हूं तथा (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोम से वर्षा के निमित्त (जुष्टम्) प्रीति देनेवाला और प्रीति से सेवने योग्य (त्वा) उक्त यज्ञ को (प्रोक्षामि) मेघमण्डल में पहुंचाता हूं इस प्रकार यज्ञ से शुद्ध किये हुए जल (शुन्धध्वम्) अच्छे प्रकार शुद्ध होते हैं। (यत्) जिस कारण यज्ञ की शुद्धि से (वः) पूर्वोक्त जलों के अशुद्धि आदि दोष (पराजघ्नुः) निवृत्ति हों (तत्) उन जलों की शुद्धि को मैं (शुन्धामि) अच्छे प्रकार शुद्ध करता हूं ॥ यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ है ॥ हे यज्ञ करने वाले मनुष्यों ! (यत्) जिस कारण (इन्द्रः) सूर्य्यलोक (वृत्रतूर्य्ये) मेघ के वध के निमित्त (युष्माः) पूर्वोक्त जल और (इन्द्रम्) पवन को (अवृणीत) स्वीकार करता है तथा जिस कारण सूर्य्य ने (वृत्रतूर्य्ये) मेघ की शीघ्रता के निमित्त (युष्माः) पूर्वोक्त जलों को (प्रोक्षिताः) पदार्थ सींचने वाले (स्थ) किये हैं इससे (यूयम्) तुम (त्वा) उक्त यज्ञ को सदा स्वीकार करके (नयत) सिद्धि को प्राप्त करो। इस प्रकार हम सब लोग (दैव्याय) श्रेष्ठ कर्म वा (देवयज्यायै) विद्वान् और दिव्य गुणों की श्रेष्ठ क्रियाओं के तथा (अग्नये) परमेश्वर की प्राप्ति के लिये (जुष्टम्) प्रीति कराने वाले यज्ञ को (प्रोक्षामि) सेवन करें तथा (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोम से प्रकाशित होने वाले (त्वा) उक्त यज्ञ को (प्रोक्षामि) मेघमण्डल में पहुंचावें। हे मनुष्यो ! इस प्रकार करते हुए तुम सब पदार्थ वा सब मनुष्यों को (शुन्धध्वम्) शुद्ध करो (यत्) और जिससे (वः) तुम लोगों के अशुद्धि आदि दोष हैं वे सदा (पराजघ्नुः) निवृत्त होते रहें। वैसे ही मैं वेद का प्रकाश करने वाला तुम लोगों के शोधन अर्थात् शुद्धि प्रकार को (शुन्धामि) अच्छे प्रकार बढ़ाता हूं ॥ १३ ॥

भावार्थः—[इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है] परमेश्वर ने अग्नि और सूर्य्य को इसलिये रचा है कि वे सब पदार्थों में प्रवेश कर के उनके रस और जल को छिन्न-भिन्न कर दें जिस से वे

वायुमण्डल में जाकर फिर वहां से पृथिवी पर आके सब को सुख और शुद्धि करने वाले हों। इस से मनुष्यों को उत्तम सुख प्राप्त होने के लिये अग्नि में सुगन्धित पदार्थों के होम से वायु और वृष्टि जल की शुद्धि द्वारा श्रेष्ठ सुख बढ़ाने के लिये प्रीतिपूर्वक नित्य यज्ञ करना चाहिये जिस से इस संसार के सब रोग आदि दोष नष्ट होकर उस में शुद्ध गुण प्रकाशित होते रहें। इसी प्रयोजन के लिये मैं ईश्वर तुम सबों को उक्त यज्ञ के निमित्त शुद्धि करने का उपदेश करता हूं कि हे मनुष्यो! तुम लोग परोपकार करने के लिये शुद्ध कर्मों को नित्य किया करो तथा उक्त रीति से वायु अग्नि और जल के गुणों को शिल्पक्रिया में युक्त करके अनेक यान आदि यन्त्रकला बना कर अपने पुरुषार्थ से सदैव सुखयुक्त हों ॥ १३ ॥

शर्मासीत्यस्य पूर्वोक्त ऋषिः। यज्ञो देवता। स्वराड् जगती छन्दः। निषादः स्वर ॥

उक्त यज्ञ किस प्रकार का है और किस प्रकार से करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

शर्मास्यवधूतꣳ रक्षोऽवधूताऽअरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु। अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावासि पृथुबुध्नः प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! तुम्हारा घर (शर्म) सुख देनेवाला (असि) हो। उस घर से (रक्षः) दुष्टस्वभाव वाले प्राणी (अवधूतम्) अलग करो और (अरातयः) दान आदि धर्मरहित शत्रु (अवधूताः) दूर हों। उक्त गृह (अदित्याः) पृथिवी की (त्वक्) त्वचा के तुल्य (असि) हों (अदितिः) ज्ञानस्वरूप ईश्वर ही से उस घर को (प्रतिवेत्तु) सब मनुष्य जानें और प्राप्त हों तथा जो (वानस्पत्यः) वनस्पति के निमित्त से उत्पन्न होने (पृथुबुध्नः) अतिविस्तारयुक्त अन्तरिक्ष में रहने तथा (ग्रावा) जल का ग्रहण करनेवाला (अद्रिः) मेघ (असि) है उस और इस विद्या को (अदितिः) जगदीश्वर तुम्हारे लिये (वेत्तु) कृपा करके जनावें। विद्वान् पुरुष भी (अदित्याः) पृथिवी की (त्वक्) त्वचा के समान (त्वा) उक्त घर की रचना को (प्रतिवेत्तु) जानें ॥ १४ ॥

भावार्थः—ईश्वर मनुष्यों को आज्ञा देता है कि तुम लोग शुद्ध और विस्तारयुक्त भूमि के बीच में अर्थात् बहुत से अवकाश में सब ऋतुओं में सुख देने योग्य घर को बना के उस में सुखपूर्वक वास करो तथा उसमें रहने वाले दुष्ट स्वभावयुक्त मनुष्यादि प्राणी और दोषों को निवृत्त करो फिर उसमें सब पदार्थ स्थापन और वर्षा का हेतु जो यज्ञ है उस का अनुष्ठान कर के नाना प्रकार के सुख उत्पन्न करना चाहिये क्योंकि यज्ञ के करने से वायु और वृष्टिजल की शुद्धि द्वारा संसार में अत्यन्त सुख सिद्ध होता है ॥ १४ ॥

अग्नेस्तनूरित्यस्य ऋषिः स एव। यज्ञो देवता। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः। हविष्कृदिति याजुषी पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ किस प्रकार का होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा गृह्णामि बृहद्ग्रावासि वानस्पत्यः सऽइदं देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशमि शमीष्व । हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि ॥ १५ ॥

पदार्थः—⊙मैं सब जनों के सहित जिस हवि अर्थात् पदार्थ के संस्कार के लिये (बृहद्ग्रावासि) बड़े-बड़े पत्थर (असि) हैं और (वानस्पत्यः) काष्ठ के मूसल आदि पदार्थ (देवेभ्यः) विद्वान् वा दिव्यगुणों के लिये उस यज्ञ को (देववीतये) श्रेष्ठ गुणों के प्रकाश और श्रेष्ठ विद्वान् वा विविध भोगों की प्राप्ति के लिये (प्रतिगृह्णामि) ग्रहण करता हूं । हे विद्वान् मनुष्य ! तुम (देवेभ्यः) विद्वानों के सुख के लिये (सु शमि) अच्छे प्रकार दुःख शान्त करने वाले (हविः) यज्ञ करने योग्य पदार्थ को (शमीष्व) (शमीष्व) अत्यन्त शुद्ध करो । जो मनुष्य वेद आदि शास्त्रों को प्रीतिपूर्वक पढ़ते वा पढ़ाते हैं उन्हीं को यह (हविष्कृत्) हविः अर्थात् होम में चढ़ाने योग्य पदार्थों का विधान करने वाली जो कि यज्ञ को विस्तार करने के लिये वेद के पढ़ने से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की शुद्ध सुशिक्षित और प्रसिद्ध वाणी है सो प्राप्त होती है ॥ १५ ॥

भावार्थः—जब मनुष्य वेद आदि शास्त्रों के द्वारा यज्ञक्रिया और उस का फल जान के शुद्धि और उत्तमता के साथ यज्ञ को करते हैं तब वह सुगन्धी आदि पदार्थों के होम द्वारा परमाणु अर्थात् अति सूक्ष्म होकर वायु और वृष्टि जल में विस्तृत हुआ सब पदार्थों को उत्तम कर के दिव्य सुखों को उत्पन्न करता है । जो मनुष्य सब प्राणियों के सुख के अर्थ पूर्वोक्त तीन प्रकार के यज्ञ को नित्य करता है उस को सब मनुष्य हविष्कृत् अर्थात् यह यज्ञ का विस्तार करने वाला, यज्ञ का विस्तार करने वाला उत्तम मनुष्य है ऐसा वारम्वार कहकर सत्कार करें ॥ १५ ॥

कुक्कुटोऽसीत्यस्य ऋषिः स एव । वायुर्देवता । [स्वराड्] ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥ देवो वः सवितेत्यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी यह यज्ञ कैसा है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

कुक्कुटोऽसि मधुजिह्वऽइषमूर्जमावद त्वया वयꣳ संघातꣳ संघातं जेष्म वर्षवृद्धमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु परापूतꣳ रक्षः परापूता अरातयोऽपहतꣳ रक्षो वायुर्वो विविनक्तु देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना ॥ १६ ॥

पदार्थः—जिस कारण यह यज्ञ (मधुजिह्वः) जिस में मधुर गुणयुक्त वाणी हो । तथा (कुक्कटः) चोर वा शत्रुओं का विनाश करने वाला (असि) है । और (इषम्) अन्न आदि

पदार्थ वा (ऊर्जम्) विद्या आदि बल और उत्तम से उत्तम रस को देता है। इसी से उसका अनुष्ठान सदा करना चाहिये। हे विद्वान् लोगो ! तुम उक्त गुणों को देने वाला जो तीन प्रकार का यज्ञ है उसके अनुष्ठान और गुण के ज्ञाता (असि) हो, अतः हम लोगों को भी उसके गुणों का (आवद) उपदेश करो जिस से (वयं) हम लोग (त्वया) तुम्हारे साथ (संवातं संघातम्) जिन में उत्तम रीति से शत्रुओं का पराजय होता है अर्थात् अति भारी संग्रामों को वारम्वार (आ जेष्म) सब प्रकार से जीतें क्योंकि आप युद्धविद्या के जानने वाले (असि) हैं इसी से सब मनुष्य (वर्षवृद्धम्) शस्त्र और अस्त्रविद्या की वर्षा को बढ़ाने वाले (त्वा) आप तथा (वर्षवृद्धम्) वृष्टि के बढ़ाने वाले उक्त यज्ञ को (प्रतिवेत्तु) जानें। इस प्रकार संग्राम करके सब मनुष्यों को (परापूतम्) पवित्रता आदि गुणों को छोड़ने वाले (रक्षः) दुष्ट मनुष्य तथा (परापूताः) शुद्धि को छोड़ने वाले और (अरातयः) दान आदि धर्म से रहित शत्रुजन तथा (रक्षः) डाकुओं का जैसे (अपहतम्) नाश हो सके वैसा प्रयत्न सदा करना चाहिये जैसे यह (हिरण्यपाणिः) जिसका ज्योति हाथ है ऐसा जो (वायुः) पवन है, वह (अच्छिद्रेण) एकरस (पाणिना) अपने गमनागमन व्यवहार से यज्ञ और संसार में अग्नि और सूर्य्य से अति सूक्ष्म हुए पदार्थों को (प्रतिगृभ्णातु) ग्रहण करता है (हिरण्यपाणिः) वा जैसे किरण हैं हाथ जिस के वह (हिरण्यपाणिः) किरण व्यवहार से (सविता) वृष्टि वा प्रकाश के द्वारा दिव्य गुणों के उत्पन्न करने में हेतु (देवः) प्रकाशमय सूर्य्यलोक (वः) उन पदार्थों को (विविनक्तु) अलग अलग अर्थात् परमाणुरूप करता है वैसे ही परमेश्वर वा विद्वान् पुरुष (अच्छिद्रेण) निरन्तर (पाणिना) अपने उपदेशरूप व्यवहार से सब विद्याओं को (विविनक्तु) प्रकाश करें वैसे ही कृपा करके प्रीति के साथ (वः) तुमको अत्यन्त आनन्द करने के लिये (प्रतिगृभ्णातु) ग्रहण करते हैं ॥ १६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—परमेश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता है कि यज्ञ का अनुष्ठान, संग्राम में शत्रुओं का पराजय, अच्छे-अच्छे गुणों का ज्ञान, विद्वानों की सेवा दुष्ट मनुष्य वा दुष्ट दोषों का त्याग तथा सब पदार्थों को अपने ताप से छिन्न-भिन्न करने वाला अग्नि वा सूर्य्य और उनका धारण करने वाला वायु है ऐसा ज्ञान और ईश्वर की उपासना तथा विद्वानों का समागम करके और सब विद्याओं को प्राप्त होके सब के लिये सब सुखों की उत्पन्न करने वाली उन्नति सदा करनी चाहिये ॥ १६ ॥

धृष्टिरसीत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता। ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

अब अग्निशब्द से किस किस का ग्रहण किया जाता और इससे क्या क्या कार्य्य होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

धृष्टि॑रस्यपा॒ऽग्नेऽअ॒ग्निमा॒माद॑ञ्जहि॒ निष्क्र॒व्याद॑ᳪ᳭ सेधा दे॑व॒यजं॑ वह। ध्रु॒वम॑सि पृथि॒वीं दृ॑ᳪ᳭ह ब्रह्म॒वनि॑ त्वा क्षत्र॒वनि॑ सजात॒वन्युप॑दधामि॒ भ्रातृ॑व्यस्य व॒धाय॑ ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) परमेश्वर ! आप (धृष्टिः) प्रगल्भ अर्थात् अत्यन्त निर्भय (असि) हैं इस कारण (निष्क्रव्यादम्) पके हुए भस्म आदि पदार्थों को छोड़ के (आमादम्) कच्चे पदार्थ जलाने और (देवयजम्) विद्वान् वा श्रेष्ठ गुणों से मिलाप कराने वाले (अग्निम्) भौतिक वा विद्युत् अर्थात् बिजुलीरूप अग्नि को आप (सेध) सिद्ध कीजिये । इस प्रकार हम लोगों के मङ्गल अर्थात् उत्तम-उत्तम सुख होने के लिये शास्त्रों की शिक्षा कर के दुःखों को (अपजहि) दूर कीजिये और आनन्द को (आवह) प्राप्त कीजिये तथा हे परमेश्वर ! आप (ध्रुवम्) निश्चल सुख देने वाले (असि) हैं इस से (पृथिवीम्) विस्तृतभूमि वा उसमें रहने वाले मनुष्यों को (दृंह) उत्तम गुणों से वृद्धियुक्त कीजिये । हे अग्ने जगदीश्वर ! जिस कारण आप अत्यन्त प्रशंसनीय हैं इससे मैं (भ्रातृव्यस्य) दुष्ट वा शत्रुओं के (वधाय) विनाश के लिये (ब्रह्मवनि) (क्षत्रवनि) (सजातवनि) ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा प्राणिमात्र के सुख वा दुःख व्यवहार के देने वाले (त्वा) आप को (उपदधामि) हृदय में स्थापन करता हूँ ॥ यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ ॥ तथा हे विद्वान् यजमान ! जिस कारण यह (अग्ने) भौतिक अग्नि (धृष्टिः) अतितीक्ष्ण (असि) है तथा निकृष्ट पदार्थों को छोड़ कर उत्तम पदार्थों से (देवयजम्) विद्वान् वा दिव्य गुणों को प्राप्त कराने वाले यज्ञ को (आवह) प्राप्त कराता है इस से तुम (निष्क्रव्यादम्) पके हुए भस्म आदि पदार्थों को छोड़ के (आमादम्) कच्चे पदार्थ जलाने और (देवयजम्) विद्वान् वा दिव्य गुणों के प्राप्त कराने वाले (अग्निम्) प्रत्यक्ष वा बिजुलीरूप अग्नि को (आवह) प्राप्त करो तथा उसके जानने की इच्छा करने वाले लोगों को शास्त्रों की उत्तम-उत्तम शिक्षाओं के साथ उस का उपदेश (सेध) करो तथा उस के अनुष्ठान में जो दोष हों उनको (अपजहि) विनाश करो जिस कारण यह अग्नि सूर्य्यरूप से (ध्रुवम्) निश्चल (असि) है इसी कारण यह आकर्षणशक्ति से (पृथिवीम्) विस्तृत भूमि वा उस में रहने वाले प्राणियों को (दृंह) दृढ़ करता है इसी से मैं (त्वा) उस (ब्रह्मवनि) (क्षत्रवनि) (सजातवनि) ब्राह्मण, क्षत्रिय वा जीवमात्र के सुख दुःख को अलग-अलग कराने वाले भौतिक अग्नि को (भ्रातृव्यस्य) दुष्ट वा शत्रुओं के (वधाय) विनाश के लिये हवन करने की वेदी वा विमान आदि यानों में (उपदधामि) स्थापन करता हूं ॥ यह दूसरा अर्थ हुआ ॥ १७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है ॥ सर्वशक्तिमान् ईश्वर ने यह भौतिक अग्नि आम अर्थात् कच्चे पदार्थ जलाने वाला बनाया है इस कारण भस्मरूप पदार्थों के जलाने को समर्थ नहीं है । जिससे कि मनुष्य कच्चे-कच्चे पदार्थों को पका कर खाते हैं [वह आमात्] तथा जिस करके सब प्राणियों का खाया हुआ अन्न आदि द्रव्य पकता है [वह जाठर] और जिस करके मनुष्य लोग मरे हुए शरीर को जलाते हैं, वह क्रव्यात् अग्नि कहाता है और जिससे दिव्य गुणों को प्राप्त कराने वाली विद्युत् बनी है तथा जिससे पृथिवी का धारण और आकर्षण करने वाला सूर्य्य बना है और जिसे वेदविद्या के जानने वाले ब्राह्मण वा धनुर्वेद के जानने वाले क्षत्रिय वा सब प्राणिमात्र सेवन करते हैं तथा जो सब संसारी पदार्थों में वर्त्तमान परमेश्वर है, वही सब मनुष्यों का उपास्य देव है तथा जो क्रियाओं की सिद्धि के लिये भौतिक अग्नि है, यह भी यथायोग्य कार्य्यद्वारा सेवा करने के योग्य है ॥ १७ ॥

अग्ने ब्रह्मेत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता सर्वस्य । पूर्वस्य ब्राह्मी उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । धर्त्रमसीति मध्यस्यार्च्ची त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । विश्वाभ्य इत्युत्तरस्यार्च्ची पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर भी अग्नि शब्द से अगले मन्त्र में फिर दोनों अर्थों का प्रकाश किया है ॥

अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व धरुणमस्यन्तरिक्षं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय । धर्त्रमसि दिवं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय । विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्यऽउपदधामि चित स्थोर्ध्वचितो भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम् ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) परमेश्वर ! आप (धरुणम्) सब के धारण करने वाले (असि) हैं इससे मेरी (ब्रह्म) वेद मन्त्रों से की हुई स्तुति को (गृभ्णीष्व) ग्रहण कीजिये तथा (अन्तरिक्षम्) आत्मा में स्थित जो अक्षय ज्ञान है उसको (दृंह) बढ़ाइये । मैं (भ्रातृव्यस्य) शत्रुओं के (वधाय) विनाश के लिये (ब्रह्मवनि) सब मनुष्यों के सुख के निमित्त वेद के शाखाशाखान्तरद्वारा विभाग करने वाले ब्राह्मण तथा (क्षत्रवनि) राजधर्म के प्रकाश करनेहारे (सजातवनि) जो परस्पर समान क्षत्रियों के धर्म और संसारी मूर्तिमान् पदार्थ हैं इन का प्राणियों के लिये अलग-अलग प्रकाश करने वाले (त्वा) आपको (उपदधामि) हृदय के बीच में धारण करता हूँ । हे सब के धारण करने वाले परमेश्वर ! जो आप (धर्त्रम्) लोकों के धारण करने वाले [असि] हैं इससे कृपा करके हम लोगों में (दिवम्) अत्युत्तम ज्ञान को (दृंह) बढ़ाइये और मैं (भ्रातृव्यस्य) शत्रुओं के (वधाय) विनाश के लिये (ब्रह्मवनि) (क्षत्रवनि) (सजातवनि) उक्त वेद राज्य वा परस्पर समान विद्या वा राज्यादि व्यवहारों को यथायोग्य विभाग करने वाले (त्वा) आपको (उपदधामि) वारंवार अपने हृदय में धारण करता हूँ । तथा मैं (त्वा) आपको सर्वव्यापक जानकर (विश्वाभ्यः) सब (आशाभ्यः) दिशाओं से सुख होने के निमित्त वारंवार (उपदधामि) अपने मन में धारण करता हूँ । हे मनुष्यो ! तुम लोग उक्त व्यवहार को अच्छी प्रकार जानकर (चितः) विज्ञानी (ऊर्ध्वचितः) उत्तम ज्ञान वाले पुरुषों की प्रेरणा से कपालों को अग्नि पर धरके तथा (भृगूणाम्) जिनसे विद्या आदि गुणों को प्राप्त होते हैं ऐसे (अङ्गिरसाम्) प्राणों के (तपसा) प्रभाव से (तप्यध्वम्) तपो और तपाओ ॥ यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ ॥ अब दूसरा भी कहते हैं ॥ हे विद्वान् धर्मात्मा पुरुष ! जिस (अग्ने) भौतिक अग्नि से (धरुणम्) सब का धारण करने वाला तेज (ब्रह्म) वेद और (अन्तरिक्षम्) आकाश में रहने वाले पदार्थ ग्रहण वा वृद्धियुक्त किये जाते हैं (त्वा) उसको तुम होम वा शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये (गृभ्णीष्व) ग्रहण करो (दृंह) वा विद्यायुक्त क्रियाओं से बढ़ाओ और मैं भी (भ्रातृव्यस्य) शत्रुओं के (वधाय) विनाश के लिये (त्वा) उस (ब्रह्मवनि) (क्षत्रवनि) (सजातवनि) संसारी मूर्तिमान् पदार्थों के प्रकाश करने वा

राजगुणों के दृष्टान्तरूप से प्रकाश कराने वाले भौतिक अग्नि को शिल्पविद्या आदि व्यवहारों में (उपदधामि) स्थापन करता हूँ। ऐसे स्थापन किया हुआ अग्नि हमारे अनेक सुखों को धारण करता है। इसी प्रकार सब लोगों का (धर्त्रम्) धारण करने वाला वायु (असि) है तथा (दिवम्) प्रकाशमय सूर्य्यलोक को (दृंह) दृढ़ करना है। हे मनुष्यो ! जैसे उसको मैं (भ्रातृव्यस्य) अपने शत्रुओं के (वधाय) विनाश के लिये (ब्रह्मवनि) (क्षत्रवनि) (सजातवनि) वेद राज्य वा परस्पर समान उत्तम-उत्तम शिल्पविद्याओं को यथायोग्य कार्य्यों में युक्त करने वाले उस भौतिक अग्नि को (उपदधामि) स्थापन करता हूँ वैसे तुम भी उत्तम-उत्तम क्रियाओं में युक्त करके विद्या के बल से (दृंह) उसको बढ़ाओ। हे विद्या चाहने वाले पुरुष ! जो पवन, पृथिवी और सूर्य्य आदि लोकों को धारण कर रहा है उसे तुम अपने जीवन आदि सुख वा शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये यथायोग्य कार्यों में लगाकर उनकी विद्या से (दृंह) वृद्धि करो तथा जैसे हम अपने शत्रुओं के विनाश के लिये (ब्रह्मवनि) (क्षत्रवनि) (सजातवनि) अग्नि के उक्त गुणों के समान वायु को शिल्पविद्या आदि व्यवहारों में (उपदधामि) संयुक्त करते हैं वैसे ही तुम भी अपने अनेक दुःखों के विनाश के लिये उसको यथायोग्य कार्य्यों में संयुक्त करो। हे मनुष्यो ! जैसे मैं वायुविद्या का जानने वाला (त्वा) उस अग्नि वा वायु को (विश्वाभ्यः) सब (आशाभ्यः) दिशाओं से सुख होने के लिये यथायोग्य शिल्पव्यवहारों में (उपदधामि) धारण करता हूँ। वैसे तुम भी धारण करो तथा शिल्पविद्या वा होम करने के लिये (चितः) (ऊर्ध्वचितः) [स्थ] पदार्थों के भरे हुए पात्र वा सवारियों में स्थापन किये हुए कलायन्त्रों को (भृगूणाम्) जिनसे पदार्थों को पकाते हैं उन [अङ्गिरसाम्] अङ्गारों के (तपसा) ताप से (तप्यध्वम्) उक्त पदार्थों को तपाओ ॥ १८ ॥

भावार्थः— इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है ॥ ईश्वर का यह उपदेश है कि हे मनुष्यो ! तुम विद्वानों की उन्नति तथा मूर्खपन का नाश वा सब शत्रुओं की निवृत्ति से राज्य बढ़ने के लिये वेदविद्या को ग्रहण करो तथा वृद्धि का हेतु अग्नि वा सब का धारण करने वाला वायु, अग्निमय सूर्य्य और ईश्वर इन्हें सब दिशाओं में व्याप्त जानकर यज्ञसिद्धि वा विमान आदि यानों की रचना धर्म के साथ करो तथा इन से इन को सिद्ध कर के दुःखों को दूर कर के शत्रुओं को जीतो ॥ १८ ॥

शर्मासीत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । निचृद् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

इस के अनन्तर ईश्वर ने यज्ञ का स्वरूप और इसके अङ्ग अगले मन्त्र में उपदेश किये हैं ॥

शर्मास्यवधूतꣳ रक्षोऽवधूताऽअरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु । धिषणासि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु दिवः स्कम्भनीरसि धिषणासि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो यज्ञ (शर्म) सुख का देने वाला (असि) है और (अदितिः) नाशरहित है तथा जिससे (रक्षः) दुःख और दुष्टस्वभावयुक्त मनुष्य (अवधूतम्) विनाश को प्राप्त तथा (अरातयः) दान आदि धर्मों से रहित पुरुष (अवधूताः) नष्ट (असि)

होते हैं और जो (अदित्याः) अन्तरिक्ष वा पृथिवी के (त्वक्) त्वचा के समान (असि) है (त्वा) उसे (प्रति वेत्तु) जानो और जिस विद्यारूप उक्त यज्ञ से (पर्वती) बहुत ज्ञान वाली (दिवः) प्रकाशमान सूर्यादि लोकों की (स्कम्भनीः) रोकने वाली [असि] है तथा (पार्वतेयी) मेघ की कन्या अर्थात् पृथिवी के तुल्य (धिषणा) वेदवाणी [(असि)] है (अदित्याः) पृथिवी के (त्वक्) शरीर के तुल्य विस्तार को प्राप्त होती है (त्वा) उसे (प्रतिवेत्तु) यथावत् जानो और जिस सत्संगतिरूप यज्ञ से (पर्वती) उत्तम-उत्तम ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने वाली (धिषणा) द्यौः अर्थात् प्रकाशरूपी बुद्धि (असि) प्राप्त होती है (त्वा) उसे भी (प्रतिवेत्तु) जानो ॥ १९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को अपने विज्ञान से अच्छी प्रकार पदार्थों को इकट्ठा करके उन से यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये जो कि वृष्टि वा बुद्धि का बढ़ाने वाला है वह अग्नि और मन से शुद्ध किया हुआ सूर्य्य के प्रकाश को त्वचा के समान सेवन करता है ॥ १९ ॥

धान्यमसीत्यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किस प्रयोजन के लिये उक्त यज्ञ करना चाहिये सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है ॥

धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा । दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोऽसि ॥ २० ॥

पदार्थः—जो (धान्यम्) यज्ञ से शुद्ध उत्तम स्वभाववाला सुख का हेतु रोग का नाश करनेवाला तथा चावल आदि अन्न वा (पयः) जल (असि) है वह (देवान्) विद्वान् वा जीव तथा इन्द्रियों को (धिनुहि) तृप्त करता है इस कारण हे मनुष्यो ! मैं जिस प्रकार (त्वा) उसे (प्राणाय) अपने जीवन के लिये वा (त्वा) उसे (उदानाय) स्फूर्ति बल और पराक्रम के लिये वा (त्वा) उसे (व्यानाय) सब शुभ गुण शुभ कर्म वा विद्या के अङ्गों के फैलाने के लिये तथा (दीर्घाम्) बहुत दिनों तक (प्रसितिम्) अत्युत्तम सुखबन्धनयुक्त (आयुषे) पूर्ण आयु के भोगने के लिये (धाम्) धारण करता हूँ वैसे तुम भी उक्त प्रयोजन के लिये उस को नित्य धारण करो। जैसे (वः) हम लोगों को (हिरण्यपाणिः) जिस का मोक्ष देना ही व्यवहार है ऐसा सब जगत् का उत्पन्न करनेहारा (देवः) (सविता) सब ऐश्वर्य्य का दाता ईश्वर (अच्छिद्रेण) अपनी व्याप्ति वा [पाणिना] उत्तम व्यवहार से (महीनाम्) वाणियों के [चक्षुषे] प्रत्यक्ष ज्ञान के लिये (प्रत्यनुगृभ्णातु) अपने अनुग्रह से ग्रहण करता है वैसे ही हम भी उस ईश्वर को (अच्छिद्रेण) निरन्तर (पाणिना) स्तुतियों से ग्रहण करें और जैसे (हिरण्यपाणिः) पदार्थों का प्रकाश करने वाला (देवः) (सविता) सूर्य्यलोक (महीनाम्) लोकलोकान्तरों की पृथिवियों में नेत्र सम्बन्धी व्यवहार के लिये (अच्छिद्रेण) निरन्तर तीव्र प्रकाश से (पयः) जल को (प्रतिगृभ्णातु) ग्रहण कर के अन्न आदि पदार्थों को पुष्ट करता है वैसे ही हम लोग भी उसे (अच्छिद्रेण) निरन्तर (पाणिना) व्यवहार से (महीनाम्) पृथिवी के (चक्षुषे) पदार्थों की दृष्टिगोचरता के लिये स्वीकार करते हैं ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। जो यज्ञ से शुद्ध किये हुए अन्न, जल और पवन आदि पदार्थ हैं, वे सब की शुद्धि, बल, पराक्रम और दृढ़ दीर्घ आयु के लिये समर्थ होते हैं। इस से सब मनुष्यों को यज्ञकर्म का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये तथा परमेश्वर की प्रकाशित की हुई जो वेद-चतुष्टयी अर्थात् चारों वेदों की वाणी है, उस के प्रत्यक्ष करने के लिये ईश्वर के अनुग्रह की इच्छा तथा अपना पुरुषार्थ करना चाहिये और जिस प्रकार परोपकारी मनुष्यों पर ईश्वर कृपा करता है, वैसे ही हम लोगों को भी सब प्राणियों पर नित्य कृपा करनी चाहिये अथवा जैसे अन्तर्यामी ईश्वर आत्मा और वेदों में सत्य ज्ञान तथा सूर्यलोक संसार में मूर्तिमान् पदार्थों का निरंतर प्रकाश करता है, वैसे ही हम सब लोगों को परस्पर सब के सुख के लिये संपूर्ण विद्या मनुष्यों को दृष्टिगोचर करा के नित्य प्रकाशित करनी चाहिये और उनसे हमको पृथिवी का चक्रवर्ती राज्य आदि अनेक उत्तम उत्तम सुखों को उत्पन्न निरन्तर करना चाहिये ॥ २० ॥

देवस्य त्वेत्यस्यर्षिः स एव। यज्ञो देवता सर्वस्य। आदौ सं वपामीत्यस्य गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। अन्त्यस्य विराट्निचृत् पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

जिन औषधियों से अन्न बनता है, वे यज्ञादि करने से कैसे शुद्ध होती हैं
इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

देवस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम्। सं व॑पा॒मि समाप॒ऽओष॑धीभिः॒ समोष॑धयो॒ रसे॑न। स॑ᳪ रे॒वती॒र्जग॑तीभिः पृच्यन्ता॒ᳪ सं मधु॑मती॒र्मधु॑मतीभिः पृच्यन्ताम् ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे मैं (सवितुः) सकल ऐश्वर्य्य के देने वाले (देवस्य) परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए प्रत्यक्ष संसार में, सूर्य्यलोक के प्रकाश में (अश्विनोः) सूर्य्य और भूमि के तेज की (बाहुभ्याम्) दृढ़ता से (पूष्णः) पुष्टि करने वाले वायु के (हस्ताभ्याम्) प्राण और अपान से (त्वा) पूर्वोक्त तीन प्रकार के यज्ञ का (संवपामि) विस्तार करता हूं, वैसे ही तुम भी उसको विस्तार से सिद्ध करो। जैसे इस उत्पन्न किये हुए संसार में (ओषधीभिः) यवादि ओषधियों से (आपः) जल और (ओषधयः) ओषधी (रसेन) आनन्दकारक रस से तथा (जगतीभिः) उत्तम ओषधियों से (रेवतीः) उत्तम जल और जैसे (मधुमतीभिः) अत्यन्त मधुर रसयुक्त ओषधियों से (मधुमतीः) अत्यन्त उत्तम रसरूप जल, ये सब मिल कर वृद्धियुक्त होते हैं, वैसे हम सब लोगों को भी ओषधियों से जल और ओषधि, उत्तम जल से तथा सब उत्तम ओषधियों से उत्तम रसयुक्त जल तथा अत्युत्तम मधुर रसयुक्त ओषधियों से प्रशंसनीय रसरूप जल इन सबों को यथायोग्य परस्पर (संपृच्यन्ताम्) युक्ति से वैद्यक वा शिल्पशास्त्र की रीति से मेल करना चाहिये ॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् मनुष्यों को ईश्वर के उत्पन्न किये हुए सूर्य्य से प्रकाश को प्राप्त हुए इस संसार में अनेक प्रकार से संप्रयुक्त करने योग्य पदार्थों को मिलाने के योग्य पदार्थों से मेल कर के उक्त तीन प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये। जैसे

जल अपने रस से ओषधियों को बढ़ाता है और वे उत्तम रसयुक्त जल के संयोग से रोग नाश करने से सुखदायक होती हैं और जैसे ईश्वर कारण से कार्य्य को यथावत् रचता है तथा सूर्य्य सब जगत् को प्रकाशित करके और निरन्तर रस को भेदन करके पृथिवी आदि पदार्थों का आकर्षण करता है तथा वायु रस को धारण करके पृथिवी आदि पदार्थों को पुष्ट करता है, वैसे हम लोगों को भी यथावत् संस्कारयुक्त संयुक्त किये हुए पदार्थों से विद्वानों का सङ्ग तथा विद्या की उन्नति से वा होम शिल्प कार्य्यरूपी यज्ञों से वायु और वर्षा जल की शुद्धि सदा करनी चाहिये ॥ २१ ॥

जनयत्यै त्वेत्यस्यर्षिः पूर्वोक्तः । प्रथतामितिपर्य्यन्तस्य यज्ञो देवता ।
स्वराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । अन्त्यस्याग्निसवितारौ देवते ।
गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ किस प्रयोजन के लिये करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

जनयत्यै त्वा संयौमीदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषे त्वा घर्मोऽसि विश्वायुरुरुप्रथाऽउरु प्रथस्वोरु । ते यज्ञपतिः प्रथतामग्निष्टे त्वचं मा हिंसीद्देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाके ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (जनयत्यै) सर्व सुख उत्पन्न करने वाली राज्यलक्ष्मी के लिये (त्वा) उस यज्ञ को (संयौमि) अग्नि के बीच में पदार्थों को छोड़कर युक्त करता हूँ, वैसे ही तुम लोगों को भी अग्नि के संयोग से सिद्ध करना चाहिये । जो हम लोगों का (इदम्) यह संस्कार किया हुआ हवि (अग्नेः) अग्नि के बीच में छोड़ा जाता है (इदम्) वह विस्तार को प्राप्त होकर (अग्नीषोमयोः) अग्नि और सोम के बीच पहुँच कर (इषे) अन्न आदि पदार्थों के उत्पन्न करने के लिये होता है और जो (विश्वायुः) पूर्ण आयु और (उरुप्रथाः) बहुत सुख का देने वाला (घर्मः) यज्ञ (असि) है, उसका जैसे मैं अनेक प्रकार विस्तार करता हूँ, वैसे (त्वा) उसको हे पुरुषो ! तुम भी (उरु प्रथस्व) विस्तृत करो । इस प्रकार विस्तार करने वाले (ते) तुम्हारे लिये (यज्ञपतिः) यज्ञ का स्वामी (अग्निः) यज्ञ सम्बन्धी अग्नि (ते) (सविता) अन्तर्यामी (देवः) जगदीश्वर (उरु प्रथताम्) अनेक प्रकार सुख को बढ़ावे [(ते त्वचं) तुम्हारे शरीर को] (मा हिंसीत्) कभी नष्ट न करे तथा वह परमेश्वर (वर्षिष्ठे) अतिशय करके वृद्धि को प्राप्त हुआ (अधिनाके) जो अत्युत्तम सुख है उसमें (त्वा) तुम को (श्रपयतु) सुख से युक्त करे ॥ यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ ॥ अब दूसरा कहते हैं ॥ हे मनुष्य ! जैसे मैं जो (विश्वायुः) पूर्ण आयु तथा (उरुप्रथाः) बहुत सुख का देने वाला (घर्मः) यज्ञ (असि) है (त्वा) उस यज्ञ को (जनयत्यै) राज्यलक्ष्मी तथा (इषे) अन्न आदि पदार्थों के उत्पन्न करने के लिये (संयौमि) संयुक्त करता हूं तथा उस की सिद्धि के लिये (इदम्) यह (अग्नेः) अग्नि के बीच में और (इदम्) यह (अग्नीषोमयोः) अग्नि और सोम के बीच में संस्कार किया हुआ हवि [संवपामि] छोड़ता हूँ, वैसे तुम भी उस यज्ञ को (उरु प्रथस्व) विस्तार को प्राप्त करो जिस कारण यह (अग्निः) भौतिक अग्नि (ते)

तुम्हारे (त्वचम्) शरीर को (मा हिंसीत्) रोगों से नष्ट न करे और जैसे (देवः) जगदीश्वर (सविता) अन्तर्यामी (वर्षिष्ठे) अतिशय करके वृद्धि को प्राप्त हुआ जो (अधिनाके) अत्युत्तम सुख है, उस में (त्वा) उस यज्ञ को अग्नि के बीच में परिपक्व करता है, वैसे तुम भी उस यज्ञ को (श्रपयतु) परिपक्व करो और (ते) तुम्हारे (यज्ञपतिः) यज्ञ का स्वामी भी उस यज्ञ को (उरु प्रथताम्) विस्तारयुक्त करे ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार जानना चाहिये। मनुष्यों को इस प्रकार का यज्ञ करना चाहिये कि जिससे पूर्ण लक्ष्मी सकल आयु अन्न आदि पदार्थ रोग नाश और सब सुखों का विस्तार हो, उसको कभी नहीं छोड़ना चाहिये क्योंकि उसके विना वायु और वृष्टि जल तथा ओषधियों की शुद्धि नहीं हो सकती और शुद्धि के विना किसी प्राणी को अच्छे प्रकार सुख नहीं हो सकता इसलिये ईश्वर ने उक्त यज्ञ करने की आज्ञा सब मनुष्यों को दी है ॥ २२ ॥

मा भेर्मेत्यस्यर्षिः स एव । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

निःशंक होकर उक्त यज्ञ सब को करना चाहिये इस विषय का उपदेश
अगले मन्त्र में किया है ॥

मा भेर्मा संविक्था ऽअतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात् त्रिताय त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुषो ! तुम (अतमेरुः) श्रद्धालु होकर (यजमानस्य) यजमान के यज्ञ के अनुष्ठान से (मा भेः) भय मत करो और उससे (मा संविक्थाः) मत चलायमान हो। इस प्रकार (यज्ञः) यज्ञ करते हुए तुम को उत्तम से उत्तम (अतमेरुः) ग्लानिरहित श्रद्धावान् (प्रजा) सन्तान (भूयात्) प्राप्त हो और मैं (त्वा) भौतिक अग्नि को उक्त गुणयुक्त तथा (एकताय) सत्य सुख के लिये (द्विताय) वायु तथा वृष्टि जल की शुद्धि तथा (त्रिताय) अग्नि कर्म और हवि के होने के लिये (संयौमि) निश्चल करता हूँ ॥ २३ ॥

भावार्थः—ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा और आशीर्वाद देता है कि किसी मनुष्य को यज्ञ, सत्याचार और विद्या के ग्रहण से डरना वा चलायमान कभी न होना चाहिये क्योंकि मनुष्यों को उक्त यज्ञ आदि अच्छे-अच्छे कार्यों से ही उत्तम-उत्तम सन्तान शारीरिक वाचिक और मानस विविध प्रकार के निश्चल सुख प्राप्त हो सकते हैं ॥ २३ ॥

देवस्य त्वेत्यस्यर्षिः स एव । द्योविद्युतौ देवते । स्वराड्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त यज्ञ कैसा और क्यों उसका अनुष्ठान करना चाहिये,
सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददेऽध्वरकृतं देवेभ्यऽइन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतो वधः ॥ २४ ॥

पदार्थः—मैं (सवितुः) अन्तर्यामी प्रेरणा करने (देवस्य) सब आनन्द के देने वाले परमेश्वर की (प्रसवे) प्रेरणा में (अश्विनोः) सूर्य्य चन्द्र और अध्वर्य्युओं के [बाहुभ्यां] बल और वीर्य्य से तथा (पूष्णः) पुष्टिकारक वायु के (हस्ताभ्याम्) जो कि ग्रहण और त्याग के हेतु उदान और अपान हैं उन से (देवेभ्यः) विद्वान् वा दिव्य सुखों की प्राप्ति के लिये (अध्वरकृतम्) यज्ञ से सुखकारक [(त्वा) उस]कर्म को (आददे) अच्छे प्रकार ग्रहण करता हूँ और मेरा किया हुआ जो यज्ञ है सो (इन्द्रस्य) सूर्य्य का (सहस्रभृष्टिः) जिसमें अनेक प्रकार के पदार्थों के पचाने का सामर्थ्य वा (शततेजाः) अनेक प्रकार का तेज तथा (दक्षिणः) प्राप्त करने वाला (बाहुः) किरणसमूह (असि) है और जिस (इन्द्रस्य) सूर्य्य वा मेघमण्डल का (तिग्मतेजाः) तीक्ष्ण तेज वाला (वायुः) वायु हेतु (असि) है उस से हम को अनेक प्रकार के सुख तथा (द्विषतः) शत्रुओं का (वधः) नाश करना चाहिये ॥ २४ ॥

भावार्थः—ईश्वर आज्ञा करता है कि मनुष्यों को अच्छी प्रकार सिद्ध किया हुआ यज्ञ जिस में भौतिक अग्नि के संयोग से ऊपर को अच्छे-अच्छे पदार्थ छोड़े जाते हैं वह सूर्य्य की किरणों में स्थिर होता है तथा पवन उस को धारण करता है और वह सब के उपकार के लिये हज़ारों सुखों को प्राप्त कराके दुःखों का विनाश करने वाला होता है ॥ २४ ॥

पृथिवीत्यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उक्त यज्ञ कहाँ जाके क्या करने वाला होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिꣳसिषं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे (देव) सूर्य्यादि जगत् के प्रकाश करने तथा (सवितः) राज्य और ऐश्वर्य्य के देने वाले परमेश्वर ! (ते) आपकी कृपा से मैं (देवयजनि) विद्वानों के यज्ञ करने की जगह (ते) यह जो (पृथिवि) भूमि है उसके [और (ओषध्याः) जो यवादि ओषधि हैं] उनके (मूलम्) वृद्धि करने वाले मूल को (मा हिꣳसिषम्) नाश न करूँ और मैं (पृथिव्याम्) अनेक प्रकार सुखदायक भूमि में (यः) जिस यज्ञ का अनुष्ठान करता हूँ वह (व्रजम्) जलवृष्टिकारक मेघ को (गच्छ) प्राप्त हो वहां जाकर (गोष्ठानम्) सूर्य्य की किरणों के गुणों से (वर्षतु) वर्षाता है और (द्यौः) सूर्य्य के प्रकाश को (वर्षतु) वर्षाता है। हे वीर पुरुषो ! आप (अस्याम्) इस उत्कृष्ट पृथिवी में (यः) जो कोई अधर्मात्मा डाकू (अस्मान्) सब के उपकार करने वाले धर्मात्मा सज्जन हम लोगों से (द्वेष्टि) विरोध करता है (च) और (यम्) जिस दुष्ट शत्रु से (वयम्) धार्मिक शूर हम लोग (द्विष्मः) विरोध करें (तम्) उस दुष्ट (परम्) शत्रु को (शतेन) अनेक (पाशैः) बन्धनों से (बधान) बाँधो और उसको (अतः) इस बन्धन से कभी (मा मौक्) मत छोड़ो ॥ २५ ॥

भावार्थः—ईश्वर आज्ञा देता है कि विद्वान् मनुष्यों को पृथिवी का राज्य तथा उसी पृथिवी में तीन प्रकार के यज्ञ और ओषधियां इनका नाश कभी न करना चाहिये। जो यज्ञ अग्नि में हवन किये हुए पदार्थों का धूम मेघमण्डल को जाकर शुद्धि के द्वारा अत्यन्त सुख उत्पन्न करने वाला होता है इससे यह यज्ञ किसी पुरुष को कभी छोड़ने योग्य नहीं है तथा जो दुष्ट मनुष्य हैं उनको इस पृथिवी पर अनेक बन्धनों से बांधे और उनको कभी न छोड़े जिससे कि वे दुष्ट कर्मों से निवृत्त हों और सब मनुष्यों को चाहिये कि परस्पर ईर्ष्या-द्वेष से अलग होकर एक दूसरे की सब प्रकार सुख की उन्नति के लिये सदा यत्न करें ॥ २५ ॥

अपाररुमित्यस्य सर्वस्य ऋषिः स एव। सविता देवता। पूर्वार्द्धे स्वराड्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः। उत्तरार्धे भुरिग्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः॥

फिर इस यज्ञ से क्या क्या कार्य सिद्ध होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अपाररुं पृथिव्यै देवयजनाद्वध्यासं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याᳬ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्। अररो दिवं मा पप्तो द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन् व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याᳬ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (देव) सर्वानन्द के देने वाले जगदीश्वर! (सवितः) सब प्राणियों में अन्तर्यामी, सत्य प्रकाश करनेहारे आपकी कृपा से हम लोग परस्पर उपदेश करें कि जैसे यह सब का प्रकाश करने वाला सूर्य्यलोक इस पृथिवी में अनेक बन्धन के हेतु किरणों से खेंचकर पृथिवी आदि सब पदार्थों को बांधता है वैसे तुम भी दुष्टों को बांधकर अच्छे-अच्छे गुणों का प्रकाश करो और जैसे मैं (पृथिव्यै) पृथिवी में (देवयजनात्) विद्वान् लोग जिस संग्राम से अच्छे-अच्छे पदार्थ वा उत्तम-उत्तम विद्वानों की संगति को प्राप्त होते हैं उस से (अररुम्) दुष्ट स्वभाव वाले शत्रुजन को (अपवध्यासम्) मारता हूं वैसे ही तुम लोग भी उसको मारो तथा जैसे मैं (व्रजम्) उत्तम-उत्तम गुण जताने वाले सज्जनों के संग को प्राप्त होता हूं वैसे तुम भी उसको (गच्छ) प्राप्त हो। जैसे मैं (गोष्ठानम्) पठन-पाठन व्यवहार की बताने वाली मेघ की गर्जना के समतुल्य वेदवाणी को अच्छे-अच्छे शब्दरूपी बूंदों से हर्षाता हूं वैसे तुम भी (वर्षतु) वर्षाओ। जैसे मेरी विद्या की (द्यौः) शोभा सब को दृष्टिगोचर है वैसे (ते) तुम्हारी भी विद्या सुशोभित हो। जैसे मैं (यः) जो मूर्ख (अस्मान्) विद्या का प्रचार करने वाले हम लोगों से (द्वेष्टि) विरोध करता है (च) और (यम्) जिस विद्याविरोधीजन को (वयम्) हम विद्वान् लोग (द्विष्मः) दुष्ट समझते हैं (तम्) उस (परम्) विद्या के शत्रु को (अस्याम्) इस सब पदार्थों की धारण करने और विविध सुख देने वाली (पृथिव्याम्) पृथिवी में (शतेन) बहुत से (पाशैः) बन्धनों से नित्य बांधता हूं कभी उससे उसको नहीं त्यागता वैसे हे वीर लोगो! तुम भी उसको

(बधान) बांधो कभी उसको (अतः) उस बन्धन से (मा मौक्) मत छोड़ो और जो दुष्ट जन हम लोगों से विरोध करे तथा जिस दुष्ट से हम लोग विरोध करें उसको उस बन्धन से कोई मनुष्य न छोड़े। इस प्रकार सब लोग उसको उपदेश करते रहें कि हे (अररो) दुष्टपुरुष ! तू (दिवम्) प्रकाश उन्नति को (मा पप्तः) मत प्राप्त हो तथा (ते) तेरा (द्रप्सः) आनन्द देने वाला विद्यारूपी रस (द्याम्) आनन्द को (मा स्कन्) मत प्राप्त करे। हे श्रेष्ठों के मार्ग चाहने वाले मनुष्यो ! जैसे मैं (व्रजम्) विद्वानों के प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ मार्ग को प्राप्त होता हूं वैसे तुम भी (गच्छ) उसको प्राप्त हो। जैसे यह (द्यौः) सूर्य का प्रकाश (गोष्ठानम्) पृथिवी का स्थान अन्तरिक्ष को सींचता है वैसे ही ईश्वर वा विद्वान् पुरुष (ते) तुम्हारी कामनाओं को (वर्षतु) वर्षावें अर्थात् क्रम से पूरी करें। जैसे यह (देव) व्यवहार का हेतु (सवितः) सूर्य्यलोक (अस्याम्) इस बीज बोने योग्य (पृथिव्याम्) बहुत प्रजायुक्त पृथिवी में (शतेन) अनेक (पाशैः) बन्धन के हेतु किरणों से आकर्षण के साथ पृथिवी आदि सब पदार्थों को बांधता है वैसे तुम भी दुष्टों को बांधो और (यः) जो न्यायविरोधी (अस्मान्) न्यायाधीश हम लोगों से (द्वेष्टि) कोप करता है (च) और (यम्) अन्यायकारी जन पर (वयम्) सम्पूर्ण हितसम्पादन करने वाले हम लोग (द्विष्मः) कोप करते हैं (तम्) उस (परम्) शत्रु को (अस्याम्) इस (पृथिव्याम्) उक्त गुण वाली पृथिवी में (शतेन) अनेक (पाशैः) साम, दाम, दण्ड और भेद आदि उद्योगों से बाँधता हूं और जैसे मैं उसको उस दण्ड से बांधकर कभी नहीं छोड़ता वैसे ही तुम भी (बधान) बाँधो अर्थात् बन्धनरूप दण्ड सदा दो। कभी उसको (मा मौक्) मत छोड़ो ॥ २६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। ईश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्यो ! तुम लोगों को विद्या के सिद्ध करने वाले कार्य्यों के नियमों में विघ्नकारी दुष्ट जीवों को सदा मारना चाहिये और सज्जनों के समागम से विद्या की वृद्धि नित्य करनी चाहिये। जिस प्रकार अनेक उद्योगों से श्रेष्ठों की हानि दुष्टों की वृद्धि न हो सो नियम करना चाहिये और सदा श्रेष्ठ सज्जनों का सत्कार तथा दुष्टों को दण्ड देने के लिये उनका बन्धन करना चाहिये। परस्पर प्रीति के साथ विद्या और शरीर का बल सम्पादन करके क्रिया तथा कलायन्त्रों से अनेक यान बनाकर सब को सुख देना ईश्वर की आज्ञा का पालन तथा ईश्वर की उपासना करनी चाहिये ॥ २६ ॥

गायत्रेणेत्यस्य ऋषिः स एव। यज्ञो देवता। ब्राह्मीत्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

उक्त यज्ञ का ग्रहण वा अनुष्ठान किससे करना चाहिये
सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है॥

गा॒य॒त्रेण॑ त्वा॒ छन्द॑सा॒ परि॑गृह्णामि॒ त्रैष्टु॑भेन त्वा॒ छन्द॑सा॒ परि॑गृह्णामि॒ जाग॑तेन त्वा॒ छन्द॑सा॒ परि॑गृह्णामि॒। सु॒क्ष्मा चासि॑ शि॒वा चा॑सि स्यो॒ना चासि॑ सु॒षदा॑ चा॒स्यू॒र्जस्व॑ती चासि॒ पय॑स्वती च॥ २७॥

पदार्थः—जिस यज्ञ से उत्तम पदार्थों के साथ (सुक्ष्मा) यह पृथिवी शोभायमान (असि) होती है (च) तथा जिससे सुखकारक गुण (च) अथवा मनुष्यों के साथ यह (शिवा) मङ्गल की देने वाली (असि) होती है (च) तथा जिस कर के उत्तम से उत्तम सुखों के साथ यह पृथिवी (स्योना) सुख उत्पन्न करने वाली (असि) होती है (च) और जिससे उत्तम-उत्तम सुख करने वाले और चलने के साथ यह (सुषदा) सुख से स्थिति करनेयोग्य (असि) होती है [च] तथा जिन उत्तम यव आदि अन्नों के साथ यह (ऊर्जस्वती) अन्न वाली (असि) होती है (च) और जिन उत्तम मधुर आदि रस वाले फलों करके यह पृथिवी (पयस्वती) प्रशंसा करने योग्य रस वाली (असि) होती है (त्वा) उस यज्ञ को मैं यज्ञविद्या का जानने वाला मनुष्य (गायत्रेण) गायत्री (छन्दसा) जो कि चित्त को प्रफुल्लित करने वाला है उससे (परिगृह्णामि) सब प्रकार से सिद्ध करता हूं और मैं (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुभ् (छन्दसा) जो कि स्वतन्त्रतारूप से आनन्द का देने वाला है उससे (त्वा) पदार्थसमूह को (परिगृह्णामि) सब प्रकार से इकट्ठा करता हूं तथा मैं (जागतेन) जगती जो कि (छन्दसा) अत्यन्त आनन्द का प्रकाश करने वाला है उससे (त्वा) उस भौतिक अग्नि को (परिगृह्णामि) अच्छी प्रकार स्वीकार करता हूं ॥ २७ ॥

भावार्थः—वेद का प्रकाश करने वाला ईश्वर हम लोगों के प्रति कहता है कि हे मनुष्यो ! तुम लोगों को वेदमन्त्रों के विना पढ़े और उन के अर्थों के विना जाने यज्ञ का अनुष्ठान वा सुखरूप फल को प्राप्त होना और सब शुभ गुणयुक्त सुखकारी अन्न जल और वायु आदि पदार्थ हैं उनको शुद्ध नहीं कर सकते इससे यह तीन प्रकार के यज्ञ की सिद्धि यत्नपूर्वक सम्पादन कर के सदा सुख ही में रहना चाहिये और जो इस पृथिवी में वायु जल तथा ओषधियों को दूषित करने वाले दुर्गन्ध अपगुण तथा दुष्ट मनुष्य हैं वे सर्वदा निवारण करने चाहियें ॥ २७ ॥

पुरा क्रूरस्येत्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । विराड् ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

वे दोष कैसे निवारण करने और वहां मनुष्यों को फिर क्या करना चाहिये
इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्नुदादाय पृथिवीं जीवदानुम् । यामैरयँश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तामु धीरासोऽअनुदिश्य यजन्ते । प्रोक्षणीरासादय द्विषतो वधोसि ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (विरप्शिन्) महाशय महागुणवान् जगदीश्वर ! आपने (याम्) जिस (स्वधाभिः) अन्न आदि पदार्थों से युक्त और (जीवदानुम्) प्राणियों को जीवन देने वाले पदार्थ तथा (पृथिवीम्) बहुत सी प्रजायुक्त पृथिवी को (उदादाय) ऊपर उठाकर (चन्द्रमसि) चन्द्रलोक के समीप स्थापन की है इस कारण [ताम्] उस पृथिवी को (धीरासः) धीर बुद्धि वाले पुरुष प्राप्त होकर आपके (अनुदिश्य) अनुकूल चल कर [(यजन्ते)] यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करते हैं । जैसे—(चन्द्रमसि) आनन्द में वर्त्तमान होकर (धीरासः) बुद्धिमान् पुरुष

(याम्) जिस (जीवदानुम्) जीवों की हितकारक (पृथिवीम्) पृथिवी के [(अनुदिश्य)] आश्रित होकर सेना और शस्त्रों को (उदादाय) क्रम से लेकर (विसृपः) जो कि युद्ध करने वाले पुरुषों के प्रभाव दिखाने योग्य और (क्रूरस्य) शत्रुओं के अंग विदीर्ण करने वाले संग्राम के बीच में शत्रुओं को जीत कर राज्य को [ऐरयन्] प्राप्त होते हैं तथा जैसे इस उक्त प्रकार से धीर पुरुष (पुरा) पहिले समय में प्राप्त हुए जिन क्रियाओं से (प्रोक्षणीः, उ) अच्छी प्रकार पदार्थों को सींच के उनको [आसादय] सम्पादन करते हैं वैसे ही (विरप्शिन्) महान् ऐश्वर्य्य की इच्छा करने वाले पुरुष ! तू भी उसको प्राप्त होके ईश्वर का पूजन तथा पदार्थ सिद्धि करने वाली उत्तम-उत्तम क्रियाओं का सम्पादन कर। जैसे (द्विषतः) शत्रुओं का (वधः) नाश (असि) हो वैसे कामों को करके नित्य आनन्द में वर्तमान रह ॥ २८ ॥

भावार्थः—जिस ईश्वर ने क्रम से अन्तरिक्ष में पृथिवी पृथिवियों के समीप चन्द्रलोक चन्द्रलोकों के समीप पृथिवी। एक दूसरे के समीप तारालोक और सब के बीच में अनेक सूर्य्यलोक तथा इन सब में नाना प्रकार की प्रजा रचकर स्थापन की है वही परमेश्वर सब मनुष्यों को उपासना करने योग्य है। जब तक मनुष्य बल और क्रियाओं से युक्त होकर शत्रुओं को नहीं जीतते तब तक राज्यसुख को नहीं प्राप्त हो सकते क्योंकि विना युद्ध और बल के शत्रु जन कभी नहीं डरते तथा विद्वान् लोग विद्या, न्याय और विनय के विना यथावत् प्रजा के पालन करने को समर्थ नहीं हो सकते इस कारण सब को जितेन्द्रिय होकर उक्त पदार्थों का सम्पादन करके सब के सुख के लिये उत्तम-उत्तम प्रयत्न करना चाहिये ॥ २८ ॥

प्रत्युष्टमित्यस्य ऋषिः स एव। यज्ञो देवता सर्वस्य। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

फिर उक्त संग्राम कैसे जीतना और यज्ञ का अनुष्ठान कैसे करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

प्रत्युष्ट॑ꣳ रक्षः॒ प्रत्यु॑ष्टा॒ऽअरा॑तयो॒ निष्ट॑प्त॒ꣳ रक्षो॒ निष्ट॑प्ता॒ऽअरा॑तयः। अनि॑शितोऽसि सपत्न॒क्षिद्वा॒जिनं॑ त्वा वा॒जेध्या॒यै॒ सम्मा॑र्ज्मि। प्रत्यु॑ष्ट॒ꣳ रक्षः॒ प्रत्यु॑ष्टा॒ऽअरा॑तयो॒ निष्ट॑प्त॒ꣳ रक्षो॒ निष्ट॑प्ता॒ऽअरा॑तयः। अनि॑शितासि सपत्न॒क्षिद्वा॒जिनीं॑ त्वा वा॒जेध्या॒यै॒ सम्मा॑र्ज्मि ॥ २९ ॥

पदार्थः—मैं जिस [अनिशितः] अतिविस्तृत [सपत्नक्षित्] शत्रुओं के नाश करने वाले संग्राम से (प्रत्युष्टं रक्षः) विघ्नकारी प्राणी और (प्रत्युष्टा अरातयः) जिससे सत्यविरोधी अच्छी प्रकार दाहरूप दण्ड को प्राप्त (असि) होते हैं वा (निष्टप्तं रक्षः) जिस बन्धन से बांधने योग्य (निष्टप्ता अरातयः) विद्या के विघ्न करने वाले निरन्तर संताप को प्राप्त होते हैं (त्वा) उस (वाजिनम्) वेग आदि गुण वाले संग्राम को (वाजेध्यायै) जो कि अन्न आदि पदार्थों से बलवान् करने के योग्य सेना है उसके लिये युद्ध के साधनों को (संमार्ज्मि) अच्छी प्रकार शुद्ध करता हूँ अर्थात् उनके दोषों का विनाश करता हूँ और मैं जिस (सपत्नक्षित्) शत्रु

का नाश करने वाले और (अशिता) अति विस्तारयुक्त सेना से (प्रत्युष्टं रक्षः) परसुख का न सहने वाला मनुष्य वा (प्रत्युष्टा अरातयः) उक्त अवगुणवाले अनेक मनुष्य (निष्टप्तं रक्षः) जुआ खेलने और परस्त्रीगमन करने तथा (निष्टप्ता अरातयः) औरों को सब प्रकार से दुःख देने वाले मनुष्य अच्छी प्रकार निकाले जाते हैं (त्वा) उस (वाजिनीम्) बल और वेग आदि गुणवाली सेना को (वाजेध्यायै) बहुत साधनों से प्रकाशित करने के लिये (संमार्ज्मि) अच्छी प्रकार उत्तम-उत्तम शिक्षाओं से शुद्ध करता हूं [यह प्रथम अर्थ हुआ] और जो कि (अनिशितः) बड़ी क्रियाओं से सिद्ध होने योग्य वा (सपत्नक्षित्) दोषों वा शत्रुओं के विनाश करनेहारे (प्रत्युष्टं रक्षः) विघ्नकारी प्राणी और (प्रत्युष्टा अरातयः) जिसमें सत्यविरोधी अच्छी प्रकार दाहरूप दण्ड को प्राप्त (असि) होते हैं, वा (निष्टप्तं रक्षः) जिस बन्धन से बांधने योग्य (निष्टप्ता अरातयः) विद्या के विघ्न करने वाले निरन्तर सन्ताप को प्राप्त होते हैं (त्वा) उस (वाजिनम्) यज्ञ को (वाजेध्यायै) अन्न आदि पदार्थों के प्रकाशित होने के लिये (संमार्ज्मि) शुद्धता से सिद्ध करता हूँ [इस प्रकार जिस (सपत्नक्षित्) शत्रुओं का नाश करने वाली (अनिशिता) अतिविस्तारयुक्त क्रिया से (प्रत्युष्टं रक्षः) विघ्नकारी प्राणी और (प्रत्युष्टा अरातयः) दुर्गुण तथा नीच मनुष्य नष्ट होते हैं (निष्टप्तं रक्षः) काम क्रोध आदि राक्षसी भाव दूर होते हैं (निष्टप्ता अरातयः) जिसमें दुःख तथा दुर्गन्ध आदि दोष नष्ट [(असि)] होते हैं (त्वा) उस (वाजिनीं) सत्क्रिया को (वाजेध्यायै) अन्न आदि पदार्थों के प्रकाशित होने के लिये (सम्मार्ज्मि) भली प्रकार सिद्ध करता हूँ। इसी प्रकार आप भी इस यज्ञ तथा सत्क्रिया को पवित्रतापूर्वक सिद्ध करो] यह दूसरा अर्थ हुआ ॥ २९ ॥

भावार्थः—ईश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्यों को विद्या और शुभ गुणों के प्रकाश और दुष्ट शत्रुओं की निवृत्ति के लिये नित्य पुरुषार्थ करना चाहिये तथा सदैव श्रेष्ठ शिक्षा शस्त्र अस्त्र और सत्पुरुषयुक्त उत्तम सेना से श्रेष्ठों की रक्षा तथा दुष्टों का विनाश करना चाहिये जिसे करके अशुद्धि आदि दोषों के विनाश होने से सर्वत्र शुद्ध गुण प्रवृत्त हो सकते हैं ॥ २९ ॥

अदित्या इत्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उक्त यज्ञ किस प्रकार का और कौन फल का देनेवाला होता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ॥

अदित्यै रास्नासि विष्णोर्वेष्पोस्यूर्ज्जे त्वाऽदब्धेन त्वा चक्षुषावपश्यामि । अग्नेर्जिह्वासि सुहूर्देवेभ्यो धाम्ने धाम्ने मे भव यजुषे यजुषे ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! जो आप (अदित्यै) पृथिवी के (रास्ना) रस आदि पदार्थों के उत्पन्न करने वाले (असि) हैं (विष्णोः) व्यापक (वेष्पः) पृथिवी आदि सब पदार्थों में प्रवर्त्तमान भी (असि) हैं तथा (अग्नेः) भौतिक अग्नि के (जिह्वा) जीभरूप (असि) हैं वा (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (धाम्ने धाम्ने) जिनमें कि वे विद्वान् सुखरूप पदार्थों को प्राप्त होते हैं जो तीनों धाम अर्थात् स्थान नाम और जन्म हैं उन धर्मों की प्राप्ति के तथा

(यजुषे यजुषे) यजुर्वेद के मन्त्र-मन्त्र का आशय प्रकाशित होने के लिये (सुहूः) जो श्रेष्ठता से स्तुति करने के योग्य है इस प्रकार के (त्वा) आप को मैं (अदब्धेन) प्रेमसुखयुक्त (चक्षुषा) विज्ञान से (ऊर्ज्जे) पराक्रम (अदित्यै) पृथिवी तथा (देवेभ्यः) श्रेष्ठ गुणों वा (धाम्ने धाम्ने) स्थान नाम और जन्म आदि पदार्थों की प्राप्ति तथा (यजुषे यजुषे) यजुर्वेद के मन्त्र-मन्त्र के आशय जानने के लिये [(त्वा) आपको] (अवपश्यामि) ज्ञानरूपी नेत्रों से देखता हूँ आप भी कृपा कर के [मे] मुझको विदित और मेरे पूजन को प्राप्त (भव) हूजिये ।। यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ ।। अब दूसरा कहते हैं ।। जिस कारण यह यज्ञ (अदित्यै) अन्तरिक्ष के सम्बन्धी (रास्ना) रसादि पदार्थों की क्रिया का कारण (असि) है (विष्णोः) यज्ञसम्बन्धी कार्य्यों का (वेष्पः) व्यापक (असि) है (अग्नेः) भौतिक अग्नि का (जिह्वा) जिह्वारूप (असि) है (देवेभ्यः) तथा दिव्य गुण (धाम्ने धाम्ने) कीर्ति, स्थान और जन्म इनकी प्राप्ति वा [मे] मेरे लिये (यजुषे यजुषे) यजुर्वेद के मन्त्र-मन्त्र का आशय जानने के लिये (सुहूः) अच्छी प्रकार प्रशंसा करने योग्य (भव) होता है इस कारण (त्वा) उस यज्ञ को मैं (अदब्धेन) सुखपूर्वक (चक्षुषा) प्रत्यक्ष प्रमाण के साथ नेत्रों से (अवपश्यामि) देखता हूँ तथा (त्वा) उसे (अदित्यै) पृथिवी आदि पदार्थ (देवेभ्यः) उत्तम-उत्तम गुण [(ऊर्ज्जे) पराक्रम] (धाम्ने धाम्ने) स्थान-स्थान तथा (यजुषे यजुषे) यजुर्वेद के मन्त्र-मन्त्र से हित होने के लिये (अवपश्यामि) क्रिया की कुशलता से देखता हूँ ।। ३० ।।

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । सब मनुष्यों को जैसे यह जगदीश्वर वस्तु-वस्तु में स्थित तथा वेद के मन्त्र-मन्त्र में प्रतिपादित और सेवा करने योग्य है वैसे ही यह यज्ञ वेद के प्रति मन्त्र से अच्छी प्रकार सिद्ध प्रतिपादित विद्वानों ने सेवित किया हुआ सब प्राणियों के लिये पदार्थ-पदार्थ में पराक्रम और बल के पहुंचाने के योग्य होता है ।। ३० ।।

सवितुस्त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता सर्वस्य । पूर्वार्द्धे जगती छन्दः । निषादः स्वरः । तेजोऽसीत्यस्याऽनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।।

उक्त यज्ञ कैसे पवित्र होता है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है ।।

स॒वि॒तुस्त्वा॑ प्रस॒वऽउत्पु॑ना॒म्यच्छि॑द्रेण प॒वित्रे॑ण॒ सूर्य्य॑स्य र॒श्मिभिः॑ । स॒वि॒तुर्वः॑ प्रस॒वऽउत्पु॑ना॒म्यच्छि॑द्रेण प॒वित्रे॑ण॒ सूर्य्य॑स्य र॒श्मिभिः॑ । तेजो॑ऽसि शु॒क्रम॑स्य॒मृत॑मसि॒ धाम॒ नामा॑सि प्रि॒यं दे॒वाना॒मना॑धृष्टं दे॒व॒यज॑नमसि ।। ३१ ।।

पदार्थः—जो यज्ञ (सवितुः) परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये संसार में (अच्छिद्रेण) निरन्तर (पवित्रेण) पवित्र तथा (सूर्य्यस्य) प्रकाशमय सूर्य्य की (रश्मिभिः) किरणों के साथ मिल के सब पदार्थों को शुद्ध करता है (त्वा) उस यज्ञ वा यज्ञकर्त्ता को मैं (उत्पुनामि) उत्कृष्टता के साथ पवित्र करता हूँ । इसी प्रकार (सवितुः) परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में (अच्छिद्रेण) निरन्तर (पवित्रेण) शुद्धिकारक (सूर्य्यस्य) जो कि ऐश्वर्य्य हेतुओं के प्रेरक प्राण के (रश्मिभिः) अन्तराशय के प्रकाश करने वाले गुण हैं उनसे (वः) तुम लोगों को तथा प्रत्यक्ष पदार्थों को यज्ञ करके (उत्पुनामि) पवित्र करता हूं ।

हे ब्रह्मन्! जिस कारण आप (तेजोऽसि) स्वयंप्रकाशवान् (शुक्रमसि) शुक्र (अमृतमसि) नाशरहित (धामासि) सब पदार्थों का आधार (नामासि) वन्दना करने योग्य (देवानाम्) विद्वानों के (प्रियम्) प्रीतिकारक (अनाधृष्टम्) तथा किसी की भयता में न आने योग्य वा (देवयजनमसि) विद्वानों के पूजा करने योग्य हैं इससे मैं (त्वा) आपका ही आश्रय करता हूँ॥ यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ॥ जिस कारण यह यज्ञ (तेजोऽसि) प्रकाश और (शुक्रमसि) शुद्धि का हेतु (अमृतमसि) मोक्ष सुख का देने तथा (धामासि) सब अन्न आदि पदार्थों की पुष्टि करने वा (नामासि) जल का हेतु (देवानाम्) श्रेष्ठ गुणों की (प्रियम्) प्रीति कराने तथा (अनाधृष्टम्) किसी को खण्डन करने के योग्य नहीं अर्थात् अत्यन्त उत्कृष्ट और (देवयजनम्) विद्वान् जनों को परमेश्वर का पूजन कराने वाला (असि) है इस कारण इस यज्ञ से मैं (सवितुः) जगदीश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में (अच्छिद्रेण) निरन्तर (पवित्रेण) अति शुद्ध यज्ञ वा (सूर्य्यस्य) ऐश्वर्य्य उत्पन्न करने वाले परमेश्वर के गुण अथवा ऐश्वर्य्य के उत्पन्न कराने वाले सूर्य्य की (रश्मिभिः) विज्ञानादि प्रकाश वा किरणों से (वः) तुम लोग वा प्रत्यक्ष पदार्थों को (उत्पुनामि) पवित्र करता हूं॥ यह दूसरा अर्थ हुआ॥ ३१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। परमेश्वर यज्ञ विद्या के फल को जनाता है कि जो तुम लोगों से अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ है वह सूर्य्य की किरणों के साथ रहकर अपने निरन्तर शुद्ध गुण से सब पदार्थों को पवित्र करता है तथा वह उसके द्वारा सब पदार्थों को सूर्य्य की किरणों से तेजवान् शुद्ध उत्तम रस वाले सुखकारक प्रसन्नता का हेतु दृढ़ और यज्ञ कराने वाले पदार्थों को उत्पन्न कर के उनके भोजन वस्त्र से शरीर की पुष्टि बुद्धि और बल आदि शुद्ध गुणों को सम्पादन करके सब जीवों को सुख देता है॥ ३१॥

ईश्वर ने इस अध्याय में मनुष्यों को शुद्ध कर्म के अनुष्ठान दोष और शत्रुओं की निवृत्ति, यज्ञक्रिया के फल को जानने, अच्छी प्रकार पुरुषार्थ करने, विद्या के विस्तार करने, धर्म के अनुकूल प्रजा पालने, धर्म के अनुष्ठान में निर्भयता से स्थिर होने, सब के साथ मित्रता से वर्त्तने, वेदों से सब विद्याओं का ग्रहण करने और कराने को शुद्धि तथा परोपकार के लिये प्रयत्न करने को आज्ञा दी है सो यह सब मनुष्यों को अनुष्ठान करने के योग्य है॥

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

❀ अथ द्वितीयाध्यायारम्भः ❀

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आसु॑व ॥ १ ॥

य० ३० । ३ ॥

ईश्वरेणैतत् सर्वमाद्येऽध्याये विधायेदानीं द्वितीयेऽध्याये प्राणिनां सुखायोक्तार्थस्य सिद्धिं कर्त्तुं विशिष्टा विद्याः प्रकाश्यन्ते ॥ कृष्णोऽसीत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृत्पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब दूसरे अध्याय में परमेश्वर ने उन विद्याओं की सिद्धि करने के लिये विशेष विद्याओं का प्रकाश किया है कि जो-जो प्रथम अध्याय में प्राणियों के सुख के लिये प्रकाशित की हैं। उन में से वेद आदि पदार्थों के बनाने को हस्तक्रियाओं के सहित विद्याओं के प्रकार प्रकाशित किये हैं उन में से प्रथम मन्त्र में यज्ञ सिद्ध करने के लिये साधन अर्थात् उनकी सिद्धि के निमित्त कहे हैं।

कृष्णो॑ऽस्याखरे॒ष्ठो॒ऽग्नये॑ त्वा॒ जुष्टं॒ प्रोक्षा॑मि॒ वेदि॑रसि ब॒र्हिषे॑ त्वा॒ जुष्टां॒ प्रोक्षा॑मि ब॒र्हिर॑सि स्रु॒ग्भ्यस्त्वा॒ जुष्टं॒ प्रोक्षा॑मि ॥ १ ॥

पदार्थः—जिस कारण यह यज्ञ (आखरेष्ठः) वेदी की रचना से खुदे हुए स्थान में स्थिर होकर (कृष्णः) भौतिक अग्नि से छिन्न अर्थात् सूक्ष्मरूप और पवन के गुणों से आकर्षण को प्राप्त (असि) होता है इससे मैं (अग्नये) भौतिक अग्नि के बीच में हवन करने के लिये (जुष्टम्) प्रीति के साथ शुद्ध किये हुए (त्वा) उस यज्ञ अर्थात् होम की सामग्री को (प्रोक्षामि) घी आदि पदार्थों से सींचकर शुद्ध करता हूँ और जिस कारण यह [वेदिः] वेदी अन्तरिक्ष में स्थित [असि] होती है इससे मैं (बर्हिषे) होम किये हुए पदार्थों को अन्तरिक्ष में पहुंचाने के लिये (जुष्टाम्) प्रीति से सम्पादन की हुई (त्वा) उस वेदि को (प्रोक्षामि) अच्छे प्रकार घी आदि पदार्थों से सींचता हूँ तथा जिस कारण यह (बर्हिः) जल अन्तरिक्ष में स्थिर होकर पदार्थों की शुद्धि कराने वाला [असि] होता है इससे (त्वा) उसकी शुद्धि के लिये जो कि शुद्ध किया हुआ (जुष्टम्) पुष्टि आदि गुणों को उत्पन्न करनेहारा हवि है उसको मैं (स्रुग्भ्यः) स्रुवा आदि साधनों से अग्नि में डालने के लिये (प्रोक्षामि) शुद्ध करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थः—ईश्वर उपदेश करता है कि सब मनुष्यों को वेदी बनाकर और पात्र आदि होम की सामग्री ले के उस हवि को अच्छी प्रकार शुद्ध कर तथा अग्नि में होम कर के किया हुआ यज्ञ वर्षा के शुद्ध जल से सब ओषधियों को पुष्ट करता है। उस यज्ञ के अनुष्ठान से सब प्राणियों को नित्य सुख देना मनुष्यों का परम धर्म है ॥ १ ॥

अदित्या इत्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । स्वराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

इस प्रकार किया हुआ यज्ञ क्या सिद्ध करनेवाला होता है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

अदि॑त्यै व्युन्द॑नमसि॒ विष्णो॑ स्तु॒पो॒ऽस्यूर्ण॑म्रदसं त्वा स्तृणामि स्वास॒स्थां दे॒वेभ्यो॑ भुव॑पतये॒ स्वाहा॒ भुव॑नपतये॒ स्वाहा॑ भू॒ताना॑ पतये॒ स्वाहा॑ ॥ २ ॥

पदार्थः—जिस कारण यह यज्ञ (अदित्यै) पृथिवी के (व्युन्दनम्) विविध प्रकार के ओषधि आदि पदार्थों का सींचने वाला (असि) होता है इस से मैं उसका अनुष्ठान करता हूँ और (विष्णोः) इस यज्ञ की सिद्धि कराने हारा (स्तुपः) शिखारूप (ऊर्णम्रदसम्) उलूखल (असि) है इस से मैं (त्वा) उस अन्न के छिलके दूर करने वाले पत्थर और उलूखल को (स्तृणामि) पदार्थों से ढाँपता हूं तथा वेदी (देवेभ्यः) विद्वान् और दिव्य सुखों के हित कराने के लिये (असि) होती है इस से उसको मैं (स्वासस्थाम्) ऐसी बनाता हूं कि जिस में होम किये हुए पदार्थ अच्छी प्रकार स्थिर हों और जिस से संसार का पति, भुवन अर्थात् लोकलोकान्तरों का पति, संसारी पदार्थों का स्वामी और परमेश्वर प्रसन्न होता है तथा भौतिक अग्नि सुखों का सिद्ध कराने वाला होता है इस कारण (भुवपतये स्वाहा), (भुवनपतये स्वाहा), (भूतानां पतये स्वाहा) उक्त परमेश्वर की प्रसन्नता और आज्ञापालन के लिये उस वेदी के गुणों से जो कि सत्यभाषण अर्थात् अपने पदार्थों को मेरे हैं यह कहना वा श्रेष्ठवाक्य आदि उत्तम वाणीयुक्त वेद है उसके मन्त्रों के साथ स्वाहा शब्द का अनेक प्रकार उच्चारण करके यज्ञ आदि श्रेष्ठ कर्मों का विधान किया जाता है, इस प्रयोजन के लिये भी वेदी को रचता हूं ॥ २ ॥

भावार्थः—परमेश्वर सब मनुष्यों के लिये उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुमको वेदी आदि यज्ञ के साधनों का सम्पादन करके सब प्राणियों के सुख तथा परमेश्वर की प्रसन्नता के लिये अच्छी प्रकार क्रियायुक्त यज्ञ करना और सदा सत्य ही बोलना चाहिये और जैसे मैं न्याय से सब विश्व का पालन करता हूँ वैसे ही तुम लोगों को भी पक्षपात छोड़कर सब प्राणियों के पालन से सुख सम्पादन करना चाहिये ॥ २ ॥

गंधर्वस्त्वेत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता सर्वस्य । आद्यस्य भुरिगार्च्ची त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । मध्यभागस्य[भुरिग्]आर्च्चीपंक्तिश्छन्दः । अन्त्यस्य पंक्तिश्छन्दः । उभयत्र पंचमः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ अग्नि आदि पदार्थों से धारण किया जाता है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः। इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः। मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः ॥ ३ ॥

पदार्थः—विद्वान् लोगों ने जिस (गन्धर्वः) पृथिवी वा वाणी के धारण करने वाले (विश्वावसुः) विश्व को वसाने वाले [(परिधिः) सब ओर से सब वस्तुओं को धारण करने वाले] (इडः) स्तुति करने योग्य (अग्निः) सूर्य्यरूप अग्नि की (ईडितः) स्तुति (असि) की है, जो (विश्वस्य) संसार के वा विशेष करके (यजमानस्य) यज्ञ करने वाले विद्वान् के (अरिष्ट्यै) दुःखनिवारण से सुख के लिये इस यज्ञ को (परिदधातु) धारण करता है इससे विद्वान् [त्वा] उसको विद्या की सिद्धि के लिये (परिदधातु) धारण करे और विद्वानों से जो वायु (इन्द्रस्य) सूर्य्य का (बाहुः) बल और (दक्षिणः) वर्षा की प्राप्ति कराने अथवा (परिधिः) शिल्पविद्या का धारण कराने वाला तथा (इडः) दाह प्रकाश आदि गुण वाला होने से स्तुति के योग्य (ईडितः) खोजा हुआ और (अग्निः) प्रत्यक्ष अग्नि (असि) है। वे वायु वा अग्नि अच्छी प्रकार शिल्प विद्या में युक्त किये हुए (यजमानस्य) शिल्प विद्या के चाहने वाले वा (विश्वस्य) सब प्राणियों के (अरिष्ट्यै) सुख के लिये (असि) होते हैं और जो ब्रह्मांड में रहने और गमन वा आगमन स्वभाव वाले (मित्रावरुणौ) प्राण और अपान वायु हैं वे (ध्रुवेण) निश्चल (धर्मणा) अपनी धारण शक्ति से (उत्तरतः) पूर्वोक्त वायु और अग्नि से उत्तर अर्थात् उपरान्त समय में (विश्वस्य) चराचर जगत् वा (यजमानस्य) सब से मित्रभाव में वर्त्तने वाले सज्जन पुरुष के (अरिष्ट्यै) सुख के हेतु (त्वा) उस पूर्वोक्त यज्ञ को (परिधत्ताम्) सब प्रकार से धारण करते हैं तथा जो विद्वानों से (इडः) विद्या की प्राप्ति के लिये प्रशंसा करने के योग्य और (परिधिः) सब शिल्पविद्या की सिद्धि को घेरने से अवधि तथा (ईडितः) विद्या की इच्छा करने वालों से प्रशंसा को प्राप्त (अग्निः) बिजुलीरूप अग्नि (असि) है वह भी इस यज्ञ को सब प्रकार से धारण करता है। इन के गुणों को मनुष्य यथावत् जान के उपयोग करे ॥ ३ ॥

भावार्थः—ईश्वर ने जो सूर्य्य विद्युत और प्रत्यक्ष रूप से तीन प्रकार का अग्नि रचा है वह विद्वानों से शिल्पविद्या के द्वारा यन्त्रादिकों में अच्छी प्रकार युक्त किया हुआ अनेक कार्य्यों को सिद्ध करने वाला होता ॥ ३ ॥

वीतिहोत्रमित्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

अब अग्नि शब्द से अगले मन्त्र में उक्त दो अर्थों का प्रकाश किया है ॥

वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तꣳसमिधीमहि। अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (कवे) सर्वज्ञ तथा हरएक पदार्थ में अनुक्रम से विज्ञान वाले (अग्ने) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! हम लोग (अध्वरे) मित्रभाव के रहने में (बृहन्तम्) सब के लिये बड़े से बड़े अपार सुख के बढ़ाने और (द्युमन्तम्) अत्यन्त प्रकाश वाले वा (वीतिहोत्रम्) अग्निहोत्र आदि यज्ञों को विदित कराने वाले (त्वा) आप को (समिधीमहि) अच्छी प्रकार प्रकाशित करें ॥ यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ हुआ ॥ हम लोग (अध्वरे) अहिंसनीय अर्थात् जो कभी परित्याग करने योग्य नहीं उस उत्तम यज्ञ में जिस में कि (वीतिहोत्रम्) पदार्थों की प्राप्ति कराने के हेतु अग्निहोत्र आदि क्रिया सिद्ध होती हैं और (द्युमन्तम्) अत्यन्त प्रचण्ड ज्वालायुक्त (बृहन्तम्) बड़े-बड़े कार्य्यों को सिद्ध कराने तथा (कवे) पदार्थों में अनुक्रम से दृष्टिगोचर होने वाले (त्वा) उस (अग्ने) भौतिक अग्नि को (समिधीमहि) अच्छी प्रकार प्रज्वलित करें ॥ यह दूसरा अर्थ हुआ ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—संसार में जितने क्रियाओं के साधन वा क्रियाओं से सिद्ध होने वाले पदार्थ हैं उन सबों को ईश्वर ही ने रच कर अच्छी प्रकार धारण किया है, मनुष्यों को उचित है कि उनकी सहायता से, गुण ज्ञान और उत्तम-उत्तम क्रियाओं की अनुकूलता से अनेक प्रकार उपकार लेने चाहियें ॥ ४ ॥

समिदसीत्यस्य ऋषिः स एव । यज्ञो देवता । निचृद्ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उक्त यज्ञ के साधनों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

समिदसि सूर्य्यस्त्वा पुरस्तात् पातु कस्याश्चिदभिशस्त्यै । सवितुर्बाहू स्थऽऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थं देवेभ्यऽआ त्वा वसवो रुद्राऽआदित्याः सदन्तु ॥ ५ ॥

पदार्थः—(चित्) जैसे कोई मनुष्य सुख के लिये क्रिया से सिद्ध किये पदार्थों की रक्षा करके आनन्द को प्राप्त होता है वैसे ही यह यज्ञ (समित्) वसन्त ऋतु के समय के समान अच्छी प्रकार प्रकाशित (असि) होता है (त्वा) उसको (सूर्य्यः) ऐश्वर्य का हेतु सूर्य्यलोक (कस्याः) सब पदार्थों की (अभिशस्त्यै) प्रकटता करने के लिये (पुरस्तात्) पहिले ही से उनकी (पातु) रक्षा करने वाला होता है तथा जो कि (सवितुः) सूर्य्यलोक के (बाहू) बल और वीर्य्य (स्थः) हैं जिन से यह यज्ञ विस्तार को प्राप्त होता है (त्वा) जिस (ऊर्णम्रदसम्) सुख के विघ्नों के नाश करने (स्वासस्थम्) और श्रेष्ठ अन्तरिक्षरूपी आसन में स्थित होने वाले यज्ञ को (वसवः) अग्नि आदि आठ वसु अर्थात् अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, सूर्य्य, प्रकाश, चन्द्रमा और तारागण, ये वसु (रुद्राः) प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और जीवात्मा, ये रुद्र (आदित्याः) बारह महीने (सदन्तु) प्राप्त करते हैं। (त्वा) उसी (ऊर्णम्रदसम्) अत्यन्त सुख बढ़ाने (स्वासस्थम्) और अन्तरिक्ष में स्थिर होने वाले यज्ञ को मैं भी सुख की प्राप्ति वा (देवेभ्यः) दिव्य गुणों को सिद्ध करने के लिये (आस्तृणामि) अच्छी प्रकार सामग्री से आच्छादित करके सिद्ध करता हूं ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—ईश्वर सब मनुष्यों के लिये उपदेश करता है कि मनुष्यों को वसु, रुद्र और आदित्यसंज्ञक पदार्थों से जो-जो काम सिद्ध हो सकते हैं, सो-सो सब प्राणियों के पालन के निमित्त नित्य सेवन करने योग्य हैं तथा अग्नि के बीच जिन-जिन पदार्थों का प्रक्षेप अर्थात् हवन किया जाता है, सो-सो सूर्य्य और वायु को प्राप्त होता है। वे ही उन अलग हुए पदार्थों की रक्षा करके फिर उन्हें पृथिवी में छोड़ देते हैं जिस से कि पृथिवी में दिव्य ओषधि आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं। उनसे जीवों को नित्य सुख होता है, इस कारण सब मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्ठान सदैव करना चाहिये ॥ ५ ॥

घृताच्यसीत्यस्य ऋषिः स एव। विष्णुर्देवता सर्वस्य। षट्षष्टितमाक्षरपर्य्यंतं ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। अग्रे निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। सर्वस्य धैवतः स्वरः॥

फिर उक्त यज्ञ से क्या क्या प्रिय सुख सिद्ध होता है सो
अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ॥

घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सदऽआसीद घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सदऽआसीद घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सदऽआसीद। प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सदऽआसीद ध्रुवाऽअसदन्नृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—जो [(नाम्ना)] (जुहूः) हवि अग्नि में डालने के लिये सुख की उत्पन्न करने वाली (घृताची) घृत को प्राप्त कराने वाली आदान क्रिया (असि) है (सा) वह यज्ञ में युक्त की हुई सार ग्रहण की क्रिया है सो (प्रियेण) सुखों से तृप्त करने वाला शोभायमान (धाम्ना) स्थान के साथ वर्त्तमान होके (इदम्) यह (प्रियम्) जिस में तृप्त करने वाले (सदः) उत्तम-उत्तम सुखों को प्राप्त होते हैं उन को (आसीद) सिद्ध करती है। जो (नाम्ना) प्रसिद्धि से (उपभृत्) समीप प्राप्त हुए पदार्थों को धारण करने तथा (घृताची) जल को प्राप्त कराने वाली हस्तक्रिया (असि) है (सा) वह यज्ञ में युक्त की हुई (प्रियेण) प्रीति के हेतु (धाम्ना) स्थल से (इदम्) यह ओषधि आदि पदार्थों का समूह (प्रियम्) जो कि आरोग्यपूर्वक सुखदायक और (सदः) दुःखों का नाश करने वाला है उस को (आसीद) अच्छी प्रकार प्राप्त करती है तथा जो [(नाम्ना)] (ध्रुवा) स्थिर सुखों वा (घृताची) आयु के निमित्त की देने वाली विद्या (असि) होती है (सा) वह अच्छी प्रकार उत्तम कार्यों में युक्त की हुई (प्रियेण) प्रीति उत्पन्न करने वाले [धाम्ना] स्थिरता के निमित्त से (इदम्) इस (प्रियम्) आनन्द कराने वाले जीवन वा (सदः) वस्तुओं को (आसीद) प्राप्त करता है। जिस क्रिया करके (प्रियेण) प्रसन्नता के करने हारे (धाम्ना) हृदय से (प्रियम्) प्रसन्नता करने वाला (सदः) ज्ञान (आसीद) अच्छी प्रकार प्राप्त होता है (सा) वह विज्ञानरीति सब को नित्य सिद्ध करनी चाहिये।। हे (विष्णो) व्यापकेश्वर ! जैसे जो-जो (ऋतस्य योनौ)

शुद्ध यज्ञ में (ध्रुवा) स्थिर वस्तु (असदन्) हो सके वैसे ही उनकी निरन्तर (पाहि) रक्षा कीजिये तथा कृपा कर के [(यज्ञं)] यज्ञ की (पाहि) रक्षा कीजिये (यज्ञन्यम्) यज्ञ प्राप्त करने (यज्ञपतिम्) यज्ञ को पालन करने हारे यजमान की (पाहि) रक्षा करो और यज्ञ को प्रकाशित करने वाले (माम्) मुझे (च) भी (पाहि) पालिये ॥ ६ ॥

भावार्थः—जो यज्ञ पूर्वोक्त मन्त्र में वसु, रुद्र और आदित्य से सिद्ध होने के लिये कहा है वह वायु और जल की शुद्धि के द्वारा सब स्थान और सब वस्तुओं को प्रीति कराने हारे उत्तम सुख को बढ़ाने वाले कर देता है सब मनुष्यों को उनकी वृद्धि वा रक्षा के लिये व्यापक ईश्वर की प्रार्थना और सदा अच्छी प्रकार पुरुषार्थ करना चाहिये ॥ ६ ॥

अग्ने वाजजिदित्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह यज्ञ कैसा है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ॥

अग्ने॑ वाजजि॒द् वाजं॑ त्वा सरि॒ष्यन्तं॑ वाज॒जित॑ꣳ सम्मा॑र्ज्मि नमो॑ दे॒वेभ्यः॑ स्व॒धा पि॒तृभ्यः॑ सु॒यमे॑ मे भूयास्तम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—जिस से यह (अग्ने) अग्नि (वाजजित्) अर्थात् जो उत्कृष्ट अन्न को प्राप्त कराने वाला होके सब पदार्थों को शुद्ध करता है इससे मैं (त्वा) उस (वाजम्) वेग वाले (सरिष्यन्तम्) सब पदार्थों को अन्तरिक्ष में पहुँचाने और (वाजजितम्) [वाज] अर्थात् युद्ध को जिताने वाले भौतिक अग्नि को (सम्मार्ज्मि) अच्छी प्रकार शुद्ध करता हूँ यज्ञ में युक्त किये हुए जिस अग्नि से (देवेभ्यः) सुखकारक पूर्वोक्त वसु आदि से सुख के लिये (नमः) अत्यन्त मधुर श्रेष्ठ जल तथा (पितृभ्यः) पालन के हेतु जो वसन्त आदि ऋतु हैं उनसे जो आरोग्य के लिये (स्वधा) अमृतात्मक अन्न किये जाते हैं वे (सुयमे) बल वा पराक्रम के देने वाले उस यज्ञ से (मे) मेरे लिये (भूयास्तम्) होवें ॥ ७ ॥

भावार्थः—ईश्वर उपदेश करता है कि प्रथम मन्त्र में कहे हुए यज्ञ का मुख्य साधन अग्नि होता है। क्योंकि जैसे प्रत्यक्ष में भी उसकी लपट देखने में आती है वैसे अग्नि का ऊपर ही को चलने जलने का स्वभाव है तथा सब पदार्थों के छिन्न-भिन्न करने का भी उसका स्वभाव है और यान वा अस्त्र-शस्त्रों में अच्छी प्रकार युक्त किया हुआ शीघ्र गमन वा विजय का हेतु होकर वसन्त आदि ऋतुओं से उत्तम-उत्तम पदार्थों का सम्पादन करके अन्न और जल को शुद्ध वा सुख देने वाले कर देता है ऐसा जानना चाहिये ॥ ७ ॥

अस्कन्नमद्येत्यस्य ऋषिः स एव । विष्णुर्देवता । विराट् पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त यज्ञ कैसा होकर क्या करता है सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है ॥

अस्कन्नमद्य देवेभ्य आज्यꣳ संभ्रियासमङ्घ्रिणा विष्णो मा त्वावक्रमिषं वसुमतीमग्ने ते छायामुपस्थेषं विष्णो स्थानमसीतऽइन्द्रो वीर्य्यमकृणोदूर्ध्वोऽध्वरऽआस्थात् ॥ ८ ॥

पदार्थः—मैं (देवेभ्यः) उत्तम सुखों की प्राप्ति के लिये जो (अस्कन्नम्) निश्चल-सुखदायक (आज्यम्) घृत आदि उत्तम-उत्तम पदार्थ हैं उसको (अंघ्रिणा) पदार्थ पहुँचाने वाले अग्नि से (अद्य) आज (संभ्रियासम्) धारण करूँ और (त्वा) उसका मैं (मावक्रमिषम्) कभी उल्लंघन न करूँ । तथा हे अग्ने जगदीश्वर ! (ते) आप के (वसुमतीम्) पदार्थ देने वाले (छायाम्) आश्रय को (उपस्थेषम्) प्राप्त होऊँ । जो यह (अग्ने) अग्नि (विष्णोः) यज्ञ के (स्थानम्) ठहरने का स्थान (असि) है उस के भी (वसुमतीम्) उत्तम पदार्थ देने वाले (छायाम्) आश्रय को मैं (उपस्थेषम्) प्राप्त होकर यज्ञ को सिद्ध करता हूँ तथा जो (ऊर्ध्वः) आकाश और जो (अध्वरः) यज्ञ अग्नि में ठहरने वाला (आ) सब प्रकार से (अस्थात्) ठहरता है उसको (इन्द्रः) सूर्य्य और और वायु धारण करके (वीर्य्यम्) कर्म अथवा पराक्रम को (अकृणोत्) करते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थः—ईश्वर उपदेश करता है कि जिस पूर्वोक्त यज्ञ से जल और वायु शुद्ध होकर बहुत सा अन्न उत्पन्न करने वाले होते हैं उसको सिद्ध करने के लिये मनुष्यों को बहुत-सी सामग्री जोड़नी चाहिये । जैसे मैं सर्वत्र व्यापक हूँ मेरी आज्ञा कभी उल्लंघन नहीं करनी चाहिये किन्तु जो असंख्यात सुखों का देने वाला मेरा आश्रय है उसको सदा ग्रहण करके अग्नि में जो हवन किया जाता है तथा जिस को सूर्य्य अपनी किरणों से खेंच कर वायु के योग से ऊपर मेघमण्डल में स्थापन करता है और फिर वह उस को वहाँ से मेघ द्वारा गिरा देता है और जिससे पृथिवी पर बड़ा सुख उत्पन्न होता है उस यज्ञ का अनुष्ठान सब मनुष्यों को सदा करना योग्य है ॥ ८ ॥

अग्ने वेरित्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उस यज्ञ से क्या लाभ होता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ॥

अग्ने वेर्होत्रं वेर्दूत्यमवतां त्वां द्यावापृथिवीऽअव त्वं द्यावापृथिवी स्विष्टकृद्देवेभ्यऽइन्द्रऽआज्येन हविषा भूत्स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) परमेश्वर ! जो (द्यावापृथिवी) प्रकाशमय सूर्यलोक और पृथिवी यज्ञ की (अवताम्) रक्षा करते हैं उनकी (त्वम्) आप (वेः) रक्षा करो तथा जैसे यह भौतिक अग्नि (होत्रम्) यज्ञ और (दूत्यम्) दूत कर्म को प्राप्त होकर (द्यावापृथिवी) प्रकाशमय सूर्यलोक और पृथिवी की रक्षा करता है, वैसे हे भगवान् ! (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (स्विष्टकृत्) उनकी इच्छानुकूल अच्छे-अच्छे कार्य्यों के करने वाले आप हम लोगों की (अव) रक्षा कीजिये जो यह (आज्येन) यज्ञ के निमित्त अग्नि में छोड़ने योग्य घृत आदि उत्तम-उत्तम पदार्थ (हविषा) संस्कृत अर्थात् अच्छी प्रकार शुद्ध किये हुए होम के योग्य कस्तूरी केसर आदि पदार्थ वा (ज्योतिषा) प्रकाशयुक्त लोकों के साथ (ज्योतिः) प्रकाशमय किरणों से

(स्विष्टकृत्) अच्छे-अच्छे वांछित कार्य्य सिद्ध कराने वाला (इन्द्रः) सूर्य्यलोक भी (द्यावापृथिवी) हमारे न्याय वा पृथिवी के राज्य की रक्षा करने वाला (अभूत्) होता है वैसे आप (ज्योतिः) विज्ञानरूप ज्योति के दान से हम लोगों की (अव) रक्षा कीजिये इस कर्म को (स्वाहा) वेदवाणी कहती है ॥ ९ ॥

भावार्थः—ईश्वर ने मनुष्यों के लिये वेदों में उपदेश किया है कि जो-जो अग्नि पृथिवी सूर्य्य और वायु आदि पदार्थों के निमित्तों को जान के होम और दूतसम्बन्धी कर्म का अनुष्ठान करना योग्य है सो-सो उनके लिये वांछित सुख के देने वाले होते हैं। अष्टम मन्त्र से कहे हुए यह साधन का फल नवमे मन्त्र से प्रकाशित किया है ॥ ९ ॥

मयीदमित्यस्य ऋषिः स एव । इन्द्रो देवता । भुरिग्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में उक्त यज्ञ से उत्पन्न होने वाले फल का उपदेश किया है ॥

मयीदमिन्द्रऽइन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् । अस्माकꣳ सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिषऽउपहूता पृथिवी मातोप मां पृथिवी माता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा ॥ १० ॥

पदार्थः—(इन्द्रः) परमेश्वर (मयि) मुझ में (इदम्) प्रत्यक्ष (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य की प्राप्ति के चिह्न तथा परमेश्वर ने जो अपने ज्ञान से देखा वा प्रकाशित किया है और सब सुखों को सिद्ध कराने वाले जो विद्वानों को दिया है जिस को वे इन्द्र अर्थात् विद्वान् लोग प्रीतिपूर्वक सेवन करते हैं उन्हें तथा (रायः) विद्या सुवर्ण वा चक्रवर्त्ति राज्य आदि धनों को (दधातु) नित्य स्थापन करे और उसकी कृपा से तथा हमारे पुरुषार्थ से (मघवानः) जिन में कि बहुत धन राज्य आदि पदार्थ विद्यमान हैं जिन करके हम लोग पूर्ण ऐश्वर्य्ययुक्त हों वैसे धन (नः) हम विद्वान् धर्मात्मा लोगों को (सचन्ताम्) प्राप्त हों तथा इसी प्रकार (अस्माकम्) हम परोपकार करने वाले धर्मात्माओं की (आशिषः) कामना (सत्याः) सिद्ध (सन्तु) हों और ऐसे ही (नः) हमारी (आशिषः) न्यायपूर्वक इच्छायुक्त जो क्रिया हैं वे भी (सत्याः) सिद्ध (सन्तु) हों तथा इसी प्रकार (माता) धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि से मान्य करनेहारी विद्या और (पृथिवी) बहुत सुख देने वाली भूमि है (उपहूता) जिसको राज्य आदि सुख के लिये मनुष्य क्रम से प्राप्त होते हैं वह (माम्) सुख की इच्छा करने वाले मुझको (उपह्वयताम्) अच्छा प्रकार उपदेश करती है तथा मेरा अनुष्ठान किया हुआ यह (अग्निः) जिस भौतिक अग्नि को कि (आग्नीध्रात्) इन्धनादि से प्रज्वलित करते हैं वह वांछित सुखों का करने वाला होकर (नः) हमारे सुखों का आगमन करावें क्योंकि ऐसे ही अच्छी प्रकार होम को प्राप्त होके चाहे हुए कार्यों को सिद्ध करनेहारा होता है (स्वाहा) सब मनुष्यों के करने के लिये वेदवाणी इस कर्म की कहती है ॥ १० ॥

भावार्थः—जो मनुष्य पुरुषार्थी परोपकारी ईश्वर के उपासक हैं वे ही श्रेष्ठ ज्ञान, उत्तम धन और सत्य कामनाओं को प्राप्त होते हैं और नहीं। जो सब को मान्य देने के कारण इस मन्त्र

में पृथिवी शब्द से भूमि और विद्या का प्रकाश किया है सो ये सब मनुष्यों को उपकार में लाने के योग्य है। ईश्वर ने इस वेदमन्त्र से यही प्रकाशित किया है तथा जो नवम मन्त्र से अग्नि आदि पदार्थों से इच्छित सुख की प्राप्ति कही है वही बात दशम मन्त्र से प्रकाशित की है ।। १० ।।

उपहूतेत्यस्य ऋषि स एव । द्यावापृथिवी देवते । ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी अगले मन्त्र में उक्त अर्थ को दृढ़ किया है ॥

उप॑हूतो॒ द्यौष्पि॒तोप॒ मां द्यौष्पि॒ता ह्व॑यताम॒ग्निरा॒ग्नीध्रा॑त् स्वाहा॑ । दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वेऽश्विनो॑र्ब्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् । प्रति॑ गृह्णाम्य॒ग्नेष्ट्वा॒स्येन॒ प्राश्ना॑मि ॥ ११ ॥

पदार्थः—मुझ से जो (द्यौः) प्रकाशमय (पिता) सर्वपालक ईश्वर (उपहूतः) प्रार्थना किया हुआ (माम्) सुख भोगने वाले मुझ को (उपह्वयताम्) अच्छी प्रकार स्वीकार करे इसी प्रकार जो (द्यौः) प्रकाशवान् (पिता) सब उत्तम क्रियाओं के पालने का हेतु सूर्य्यलोक मुझ से (उपहूतः) क्रियाओं में प्रयुक्त किया हुआ (माम्) सब सुख भोगने वाले मुझ को विद्या के लिये (उपह्वयताम्) युक्त करता है तथा जो (अग्निः) जाठराग्नि (स्वाहा) अच्छे भोजन किये हुए अन्न को (आग्नीध्रात्) उदर में अन्न के कोठे में पचा देता है उससे मैं (देवस्य) हर्ष देने (सवितुः) और सब के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर के उत्पन्न किये हुए (प्रसवे) संसार में विद्यमान और (त्वा) उस उक्त भोग को (अश्विनोः) प्राण और अपान के (बाहुभ्याम्) आकर्षण और धारण गुणों से तथा (पूष्णः) पुष्टि के हेतु समान वायु के (हस्ताभ्याम्) शोधन वा शरीर के अङ्ग-अङ्ग में पहुँचाने के गुण से (प्रतिगृह्णामि) अच्छी प्रकार ग्रहण करता हूँ ग्रहण करके (अग्नेः) प्रज्वलित अग्नि के बीच में पकाकर (त्वा) उस भोजन करने योग्य अन्न को (आस्येन) अपने मुख से (प्राश्नामि) भोजन करता हूँ ।। ११ ।।

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को अपने आत्मा की शुद्धि के लिये अनन्त विद्या के प्रकाश करने वाले परमेश्वर पिता का आह्वान अर्थात् अच्छी प्रकार नित्य सेवन करना चाहिये तथा विद्या की सिद्धि के लिये उदर की अग्नि को दीप्त कर और नेत्रों से अच्छी प्रकार देख के संस्कार किये हुए प्रमाणयुक्त अन्न का नित्य भोजन करना चाहिये। सब भोग इस संसार में जो कि ईश्वर के उत्पन्न किये पदार्थ हैं उन से सिद्ध होते हैं वह भोग विद्या और धर्मयुक्त व्यवहार से भोगना चाहिये और वैसे ही औरों को वर्तना चाहिये। जो पूर्वमन्त्र से पृथिवी में विद्या से प्राप्त होने वा मान्य के कराने वाले पदार्थ कहे हैं उनका भोग धर्म वा युक्ति के साथ सब मनुष्यों को करना चाहिये। ऐसा इस मन्त्र से प्रतिपादन किया है ॥ ११ ॥

एतन्त इत्यस्य ऋषिः स एव । सविता देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

किस प्रयोजन के लिये और किस ने यह विद्या का प्रबन्ध प्रकाशित किया है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

एतं ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे । तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिं तेन मामव ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (देव) दिव्य सुख वा उत्तम गुण देने तथा (सवितः) सब ऐश्वर्य का विधान करने वाले जगदीश्वर ! वेद और विद्वान् आप के प्रकाशित किये हुए (एतम्) इस पूर्वोक्त यज्ञ को (प्राहुः) अच्छी प्रकार कहते हैं कि जिस से (बृहस्पतये) बड़ों में बड़ी जो वेदवाणी है उसके पालन करने वाले (ब्रह्मणे) चारों वेदों के पढ़ने से ब्रह्मा की पदवी को प्राप्त हुए विद्वान् के लिये सुख और श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त होते हैं । इस (यज्ञम्) यज्ञ सम्बन्धी धर्म से (यज्ञपतिम्) यज्ञ को करने वा सब प्राणियों को सुख देने वाले विद्वान् और उस विद्या वा धर्म के प्रकाश से (मा) मेरी भी (अव) रक्षा कीजिये ॥ १२ ॥

भावार्थः—ईश्वर ने सृष्टि के आदि में दिव्यगुण वाले अग्नि, वायु, रवि और अङ्गिरा ऋषियों के द्वारा चारों वेद के उपदेश से सब मनुष्यों के लिये विद्या प्राप्ति के साथ यज्ञ के अनुष्ठान की विधि का उपदेश किया है जिससे सब की रक्षा होती है क्योंकि विद्या और शुद्धि क्रिया के विना किसी को सुख वा सुख की रक्षा प्राप्त नहीं हो सकती इसलिये हम सब को उचित है कि परस्पर प्रीति के साथ अपनी वृद्धि और रक्षा यत्न से करनी चाहिये । जो ग्यारहवें मन्त्र से यज्ञ का फल कहा है उसका प्रकाश परमेश्वर ही ने किया है ऐसा इस मन्त्र से विधान है ।। १२ ॥

मनोजूतिरित्यस्य ऋषिः स एव । बृहस्पतिर्देवता । विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

जिस से यज्ञ किया जा सकता है सो विषय अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ॥

मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमं दधातु । विश्वे देवासऽइह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ ॥ १३ ॥

पदार्थः—(जूतिः) अपने वेग से सब जगह जाने वाला (मनः) विचारवान् ज्ञान का साधन मेरा मन (आज्यस्य) यज्ञ की सामग्री का (जुषताम्) सेवन करे (बृहस्पतिः) बड़े-बड़े जो प्रकृति और आकाश आदि पदार्थ हैं उनका जो पति अर्थात् पालन करने हारा ईश्वर है वह (इमम्) इस प्रकट और अप्रकट (अरिष्टम्) अहिंसनीय (यज्ञम्) सुखों के भोगरूपी यज्ञ को (तनोतु) विस्तार करे तथा (इमम्) इस (अरिष्टम्) जो छोड़ने योग्य नहीं (यज्ञम्) जो हमारे अनुष्ठान करने योग्य विज्ञान की प्राप्तिरूप यज्ञ है इस को (संदधातु) अच्छी प्रकार धारण करावे । हे (विश्वेदेवासः) सकल विद्वान् लोगो ! तुम इन पालन करने योग्य दो यज्ञों का धारण वा विस्तार करके (इह) इस संसार वा अपने मन में (मादयन्ताम्) आनन्दित होओ । हे (ओ३म्) ओंकार के अर्थ जगदीश्वर ! आप (बृहस्पतिः) प्रकृत्यादि के पालन करने हारे

(इह) इस संसार वा विद्वानों के हृदय में (प्रतिष्ठ) कृपा करके इस यज्ञ वा वेदविद्यादि को स्थापन कीजिये ।। १३ ।।

भावार्थः—ईश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्यो ! तुम्हारा मन अच्छे ही कामों में प्रवृत्त हो तथा मैंने जो संसार में यज्ञ करने की आज्ञा दी है उसका उक्त प्रकार से यथावत् अनुष्ठान करके सुखी हो तथा औरों को भी सुखी करो । (ओम्) यह परमेश्वर का नाम है जैसे पिता और पुत्र का प्रिय सम्बन्ध है वैसे ही परमेश्वर के साथ (ओम्) ओंकार का सम्बन्ध है तथा अच्छे कामों के विना किसी की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती इसलिये सब मनुष्यों को सर्वथा अधर्म छोड़कर धर्म कामों का ही सेवन करना योग्य है जिससे संसार में निश्चय करके अविद्यारूपी अन्धकार निवृत्त होकर विद्यारूपी सूर्य्य प्रकाशित हो । बारहवें मन्त्र से जिस यज्ञ का प्रकाश किया था उसके अनुष्ठान से सब मनुष्यों की प्रतिष्ठा वा सुख होते हैं यह इस में प्रकाशित किया है ।। १३ ।।

एता ते इत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता सर्वस्य । पूर्वोऽनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । अग्ने वाजजिदित्यत्र निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।।

यज्ञ में अग्नि से कैसे उपकार लेना चाहिये सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है ।।

एषा तेऽअग्ने समित्तया वर्धस्व चा च प्यायस्व । वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि । अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा ससृवाᳬंसं वाजजितᳬं सम्मार्ज्मि ।।१४।।

पदार्थः—हे (अग्ने) परमेश्वर ! (ते) आपकी जो (एषा) यह (समित्) अच्छी प्रकार पदार्थों के गुणों की प्रकाश करने वाली वेदविद्या है (तया) उससे हम लोगों की की हुई स्तुति को प्राप्त होकर आप नित्य (वर्धस्व) हमारे ज्ञान में वृद्धि को प्राप्त हूजिये (च) और उस वेदविद्या से हम लोगों की भी नित्य वृद्धि कीजिये । इसी प्रकार हे भगवन् ! आप के गुणों को जाननेहारे हम लोगों से (च) भी प्रकाशित होकर आप (प्यायस्व) हमारे आत्माओं में वृद्धि को प्राप्त हूजिये । इसी प्रकार हम को भी बढ़ाइये । हे भगवन् ! (अग्ने) विज्ञानस्वरूप विजय देने और (वाजजित्) सब के वेग को जीतने वाले परमेश्वर ! हम लोग (वाजम्) जो कि ज्ञानस्वरूप (ससृवांसम्) अर्थात् सब को जानने वाले (त्वा) आपकी (वर्धिषीमहि) स्तुतियों से वृद्धि तथा प्राप्ति करें (च) और आप कृपा करके हम को भी सब के वेग के जीतने तथा ज्ञानवान् अर्थात् सब के मन के व्यवहारों को जानने वाले कीजिये और जैसे हम लोग आपकी (आप्यासिषीमहि) अधिक-अधिक स्तुति करें वैसे ही आप भी हम लोगों को सब उत्तम-उत्तम गुण और सुखों से (आप्यायस्व) वृद्धियुक्त कीजिये । हम आपके आश्रय को प्राप्त होकर तथा आपकी आज्ञा के पालने से (संमार्ज्मि) अच्छी प्रकार शुद्ध होते हैं ।। १ ।। जो (एषा) यह (अग्ने) भौतिक अग्नि है (ते) उसकी (समित्) बढ़ाने अर्थात् अच्छी प्रकार प्रदीप्त करने वाली लकड़ियों का समूह है (तया) उससे यह अग्नि (वर्धस्व) बढ़ता और (आप्यायस्व) परिपूर्ण भी होता है । हम लोग (त्वा) उस (वाजम्) वेग और (ससृवांसम्) शिल्पविद्या के गुणों को देने तथा (वाजजितम्) संग्राम के जिताने के साधन अग्नि को विद्या की वृद्धि के

लिये (वर्धिषीमहि) बढ़ाते हैं (च) और (आप्यासिषीमहि) कलाओं में परिपूर्ण भी करते हैं जिससे यह शिल्पविद्या से सिद्ध किये हुए विमान आदि यानों तथा वेग वाले शिल्पविद्या के गुणों की प्राप्ति से संग्राम को जिताने वाले हमको विजय के साथ बढ़ाता है इससे (त्वा) उस अग्नि को हम (संमार्ज्मि) अच्छी प्रकार प्रयोग करते हैं ॥ २ ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। और एक-एक अर्थ के दो-दो क्रियापद आदर के लिये जानने चाहियें। जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा के पालने और क्रिया की कुशलता में उन्नति को प्राप्त होते हैं वे, विद्या और सुख में सब को आनन्दित कर और दुष्ट शत्रुओं को जीतकर शुद्ध होके सुखी होते हैं। जो आलस्य करने वाले हैं वे ऐसे कभी नहीं हो सकते और चार चकारों से ईश्वर की धर्मयुक्त आज्ञा सूक्ष्म वा स्थूलता से अनेक प्रकार की और क्रियाकाण्ड में करने योग्य कार्य्य भी अनेक प्रकार के हैं ऐसा समझना चाहिये। जो तेरहवें मन्त्र में वेदविद्या कही है उस से सुख के लिये यज्ञ का सन्धान तथा पुरुषार्थ करना चाहिये ऐसा इस मन्त्र में प्रतिपादन किया है ॥ १४ ॥

अग्नीषोमयोरिति सर्वस्य ऋषिः स एव। अग्नीषोमौ देवते। पूर्वार्द्धे ब्राह्मीबृहती-छन्दः। मध्यमः स्वरः। उत्तरार्द्धे इन्द्राग्नी देवते। अतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अब उस यज्ञ से क्या क्या दूर करना चाहिये यह विषय
अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

अ॒ग्नीषोम॑यो॒रुज्जि॑ति॒मनूज्जे॑षं॒ वाज॑स्य मा प्र॒स॒वेन॒ प्रोहा॑मि। अ॒ग्नीषोमौ॒ तमप॑नुदतां॒ यो॒ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं च॑ व॒यं द्वि॒ष्मो वाज॑स्यैनं प्रस॒वेनापो॑हामि। इ॒न्द्रा॒ग्न्योरुज्जि॑ति॒मनूज्जे॑ष॒ वाज॑स्य मा प्रस॒वे॒न॒ प्रोहा॑मि। इ॒न्द्रा॒ग्नी त॑मपनुद॒तां॒ यो॒ऽस्मान् द्वे॒ष्टि॒ यं च॑ व॒य द्वि॒ष्मो वाज॑स्यैनं प्रस॒वेनापो॑हामि॥ १५॥

पदार्थः—मैं (अग्नीषोमयोः) प्रसिद्ध भौतिक अग्नि और चन्द्रलोक के (उज्जितिम्) दुःख से सहने योग्य शत्रुओं को (अनूज्जेषम्) यथाक्रम से जीतूँ और (वाजस्य) युद्ध के (प्रसवेन) उत्पादन से विजय करने वाले (मा) अपने आप को (प्रोहामि) अच्छी प्रकार शुद्ध तर्कों से युक्त करूँ। जो मुझ से अच्छी प्रकार विद्या से क्रियाकुशलता में युक्त किये हुए (अग्नीषोमौ) उक्त अग्नि और चन्द्रलोक हैं वे (यः) जो कि अन्याय में वर्त्तने वाला दुष्ट मनुष्य (अस्मान्) न्याय करने वाले हम लोगों को (द्वेष्टि) शत्रुभाव से वर्त्तता है (यं च) और जिस अन्याय करने वाले से (वयम्) न्यायाधीश हम लोग (द्विष्मः) विरोध करते हैं (तम्) उस शत्रु वा रोग को (अपनुदताम्) दूर करते हैं और मैं भी (एनम्) इस दुष्ट शत्रु को (वाजस्य) यान वेगादि गुणों से युक्त सेना वाले संग्राम की (प्रसवेन) अच्छी प्रकार प्रेरणा से (अपोहामि) दूर करता हूँ मैं (इन्द्राग्न्योः) वायु और विद्युत्‌रूप अग्नि की (उज्जितिम्) विद्या से अच्छी प्रकार उत्कर्ष को (अनूज्जेषम्) अनुक्रम से प्राप्त होऊँ और मैं

(वाजस्य) ज्ञान की प्रेरणा के द्वारा वेग की प्राप्ति के (प्रसवेन) ऐश्वर्य्य के अर्थ उत्पादन से वायु और बिजुली की विद्या के जानने वाले (माम्) अपने आप को नित्य (प्रोहामि) अच्छी प्रकार तर्कों से सुखों को प्राप्त होता हूँ और मुझ से जो अच्छे प्रकार सिद्ध किये हुए (इन्द्राग्नी) वायु और विद्युत् अग्नि है—वह (यः) जो मूर्ख मनुष्य (अस्मान्) हम विद्वान् लोगों से (द्वेष्टि) अप्रीति से वर्त्तता है (च) और (यम्) जिस मूर्ख से (वयम्) हम विद्वान् लोग (द्विष्मः) अप्रीति से वर्त्तते हैं (तम्) उस वैर करने वाले मूढ़ को (अपनुदताम्) दूर करते हैं तथा मैं भी (एनम्) इसे (वाजस्य) विज्ञान के (प्रसवेन) प्रकाश से (अपोहामि) अच्छी-अच्छी शिक्षा दे कर शुद्ध करता हूँ ॥ १५ ॥

भावार्थः—ईश्वर उपदेश करता है कि सब मनुष्यों को विद्या और युक्तियों से अग्नि और जल के मेल से कलाओं की कुशलता करके वेगादि गुणों के प्रकाश से तथा वायु और विद्युत् अग्नि की विद्या से सब दरिद्रता के विनाश और शत्रुओं के पराजय से श्रेष्ठ शिक्षा देकर अज्ञान को दूर कर और उन मूढ़ मनुष्यों को विद्वान् करके अनेक प्रकार के सुख इस संसार में सिद्ध करने योग्य और औरों को सिद्ध कराने के योग्य हैं। इस प्रकार अच्छे प्रयत्न से सब पदार्थविद्या संसार में प्रकाशित करनी योग्य है। पूर्व मन्त्र में जो कार्य प्रकाश किया उसकी पुष्टि इस मन्त्र से की है ॥ १५ ॥

वसुभ्यस्त्वेति सर्वस्य ऋषिः स एव । पूर्वार्द्धे द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ च देवताः । निचृदार्ची पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः । व्यन्तुवय इत्यारभ्याअन्तपर्य्यन्तस्याग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

उक्त यज्ञ से क्या होता है सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वादित्येभ्यस्त्वा संजानाथां द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम् । व्यन्तु वयोक्तꣳ रिहाणा मरुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह । चक्षुष्पाऽअग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि ॥ १६ ॥

पदार्थः—हम लोग (वसुभ्यः) अग्नि आदि आठ वसुओं से (त्वा) उस यज्ञ को तथा (रुद्रेभ्यः) पूर्वोक्त एकादश रुद्रों से (त्वा) पूर्वोक्त यज्ञ को और (आदित्येभ्यः) बारह महीनों से (त्वा) उस क्रियासमूह को नित्य उत्तम तर्कों से जानें और यज्ञ से ये (द्यावापृथिवी) सूर्य्य का प्रकाश और भूमि (संजानाथाम्) जो उन से शिल्पविद्या उत्पन्न हो सके उनके सिद्ध करने वाले हों और (मित्रावरुणौ) जो सब जीवों का बाहिर के प्राण और जीवों के शरीर में रहने वाला उदानवायु है वे (वृष्ट्या) शुद्ध जल की वर्षा से (त्वा) जो संसार सूर्य्य के प्रकाश और भूमि में स्थित है उसकी (अवताम्) रक्षा करते हैं (वयः) जैसे पक्षी अपने-अपने ठिकानों को रचते और (व्यन्तु) प्राप्त होते हैं वैसे उन छन्दों से (रिहाणाः) पूजन करने वाले हम लोग (त्वा) उस यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं और जो यज्ञ में हवन की आहुति (पृश्निः) अन्तरिक्ष में स्थिर और (वशा) शोभित (भूत्वा) होकर (मरुताम्) पवनों के संग से (दिवम्) सूर्य्य के प्रकाश को (गच्छ) प्राप्त होती है वह (ततः) वहाँ से (नः) हम लोगों के सुख के लिये (वृष्टिम्) वर्षा को (आवह) अच्छे प्रकार वर्षाती है उस वर्षा का जल (पृषतीः) नाड़ी और

नदियों को प्राप्त होता है। जिस कारण यह अग्नि (चक्षुष्पाः) नेत्रों की रक्षा करने वाला (असि) है इससे (मे) हमारे (चक्षुः) नेत्रों के बाहिरले भीतरले विज्ञान की (पाहि) रक्षा करता है ॥ १६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य लोग यज्ञ में जो आहुति देते हैं वह वायु के साथ मेघमण्डल में जाकर सूर्य्य से खिंचे हुए जल को शुद्ध करती है, फिर वहाँ से वह जल पृथिवी में आकर ओषधियों को पुष्ट करता है। वह उक्त आहुति वेदमन्त्रों से ही करनी चाहिये क्योंकि उसके फल को जानने में नित्य श्रद्धा उत्पन्न होवे। जो यह अग्नि सूर्य्यरूप होकर सब को प्रकाशित करता है इसी से सब दृष्टिव्यवहार की पालना होती है। ये जो वसु आदि देव कहाते हैं इन से विद्या के उपकारपूर्वक दुष्ट गुण और दुष्ट प्राणियों को नित्य निवारण करना चाहिये, यही सब का पूजन अर्थात् सत्कार है। जो पूर्व मन्त्र में कहा था उसका इससे विशेषता करके प्रकाश किया है ॥ १६ ॥

यं परिधिमित्यस्य ऋषिर्देवलः। अग्निर्देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

उक्त अग्नि कैसा है सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है॥

य॒ प॑रि॒धिं प॒र्य्यध॑त्था॒ऽअग्ने॑ देवप॒णिभि॑र्गु॒ह्यमा॑नः। तं त॑ऽए॒तमनु॒ जोषं॑ भराम्ये॒ष मेत्त्वद॑प॒चे॒तया॑ता॒ऽअ॒ग्नेः प्रि॒यं पाथो॒ऽपी॑तम् ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सर्वत्र व्यापक ईश्वर ! आप (देवपणिभिः) दिव्य गुण वाले विद्वानों की स्तुतियों से (गुह्यमानः) अच्छी प्रकार अपने गुणों के वर्णन को प्राप्त होते हुए (यम्) उन गुणों के अनुकूल (जोषम्) प्रीति से सेवन के योग्य (परिधिम्) प्रभुता को (पर्य्यधत्थाः) निरन्तर धारण करते हैं (तम्) आप की उसको (इत्) ही (एषः) मैं (अनुभरामि) अपने हृदय में धारण करता हूँ तथा मैं (त्वत्) आप से (मा) (अपचेतयातै) कभी प्रतिकूल न होऊँ और (अग्ने) हे जगदीश्वर ! आप की सृष्टि में जो मैंने (प्रियम्) प्रीति बढ़ाने और (पाथः) शरीर की रक्षा करने वाला अन्न (अपीतम्) पाया है उससे भी कभी (मा) (अपचेतयातै) प्रतिकूल न होऊँ॥ १ ॥ हे जगदीश्वर ! (ते) आपकी सृष्टि में (एषः) यह (अग्ने) भौतिक अग्नि (देवपणिभिः) दिव्य गुण वाले पृथिव्यादि पदार्थों के व्यवहारों से (गुह्यमानः) अच्छी प्रकार स्वीकार किया हुआ (यम्) जिस (परिधिम्) विद्यादि गुणों से धारण (जोषम्) और प्रीति करने योग्य कर्म को (पर्य्यधत्थाः) सब प्रकार से धारण करता है (तमित्) उसी को मैं (अनुभराभि) उसके पीछे स्वीकार करता हूँ और उस से कभी (मा) (अपचेतयातै) प्रतिकूल नहीं होता हूँ तथा मैंने जो (अग्नेः) इस अग्नि के सम्बन्ध से (प्रियम्) प्रीति देने और (पाथः) शरीर की रक्षा करने वाला अन्न (अपीतम्) ग्रहण किया है उसको मैं (जोषम्) अत्यन्त प्रीति के साथ नित्य (अनुभरामि) क्रम से पाता हूँ॥ २ ॥ १७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। पहिले अन्वय में अग्निशब्द से जगदीश्वर का ग्रहण और दूसरे में भौतिक अग्नि का है। जो प्रति वस्तु में व्यापक होने से सब पदार्थों का धारण

करने वाला और विद्वानों के स्तुति करने योग्य ईश्वर है उसकी सब मनुष्यों को प्रीति के साथ नित्य सेवा करनी चाहिये। जो मनुष्य उसकी आज्ञा नित्य पालते हैं वे प्रिय सुख को प्राप्त होते हैं तथा जो यह ईश्वर ने प्रकाश दाह और वेग आदि गुण वाला मूर्तिमान् पदार्थों को प्राप्त होने वाला अग्नि रचा है उस से भी मनुष्यों को क्रिया की कुशलता के द्वारा उत्तम-उत्तम व्यवहार सिद्ध करने चाहियें जिस से कि उत्तम-उत्तम सुख सिद्ध होवें। जो पूर्व मन्त्र से वृष्टि आदि पदार्थों का साधक कहा है उसका इस मन्त्र से व्यापकत्व प्रकाश किया है ॥ १७ ॥

संस्रवेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

वह यज्ञ कैसे और किस प्रयोजन के लिये करना चाहिये सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ॥

सँस्रवभागा स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः । इमां वाचमभि विश्वे गृणन्तऽआसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वꣳ स्वाहा वाट् ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे (बृहन्तः) वृद्धि को प्राप्त होने (प्रस्तरेष्ठाः) उत्तम न्याय विद्यारूपी आसन में स्थित होने वाले (परिधेयाः) सब प्रकार से धारणावती बुद्धियुक्त (च) और (इमाम्) इस प्रत्यक्ष (वाचम्) चार वेदों की वाणी का उपदेश करने वाले (देवाः) विद्वानो ! तुम (इषा) अपने ज्ञान से (संस्रवभागाः) घृतादि पदार्थों के होम में छोड़ने वाले (स्थ) होओ तथा (स्वाहा) अच्छे-अच्छे वचनों से (वाट्) प्राप्त होने और सुख बढ़ाने वाली क्रिया को प्राप्त होकर (अस्मिन्) प्रत्यक्ष (बर्हिषि) ज्ञान और कर्मकाण्ड में (मादयध्वम्) आनन्दित होओ वैसे ही औरों को भी आनन्दित करो। इस प्रकार उक्त ज्ञान को कर्मकाण्ड में उक्त वेदवाणी की प्रशंसा करते हुए तुम लोग अपने विचार से उत्तम ज्ञान को प्राप्त होने वाली क्रिया को प्राप्त होकर (बृहन्तः) बढ़ने और (प्रस्तरेष्ठाः) उत्तम कामों में स्थित होने वाले (विश्वे) सब (देवाः) उत्तम-उत्तम पदार्थ (परिधेयाः) धारण करो वा औरों को धारण कराओ और उनकी सहायता से उक्त ज्ञान वा कर्मकाण्ड में सदा (मादयध्वम्) हर्षित होओ ॥ १८ ॥

भावार्थः—ईश्वर आज्ञा देता है कि जो धार्मिक पुरुषार्थी वेदविद्या के प्रचार वा उत्तम व्यवहार में वर्त्तमान हैं उन्हीं को बड़े-बड़े सुख होते हैं। जो पूर्व मन्त्र में ईश्वर और भौतिक अर्थ कहे हैं उनसे ऐसे-ऐसे उपकार लेना चाहिए सो इस मन्त्र में कहा है ॥ १८ ॥

घृताचीस्थ इत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निवायू देवते । भुरिक् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब उक्त यज्ञ से क्या होता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ॥

घृताची स्थो धुर्यौ पातꣳसुम्ने स्थः सुम्ने मा धत्तम् । यज्ञ नमश्च तऽउप च यज्ञस्य शिवे सन्तिष्ठस्व स्विष्टे मे संतिष्ठस्व ॥ १९ ॥

पदार्थः—जो अग्नि और वायु (धुर्य्यौं) यज्ञ के मुख्य अङ्ग को प्राप्त कराने वाले (च) और (सुम्ने) सुखरूप (स्थ) हैं तथा (घृताची) जल को प्राप्त कराने वाली क्रियाओं को कराने हारे (स्थः) (है) और सब जगत् को (पातम्) पालते हैं वे मुझ से अच्छी प्रकार उत्तम-उत्तम क्रिया-कुशलता में युक्त हुए (मा) मुझे, यज्ञ करने वालों को (सुम्ने) सुख में (धत्तम्) स्थापन करते [हैं] जैसे यह (यज्ञ) जगदीश्वर (च) और (नमः) नम्र होना (ते) तेरे लिये (शिवे) कल्याण में (उपसंतिष्ठस्व) समीप स्थित होते हैं, वे वैसे ही (मे) मेरे लिये भी स्थित होते हैं इस कारण जैसे मैं यज्ञ का अनुष्ठान करके (सुम्ने) सुख में स्थित होता हूँ वैसे तुम भी उस में (संतिष्ठस्व) स्थित होओ ॥ १९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। ईश्वर कहता है कि हे मनुष्यो ! रस के परमाणु करने, जगत् के पालन के निमित्त सुख करने, क्रियाकाण्ड के हेतु और ऊपर को तथा टेढ़े वा सूधे जाने वाले अग्नि वायु के गुणों से कार्य्यों को सिद्ध करो। इस से तुम लोग सुखों में अच्छी प्रकार स्थिर हो तथा मेरी आज्ञा पालो और मुझ को ही वार-वार नमस्कार करो ॥ १९ ॥

अग्नेऽदब्धायो इत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निसरस्वत्यौ देवते ।
भुरिग्ब्राह्मीत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

उक्त अग्नि कैसा और क्यों प्रार्थना करने योग्य है सो
अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ॥

अग्नेऽदब्धायोऽशीतम पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुरद्मन्याऽअविषं नः पितुं कृणु । सुषदा योनौ स्वाहा वाडग्नये संवेशपतये स्वाहा सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा ॥ २० ॥

पदार्थः—हे (अदब्धायो) निर्विघ्न आयु देने वाले (अग्ने) जगदीश्वर ! आप (अशीतमम्) चराचर संसार में व्यापक यज्ञ को (दुरिष्ट्यै) दुष्ट अर्थात् वेदविरुद्ध यज्ञ से (पाहि) रक्षा कीजिये (मा) मुझे (दिद्योः) अति दुःख से (पाहि) बचाइये तथा (प्रसित्यै) भारी-भारी बन्धनों से (पाहि) अलग रखिये (दुरद्मन्यै) जो दुष्ट भोजन करना है उस विपत्ति से (पाहि) बचाइये और (नः) हमारे लिये (अविषम्) विष आदि दोष-रहित (पितुम्) अन्नादि पदार्थ (कृणु) उत्पन्न कीजिये तथा (नः) हम लोगों को (सुषदा) सुख से स्थिरता को देने वाले घर में (स्वाहा) (वाट्) वेदोक्त वाक्यों से सिद्ध होने वाली उत्तम क्रियाओं में स्थिर (कृणु) कीजिये, जिससे हम लोग (यशोभगिन्यै) सत्यवचन आदि उत्तम कर्मों की सेवन करने वाली (सरस्वत्यै) पदार्थों के प्रकाशित कराने में उत्तम ज्ञानयुक्त वेदवाणी के लिये (स्वाहा) धन्यवाद वा (संवेशपतये) अच्छी प्रकार जिन पृथिव्यादि लोकों में प्रवेश करते हैं उनके पति अर्थात् पालन करनेहारे जो (अग्नये) आप हैं उनके लिये (स्वाहा) धन्यवाद और (नमः) नमस्कार करते हैं ॥ १ ॥ हे भगवन् जगदीश्वर ! आपने जो यह (अदब्धायो) निर्विघ्न आयु का निमित्त (अग्ने) भौतिक अग्नि बनाया है वह भी (अशीतमम्) सर्वत्र व्यापक यज्ञ को (दुरिष्ट्यै) दुष्ट यज्ञ से (पाहि) रक्षा करता है तथा (मा) मुझे

(दिद्योः) अति दुःखों से (पाहि) बचाता है (प्रसित्यै) बड़े-बड़े दारिद्रय के बन्धनों से (पाहि) बचाता है तथा (दुरद्मन्यै) दुष्ट भोजन कराने वाली क्रियाओं से (पाहि) बचाता है और (नः) हमारे (पितुम्) अन्न आदि पदार्थ (अविषम्) विष आदि दोषरहित (कृणु) कर देता है वह (सुषदा) सुख से स्थिति देने वाले घर अथवा दूसरे जन्मों में (स्वाहा) (वाट्) वेदोक्त वाक्यों से सिद्ध होने वाली क्रियाओं का हेतु है हम लोग उस (सवेशपतये) पृथिव्यादि लोकों के पालने वाले (अग्नये) भौतिक अग्नि को ग्रहण करके (स्वाहा) होम तथा उसके साथ (यशोभगिन्यै) (सरस्वत्यै) उक्त गुण वाली वेदवाणी की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) परमात्मा का धन्यवाद करते हैं ।। २० ।

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । मनुष्यों को जो सर्वव्यापक सब प्रकार से रक्षा करने, उत्तम जन्म देने, उत्तम कर्म कराने और उत्तम विद्या वा उत्तम भोग देने वाला जगदीश्वर है, उसी का सेवन सदा करना योग्य है तथा जो यह अपनी सृष्टि में परमेश्वर ने भौतिक अग्नि प्रत्यक्ष सूर्य्यलोक और विजुली रूप से प्रकाशित किया है वह भी अच्छी प्रकार विद्या से उपकार लेने में संयुक्त किया हुआ सब प्रकार से रक्षा और उत्तम भोग का हेतु होता है । जिसकी कीर्ति के निमित्त सत्यलक्षणयुक्त वेदवाणी से उत्तम जन्म अथवा सब पदार्थों से अच्छी-अच्छी विद्या प्रकाशित होती हैं वे सब विद्वानों के स्वीकार करने योग्य हैं । इस मन्त्र में (नमः) और (यज्ञ) ये दोनों पद पूर्व मन्त्र से लिये हैं ।। २० ।।

वेदोऽसीत्यस्य वामदेव ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।।

सो जगदीश्वर कैसा है सो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभवस्तेन मह्यं वेदो भूयाः । देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित । मनसस्पतऽइमं देव यज्ञꣳस्वाहा वाते धाः ।। २१ ।।

पदार्थः—हे (देव) शुभ गुणों के देनेहारे जगदीश्वर ! (त्वम्) आप (वेदः) चराचर जगत् के जानने वाले (असि) हैं सब जगत् को (वेद) जानते हैं तथा (येन) जिस विज्ञान वा वेद से (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (वेदः) पदार्थों के जानने वाले (अभवः) होते हैं (तेन) उस विज्ञान के प्रकाश से आप (मह्यम्) मेरे लिये जो कि मैं विशेष ज्ञान की इच्छा कर रहा हूँ (वेदः) विज्ञान देने वाले (भूयाः) हूजिये । हे (गातुविदः) स्तुति के जानने वाले (देवाः) विद्वानो ! जिस वेद से मनुष्य सब विद्याओं को जानते हैं उस से तुम लोग (गातुम्) विशेष ज्ञान को (वित्त्वा) प्राप्त होकर (गातुम्) प्रशंसा करने योग्य वेद को (इत) प्राप्त हो । हे (मनसस्पते) विज्ञान से पालन करने हारे (देव) सर्वजगत्प्रकाशक परमेश्वर आप (इमम्) प्रत्यक्ष अनुष्ठान करने योग्य (यज्ञम्) क्रियाकाण्ड से सिद्ध होने वाले यज्ञरूप संसार को (स्वाहा) क्रिया के अनुकूल (वाते) पवन के बीच (धाः) स्थित कीजिये । हे विद्वानो ! उस विज्ञान से विशेष ज्ञान देने वाले परमेश्वर ही की नित्य उपासना करो ।। २१ ।।

भावार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोगों को जिस वेद जानने वाले परमेश्वर ने वेदविद्या प्रकाशित की है उस की उपासना करके उसी वेदविद्या को जान कर और क्रियाकाण्ड का अनुष्ठान करके सब का हित सम्पादन करना चाहिये क्योंकि वेदों के विज्ञान के विना तथा उसमें जो-जो कहे हुए काम हैं उनके किये विना मनुष्यों को कभी सुख नहीं हो सकता। तुम लोग वेदविद्या से जो सब का साक्षी ईश्वर देव है उस को सब जगह व्यापक मानके नित्य धर्म में रहो ॥ २१ ॥

सं बर्हिरित्यस्य वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। विराट्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

यज्ञ में चढ़ा हुआ पदार्थ अन्तरिक्ष में ठहर कर किसके साथ रहता है सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है ॥

सं ब॒र्हिर॑ङ्क्ताᳬं ह॒विषा॑ घृ॒तेन॒ सम॑दि॒त्यैर्वसु॑भि॒: सम्म॒रुद्भि॑: समिन्द्रो॑ वि॒श्वेभि॑र्दे॒वेभि॑रङ्क्तां दि॒व्यं नभो॑ गच्छतु॒ यत् स्वाहा॑ ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! तुम (यत्) जब हवन करने योग्य द्रव्य को (हविषा) होम करने योग्य (घृतेन) घी आदि सुगन्धियुक्त पदार्थ से संयुक्त करके हवन करोगे तब वह (आदित्यैः) बारह महीना (वसुभिः) अग्नि आदि आठो निवास के स्थान और (मरुद्भिः) प्रजा के जनों के साथ मिल के सुख को (समक्ताम्) अच्छी प्रकार प्रकाश करेगा (इन्द्रः) सूर्य्यलोक जो यज्ञ में छोड़ा हुआ (स्वाहा) उत्तम क्रिया से सुगन्ध्यादि पदार्थयुक्त हवि (सगच्छतु) पहुँचाता है उससे (सम्) अच्छी प्रकार मिश्रित हुए (विश्वदेवेभिः) अपनी किरणों से (दिव्यम्) जो उस के प्रकाश में इकट्ठा होने वाला (नभः) जल को (समक्ताम्) अच्छी प्रकार प्रकट करता है ॥ २२ ॥

भावार्थः—जो हवि अच्छी प्रकार शुद्ध किया हुआ यज्ञ के निमित्त अग्नि में छोड़ा जाता है वह अन्तरिक्ष में वायु जल और सूर्य्य की किरणों के साथ मिल कर इधर उधर फैल कर आकाश में ठहरने वाले सब पदार्थों को दिव्य करके अच्छी प्रकार प्रजा को सुखी करता है। इससे मनुष्यों को उत्तम सामग्री और उत्तम-उत्तम साधनों से उक्त तीन प्रकार के यज्ञ का नित्य अनुष्ठान करना चाहिये ॥ २२ ॥

कस्त्वेत्यस्य ऋषिः स एव। प्रजापतिर्देवता। निचृद्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

अग्नि में किसलिये पदार्थ छोड़ा जाता है सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है ॥

कस्त्वा॒ विमु॑ञ्चति॒ स त्वा॒ विमु॑ञ्चति॒ कस्मै॒ त्वा॒ विमु॑ञ्चति॒ तस्मै॑ त्वा॒ विमु॑ञ्चति॒। पोषा॑य॒ रक्ष॑सां भा॒गो॑सि ॥ २३ ॥

पदार्थः—(कः) कौन सुख चाहने वाला यज्ञ का अनुष्ठाता पुरुष (त्वा) उस यज्ञ को (विमुञ्चति) छोड़ता है अर्थात् कोई नहीं और जो कोई यज्ञ को छोड़ता है (त्वा) उस को

(सः) यज्ञ का पालन करने हारा परमेश्वर भी (विमुञ्चति) छोड़ देता ह जो यज्ञ का करने वाला मनुष्य पदार्थ समूह को यज्ञ में छोड़ता है (त्वा) उस को (कस्मै) किस प्रयोजन के लिये अग्नि के बीच में (विमुञ्चति) छोड़ता है (तस्मै) जिससे सब सुख प्राप्त हो तथा (पोषाय) पुष्टि आदि गुण के लिये (त्वा) उस पदार्थ समूह को (विमुञ्चति) छोड़ता है। जो पदार्थ सब के उपकार के लिये यज्ञ के बीच में नहीं युक्त किया जाता वह (रक्षसाम्) दुष्ट प्राणियों का (भागः) अंश (असि) होता है ॥ २३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य ईश्वर के करने कराने वा आज्ञा देने के योग्य व्यवहार को छोड़ता है वह सब सुखों से हीन होकर और दुष्ट मनुष्यों से पीड़ा पाता हुआ सब प्रकार दुःखी रहता है। किसी ने किसी से पूछा कि जो यज्ञ को छोड़ता है उसके लिये क्या होता है। वह उत्तर देता है कि ईश्वर भी उसको छोड़ देता है। फिर वह पूछता है कि ईश्वर उसको किसलिये छोड़ देता है। वह उत्तर देने वाला कहता है कि दुःख भोगने के लिये। जो ईश्वर की आज्ञा को पालता है वह सुखों से युक्त होने योग्य है और जो कि छोड़ता है वह राक्षस हो जाता है ॥ २३ ॥

सं वर्चसेत्यस्य ऋषिः स एव। त्वष्टा देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

उक्त यज्ञ से हम लोग किस-किस पदार्थ को प्राप्त होते हैं सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन। त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम्॥ २४॥

पदार्थः—हम लोग पुरुषार्थी होकर (वर्च्चसा) जिस में सब पदार्थ प्रकाशित होते हैं उस वेद का पढ़ना वा (पयसा) जिस से पदार्थों को जानते हैं उस ज्ञान (मनसा) जिस से सब व्यवहार विचारे जाते हैं उस अन्तःकरण (शिवेन) सब सुख और (तनूभिः) जिन मे विपुल सुख प्राप्त होते हैं उन शरीरों के साथ (रायः) श्रेष्ठ विद्या और चक्रवत्तिराज्य आदि धनों को (समगन्महि) अच्छी प्रकार प्राप्त हों सो (सुदत्रः) अच्छी प्रकार सुख देने और (त्वष्टा) दुःखों तथा प्रलय के समय सब पदार्थों को सूक्ष्म करने वाला ईश्वर कृपा करके हमारे लिये (रायः) उक्त विद्या आदि पदार्थों को (संविदधातु) अच्छी प्रकार विधान करे और हमारे (तन्वः) शरीर को (यत्) जितनी (विलिष्टम्) व्यवहारों की सिद्धि करने की परिपूर्णता है उसे (समनुमार्ष्टु) अच्छी प्रकार निरन्तर शुद्ध करे॥ २४॥

भावार्थः—मनुष्यों को सब कामना परिपूर्ण करने वाले परमेश्वर की आज्ञा पालन करके और अच्छी प्रकार पुरुषार्थ से विद्या का अध्ययन, विज्ञान, शरीर का बल, मन की शुद्धि, कल्याण की सिद्धि तथा उत्तम से उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति सदैव करनी चाहिये। इस सम्पूर्ण यज्ञ की धारणा वा उन्नति से सब सुखों को प्राप्त होके औरों को सुख प्राप्त कराना चाहिये तथा सब व्यवहार और पदार्थों को नित्य शुद्ध करना चाहिये॥ २४॥

दिवीत्यस्य ऋषिः स एव । मन्त्रस्य विष्णुर्देवता । दिवीत्यारभ्य द्विष्म इत्यन्तस्य निचृदार्ची । तथाऽन्तरिक्षमित्यारभ्य द्विष्मःपर्य्यन्तस्यार्ची पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः । पृथिव्यामित्यारभ्यान्तपर्य्यन्तस्य जगती छन्दो निषादः स्वरश्च ॥

वह यज्ञ तीनों लोक में विस्तृत होकर कौन-कौन सुख का साधन होता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ॥

दिवि विष्णुर्व्यक्रंस्त जागतेन च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रंस्त त्रैष्टुभेन च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः । पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रंस्त गायत्रेण च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽस्मदन्नादस्यै प्रतिष्ठाया अगन्म स्वः सं ज्योतिषाभूम ॥ २५ ॥

पदार्थः—(जागतेन) सब लोकों के लिये सुख देने वाले (छन्दसः) आह्लादकारक जगती छन्द से हमारा अनुष्ठान किया हुआ यह (विष्णुः) अन्तरिक्ष में ठहरने वाले पदार्थों में व्यापक यज्ञ (दिवि) सूर्य्य के प्रकाश में (व्यक्रंस्त) जाता है वह फिर (ततः) वहाँ से (निर्भक्तः) विभाग अर्थात् परमाणुरूप होके सब जगत् को तृप्त करता है (यः) जो विरोधी शत्रु (अस्मान्) यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले हम लोगों से (द्वेष्टि) विरोध करता है (च) तथा (यम्) दण्ड देकर शिक्षा करने योग्य जिस दुष्ट प्राणी से (वयम्) हम लोग यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले (द्विष्मः) अप्रीति करते हैं उसको उसी यज्ञ से दूर करते हैं । हम लोगों ने जो यह (विष्णुः) यज्ञ (त्रैष्टुभेन) तीन प्रकार के सुख करने और (छन्दसा) स्वतन्त्रता देने वाले त्रिष्टुप छन्द से अग्नि में अच्छी प्रकार संयुक्त किया है वह (अन्तरिक्षे) आकाश में (व्यक्रंस्त) पहुँचता है वह फिर (ततः) उस अन्तरिक्ष से (निर्भक्तः) अलग हो के वायु और वर्षा जल की शुद्धि से सब संसार को सुख पहुँचाता है (यः) जो दुःख देने वाला प्राणी (अस्मान्) सब के उपकार करने वाले हम लोगों को (द्वेष्टि) दुःख देता है (च) तथा (यम्) सब के अहित करने वाले दुष्ट को (वयम्) हम लोग सब के हित करने वाले (द्विष्मः) पीड़ा देते हैं उसे उक्त यज्ञ से निवारण करते हैं : हम लोगों से जो (विष्णुः) यज्ञ (गायत्रेण) संसार की रक्षा सिद्ध करने और (छन्दसा) अति आनन्द करने वाले गायत्री छन्द से निरन्तर किया जाता है (पृथिव्याम्) विस्तारयुक्त इस पृथिवी में (व्यक्रंस्त) विविध सुखों की प्राप्ति के हेतु से विस्तृत होता है (ततः) उस पृथिवी से (निर्भक्तः) अलग होकर अन्तरिक्ष में जाकर पृथिवी के पदार्थों की पुष्टि करता है (यः) जो पुरुष हमारे राज्य का विरोधी (अस्मान्) हम लोग जो कि न्याय करने वाले हैं उन से (द्वेष्टि) वैर करता है (च) तथा (यम्) जिस शत्रु जन से (वयम्) हम लोग न्यायाधीश (द्विष्मः) वैर करते हैं उसका इस उक्त यज्ञ से नित्य निषेध करते हैं । हम लोग (अस्मात्) यज्ञ से शोधा हुआ प्रत्यक्ष (अन्नात्) जो भोजन

करने योग्य अन्न है उस से (स्वः) सुखरूपी स्वर्ग को (अगन्म) प्राप्त हों तथा (अस्यै) इस प्रत्यक्ष प्राप्त होने वाली (प्रतिष्ठायै) प्रतिष्ठा अर्थात् जिस में सत्कार को प्राप्त होते हैं उसके लिये (ज्योतिषा) विद्या और धर्म के प्रकाश से संयुक्त (समभूम) अच्छी प्रकार हों ।। २५ ।।

भावार्थः—जो-जो मनुष्य लोग सुगन्धि आदि पदार्थ अग्नि में छोड़ते हैं वे अलग-अलग होकर सूर्य्य के प्रकाश तथा भूमि में फैलकर सब सुखों को सिद्ध करते हैं तथा जो वायु, अग्नि, जल और पृथिवी आदि पदार्थ शिल्पविद्यासिद्ध कलायन्त्रों से विमान आदि यानों में युक्त किये जाते हैं वे सब सूर्य्यप्रकाश वा अन्तरिक्ष में सुख से विहार करते हैं। जो पदार्थ सूर्य्य की किरण वा अग्नि के द्वारा परमाणुरूप होके अन्तरिक्ष में जाकर फिर पृथिवी पर आते हैं फिर भूमि से अन्तरिक्ष वा वहाँ से भूमि को आते जाते हैं वे भी संसार को सुख देते हैं। मनुष्यों को उचित है कि इसी प्रकार वार-वार पुरुषार्थ से दोष, दुःख और शत्रुओं को अच्छी प्रकार निवारण करके सुख भोगना भुगवाना चाहिये तथा यज्ञ से शुद्ध वायु, जल, ओषधि और अन्न की शुद्धि के द्वारा आरोग्य बुद्धि और शरीर के बल की वृद्धि से अत्यन्त सुख को प्राप्त होके विद्या के प्रकाश से नित्य प्रतिष्ठा को प्राप्त होना चाहिये ।। २५ ।।

स्वयंभूरित्यस्य ऋषिः स एव । ईश्वरो देवता । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ।।

अब अगले मन्त्र में सूर्य्य शब्द से ईश्वर और विद्वान् मनुष्य का उपदेश किया है ।।

स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदाऽअसि वर्चो मे देहि । सूर्य्यस्यावृतमन्वावर्ते ।। २६ ।।

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! आप विद्वन् वा (श्रेष्ठः) अत्यन्त प्रशंसनीय और (रश्मिः) प्रकाशमान वा (स्वयंभूः) अपने आप होने वाले (असि) हैं तथा (वर्च्चोदा) विद्या देने वाले (असि) हैं इसी से आप (मे) मुझे (वर्च्चः) विज्ञान और प्रकाश (देहि) दीजिये मैं (सूर्य्यस्य) जो आप चराचर जगत के आत्मा हैं उनके (आवृतम्) निरन्तर सज्जन जन जिस में वर्त्तमान होते हैं उस उपदेश को (अन्वावर्ते) स्वीकार करके वर्त्तता हूं ।। २६ ।।

भावार्थः—परमेश्वर और [विद्वान्] जीव का कोई माता वा पिता नहीं है किन्तु यही सब का माता पिता है तथा जिस से बढ़ कर कोई विज्ञानप्रकाशक विद्या देने वाला नहीं है। जैसे सब मनुष्यों को इस परमेश्वर ही की आज्ञा में वर्त्तमान होना चाहिये, वैसे ही जो विद्वान् भी प्रकाश वाले पदार्थों में अवधिरूप और व्यवहारविद्या का हेतु है, जिस के उपदेशरूप प्रकाश को प्राप्त होकर प्रकाशित होते हैं वह क्यों न सेवना चाहिये ।। २६ ।।

अग्ने गृहपत इत्यस्य ऋषिः स एव । सर्वस्याग्निर्देवता । पूर्वार्द्धे निचृत्पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । उत्तरार्द्धे गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ।।

गृहस्थ लोगों को इस के अनुष्ठान से क्या क्या सिद्ध करना चाहिये सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ।।

अग्ने गृहपते सुगृहपतिस्त्वयाऽग्नेऽहं गृहपतिना भूयासꣳ सुगृहपतिस्त्वं मयाऽग्ने गृहपतिना भूयाः। अस्थूरि णौ गार्हपत्यानि सन्तु शतꣳ हिमाः सूर्य्यस्यावृतमन्वावर्त्ते ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (गृहपते) घर के पालन करने हारे (अग्ने) परमेश्वर और विद्वान् (त्वम्) आप (सुगृहपतिः) ब्रह्मांड, शरीर और निवासार्थ घरों के उत्तमता से पालन करने वाले (असि) हैं उस (गृहपतिना) उक्त गुण वाले (त्वया) आप के साथ (अहम्) मैं (सुगृहपतिः) अपने घर का उत्तमता से पालन करने हारा (भूयासम्) होऊँ। हे परमेश्वर ! विद्वान् वा (मया) जो मैं श्रेष्ठ कर्म का अनुष्ठान करने वाला (गृहपतिना) धर्मात्मा और पुरुषार्थी मनुष्य हूँ। उस मुझ से आप उपासना को प्राप्त हुए मेरे घर के पालन करने हारे (भूयाः) हूजिये । इसी प्रकार (नौ) जो हम स्त्री-पुरुष घर के पति हैं सो हमारे (गार्हपत्यानि) अर्थात् जो गृहपति के संयोग से घर के काम सिद्ध होते हैं। वे (अस्थूरि) जैसे निरालस्यता हो वैसे सिद्ध (सन्तु) हों। इस प्रकार अपने वर्त्तमान में वर्त्तते हुए हम स्त्री वा पुरुष (सूर्य्यस्य) आप और विद्वान् के (आवृतम्) वर्त्तमान अर्थात् जिस में अच्छी प्रकार रात्रि वा दिन होते हैं उस में (शतं हिमाः) सौ वर्ष वा सौ से अधिक भी वर्तें ॥ २७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। हम दोनों स्त्रीपुरुष पुरुषार्थी होकर जो इन सब पदार्थों की स्थिति के योग्य संसाररूपी घर का निरन्तर रक्षा करने वाला जगदीश्वर और विद्वान् है उसका आश्रय करके भौतिक अग्नि आदि पदार्थों से स्थिर सुख करने वाले सब काम सिद्ध करते हुए सौ वर्ष जीवें तथा जितेन्द्रियता से सौ वर्ष से अधिक भी सुखपूर्वक जीवन भोगें ॥ २७ ॥

अग्ने व्रतपत इत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता। भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

अब जो सत्याचरण से सुख होता है सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ॥

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधीदमहं यऽएवाऽस्मि सोऽस्मि ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (व्रतपते) न्याययुक्त नियत कर्म के पालन करने हारे (अग्ने) सत्यस्वरूप परमेश्वर ! आपने जो कृपा करके (मे) मेरे लिये (व्रतम्) सत्यलक्षण आदि प्रसिद्ध नियमों से युक्त सत्याचरण व्रत को (अराधि) अच्छी प्रकार सिद्ध किया है (तत्) उस अपने आचरण करने योग्य सत्य नियम को (अशकम्) जिस प्रकार मैं करने को समर्थ होऊँ (अचारिषम्) अर्थात् उसका आचरण अच्छी प्रकार कर सकूँ वैसा मुझ को कीजिये (यः) जो मैंने उत्तम वा अधम कर्म किया है (तदेवाहम्) उसी को भोगता हूँ अब भी जो मैं जैसा करने वाला (अस्मि) हूँ वैसे कर्म के फल भोगने वाला (अस्मि) होता हूँ ॥ २८ ॥

भावार्थः—मनुष्य को यही निश्चय करना चाहिये कि मैं अब जैसा कर्म करता हूं वैसा ही परमेश्वर की व्यवस्था से फल भोगता हूं और भोगूंगा। सब प्राणी अपने कर्म से विरुद्ध फल को कभी नहीं प्राप्त होते इससे सुख भोगने के लिये धर्मयुक्त कर्म ही करना चाहिये कि जिससे कभी दुःख नहीं हो ॥ २८ ॥

अग्नय इत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता। स्वराडार्षी अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब संसारी अग्नि और चन्द्रमा कैसे गुण वाले हैं सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है॥

अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहा। अपहताऽअसुरा रक्षांसि वेदिषदः ॥ २९ ॥

पदार्थः—मनुष्यों को उचित है कि (कव्यवाहनाय) विद्वानों को हित देने, कर्मों की प्राप्ति कराने तथा (अग्नये) सब पदार्थों को अपने आप एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचाने वाले भौतिक अग्नि का ग्रहण करके सुख के लिये (स्वाहा) वेदवाणी से (पितृमते) जिस में वसन्त आदि ऋतु पालन के हेतु होने से पितर संयुक्त होते हैं (सोमाय) जिस से ऐश्वर्यों को प्राप्त होते हैं उस सोमलता को लेके (स्वाहा) अपने पदार्थों को धारण करने वाले धर्म से युक्त विघ्न करके जो (वेदिषदः) इस पृथिवी में रमण करने वाले (रक्षांसि) औरों को दुःखदायी स्वार्थीजन तथा (असुराः) दुष्ट स्वभाव वाले मूर्ख हैं उनको (अपहताः) विनष्ट कर देना चाहिये ॥ २९ ॥

भावार्थः—विद्वानों से युक्ति के साथ शिल्पविद्या में संयुक्त किया हुआ यह अग्नि उनके लिये उत्तम २ कार्यों की प्राप्ति करने वाला होता है मनुष्यों को यह यत्न नित्य करना चाहिये कि जिस से संसार के उपकार से सब सुख और पृथिवी के दुष्टजन वा दोषों की निवृत्ति हो जाय ॥ २९ ॥

ये रूपाणीत्यस्य ऋषिः स एव। अग्निर्देवता। भुरिक् पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

उक्त असुर कैसे लक्षणों वाले होते हैं सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है॥

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमानाऽअसुराः सन्तः स्वधया चरन्ति। परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लोकात् प्रणुदात्यस्मात् ॥ ३० ॥

पदार्थः—(ये) जो दुष्ट मनुष्य (रूपाणि) ज्ञान के अनुकूल अपने अन्तःकरणों में विचारे हुए भावों को (प्रतिमुञ्चमानाः) दूसरे के सामने छिपा कर विपरीत भावों के प्रकाश करने हारे (असुराः) धर्म को ढाँपते (सन्तः) हैं (स्वधया) पृथिवी में जहाँ तहाँ (चरन्ति) जाते आते हैं तथा जो (परापुरः) संसार से उलटे अपने सुखकारी कामों को नित्य सिद्ध करने के लिये यत्न करने (निपुरः) और दुष्ट स्वभावों को परिपूर्ण करने वाले (सन्तः) हैं अर्थात् जो

अन्याय से औरों के पदार्थों को धारण करते हैं (तान्) उन दुष्टों का (अग्निः) जगदीश्वर (अस्मात्) इस प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लोक से (प्रणुदाति) दूर करे ॥ ३० ॥

भावार्थः—जो दुष्ट मनुष्य अपने मन, वचन और शरीर से झूंठे आचरण करते हुए अन्याय से अन्य प्राणियों को पीड़ा देकर अपने सुख के लिये औरों के पदार्थों का ग्रहण कर लते हैं ईश्वर उन को दुःखयुक्त करता है और नाच यानियों म जन्म देता है कि वे अपने पापों के फलों को भाग के फिर भी मनुष्य देह के योग्य होते हैं इस से सब मनुष्यों को योग्य है कि ऐस दुष्ट मनुष्य वा पापों से बचकर सदैव धर्म का ही सेवन किया करें ॥ ३० ॥

अत्र पितर इत्यस्यर्षिः स एव । पितरो देवताः । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

मनुष्य लोगों को धर्मात्मा ज्ञानी विद्वान् पुरुषों का कैसा सत्कार करना योग्य है सो अगले मन्त्र म कहा है ॥

अत्र॑ पितरो मादयध्वं यथाभा॒गमावृ॑षायध्वम् । अमी॑मदन्त पि॒तरो॑ यथाभा॒गमावृ॑षायिषत ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे (पितरः) उत्तम विद्या वा उत्तम शिक्षाओं और विद्यादान से पालन करने वाले विद्वान् लोगो ! (अत्र) हमारे सत्कारयुक्त व्यवहार अथवा स्थान मे (यथाभागम्) यथायोग्य पदार्थों के विभाग को (आवृषायध्वम्) अच्छी प्रकार जैसे कि आनन्द देने वाले बैल अपनी घास को चरते है वैसे पाओ और (मादयध्वम्) आनन्दित भी हो तथा आप हम लागो के जिस प्रकार (यथाभागम्) यथायोग्य अपनी-अपनी बुद्धि के अनुकूल गुण विभाग का प्राप्त हों वैसे (आवृषायिषत) विद्या और धर्म की शिक्षा करने वाले हो और (अमीयदन्त) सब को आनन्द दो ॥ ३१ ॥

भावार्थः—ईश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्य लोग माता और पिता आदि धार्मिक सज्जन विद्वानों को समीप आये हुए देखकर उनकी सेवा करें । प्रार्थनापूर्वक वाक्य कहें कि हे पितरो ! आप लोगों का आना हमारे उतम भाग्य से होता है सो आओ और जो अपने व्यवहार मे यथायोग्य और भोग आसन आदि पदार्थों को हम देते हैं उनको स्वीकार करके सुख को प्राप्त हो तथा जो-जो आप के प्रिय पदार्थ हमारे लाने योग्य हों उस-उस की आज्ञा दीजिये क्योंकि सत्कार को प्राप्त होकर आप प्रश्नोत्तर विधान से हम लोगों को स्थूल और सूक्ष्म विद्या वा धर्म के उपदेश से यथावत् वृद्धियुक्त कीजिये । आप से वृद्धि को प्राप्त हुए हम लोग अच्छे-अच्छे कामों को करके तथा औरों से अच्छे काम कराके सब प्राणियों का सुख और विद्या की उन्नति नित्य करें ॥ ३१ ॥

नमो व इत्यस्यर्षिः स एव । पितरो देवताः । मन्यवे पर्यन्तस्य ब्राह्मी बृहती । अग्रे निचृद् बृहती च छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

अब पितृयज्ञ किस प्रकार से और किस प्रयोजन के लिये किया जाता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

नमो॑ वः पितरो रसा॑य नमो॑ वः पितरः शोषा॑य नमो॑ वः पितरो जीवाय नमो॑ वः पितरः स्वधायै॑ नमो॑ वः पितरो घोराय॑ नमो॑ वः पितरो मन्यवे॑ नमो॑ वः पितरः पितरो नमो॑ वो गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्मैतद्वः पितरो वासः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे (पितरः) विद्या के आनन्द को देने वाले विद्वान् लोगो ! (रसाय) विज्ञानरूपी आनन्द की प्राप्ति के लिये (वः) तुम को हमारा (नमः) नमस्कार हो। हे (पितरः) दुःख का विनाश और रक्षा करने वाले विद्वानो ! (शोषाय) दुःख और शत्रुओं की निवृत्ति के लिये (वः) तुम को हमारा (नमः) नमस्कार हो। हे (पितरः) धर्मयुक्त जीविका के विज्ञान कराने वाले विद्वानो ! (जीवाय) जिससे प्राण का स्थिर धारण होता है उस जीविका के लिये (वः) तुम को हमारा (नमः) शील-धारण विदित हो। हे (पितरः) विद्या अन्न आदि भोगों की शिक्षा करने हारे विद्वानो ! (स्वधायै) अन्न, पृथिवी, राज्य और न्याय के प्रकाश के लिये (वः) तुम को हमारा (नमः) नम्रीभाव विदित हो। हे (पितरः) पाप और आपत्काल के निवारक विद्वान् लोगो ! (घोराय) दुःखसमूह की निवृत्ति के लिये (वः) तुम को हमारा (नमः) क्रोध का छोड़ना विदित हो। हे (पितरः) श्रेष्ठों के पालन करने हारे विद्वानो ! (मन्यवे) दुष्टाचरण करने वाले दुष्ट जीवों मे क्रोध करने के लिये (वः) तुम को हमारा (नमः) सत्कार विदित हो। हे (पितरः) ज्ञानी विद्वानो ! (वः) तुम को विद्या के लिये (नमः) हमारी विज्ञान ग्रहण करने की इच्छा विदित हो। हे (पितरः) प्रीति के साथ रक्षा करने वाले विद्वानो ! (वः) तुम्हारे सत्कार होने के लिये हमारा (नमः) सत्कार करना तुम को विदित हो। आप लोग (नः) हमारे (गृहान्) घरों में नित्य आओ और आके रहो। हे (पितरः) विद्या देने वाले विद्वानो ! (नः) हमारे लिये शिक्षा और विद्या नित्य (दत्त) देते रहो। हे पिता माता आदि विद्वान् पुरुषो ! हम लोग (वः) तुम्हारे लिये जो-जो (सतः) विद्यमान पदार्थ हैं वे नित्य (देष्म) देवें। हे (पितरः) सेवा करने योग्य पितृ लोगो ! हमारे दिये (वासः) इन वस्त्रादि को ग्रहण कीजिये ॥ ३२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में अनेक वार (नमः) यह पद अनेक शुभगुण और सत्कार प्रकाश करने के लिये धरा है। जैसे वसन्त ग्रीष्म वर्षा शरद हेमन्त और शिशिर ये छः ऋतु, रस, शोष जीव, अन्न, कठिनता और क्रोध के उत्पन्न करने वाले होते है वैसे ही पितर भी अनेक विद्याओं के उपदेश से मनुष्यों को निरन्तर सुख देते हैं। इस से मनुष्यों को चाहिये कि उक्त पितरों को उत्तम-उत्तम पदार्थों से सन्तुष्ट करके उनसे विद्या के उपदेश का निरन्तर ग्रहण करें ॥ ३२ ॥

आधत्त इत्यस्य ऋषिः स एव। पितरो देवताः। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

उक्त पितरों को क्या क्या करना चाहिये सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

आध॑त्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्क॑रस्रजम्। यथेह पुरु॑षोऽसत् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे (पितरः) विद्यादान से रक्षा करने वाले विद्वान् पुरुषो ! आप (यथा) जैसे यह ब्रह्मचारी (इह) इस संसार वा हमारे कुल में अपने शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होके विद्या और पुरुषार्थयुक्त मनुष्य (असत्) हो वैसे (गर्भम्) गर्भ के समान (पुष्करस्रजम्) विद्या ग्रहण के लिये फूलों की माला धारण किये हुये (कुमारम्) ब्रह्मचारी को (आधत्त) अच्छी प्रकार स्वीकार कीजिये ॥ ३३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। ईश्वर आज्ञा देता है कि विद्वान् पुरुष और स्त्रियों का चाहिये कि विद्यार्थी, कुमार वा कुमारी को विद्या देने के लिये गर्भ के समान धारण करें। जैसे क्रम-क्रम से गर्भ के बीच देह बीच बढ़ता है वैसे अध्यापक लोगों को चाहिये कि अच्छी-अच्छी शिक्षा से ब्रह्मचारी, कुमार वा कुमारी को श्रेष्ठ विद्या में वृद्धियुक्त करें तथा (उनका) पालन करें वे विद्या के योग से धर्मात्मा और पुरुषार्थयुक्त होकर सदा सुखी हों, यह अनुष्ठान सदैव करना चाहिये ॥ ३३ ॥

ऊर्जमित्यस्यर्षिः स एव । आपो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

उक्त पितर कौन कौन पदार्थों से सत्कार करने योग्य है सो
अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् । स्वधा स्थ तर्पयत मे पितृन् ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे पुत्रादिको ! तुम (मे) मेरे (पितृन्) पूर्वोक्त गुण वाले पितरों को (ऊर्जम्) अनेक प्रकार के उत्तम-उत्तम रस (वहन्तीः) सुख प्राप्त करने वाले स्वादिष्ट जल (अमृतम्) सब रोगों को दूर करन वाले ओषधि मिष्टादि पदार्थ (पयः) दूध (घृतम्) घी (कीलालम्) उत्तम-उत्तम रीति से पकाया हुआ अन्न तथा (परिस्रुतम्) रस से चूते हुए पके फलों को देके (तर्पयत) तृप्त करो। इस प्रकार तुम उनके सेवन से विद्या को प्राप्त होकर (स्वधाः) परधन का त्याग करके अपने धन के सेवन करने वाले (स्थ) होओ ॥ ३४ ॥

भावार्थः—ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों को पुत्र और नौकर आदि को आज्ञा देके कहना चाहिये कि तुम को हमारे पितर अर्थात् पिता-माता आदि वा विद्या के देने वाले प्रीति से सेवा करने योग्य है। जैसे कि उन्होंने बाल्यावस्था वा विद्यादान के समय हम और तुम पाले हैं वैसे हम लोगों को भी वे सब काल में सत्कार करने योग्य हैं जिससे हम लोगों के बीच में विद्या का नाश और कृतघ्नता आदि दोष कभी न प्राप्त हों ॥ ३४ ॥

ईश्वर ने इस दूसरे अध्याय में जो-जो वेदि आदि यज्ञ के साधनों का बनाना, यज्ञ का फल गमन वा साधन, सामग्री का धारण, अग्नि के दूतपन का प्रकाश, आत्मा और इन्द्रियादि पदार्थों की

शुद्धि, सुखों का भोग, वेद का प्रकाश, पुरुषार्थ का सन्धान युद्ध में शत्रुओं का जीतना, शत्रुओं का निवारण, द्वेष का त्याग, अग्नि आदि पदार्थों को सवारियों में युक्त करना, पृथिवी आदि पदार्थों से उपकार लेना, ईश्वर में प्रीति, अच्छे-अच्छे गुणों का विस्तार और सब की उन्नति करना, वेद शब्द के अर्थ का वर्णन, वायु और अग्नि आदि का परस्पर मिलाना, पुरुषार्थ का ग्रहण, उत्तम-उत्तम पदार्थों का स्वीकार करना, यज्ञ में होम किये हुए पदार्थों का तीनों लोक मे जाना आना, स्वयभू शब्द का वर्णन, गृहस्थों का कर्म, सत्य का आचरण, अग्नि में होम, दुष्टों का निवारण और जिन-जिन का सेवन करना कहा है उन-उन का सेवन मनुष्यों को प्रीति के साथ करना अवश्य है। इस प्रकार से प्रथमाध्याय के अर्थ के साथ द्वितीयाध्याय के अर्थ की संगति जाननी चाहिये ।। ३४ ।।

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥

❀ अथ तृतीयोऽध्यायारम्भः ❀

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥ १ ॥

य० ३० । ३ ॥

तत्र समिधेत्यस्य प्रथममन्त्रस्याङ्गिरस ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः।
षड्जः स्वरः॥

अब तीसरे अध्याय के पहिले मन्त्र में भौतिक अग्नि का किस-किस काम में उपयोग करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

स॒मि॒धा॒ग्निं दु॑वस्यत घृ॒तैर्बो॑धय॒ताति॑थिम्। आस्मि॑न् ह॒व्या जु॑होतन ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो! तुम (समिधा) जिन इन्धनों से अच्छे प्रकार प्रकाश हो सकता है उन लकड़ी घी आदिकों से (अग्निम्) भौतिक अग्नि को (बोधयत) उद्दीपन अर्थात प्रकाशित करो तथा जैसे (अतिथिम्) अतिथि को अर्थात् जिसके आने जाने वा निवास का कोई दिन नियत नहीं है उस संन्यासी का सेवन करते हैं वैसे अग्नि का (दुवस्यत) सेवन करो और (अस्मिन्) इस अग्नि में (हव्या) सुगन्ध कस्तूरी केसर आदि, मिष्ट गुड़ शक्कर आदि, पुष्ट घी दूध आदि, रोग को नाश करने वाले सोमलता अर्थात् गुडूची आदि ओषधी, इन चार प्रकार के साकल्य को (आजुहोतन) अच्छे प्रकार हवन करो॥ १॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे गृहस्थ मनुष्य आसन, अन्न, जल वस्त्र और प्रियवचन आदि से उत्तम गुण वाले संन्यासी आदि का सेवन करते हैं वैसे ही विद्वान् लोगों को यज्ञ, वेदी, कलायन्त्र और यानों में स्थापन कर यथायोग्य इन्धन, घी, जलादि से अग्नि को प्रज्वलित करके वायु वर्षाजल की शुद्धि वा यानों की रचना नित्य करनी चाहिये॥ १॥

सुसमिद्धायेत्यस्य सुश्रुत ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर वह भौतिक अग्नि कैसा है किस प्रकार उपयोग करना चाहिये
इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सुस॑मिद्धाय शो॒चिषे॑ घृ॒तं ती॒व्रं जु॑होतन। अ॒ग्नये॑ जा॒तवे॑दसे ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो! तुम (सुसमिद्धाय) अच्छे प्रकार प्रकाशरूप (शोचिषे) शुद्ध किये हुए दोषों को निवारण करने वा (जातवेदसे) सब पदार्थों में विद्यमान (अग्नये)

रूप, दाह, प्रकाश, छेदन आदि गुण स्वभाव वाले अग्नि में (तीव्रम्) सब दोषों के निवारण करने में तीक्ष्ण स्वभाव वाले (घृतम्) घी मिष्ट आदि पदार्थों को (जुहोतन) अच्छे प्रकार गेरो ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को इस प्रज्वलित अग्नि में जल्दी दोषों को दूर करने (वाले) या शुद्ध किये हुए पदार्थों को गेर कर इष्ट सुखों को सिद्ध करना चाहिये ॥ २ ॥

तं त्वेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्यों को उक्त अग्नि की नित्य वृद्धि करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

तं त्वा॑ स॒मिद्भि॑रङ्गिरो घृ॒तेन॑ वर्द्धयामसि । बृ॒हच्छो॑चा यविष्ठ्य ॥ ३ ॥

पदार्थः—हम लोग जो (अङ्गिरः) पदार्थों को प्राप्त कराने वा (यविष्ठ्य) पदार्थों के भेद करने में अति बलवान् (बृहत्) बड़े तेज से युक्त अग्नि (शोच) प्रकाश करता है (त्वा) उसको (समिद्भिः) काष्ठादि वा (घृतेन) घी आदि से (वर्द्धयामसि) बढ़ाते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जो सब गुणों से बलवान् पूर्व कहा हुआ अग्नि है वह होम और शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये लकड़ी घी आदि साधनों से सेवन करके निरन्तर वृद्धियुक्त करना चाहिये ॥ ३ ॥

उपत्वेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जःस्वरः ॥

फिर वह अग्नि कैसा है सो अगले मन्त्र में कहा है ॥

उप॑ त्वाग्ने ह॒विष्म॑तीर्घृ॒ताची॑र्यन्तु हर्यत । जु॒षस्व॑ स॒मिधो॒ मम॑ ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (हर्य्यत) प्राप्ति का हेतु वा कामना के योग्य (अग्ने) प्रसिद्ध अग्नि (मम) यज्ञ करने वाले मेरे (समिधः) लकड़ी घी आदि पदार्थों को (जुषस्व) सेवन करता है जिस प्रकार (तम्) उस अग्नि को घी आदि पदार्थ (यन्तु) प्राप्त हों वैसे तुम (हविष्मतीः) श्रेष्ठ हवियुक्त (घृताचीः) घृत आदि पदार्थों से संयुक्त आहुति वा काष्ठ आदि सामग्री प्रतिदिन सञ्चित करो ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्य लोग जब इस अग्नि में काष्ठ घी आदि पदार्थों की आहुति छोड़ते हैं तब वह उनको अति सूक्ष्म कर के वायु के साथ देशान्तर को प्राप्त करा के दुर्गन्धादि दोषों के निवारण से सब प्राणियों को सुख देता है ऐसा सब मनुष्यों को जानना चाहिये ॥ ४ ॥

भूर्भुवः स्वरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निवायुसूर्य्या देवताः । दैवी बृहती छन्दः । द्यौरिवेत्यस्य निचृद् बृहती छन्दः । उभयत्र मध्यमः स्वरः ॥

फिर उस अग्नि का किसलिये उपयोग करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

भूर्भुवः स्वः द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥ ५ ॥

पदार्थः—मैं (अन्नाद्याय) भक्षण योग्य अन्न के लिये (भूम्ना) विभु अर्थात् ऐश्वर्य्य से (द्यौरिव) आकाश में सूर्य के समान (वरिम्णा) अच्छे-अच्छे गुणों से (पृथिवीव) विस्तृत भूमि के तुल्य (ते) प्रत्यक्ष वा (तस्याः) अप्रत्यक्ष अर्थात् आकाशयुक्त लोक में रहने वाली (देवयजनि) देव अर्थात् विद्वान् लोग जहाँ यज्ञ करते हैं वा (पृथिवी) भूमि के (पृष्ठे) पृष्ठ के ऊपर (भूः) भूमि (भुवः) अन्तरिक्ष (स्वः) दिव अर्थात् प्रकाशस्वरूप सूर्यलोक इनके अन्तर्गत रहने तथा (अन्नादम्) यव आदि सब अन्नों को भक्षण करने वाले (अग्निम्) प्रसिद्ध अग्नि को (आदधे) स्थापन करता हूँ ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। हे मनुष्य लोगो ! तुम ईश्वर से तीन लोकों के उपकार करने वा अपनी व्याप्ति से सूर्य प्रकाश के समान तथा उत्तम-उत्तम गुणों से पृथिवी के समान अपने-अपने लोकों में निकट रहने वाले रचे हुए अग्नि को कार्य की सिद्धि के लिये यत्न के साथ उपयोग करो ॥ ५ ॥

आयमित्यस्य सर्प्पराज्ञी कद्रूर्ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वर ॥

अब अग्नि के निमित्त से पृथिवी का भ्रमण होता है इस विषय को अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है ॥

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ ६ ॥

पदार्थः—(अयम्) यह प्रत्यक्ष (गौः) गोलरूपी पृथिवी (पितरम्) पालन करने वाले (स्वः) सूर्यलोक के (पुरः) आगे-आगे वा (मातरम्) अपनी योनिरूप जलों के साथ सहवर्त्तमान (प्रयन्) अच्छी प्रकार चलती हुई (पृश्निः) अन्तरिक्ष अर्थात् आकाश में (आक्रमीत्) चारों तरफ घूमती है ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को जानना चाहिये कि जिससे यह भूगोल पृथिवी जल और अग्नि के निमित्त से उत्पन्न हुई अन्तरिक्ष वा अपनी कक्षा अर्थात् योनिरूप जल के सहित आकर्षणरूपी गुणों से सब की रक्षा करने वाले सूर्य के चारों तरफ क्षण-क्षण घूमती है इसी से दिन रात्रि शुक्ल वा कृष्ण पक्ष, ऋतु और अयन आदि काल-विभाग क्रम से सम्भव होते हैं ॥ ६ ॥

अन्तरित्यस्य सर्पराज्ञी कद्रूर्ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

वह अग्नि कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती। व्यख्यन् महिषो दिवम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—जो (अस्य) इस अग्नि की (प्राणात्) ब्रह्माण्ड और शरीर के बीच में ऊपर जाने वाले वायु से (अपानती) नीचे को जाने वाले वायु को उत्पन्न करती हुई (रोचना) दीप्ति अर्थात् प्रकाशरूपी बिजुली (अन्तः) ब्रह्माण्ड और शरीर के मध्य में (चरति) चलती है वह (महिषः) अपने गुणों से बड़ा अग्नि (दिवम्) सूर्यलोक को (व्यख्यत्) प्रकट करता है ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जानना जाहिये कि जो विद्युत् नाम से प्रसिद्ध सब मनुष्यों के अन्तःकरण में रहने वाली जो अग्नि की कान्ति है वह प्राण और अपान वायु के साथ युक्त होकर प्राण, अपान, अग्नि और प्रकाश आदि चेष्टाओं के व्यवहारों को प्रसिद्ध करती है ॥ ७ ॥

त्रिंशद्धामेत्यस्य सर्पराज्ञी कद्रूर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

त्रिꣳशद्धाम॒ वि रा॑जति॒ वाक् प॑त॒ङ्गाय॑ धीयते । प्रति॒ वस्तो॒रह॒ द्युभिः॑ ॥८॥

पदार्थः—मनुष्यों को जो अग्नि (द्युभिः) प्रकाश आदि गुणों से (प्रतिवस्तोः) प्रतिदिन (त्रिंशत) अन्तरिक्ष, आदित्य और अग्नि को छोड़ के पृथिवी आदि जो तीस (धाम) स्थान हैं उनको (विराजति) प्रकाशित करता है उस (पतङ्गाय) चलने चलाने आदि गुणों से प्रकाशयुक्त अग्नि के लिये (प्रतिवस्तोः) प्रतिदिन विद्वानों को (अह) अच्छे प्रकार (वाक्) वाणी (धीयते) अवश्य धारण करनी चाहिये ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो वाणी प्राणयुक्त शरीर में रहने वाले बिजुलीरूप अग्नि से प्रकाशित होती है उसके गुणों के प्रकाश के लिये विद्वानों को उपदेश वा श्रवण नित्य करना चाहिये ॥ ८ ॥

अग्निरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निसूर्यौ देवते । पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः । ज्योतिरित्यस्य याजुषी बृहती छन्दः । मध्यम स्वरः ॥

अग्नि और सूर्य्य कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अ॒ग्निर्ज्योति॒र्ज्योति॑र॒ग्निः स्वाहा॒ सूर्यो॒ ज्योति॒र्ज्योतिः॒ सूर्यः॒ स्वाहा॑ । अ॒ग्निर्वर्च्चो॒ ज्योति॒र्वर्च्चः॒ स्वाहा॒ सूर्यो॒ वर्च्चो॒ ज्योति॒र्वर्च्चः॒ स्वाहा॑ । ज्योतिः॒ सूर्यः॒ सूर्यो॒ ज्योतिः॒ स्वाहा॑ ॥ ९ ॥

पदार्थः—(अग्निः) परमेश्वर (स्वाहा) सत्य कथन करने वाली वाणी को (ज्योतिः) जो विज्ञान प्रकाश से युक्त करके सब मनुष्यों के लिये विद्या को देता है इसी प्रकार (अग्निः) जो प्रसिद्ध अग्नि (ज्योतिः) शिल्पविद्या साधनों के प्रकाश को देता है (सूर्यः) जो चराचर सब जगत् का आत्मा परमेश्वर (ज्योतिः) सब के आत्माओं में प्रकाश वा ज्ञान तथा सब विद्याओं का उपदेश करता है कि (स्वाहा) मनुष्य जैसा अपने हृदय से जानता हो वैसे ही बोले । तथा जो (सूर्यः) अपने प्रकाश से प्रेरणा का हेतु सूर्यलोक (ज्योतिः) मूर्तिमान् द्रव्यों का प्रकाश

करता है (अग्निः) जो सब विद्याओं का प्रकाश करने वाला परमेश्वर मनुष्यों के लिये (वर्च्चः) सब विद्याओं के अधिकरण चारों वेदों को प्रकट करता है। तथा जो (ज्योतिः) बिजुलीरूप से शरीर वा ब्रह्माण्ड में रहने वाला अग्नि (वर्च्चः) विद्या और वृष्टि का हेतु है (सूर्यः) जो सब विद्याओं का प्रकाश करने वाला जगदीश्वर सब मनुष्यों के लिये (स्वाहा) वेदवाणी से (वर्च्चः) सकल विद्याओं का प्रकाश और (ज्योतिः) बिजुली, सूर्य प्रसिद्ध और अग्नि नाम के तेज का प्रकाश करता है तथा जो (सूर्यः) सूर्यलोक भी (वर्च्चः) शरीर और आत्माओं के बल का प्रकाश करता है तथा जो (सूर्यः) प्राणवायु (वर्च्चः) सकल विद्या के प्रकाश करने वाले ज्ञान को बढ़ाता है और (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप जगदीश्वर अच्छे प्रकार से हवन किये हुए पदार्थों को अपने रचे हुए पदार्थों में अपनी शक्ति से सर्वत्र फैलाता है वही परमात्मा सब मनुष्यों का उपास्य देव और भौतिक अग्नि कार्य्यसिद्धि का साधन है ॥ ९ ॥

भावार्थः—स्वाहा शब्द का अर्थ निरुक्तकार की रीति से इस मन्त्र में ग्रहण किया है अग्नि अर्थात् ईश्वर ने सामर्थ्य करके कारण से अग्नि आदि सब जगत् को उत्पन्न करके प्रकाशित किया है उनमें से अग्नि अपने प्रकाश से आप वा और सब पदार्थों का प्रकाश करता है तथा परमेश्वर वेद के द्वारा सब विद्याओं का प्रकाश करता है इसी प्रकार अग्नि और सूर्य भी शिल्पविद्या का प्रकाश करते हैं ॥ ९ ॥

सजूरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । पूर्वार्द्धस्याग्निरुत्तरार्द्धस्य सूर्यश्च देवते । पूर्वार्द्धस्य गायत्र्युत्तरार्द्धस्य भुरिग्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

भौतिक अग्नि और सूर्य ये दोनों किस की सत्ता से वर्त्तमान हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

स॒जूर्दे॒वेन॑ सवि॒त्रा स॒जू रात्र्येन्द्र॑वत्या । जु॒षा॒णोऽअ॒ग्निर्वे॑तु॒ स्वाहा॑ ।
स॒जूर्दे॒वेन॑ सवि॒त्रा स॒जूरु॒षसेन्द्र॑वत्या । जु॒षा॒णः सूर्यो॑ वे॑तु॒ स्वाहा॑ ॥ १० ॥

पदार्थः—(अग्निः) जो भौतिक अग्नि (देवेन) सब जगत् को ज्ञान देने वा (सवित्रा) सब जगत् को उत्पन्न करने वाले ईश्वर के उत्पन्न किये हुए जगत् के साथ (सजूः) तुल्य वर्तमान (जुषाणः) सेवन करता वा (इन्द्रवत्या) बहुत बिजुली से युक्त (रात्र्या) अन्धकार रूप रात्रि के साथ (स्वाहा) वाणी को सेवन करता हुआ (वेतु) सब पदार्थों में व्याप्त होता है इसी प्रकार (सूर्यः) जो सूर्यलोक (देवेन) सब को प्रकाश करने वाले वा (सवित्रा) सब के अन्तर्यामी परमेश्वर के उत्पन्न वा धारण किये हुए जगत् के साथ (सजूः) तुल्य वर्तमान (जुषाणः) सेवन करता वा (इन्द्रवत्या) सूर्यप्रकाश से युक्त (उषसा) दिन के प्रकाश के हेतु प्रातःकाल के साथ (स्वाहा) अग्नि में होम की हुई आहुतियों को (जुषाणः) सेवन करता हुआ व्याप्त होकर हवन किये हुए पदार्थों को (वेतु) देशान्तरों में पहुँचाता है, उसी से सब व्यवहार सिद्ध करें ॥ १० ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो भौतिक अग्नि ईश्वर ने रचा है वह इसी की सत्ता से अपने अपने रूप को धारण करता हुआ दीपक आदि रूप से रात्रि के व्यवहारों को सिद्ध करता

है। इसी प्रकार जो प्रातःकाल को प्राप्त होकर सब मूर्तिमान् द्रव्यों के प्रकाश करने को समर्थ है वही काम सिद्धि करने हारा है, इनको जानो ॥ १० ॥

उपेत्यस्य गोतम ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर ने अपने स्वरूप का प्रकाश किया है॥

उपप्रयन्तोऽध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये। आरेऽअस्मे च शृण्वते ॥ ११ ॥

पदार्थः—(अध्वरम्) क्रियामय यज्ञ को (उपप्रयन्तः) अच्छे प्रकार जानते हुए हम लोग (अस्मे) जो हम लोगों के (आरे) दूर वा (च) निकट मे (शृण्वते) यथार्थ सत्यासत्य को सुनने वाले (अग्नये) विज्ञानस्वरूप अन्तर्यामी जगदीश्वर है इसी के लिये (मन्त्रम्) ज्ञान को प्राप्त कराने वाले मन्त्रों को (वोचेम्) नित्य उच्चारण वा विचार करें ॥ ११ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को वेदमन्त्रों के साथ ईश्वर की स्तुति वा यज्ञ के अनुष्ठान को करके जो ईश्वर भीतर बाहर सब जगह व्याप्त होकर सब व्यवहारों को सुनता वा जानता हुआ वर्त्तमान है इस कारण उससे भय मानकर अधर्म करने की इच्छा भो न करनी चाहिये। जब मनुष्य परमात्मा को जानता है तब समीपस्थ और जब नहीं जानता तब दूरस्थ है ऐसा निश्चय जानना चाहिये ॥ ११ ॥

अग्निर्मूर्द्धेत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि का प्रकाश किया है॥

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम्। अपाᳪं रेताᳪंसि जिन्वति ॥ १२ ॥

पदार्थः—(अयम्) जो यह कार्य कारण से प्रत्यक्ष (ककुत) सब से बड़ा (मूर्द्धा) सब के ऊपर विराजमान (अग्निः) जगदीश्वर (दिवः) प्रकाशमान सूर्य आदि लोक और (पृथिव्याः) प्रकाशरहित पृथिवी आदि लोकों का (पतिः) पालन करता हुआ (अपाम्) प्राणों के (रेतांसि) वीर्यों की (जिन्वति) रचना को जानता है उसी को पूज्य मानो ॥ १ ॥ (अयम्) यह अग्नि (ककुत्) सब पदार्थों से बड़ा (दिवः) प्रकाशमान पदार्थों के (मूर्द्धा) ऊपर विराजमान (पृथिव्याः) प्रकाश रहित पृथिवी आदि लोकों के (पतिः) पालन का हेतु होकर (अपाम्) जलों के (रेतांसि) वीर्यों को (जिन्वति) प्राप्त करता है ॥ २ ॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो जगदीश्वर प्रकाश वा अप्रकाशरूप दो प्रकार का जगत् अर्थात् प्रकाशवान् सूर्य आदि और प्रकाश रहित पृथिवी आदि लोकों को रच कर पालन करके प्राणों में बल को धारण करता है तथा जो भौतिक अग्नि पृथिवी आदि जगत् के पालन का हेतु होकर बिजुली जाठर आदि रूप से प्राण वा जलों के वीर्यों को उत्पन्न करता है ॥ १२ ॥

उभा वामिन्द्राग्नी इत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अगले मन्त्र में भौतिक अग्नि और वायु का उपदेश किया है ॥

उभा वामिन्द्राग्नीऽआहुवध्याऽउभा राधसः सह मादयध्यै । उभा दातारा-विषाᳬं रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥ १३ ॥

पदार्थः—मैं जो (उभा) दो (दातारौ) सुख देने के हेतु (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि हैं (वाम्) उनको (आहुवध्यै) गुण जानने के लिये (हुवे) ग्रहण करता हूँ (राधसः) उत्तम सुखयुक्त राज्यादि धनों के भोग के (सह) साथ (मादयध्यै) आनन्द के लिये (वाम्) उन (उभा) दोनों को (हुवे) ग्रहण करता हूँ तथा (इषाम्) सब को इष्ट (रयीणाम्) अत्यन्त उत्तम चक्रवर्ति राज्य आदि धन वा (वाजस्य) अत्यन्त उत्तम अन्न के (सातये) अच्छे प्रकार भोग करने के लिये (उभौ) उन दोनों को (हुवे) ग्रहण करता हूँ ॥ १३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य ईश्वर की सृष्टि में अग्नि और वायु के गुणों को जान कर कार्यों में संप्रयुक्त करके अपने-अपने कार्यों को सिद्ध करते हैं वे सब भूगोल के राज्य आदि धनों को प्राप्त होकर आनन्द करते हैं इन से भिन्न मनुष्य नहीं ॥ १३ ॥

अयन्त इत्यस्य देववातभरतावृषी । अग्निर्देवता । स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी अगले मन्त्र में ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है ॥

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽअरोचथाः । तं जानन्नग्नऽआरोहाथा नो वर्द्धया रयिम् ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! (ते) आपकी सृष्टि में जो (ऋत्वियः) ऋतु-ऋतु में प्राप्ति कराने योग्य अग्नि और जो वायु से (जातः) प्रसिद्ध हुआ (आरोचथाः) सब प्रकार प्रकाश करता है वा जो सूर्य आदि रूप से प्रकाश वाले लोकों की (आरोह) उन्नति को सब ओर से बढ़ाता है और जो (नः) हमारे (रयिम्) राज्य आदि धन को बढ़ाता है (तम्) उस अग्नि को (जानन्) जानते हुए आप उससे (नः) हमारे (रयिम्) सब भूगोल के राज्य आदि से सिद्ध हुए धन को (वर्द्धय) वृद्धियुक्त कीजिये ॥ १४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जो सब काल में यथावत् उपयोग करने योग्य वा जो वायु के निमित्त से उत्पन्न हुआ तथा जो अनेक कार्य्यों की सिद्धिरूप कारण से सब को सुख देता है उस अग्नि को यथावत् जानकर उसका उपयोग करके सब कार्य्यों की सिद्धि करनी चाहिये ॥ १४ ॥

अयमिहेत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठोऽअध्वरेष्वीड्यः । यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥ १५ ॥

पदार्थः—(अप्नवानः) विद्या सन्तान अर्थात् विद्या पढ़ाकर विद्वान् कर देने वाले (भृगवः) यज्ञविद्या के जानने वाले विद्वान् लोग (इह) इस संसार में (वनेषु) अच्छे प्रकार सेवन करने योग्य (अध्वरेषु) उपासना अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधपर्यन्त और शिल्पविद्यामय यज्ञों में (विशेविशे) प्रजा प्रजा के प्रति (विभ्वम्) व्याप्त स्वभाव वा (चित्रम्) आश्चर्य-गुणवाले (यम्) जिस ईश्वर और अग्नि को (विरुरुचुः) विशेष कर के प्रकाशित करते हैं (अयम्) वही (धातृभिः) यज्ञक्रिया के धारण करने वाले विद्वान् लोगों को (ईड्यः) खोज करने योग्य (प्रथमः) यज्ञक्रिया का आदि साधन (होता) यज्ञ का ग्रहण करने वाला (यजिष्ठः) उपासना और शिल्पविद्या का हेतु है, उसका (इह) इस संसार में (धायि) धारण करते हैं ॥ १५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। विद्वान् लोग यज्ञ की सिद्धि के लिये मुख्य करके उपास्यदेव और साधन भौतिक अग्नि को ग्रहण करके इस संसार में प्रजा के सुखों को नित्य सिद्ध करें ॥ १५ ॥

अस्य प्रत्नामित्यस्याऽवत्सार ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अस्य प्रत्नामनु द्युतꣳ शुक्रं दुदुह्रेऽअह्रयः । पयः सहस्रसामृषिम् ॥१६॥

पदार्थः—(अह्रयः) सब विद्याओं का व्याप्त कराने वाले विद्वान् लोग (अस्य) इस भौतिक अग्नि की (सहस्रसाम्) असंख्यात कार्यों को देने वा (ऋषिम्) कार्यसिद्धि के प्राप्ति का हेतु (प्रत्नाम्) प्राचीन अनादिस्वरूप से नित्य वर्त्तमान (द्युतम्) कारण में रहने वाली दीप्ति को जानकर (शुक्रम्) शुद्ध कार्यों का सिद्ध करने वाले (पयः) जल को (अनु दुदुह्रे) अच्छे प्रकार पूरण करते हैं अर्थात् अग्नि में हवनादि करके वृष्टि से संसार को पूरण करते हैं ॥१६॥

भावार्थः—मनुष्यों को जैसे गुणसहित अग्नि का कारणरूप वा अनादिपन से नित्यपन जानना योग्य है वैसे ही जगत् के अन्य पदार्थों का भी कारणरूप से अनादिपन जानना चाहिये इनको जानकर कार्यों में उपयुक्त करके सब व्यवहारों की सिद्धि करनी चाहिये ॥ १६ ॥

तनूपा इत्यस्याऽवत्सार ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर और भौतिक अग्नि क्या करते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है

तनूपाऽअग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दाऽअग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्चोदाऽअग्नेऽसि वर्चो मे देहि । अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्मऽआपृण ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! (यत्) जिस कारण आप (तनूपाः) सब मूर्तिमान् पदार्थों के शरीरों की रक्षा करने वाले (असि) हैं इससे आप (मे) मेरे (तन्वम्) शरीर की (पाहि) रक्षा कीजिये। हे (अग्ने) परमेश्वर ! आप (आयुर्दाः) सब को आयु के देने वाले (असि) हैं वैसे (मे) मेरे लिये (आयुः) पूर्ण आयु अर्थात् सौ वर्ष तक जीवन (देहि) दीजिये। हे (अग्ने) सर्वविद्यामय ईश्वर ! जैसे आप (वर्च्चोदाः) सब मनुष्यों को विज्ञान देने वाले (असि) हैं वैसे (मे) मेरे लिये भी ठीक ठीक गुण ज्ञानपूर्वक (वर्च्चः) पूर्ण विद्या को (देहि) दीजिये। हे (अग्ने) सब कामों को पूरण करने वाले परमेश्वर ! (मे) मेरे (तन्वाः) शरीर में (यत्) जितना (ऊनम्) बुद्धि बल और शौर्य आदि गुण कर्म है (तत्) उतना अङ्ग (मे) मेरा (आपृण) अच्छे प्रकार पूरण कीजिये ॥ १ ॥ (अग्ने) यह भौतिक अग्नि (यत्) जैसे (तनूपाः) पदार्थों की रक्षा का हेतु (असि) है वैसे जाठराग्नि रूप से (मे) मेरे (तन्वम्) शरीर की (पाहि) रक्षा करता है (अग्ने) जैसे ज्ञान का निमित्त यह अग्नि (आयुर्दाः) सब के जीवन का हेतु (असि) है वैसे (मे) मेरे लिये भी (आयुः) जीवन के हेतु क्षुधा आदि गुणों को (देहि) देता है (अग्ने) यह अग्नि जैसे (वर्च्चोदाः) विज्ञानप्राप्ति का हेतु (असि) है वैसे (मे) मेरे लिये भी (वर्च्चः) विद्या-प्राप्ति के निमित्त बुद्धिबलादि को (देहि) देता है तथा (अग्ने) जो कामना के पूरण करने में हेतु भौतिक अग्नि है वह (यत) जितना (मे) मेरे (तन्वाः) शरीर में बुद्धि आदि सामर्थ्य (ऊनम्) कम है (तत्) उतना गुण (आपृण) पूरण करता है ॥ २ ॥ १७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जिस कारण परमेश्वर ने इस संसार में सब प्राणियों के लिये शरीर के आयुनिमित्त विद्या का प्रकाश और सब अङ्गों की पूर्णता रची हैं, इसी से सब पदार्थ अपने अपने स्वरूप को धारण करते हैं इसी प्रकार परमेश्वर की सृष्टि में प्रकाश आदि गुणवान् होने से यह अग्नि भी सब पदार्थों के पालन का मुख्य साधन है ॥ १७ ॥

इन्धानास्त्वेत्यस्याऽवत्सार ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी अगले मन्त्र में परमेश्वर और भौतिक अग्नि का प्रकाश किया है ॥

इन्धानास्त्वा शतꣳ हिमा द्युमन्तꣳ समिधीमहि। वयस्वन्तो वयस्कृतꣳ सहस्वन्तः सहस्कृतम्। अग्ने सपत्नदम्भनमदब्धासोऽ अदाभ्यम्। चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे (चित्रावसो) आश्चर्यरूप धन वाले (अग्ने) परमेश्वर ! (अदब्धासः) दम्भ, अहङ्कार और हिंसादि दोषरहित (वयस्वन्तः) प्रशंसनीय पूर्ण अवस्थायुक्त (सहस्वन्तः) अत्यन्त सहन स्वभावसहित (अदाभ्यम्) मानने योग्य (सपत्नदम्भनम्) शत्रुओं के नाश करने (वयस्कृतम्) अवस्था की पूर्ति करने (सहस्कृतम्) सहन करने कराने तथा (द्युमन्तम्) अनन्त प्रकाश वाले (त्वा) आपका (इन्धानाः) उपदेश और श्रवण करते हुए हम लोग (शतम्) सौ वर्ष तक वा सौ से अधिक (हिमाः) हेमन्त ऋतुयुक्त (समिधीमहि) अच्छे प्रकार

प्रकाश करें वा जीवें, इस प्रकार करता हुआ मैं भी जो (ते) आपकी कृपा से सब दुःखों से (पारम्) पार होकर (स्वस्ति) सुख को (अशीय) प्राप्त होऊँ ॥ १ ॥ (अदब्धासः) दम्भ, अहङ्कार, हिंसादि दोषरहित (वयस्वन्तः) पूर्ण अवस्थायुक्त (सहस्वन्तः) अत्यन्त सहन करने वाले (त्वा) उस (अदाभ्यम्) उपयोग करने योग्य (सपत्नदम्भनम्) आग्नेयादि शस्त्र अस्त्रविद्या में हेतु होने से शत्रुओं को जिताने (वयस्कृतम्) अवस्था को बढ़ाने (सहस्कृतम्) सहन का हेतु (द्युमन्तम्) अच्छे प्रकार प्रकाशयुक्त (अग्ने) कार्यों को प्राप्त कराने वाले भौतिक अग्नि को (इन्धानाः) प्रज्वलित करते हुए हम लोग (शतम्) सौ वर्ष पर्यन्त (हिमाः) हेमन्तऋतुयुक्त (समिधीमहि) जीवें इस प्रकार करता हुआ मैं भी जो यह (चित्रावसो) आश्चर्यरूप धन के प्राप्ति का हेतु अग्नि है (ते) उसके प्रकाश से दारिद्र आदि दुःखों से (पारम्) पार होकर (स्वस्ति) अत्यन्त सुख को (अशीय) प्राप्त होऊँ ॥ २ ॥ १८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को अपने पुरुषार्थ, ईश्वर की उपासना तथा अग्नि आदि पदार्थों से उपकार लेके दुःखों से पृथक् होकर उत्तम उत्तम सुखों को प्राप्त होकर सौ वर्ष जीना चाहिये अर्थात् क्षण भर भी आलस्य में नहीं रहना किन्तु जैसे पुरुषार्थ की वृद्धि हो वैसा अनुष्ठान निरन्तर करना चाहिये ॥ १८ ॥

सन्त्वमित्यस्यावत्सार ऋषिः। अग्निर्देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर भी परमेश्वर और अग्नि कैसे हैं सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है॥

सं त्वम॑ग्ने॒ सूर्य॑स्य॒ वर्च॑सागथाः॒ समृषी॑णाᳪं स्तु॒तेन॑। सं प्रि॒येण॒ धाम्ना॒ सम॒हमायु॑षा॒ सं वर्च॑सा॒ सं प्र॒जया॒ सᳪं रा॒यस्पोषे॑ण ग्मिषीय॥ १९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! जो आप (सूर्यस्य) सब के अन्तर्गत प्राण वा (ऋषीणाम्) वेदमन्त्रों के अर्थों को देखने वाले विद्वानों की जिस (संस्तुतेन) स्तुति करने (संप्रियेण) प्रसन्नता से मानने (संवर्चसा) विद्याध्ययन और प्रकाश करने (धाम्ना) स्थान (समायुषा) उत्तम जीवन (संप्रजया) सन्तान वा राज्य और (रायस्पोषेण) उत्तम धनों के भोग पुष्टि के साथ (समगथाः) प्राप्त होते हैं। उसी के साथ (अहम्) मैं भी सब सुखों को (संग्मिषीय) प्राप्त होऊँ ॥ १ ॥ जो (अग्ने) भौतिक अग्नि पूर्व कहे हुए सबों के (समगथाः) सङ्गत होकर प्रकाश को प्राप्त होता है उस सिद्ध किये हुए अग्नि के साथ (अहम्) मैं व्यवहार के सब सुखों को (संग्मिषीय) प्राप्त होऊँ ॥ २ ॥ १९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्य लोग ईश्वर की आज्ञा का पालन, अपना पुरुषार्थ और अग्नि आदि पदार्थों के संप्रयोग से इन सब सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥

अन्धस्थेत्यस्य याज्ञवल्क्य ऋषिः। आपो देवता। भुरिग्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में यज्ञ से शुद्ध किये ओषधी आदि पदार्थों का उपदेश किया है॥

अन्ध स्थान्धो वो भक्षीय महं स्थ महो वो भक्षीयार्ज्ज स्थोर्ज्ज वो भक्षीय रायस्पोषं स्थ रायस्पोषं वो भक्षीय ॥ २० ॥

पदार्थः—जो (अन्धः) बलवान् वृक्ष वा ओषधि आदि पदार्थ (स्थ) हैं (वः) उनके प्रकाश से मैं (अन्वः) वीर्य को पुष्ट करने वाले अन्नों को (भक्षीय) ग्रहण करूँ। जो (महः) बड़े बड़े वायु अग्नि आदि वा विद्या आदि पदार्थ (स्थ) हैं (वः) उनसे मैं (महः) बड़ी बड़ी क्रियाओं को सिद्धि करने वाले कर्मों का (भक्षीय) सेवन करूँ जो (ऊर्जः) जल, दूध, घी, मिष्ट वा फल आदि रसवाले पदार्थ (स्थ) हैं (वः) उनसे मैं (ऊर्जम्) पराक्रमयुक्त रस का (भक्षीय) भोग करूँ और जो (रायस्पोषः) अनेक गुणयुक्त पदार्थ (स्थ) हैं (वः) उन चक्रवर्तिराज्य और श्री आदि पदार्थों के मैं (रायस्पोषम्) उत्तम-उत्तम धनों के भोग का (भक्षीय) सेवन करूँ ॥ २० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जगत् के पदार्थों के गुण ज्ञान पूर्वक क्रिया की कुशलता से उपकार को ग्रहण करके सब सुखों का भोग करना चाहिये ॥ २० ॥

रेवतीरित्यस्य याज्ञवल्क्य ऋषिः। विश्वेदेवा देवता। उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

अब विद्वानों के सत्कार के लिये उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

रेवती रमध्वमस्मिन्योनावस्मिन् गोष्ठेऽस्मिँल्लोकेऽस्मिन् क्षये। इहैव स्त मापगात ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (रेवतीः) विद्या, धन, इन्द्रिय, पशु और पृथिवी के राज्य आदि से युक्त श्रेष्ठ नीति (स्त) हैं वे (अस्मिन्) इस (योनौ) जन्मस्थल (अस्मिन्गोष्ठे) इन्द्रिय वा पशु आदि के रहने के स्थान (अस्मिँल्लोके) संसार वा (अस्मिन् क्षये) अपने रचे हुए घरों में (रमध्वम्) रमण करें ऐसी इच्छा करते हुए तुम लोग (इहैव) इन्हीं में प्रवृत्त होओ अर्थात् (मापगात) इनसे दूर कभी मत जाओ ॥ २१ ॥

भावार्थः—जहाँ विद्वान् लोग निवास करते हैं वहाँ प्रजा विद्या उत्तम शिक्षा और धनवाली होकर निरन्तर सुखों से युक्त होती है। इससे मनुष्यों को ऐसी इच्छा करनी चाहिये कि हमारा और विद्वानों का नित्य समागम बना रहे अर्थात् कभी हम लोग विरोध से पृथक् न होवें ॥ २१ ॥

संहितेत्यस्य वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। पूर्वार्द्धस्य भुरिगासुरी गायत्री। उपत्वेत्यन्तस्य गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में अग्निशब्द से बिजुली के कर्मों का उपदेश किया है ॥

संहितासि विश्वरूप्यूर्जा माविश गौपत्येन। उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्तऽएमसि ॥ २२ ॥

पदार्थः—(नमः) अन्न को (भरन्तः) धारण करते हुए हम लोग (धिया) अपनी बुद्धि वा कर्म से जो (अग्ने) अग्नि बिजुली रूप से सब पदार्थों के (संहिता) साथ (ऊर्जा) वेग वा पराक्रम आदि गुणयुक्त (विश्वरूपी) सब पदार्थों में रूपगुणयुक्त (गौपत्येन) इन्द्रिय वा पशुओं के पालन करने वाले जीव के साथ वर्त्तमान से (मा) मुझ में (आविश) प्रवेश करता है (त्वा) उस (दोषावस्तः) रात्रि को अपने तेज से दूर करने वाले (अग्ने) विद्युद्रूप अग्नि को (दिवेदिवे) ज्ञान के प्रकाश होने के लिये प्रतिदिन (उपैमसि) समीप प्राप्त करते हैं ॥ २२ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिये कि जिस ईश्वर ने सब जगह मूर्त्तिमान् द्रव्यों में बिजुलीरूप से परिपूर्ण सब रूपों का प्रकाश करने चेष्टा आदि व्यवहारों का हेतु विचित्र गुण वाला अग्नि रचा है उसी की उपासना नित्य करनी चाहिये ॥ २२ ॥

राजन्तमित्यस्य वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर ईश्वर और अग्नि के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्द्धमान॒ꣳ स्वे दमे ॥ २३ ॥

पदार्थः—(नमः) अन्न से सत्कारपूर्वक (भरन्तः) धारण करते हुए हम लोग (धिया) बुद्धि वा कर्म से (अध्वराणाम्) अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधपर्यन्त यज्ञ वा (गोपाम्) इन्द्रिय पृथिव्यादि की रक्षा करने (राजन्तम्) प्रकाशमान (ऋतस्य) अनादि सत्यस्वरूप कारण के (दीदिविम्) व्यवहार को करने वा (स्वे) अपने (दमे) मोक्षरूप स्थान में (वर्धमानम्) वृद्धि को प्राप्त होने वाले परमात्मा को (उपैमसि) नित्य प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ जिस परमात्मा ने (अध्वराणाम्) शिल्पविद्यामाध्य यज्ञ वा (गोपाम्) पश्वादि की रक्षा करने [वाला, (राजन्तम्) प्रकाशमान] (ऋतस्य) जल के (दीदिविम्) व्यवहार को प्रकाश [करने वाला] करना वा (स्वे) अपने (दमे) शान्तस्वरूप में (वर्धमानम्) वृद्धि को प्राप्त होना हुआ अग्नि प्रकाशित किया है उसको (नमः) सत्क्रिया से (भरन्तः) धारण करते हुए हम लोग (धिया) बुद्धि और कर्म से (उपैमसि) नित्य प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है और नमः, भरन्तः धिया, उप, आ इमसि, इन छः पदों की अनुवृत्ति पूर्वमन्त्र से जाननी चाहिये । परमेश्वर आदि रहित सत्यकारणरूप से सम्पूर्ण कार्यों को रचना और भौतिक अग्नि जल की प्राप्ति के द्वारा सब व्यवहारों को सिद्ध करता है, ऐसा मनुष्यों को जानना चाहिये ॥ २३ ॥

स न इत्यस्य वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर ही का उपदेश किया है ॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! जो आप कृपा करके जैसे (सूनवे) अपने पुत्र के लिये (पितेव) पिता अच्छे अच्छे गुणों को सिखलाता है वैसे (नः) हमारे लिये (सूपायनः) श्रेष्ठ ज्ञान के देने वाले (भव) हैं वैसे (सः) सो आप (नः) हम लोगों को (स्वस्तये) सुख के लिये निरन्तर (सचस्व) सयुक्त कीजिये ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे सब के पालन करने वाले परमेश्वर ! जैसे कृपा करने वाला कोई विद्वान् मनुष्य अपने पुत्रों की रक्षा कर श्रेष्ठ-श्रेष्ठ शिक्षा देकर विद्या, धर्म अच्छे-अच्छे स्वभाव और सत्य विद्या आदि गुणों में सयुक्त करता है वैसे ही आप हम लोगों की निरन्तर रक्षा करके श्रेष्ठ-श्रेष्ठ व्यवहारों मे सयुक्त कीजिये ॥ २४ ॥

अग्ने त्वमित्यस्य सुबन्धुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्ने त्वं नोऽअन्तमऽउत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः । वसुरग्निर्वसुश्रवाऽअच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिं दाः ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सब की रक्षा करने वाले जगदीश्वर ! जो (त्वम्) आप (वसुश्रवाः) सब को सुनने के लिये श्रेष्ठ कानों को देने (वसुः) सब प्राणी जिसमें वास करते हैं वा सब प्राणियों के बीच में वसने हारे और (अग्निः) विज्ञानप्रकाशयुक्त (नक्षि) सब जगह व्याप्त अर्थात् रहने वाले हैं सो आप (नः) हम लोगों के (अन्तमः) अन्तर्यामी वा जीवन के हेतु (त्राता) रक्षा करने वाले (वरूथ्यः) श्रेष्ठ गुण कर्म और स्वभाव में होने (शिवः) तथा मङ्गलमय मङ्गल करने वाले (भव) हूजिये और (उत) भी (नः) हम लोगों के लिये (द्युमत्तमम्) उत्तम प्रकाशों से युक्त (रयिम्) विद्याचक्रवर्ति आदि धनों को (अच्छ दाः) अच्छे प्रकार दीजिये ॥ २५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिये कि परमेश्वर को छोड़कर और हमारी रक्षा करने वा सब सुखों के साधनों का देने वाला कोई नहीं है क्योंकि वही अपने सामर्थ्य से सब जगह परिपूर्ण हो रहा है ॥ २५ ॥

तन्त्वेत्यस्य सुबन्धुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराड् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः । स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णोऽअघायतः समस्मात् ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (शोचिष्ठ) अत्यन्त शुद्धस्वरूप (दीदिवः) स्वयं प्रकाशमान आनन्द के देने वाले जगदीश्वर ! हम लोग वा (नः) अपने (सखिभ्यः) मित्रों के (सुम्नाय) सुख के लिये (तं त्वा) आप से (ईमहे) याचना करते हैं तथा जो आप (नः) हम को (बोधि) अच्छे

प्रकार विज्ञान को देते हैं (सः) सो आप (नः) हमारे (हवम्) सुनने सुनाने योग्य स्तुति-समूह यज्ञ को (श्रुधि) कृपा करके श्रवण कीजिये और (नः) हम को (समस्मात्) सब प्रकार (अघायतः) पापाचरणों से अर्थात् दूसरे को पीड़ा करने रूप पापों से (उरुष्य) अलग रखिये ॥ २६ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को अपने मित्र और सब प्राणियों के सुख के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करना और वैसा ही आचरण भी करना कि जिससे प्रार्थित किया हुआ परमेश्वर अधर्म से अलग होने की इच्छा करने वाले मनुष्यों को अपनी सत्ता से पापों से पृथक् कर देता है वैसे ही उन मनुष्यों को भी पापों से बचकर धर्म के करने में निरन्तर प्रवृत्त होना चाहिये ॥ २६ ॥

इड एह्यदित इत्यस्य श्रुतबन्धुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उस की प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इडऽएह्यदितऽएहि काम्याऽएत । मयि वः कामधरणं भूयात् ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! आपकी कृपा से (इडे) यह पृथिवी मुझ को राज्य करने के लिये (एहि) अवश्य प्राप्त हो तथा (अदिते) सब सुखों को प्राप्त करने वाली नाशरहित राजनीति (एहि) प्राप्त हो । इसी प्रकार हे मघवन् अपना पृथिवी और राजनीति के द्वारा (काम्याः) इष्ट-इष्ट पदार्थ (एत) प्राप्त हों तथा (मयि) मेरे बीच में (वः) उन पदार्थों की (कामधरणम्) स्थिरता (भूयात्) यथावत् हो ॥ २७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उत्तम उत्तम पदार्थों की कामना निरन्तर करनी तथा उनकी प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना और सदा पुरुषार्थ करना चाहिये । कोई मनुष्य अच्छी वा बुरी कामना के विना क्षणभर भी स्थित होने को समर्थ नही हो सकता इससे सब मनुष्यों को अधर्मयुक्त व्यवहारों की कामना को छोड़कर धर्मयुक्त व्यवहारों की जितनी इच्छा बढ़ सके उतनी बढ़ानी चाहिये ॥ २७ ॥

सोमानमित्यस्य प्रबन्धुर्ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उस जगदीश्वर की किसलिये प्रार्थना करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सोमानꣳ स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं यऽऔशिजः ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मणस्पते) सनातन वेदशास्त्र के पालन करने वाले जगदीश्वर ! आप (यः) जो मैं (औशिजः) सब विद्याओं के प्रकाश करने वाले विद्वान् के पुत्र के तुल्य हूँ उस मुझ को (कक्षीवन्तम्) विद्या पढ़ने में उत्तम नीतियों से युक्त (स्वरणम्) सब विद्याओं का कहने और (सोमानम्) ओषधियों के रसों का निकालने तथा विद्या की सिद्धि करने वाला

(कृणुहि) कीजिये ॥ ऐसा ही व्याख्यान इस मन्त्र का निरुक्तकार यास्कमुनिजी ने भी किया है सो पूर्व लिखे हुए संस्कृत में देख लेना ॥ २८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । पुत्र दो प्रकार के होते हैं, एक तो औरस अर्थात् जो अपने वीर्य से उत्पन्न होता और दूसरा जो विद्या पढ़ाने के लिये विद्वान् किया जाता है । हम सब मनुष्यों को इसलिये ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये कि जिससे हम लोग विद्या से प्रकाशित सब क्रियाओं में कुशल और प्रीति से विद्या के पढ़ाने वाले पुत्रों से युक्त हों ॥ २८ ॥

यो रेवानित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह ईश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

यो रेवान् योऽअमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्द्धनः । स नः सिषक्तु यस्तुरः ॥ २९ ॥

पदार्थः—(यः) जो वेदशास्त्र का पालन करने (रेवान्) विद्या आदि अनन्त धनवान् (अमीवहा) अविद्या आदि रोगों को दूर करने वा कराने (वसुवित्) सब वस्तुओं को यथावत् जानने (पुष्टिवर्द्धनः) पुष्टि अर्थात् शरीर वा आत्मा के बल को बढ़ाने और (तुरः) अच्छे कामों में जल्दी प्रवेश करने वा कराने वाला जगदीश्वर है (सः) वह (नः) हम लोगों को उत्तम उत्तम कर्म वा गुणों के साथ (सिषक्तु) संयुक्त करे ॥ २९ ॥

भावार्थः—जो इस संसार में धन है सो सब जगदीश्वर का ही है । मनुष्य लोग जैसी परमेश्वर की प्रार्थना करें वैसा ही उनको पुरुषार्थ भी करना चाहिये । जैसे विद्या आदि धन वाला परमेश्वर है ऐसा विशेषण ईश्वर का कह वा सुन कर कोई मनुष्य कृतकृत्य अर्थात् विद्या आदि धन वाला नहीं हो सकता, किन्तु अपने पुरुषार्थ से विद्या आदि धन की वृद्धि वा रक्षा निरन्तर करनी चाहिये जैसे परमेश्वर अविद्या आदि रोगों को दूर करने वाला है, वैसे मनुष्यों को भी उचित है कि आप भी अविद्या आदि रोगों को निरन्तर दूर करें । जैसे वह वस्तुओं को यथावत् जानता है वैसे मनुष्यों को भी उचित है कि अपने सामर्थ्य के अनुसार सब पदार्थविद्याओं को यथावत् जानें जैसे वह सब की पुष्टि को बढ़ाता है, वैसे मनुष्य भी सब के पुष्टि आदि गुणों को निरन्तर बढ़ावें । जैसे वह अच्छे-अच्छे कार्यों को बनाने में शीघ्रता करता है, वैसे मनुष्य भी उत्तम उत्तम कार्यों को त्वरा से करें और जैसे हम लोग उस परमेश्वर की उत्तम कर्मों के लिये प्रार्थना निरन्तर करते हैं, वैसे परमेश्वर भी हम सब मनुष्यों को उत्तम पुरुषार्थ से उत्तम उत्तम गुण वा कर्मों के आचरण के साथ निरन्तर संयुक्त करे ॥ २९ ॥

मान इत्यस्य सप्तधृतिर्वारुणिर्ऋषिः । ब्रह्मणस्पतिर्देवता । निचृद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उस परमेश्वर की प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मा नः शꣳसोऽअररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य । रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मणस्पते) जगदीश्वर ! आपकी कृपा से (नः) हमारी वेदविद्या (मा, प्रणक्) कभी नष्ट मत हो और जो (अररुषः) दान आदि धर्मरहित परधन ग्रहण करने वाले (मर्त्यस्य) मनुष्य की (धूर्तिः) हिंसा अर्थात् द्रोह है उस से (नः) हम लोगों की निरन्तर (रक्ष) रक्षा कीजिये ॥ ३० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को सदा उत्तम-उत्तम काम करना और बुरे-बुरे काम छोड़ना तथा किसी के साथ द्रोह वा दुष्टों का सङ्ग भी न करना और धर्म की रक्षा वा परमेश्वर की उपासना स्तुति और प्रार्थना निरन्तर करनी चाहिये ॥ ३० ॥

महि त्रीणामित्यस्य सप्तधृतिर्वारुणिर्ऋषिः । आदित्यो देवता । विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उसकी प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मणस्पते) जगदीश्वर ! आपकी कृपा से (मित्रस्य) बाहर वा भीतर रहने वाला जो प्राणवायु तथा (अर्यम्णः) जो आकर्षण से पृथिवी आदि पदार्थों को धारण करने वाला सूर्य्यलोक और (वरुणस्य) जल (त्रीणाम्) इन तीनों के प्रकाश से (नः) हम लोगों के (द्युक्षम्) जिस में नीति का प्रकाश निवास करता है वा (दुराधर्षम्) अतिकष्ट से ग्रहण करने योग्य दृढ़ (महि) बड़े वेदविद्या की (अवः) रक्षा (अस्तु) हो ॥ ३१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (ब्रह्मणस्पते, नः) इन दो पदों की अनुवृत्ति जाननी चाहिये । मनुष्यों को सब पदार्थों से अपनी वा औरों की न्यायपूर्वक रक्षा करके यथावत् राज्य का पालन करना चाहिये ॥ ३१ ॥

नहि तेषामित्यस्य सप्तधृतिर्वारुणिर्ऋषिः । आदित्यो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु । ईशे रिपुरघशꣳसः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—जो ईश्वर की उपासना करने वाले मनुष्य हैं (तेषाम्) उनके (अमा) गृह (अध्वसु) मार्ग और (वारणेषु) चोर, शत्रु, डाकू, व्याघ्र आदि के निवारण करने वाले संग्रामों में (चन) भी (अघशंसः) पापरूप कर्मों का कथन करने वाला (रिपुः) शत्रु (नहि) नहीं स्थित होता और (न) न उनको क्लेश देने को समर्थ हो सकता उस ईश्वर और धार्मिक विद्वानों के प्राप्त होने को मैं (ईशे) समर्थ होता हूं ॥ ३२ ॥

भावार्थः—जो धर्मात्मा वा सब के उपकार करने वाले मनुष्य हैं उनको भय कहीं नहीं होता और शत्रुओं से रहित मनुष्य का कोई शत्रु भी नहीं होता ॥ ३२ ॥

ते हीत्यस्य वारुणिः सप्तधृतिर्ऋषिः । आदित्यो देवता । विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।।

आदित्यों के क्या क्या कर्म हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

ते हि पुत्रासोऽअदितेः प्र जीवसे मर्त्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥३३॥

पदार्थः—जो (अदितेः) नाशरहित कारणरूपी शक्ति के (पुत्रासः) बाहिर भीतर रहने वाले प्राण, सूर्यलोक, पवन और जल आदि पुत्र है (ते) वे (हि) ही (मर्त्याय) मनुष्यों के मरने वा (जीवसे) जीने के लिये (अजस्रम्) निरन्तर (ज्योतिः) तेज या प्रकाश को (यच्छन्ति) देते हैं ॥ ३३ ॥

भावार्थः—जो ये कारणरूपी समर्थ पदार्थों के उत्पन्न हुए प्राण, सूर्यलोक, वायु वा जल आदि पदार्थ हैं वे ज्योति अर्थात् तेज को देते हुए सब प्राणियों के जीवन वा मरने के लिये निमित्त होते हैं ॥ ३३ ॥

कदा चनेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । पथ्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

वह इन्द्र कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे । उपोपेन्नु मघवन् भूयऽइन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सुख देने वाले ईश्वर ! जो आप (स्तरीः) सुखों से आच्छादन करने वाले (असि) हैं और (दाशुषे) विद्या आदि दान करने वाले मनुष्य के लिये (कदाचन) कभी (इत्) ज्ञान को (नु) शीघ्र (सश्चसि) प्राप्त (न) नहीं करते तो उस काल में हे (मघवन्) विद्यादि धन वाले जगदीश्वर ! (देवस्य) कर्म फल के देने वाले (ते) आपके (दानम्) दिये हुए (इत्) ही ज्ञान को (दाशुषे) विद्यादि देने वाले के लिये (भूयः) फिर (नु) शीघ्र (उपोपपृच्यते) प्राप्त (कदाचन) कभी (न) नहीं होता ॥ ३४ ॥

भावार्थः—जो जगदीश्वर कर्म के फल को देने वाला नहीं होता तो कोई भी प्राणी व्यवस्था के साथ किसी कर्म के फल को प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ३४ ॥

तत्सवितुरित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

उस जगदीश्वर की कैसी स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

तत् स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि । धियो॒ यो नः॑ प्र॒चोद॑यात् ॥३५॥

पदार्थः—हम लोग (सवितुः) सब जगत् के उत्पन्न करने वा (देवस्य) प्रकाशमय शुद्ध वा सुख देने वाले परमेश्वर का जो (वरेण्यम्) अति श्रेष्ठ (भर्गः) पापरूप दुःखों के मूल को नष्ट करने वाला (तेजः) स्वरूप है (तत्) उसको (धीमहि) धारण करें और (यः) जो अन्तर्यामी सब सुखों का देने वाला है वह अपनी करुणा करके (नः) हम लोगों की (धियः) बुद्धियों को उत्तम-उत्तम गुण, कर्म, स्वभावों में (प्रचोदयात्) प्रेरणा करें ॥ ३५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को अत्यन्त उचित है कि इस सब जगत् के उत्पन्न करने वा सब से उत्तम सब दोषों के नाश करने तथा अत्यन्त शुद्ध परमेश्वर ही की स्तुति प्रार्थना और उपासना करें। किस प्रयोजन के लिये जिससे वह धारण वा प्रार्थना किया हुआ हम लोगों को खोटे-खोटे गुण और कर्मों से अलग करके अच्छे-अच्छे गुण, कर्म और स्वभावों में प्रवृत्त करे इसलिये। और प्रार्थना का मुख्य सिद्धान्त यही है कि जैसी प्रार्थना करनी वैसा ही पुरुषार्थ से कर्म का आचरण करना चाहिये ॥ ३५ ॥

परि त इत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

वह परमेश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

परि॑ ते दू॒डभो॒ रथो॒ऽस्माँ२ऽअ॑श्नोतु वि॒श्वतः॑ । येन॒ रक्ष॑सि दा॒शुषः॑ ॥३६॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! आप (येन) जिस ज्ञान से (दाशुषः) विद्यादि दान करने वाले विद्वानों को (विश्वतः) सब ओर से (रक्षसि) रक्षा करते और जो (ते) आपका (दूडभः) दुःख से भी नहीं नष्ट होने योग्य (रथः) सब को जानने योग्य विज्ञान सब ओर से रक्षा करने के लिये है वह (अस्मान्) आपकी आज्ञा के सेवन करने वाले हम लोगों को (परि) सब प्रकार (अश्नोतु) प्राप्त हो ॥ ३६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को सब की रक्षा करने वाले परमेश्वर वा विज्ञानों की प्राप्ति के लिये प्रार्थना और अपना पुरुषार्थ नित्य करना चाहिये जिससे हम लोग अविद्या अधर्म आदि दोषों को त्याग करके उत्तम-उत्तम विद्या, धर्म आदि शुभगुणों को प्राप्त होके सदा सुखी होवें ॥ ३६ ॥

भूर्भुवरित्यस्य वामदेव ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर उस जगदीश्वर की प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

भूर्भु॒वः॒ स्वः॒ सु॒प्र॒जाः प्र॒जाभिः॑ स्याꣳ सु॒वीरो॑ वी॒रैः सु॒पोषः॒ पोषैः॑ । नर्य॑ प्र॒जां मे॑ पाहि॒ शꣳस्य॑ प॒शून् मे॑ पाह्यथर्य॒ पि॒तुं मे॑ पाहि ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे (नर्य) नीतियुक्त मनुष्यों पर कृपा करने वाले परमेश्वर ! आप कृपा करके (मे) मेरी (प्रजाम्) पुत्र आदि प्रजा की (पाहि) रक्षा कीजिये वा (मे) मेरे (पशून्) गौ घोड़े हाथी आदि पशुओं की (पाहि) रक्षा कीजिये। हे (अथर्य) सन्देह रहित जगदीश्वर ! आप (मे) मेरे (पितुम्) अन्न की (पाहि) रक्षा कीजिये। हे (शंस्य) स्तुति करने योग्य ईश्वर ! आपकी कृपा से मैं (भूर्भुवः स्वः) जो प्रियस्वरूप प्राण, बल का हेतु उदान तथा सब चेष्टा आदि व्यवहारों का हेतु व्यान वायु है, उनके साथ युक्त होके (प्रजाभिः) अपने अनुकूल स्त्री, पुत्र, विद्या, धर्म, मित्र, भृत्य, पशु आदि पदार्थों के साथ (सुप्रजाः) उत्तम विद्या, धर्म युक्त प्रजा-सहित वा (वीरैः) शौर्य, धैर्य, विद्या शत्रुओं के निवारण प्रजा के पालन में कुशलों के साथ (सुवीरः) उत्तम शूरवीरयुक्त और (पोषैः) पुष्टिकारक पूर्ण विद्या से उत्पन्न हुए व्यवहारों के साथ (सुपोषः) उत्तम पुष्टि उत्पादन करने वाला (स्याम्) नित्य होऊँ ॥ ३७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को ईश्वर की उपासना वा उस की आज्ञा के पालन का आश्रय लेकर उत्तम उत्तम नियमों से वा उत्तम प्रजा, शूरता, पुष्टि आदि कारणों से प्रजा का पालन करके निरन्तर सुखों को सिद्ध करना चाहिये ॥ ३७ ॥

आगन्मेत्यस्यासुरिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है ॥

आग॑न्म वि॒श्ववे॑दसम॒स्मभ्यं॑ वसु॒वित्त॑मम् । अग्ने॑ स॒म्राड॒भि द्यु॒म्नम॒भि सह॒ऽआय॑च्छस्व ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे (सम्राट्) प्रकाशस्वरूप (अग्ने) जगदीश्वर ! आप (अस्मभ्यम्) उपासना करने वले हम लोगों के लिये (द्युम्नम्) प्रकाशस्वरूप उत्तम यश वा (सहः) उत्तम बल को (अभ्यायच्छस्व) सब ओर से विस्तारयुक्त करते हो इसलिये हम लोग (वसुवित्तमम्) पृथिवी आदि लोकों के जानने वा (विश्ववेदसम्) सब सुखों के जानने वाले आपको (अभ्यागन्म) सब प्रकार प्राप्त होवें ॥ १ ॥ जो यह (सम्राट्) प्रकाश होने वाला (अग्ने) भौतिक अग्नि (अस्मभ्यम्) यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले हम लोगों के लिये (द्युम्नम्) उत्तम-उत्तम यश वा (सहः) उत्तम उत्तम बल को (अभ्यायच्छस्व) सब प्रकार विस्तारयुक्त करता है उस (वसुवित्तमम्) पृथिवी आदि लोकों को सूर्यरूप से प्रकाश करके प्राप्त कराने वा (विश्ववेदसम्) सब सुखों को जनाने वाले अग्नि को हम लोग (अभ्यागन्म) सब प्रकार प्राप्त होवें ॥ ३८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को परमेश्वर वा भौतिक अग्नि के गुणों को जानने वा उसके अनुसार अनुष्ठान करने से कीर्ति यश और बल का विस्तार करना चाहिये ॥ ३८ ॥

अयमग्निरित्यस्यासुरिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है ॥

अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजाया वसुवित्तमः। अग्ने गृहपतेऽभि द्युम्नमभि सहऽआयच्छस्व ॥ ३९ ।

पदार्थः—हे (गृहपते) घर के पालन करने वाले (अग्ने) परमेश्वर ! जो (अयम्) यह (गृहपतिः) स्थान विशेषों के पालन हेतु (गार्हपत्यः) घर के पालन करने वालों के साथ संयुक्त (प्रजया वसुवित्तमः) प्रजा के लिये सब प्रकार धन प्राप्त कराने वाले हैं सो आप जिस कारण (द्युम्नम्) सुख और प्रकाश से युक्त धन को (अभ्यायच्छस्व) अच्छी प्रकार दीजिये। तथा (सहः) उत्तम बल पराक्रम (अभ्यायच्छस्व) अच्छी प्रकार दीजिये ॥ १ ॥ जिस कारण जो (गृहपतिः) उत्तम स्थानों के पालन का हेतु (प्रजायाः) पुत्र मित्र स्त्री और भृत्य आदि प्रजा को (वसुवित्तमः) द्रव्यादि को प्राप्त कराने वा (गार्हपत्यः) गृहों के पालन करने वालों के साथ संयुक्त (अयम्) यह (अग्ने) बिजुली सूर्य वा प्रत्यक्षरूप से अग्नि है इससे वह (गृहपते) घरों का पालन करने वाला (अग्ने) अग्नि हम लोगों के लिये (अभिद्युम्नम्) सब ओर से उत्तम उत्तम धन वा (सहः) उत्तम उत्तम बलों को (अभ्यायच्छस्व) सब प्रकार से विस्तारयुक्त करता है ॥ ३९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। गृहस्थ लोग जब ईश्वर की उपासना और उसकी आज्ञा में प्रवृत्त होके कार्य्य की सिद्धि के लिये इस अग्नि को संयुक्त करते हैं तब वह अग्नि अनेक प्रकार के धन और बलों को विस्तारयुक्त करता है। क्योंकि यह प्रजा में पदार्थों की प्राप्ति के लिये अत्यन्त सिद्धि करने हारा है ॥ ३९ ॥

अयमग्निः पुरीष्य इत्यस्यासुरिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर भौतिक अग्नि कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिवर्द्धनः। अग्ने पुरीष्याभि द्युम्नमभि सहऽआयच्छस्व ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे (पुरीष्य) कर्मों के पूरण करने में अतिकुशल (अग्ने) उत्तम से उत्तम पदार्थों के प्राप्त कराने वाले विद्वन् ! आप जो (अयम्) यह (पुरीष्यः) सब सुखों के पूर्ण करने में अत्युत्तम (रयिमान्) उत्तम-उत्तम धनयुक्त (पुष्टिवर्द्धनः) पुष्टि को बढ़ाने वाला (अग्निः) भौतिक अग्नि है उस से हम लोगों के लिये (अभिद्युम्नम्) उत्तम-उत्तम ज्ञान को सिद्ध करने वाले धन वा (अभिसहः) उत्तम-उत्तम शरीर और आत्मा के बलों को (आयच्छस्व) सब प्रकार से विस्तारयुक्त कीजिये ॥ ४० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को परमेश्वर की कृपा वा अपने पुरुषार्थ से अग्निविद्या को सम्पादन करके अनेक प्रकार के धन और बलों को विस्तारयुक्त करना चाहिये ॥ ४० ॥

गृहामेत्यस्यासुरिर्ऋषिः। वास्तुरग्निर्देवता। आर्षी पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में गृहस्थाश्रम के अनुष्ठान का उपदेश किया है ॥

गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्ज्जं बिभ्रतऽएमसि । ऊर्ज्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे ब्रह्मचर्याश्रम से सब विद्याओं को ग्रहण किये गृहाश्रमी तथा (ऊर्जम्) शौर्यादिपराक्रमों को (बिभ्रतः) धारण किये और (गृहाः) ब्रह्मचर्याश्रम के अनन्तर अर्थात् गृहस्थाश्रम को प्राप्त होने की इच्छा करते हुए मनुष्यो ! तुम गृहस्थाश्रम को यथावत् प्राप्त होओ उस गृहस्थाश्रम के अनुष्ठान से (मा बिभीत) मत डरो तथा (मा वेपध्वम्) मत कम्पो तथा पराक्रमों को धारण किये हुए हम लोग (गृहान्) गृहस्थाश्रम को प्राप्त हुए तुम लोगों को (एमसि) नित्य प्राप्त होते रहें और (वः) तुम लोगों में स्थित होकर इस प्रकार गृहस्थाश्रम में वर्त्तमान (सुमनाः) उत्तम ज्ञान (सुमेधाः) उत्तम बुद्धि युक्त (मनसा) विज्ञान से (मोदमानः) हर्ष उत्साह युक्त (ऊर्जम्) अनेक प्रकार के बलों को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ मैं अत्यन्त सुखों को (एमि) निरन्तर प्राप्त होऊँ ॥ ४१ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को पूर्ण ब्रह्मचर्याश्रम को सेवन करके युवावस्था में स्वयंवर के विधान की रीति से दोनों के तुल्य स्वभाव, विद्या, रूप, बुद्धि और बल आदि गुणों को देखकर विवाह कर तथा शरीर-आत्मा के बल को सिद्ध कर और पुत्रों को उत्पन्न करके सब साधनों से अच्छे-अच्छे व्यवहारों में स्थित रहना चाहिये तथा किसी मनुष्य को गृहास्थाश्रम के अनुष्ठान से भय नहीं करना चाहिये क्योंकि सब अच्छे व्यवहार वा सब आश्रमों का यह गृहस्थाश्रम मूल है इस गृहस्थाश्रम का अनुष्ठान अच्छे प्रकार से करना चाहिये और इस गृहस्थाश्रम के बिना मनुष्यों की वा राज्यादि व्यवहारों की सिद्धि कभी नहीं होती ॥ ४१ ॥

येषामित्यस्य शंयुर्ऋषिः । वास्तुपतिरग्निर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह गृहस्थाश्रम कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

येषामद्ध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः । गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥ ४२ ॥

पदार्थः—(प्रवसन्) प्रवास करता हुआ अतिथि (येषाम्) जिन गृहस्थों का (अध्येति) स्मरण करता वा (येषु) जिन गृहस्थों में (बहुः) अधिक (सौमनसः) प्रीतिभाव है उन (गृहान्) गृहस्थों का हम अतिथि लोग (उपह्वयामहे) नित्यप्रति प्रशंसा करते हैं जो प्रीति रखने वाले गृहस्थ लोग हैं (ते) वे (जानतः) जानते हुए धार्मिक (नः) हम अतिथि लोगों को (जानन्तु) यथावत् जानें ॥ ४२ ॥

भावार्थः—गृहस्थों को सब धार्मिक अतिथि लोगों के वा अतिथि लोगों को गृहस्थों के साथ अत्यन्त प्रीति रखनी चाहिये और दुष्टों के साथ नहीं तथा उन विद्वानों के सङ्ग से परस्पर वार्त्तालाप कर विद्या की उन्नति करनी चाहिये और जो परोपकार करने वाले विद्वान् अतिथि लोग हैं उनकी सेवा गृहस्थों को निरन्तर करनी चाहिये औरों की नहीं ॥ ४२ ॥

उपहूता इत्यस्य शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः । वास्तुपतिर्देवता । भुरिग्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उस गृहस्थाश्रम को कैसे सिद्ध करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उप॑हूताऽइ॒ह गाव॒ऽउप॑हूतोऽअ॒जाव॑यः । अथो॒ऽअन्न॑स्य की॒लाल॒उप॑हूतो गृ॒हेषु॑ नः । क्षेमा॑य व॒ः शान्त्यै॑ प्रप॑द्ये शि॒वꣳ श॒ग्मꣳ शं॒योः शं॒योः ॥ ४३ ॥

पदार्थः—(इह) इस गृहस्थाश्रम वा संसार में (वः) तुम लोगों के (शान्त्यै) सुख (नः) हम लोगों की (क्षेमाय) रक्षा के (गृहेषु) निवास करने योग्य स्थानों में जो (गावः) दूध देने वाली गौ आदि पशु (उपहूताः) समीप प्राप्त किये वा (अजावयः) भेड़ बकरी आदि पशु (उपहूताः) समीप प्राप्त हुए (अथो) इसके अनन्तर (अन्नस्य) प्राण धारण करने वाले (कीलालः) अन्न आदि पदार्थों का समूह (उपहुताः) अच्छे प्रकार प्राप्त हुआ हो इन सब की रक्षा करता हुआ जो मैं गृहस्थ हूँ सो (शंयोः) सब सुखों के साधनों से (शिवम्) कल्याण वा (शग्मम्) उत्तम सूखों को (प्रपद्ये) प्राप्त होऊँ ॥ ४३ ॥

भावार्थः—गृहस्थों को योग्य है कि ईश्वर की उपासना वा उसकी आज्ञा के पालने से गौ हाथी घोड़े आदि पशु तथा खाने पीने योग्य स्वादु भक्ष्य पदार्थों का संग्रह कर अपनीं वा औरों की रक्षा करके विज्ञान धर्म विद्या और पुरुषार्थ से बस लोक वा परलोक के सुखों को सिद्ध करें, किसी भी पुरुष को आलस्य में नहीं रहना चाहिये किन्तु सब मनुष्य पुरुषार्थ वाले होकर धर्म से चक्रवर्ती राज्य आदि धनों को संग्रह कर उनकी अच्छे प्रकार रक्षा करके उत्तम उत्तम सुखों को प्राप्त हों इससे अन्यथा मनुष्यों को न वर्तना चाहिये क्योंकि अन्यथा वर्तने वालों को सुख कभी नहीं होता ॥ ४३ ॥

प्रघासिन इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मरुतो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

गृहस्थ मनुष्यों को क्या-क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

प्र॒घा॒सिनो॑ हवामहे म॒रुत॑श्च रि॒शाद॑सः । क॒र॒म्भेण॑ स॒जोष॑सः ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हम लोग (करंभेण) अविद्यारूपी दुःख होने से अलग होके (सजोषसः) बराबर प्रीति के सेवन करने (रिशादसः) दोष वा शत्रुओं को नष्ट करने (प्रघासिनः) पके हुए पदार्थों के भोजन करने वाले अतिथि लोग और (मरुतः) अतिथि (च) और यज्ञ करने वाले विद्वान् लोगों को (हवामहे) सत्कार पूर्वक नित्यप्रति बुलाते रहें ॥ ४४ ॥

भावार्थः—गृहस्थों को उचित है कि वैद्य, शूरवीर और यज्ञ को सिद्ध करने वाले मनुष्यों को बुलाकर उनकी यथावत् सत्कारपूर्वक सेवा करके उनसे उत्तम उत्तम विद्या वा शिक्षाओं को निरन्तर ग्रहण करें ॥ ४४ ॥

यद् ग्राम इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मरुतो देवता । स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर अगले मन्त्र में गृहस्थों के कर्मों का उपदेश किया है ॥

यद् ग्रामे यदरण्ये यत् सभायां यदिन्द्रिये । यदेनश्चकृमा वयमिदं तदवयजामहे स्वाहा ॥ ४५ ॥

पदार्थः—(वयम्) कर्म के अनुष्ठान करने वाले हम लोग (यद्-ग्रामे) जो गृहस्थों में सेवित ग्राम (यत् अरण्ये) वानप्रस्थों ने जिस वन की सेवा की हो (यत्सभायाम्) विद्वान् लोग जिस सभा की सेवा करते हों और (यत् इन्द्रिये) योगी लोग जिस मन वा श्रोत्रादिकों की सेवा करते हों उसमें स्थिर हो के जो (एनः) पाप वा अधर्म (चकृम) करा वा करेंगे सब (अवयजामहे) दूर करते रहें तथा जो जो उन-उन उक्त स्थानों में (स्वाहा) सत्यवाणी से पुण्य वा धर्माचरण (चकृम) करना योग्य है (तत्) उस उस को (यजामहे) प्राप्त होते रहें ॥ ४५ ॥

भावार्थः—चारों आश्रमों में रहने वाले मनुष्यों को मन वाणी और कर्मों से सत्य कर्मों का आचरण कर पाप वा अधर्मों का त्याग करके विद्वानों की सभा, विद्या तथा उत्तम-उत्तम शिक्षा का प्रचार करके प्रजा के सुखों की उन्नति करनी चाहिये ॥ ४५ ॥

मो षू ण इत्यस्यागस्त्य ऋषिः । इन्द्रमारुतौ देवते । भुरिक्पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

ईश्वर और शूरवीर के सहाय से युद्ध में विजय होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मो षू णऽइन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः । महश्चिद्यस्य मीढुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) शूरवीर ! आप (अत्र) इस लोक में (पृत्सु) युद्धों में (देवैः) विद्वानों के साथ (नः) हम लोगों की (सु) अच्छे प्रकार रक्षा कीजिये तथा (मो) मत हनन कीजिये । हे (शुष्मिन्) पूर्ण) बलयुक्त शूरवीर ! (हि) निश्चय करके (चित्) जैसे (ते) आपकी (महः) बड़ी (गीः) वेदप्रमाणयुक्त वाणी (मीढुषः) विद्या आदि उत्तम गुणों के सींचने वा (हविष्मतः) उत्तम-उत्तम हवि अर्थात् पदार्थयुक्त (मरुतः) ऋतु-ऋतु में यज्ञ करने वाले विद्वानों के (वन्दते) गुणों का प्रकाश करती है जैसे विद्वान् लोग आप के गुणों का हम लोगों के अर्थ निरन्तर प्रकाश करके आनन्दित होते हैं वैसे जो (अवयाः) यज्ञ करने वाला यजमान है वह आपकी आज्ञा से जिन (यव्या) उत्तम-उत्तम यव आदि अन्नों को अग्नि में होम करता है वे पदार्थ सब प्राणियों को सुख देने वाले होते हैं ॥ ४६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जब मनुष्य लोग परमेश्वर की आराधना कर अच्छे प्रकार सब सामग्री को संग्रह करके युद्ध में शत्रुओं को जीतकर चक्रवर्त्ति राज्य को प्राप्त कर प्रजा का अच्छे प्रकार पालन करके बड़े आनन्द को सेवन करते हैं तब उत्तम राज्य होता है ॥ ४६ ॥

अक्रन्नित्यस्यागस्त्य ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः ॥

कौन-कौन मनुष्य यज्ञ युद्ध आदि कर्मों के करने को योग्य होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा। देवेभ्यः कर्म कृत्वास्तं प्रेत सचाभुवः ॥ ४७ ॥

पदार्थः—जो मनुष्य लोग (मयोभुवा) सत्यप्रिय मङ्गल के कराने वाली (वाचा) वेदवाणी वा अपनी वाणी के (सह) साथ (सचाभुवः) परस्पर सङ्गी होकर (कर्मकृतः) कर्मों को करते हुए (कर्म) अपने अभीष्ट कर्म को (अक्रन्) करते हैं वे (देवेभ्यः) विद्वान् वा उत्तम-उत्तम गुण सुखों के लिये (कर्म) करने योग्य कर्म का (कृत्वा) अनुष्ठान करके (अस्तम्) पूर्णसुखयुक्त घर को (प्रेत) प्राप्त होते हैं ॥ ४७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि सर्वथा आलस्य को छोड़ कर पुरुषार्थ ही में निरन्तर रहके मूर्खपन को छोड़ कर वेदविद्या से शुद्ध की हुई वाणी के साथ सदा वर्तें और परस्पर प्रीति करके एक दूसरे का सहाय करें। जो इस प्रकार के मनुष्य हैं वे ही अच्छे-अच्छे सुखयुक्त मोक्ष वा इस लोक के सुखों को प्राप्त होकर आनन्दित होते हैं, अन्य अर्थात् आलसी पुरुष आनन्द को कभी नहीं प्राप्त होते ॥ ४७ ॥

अवभृथेत्यस्यौर्णवाभ ऋषिः। यज्ञो देवता। ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले यजमान के कर्मों का उपदेश किया है ॥

अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः। अव देवैर्देवकृतमेनोऽयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे (अवभृथ) विद्या धर्म के अनुष्ठान से शुद्ध (निचुम्पुण) धैर्य से शब्दविद्या को पढ़ाने वाले विद्वान् मनुष्य ! जैसे मैं (निचुम्पुणः) ज्ञान को प्राप्त कराने वा (निचेरुः) निरन्तर विद्या का संग्रह करने वाला (देवैः) प्रकाशस्वरूप मन आदि इन्द्रियों से (देवकृतम्) किया वा (मर्त्यैः) मरणधर्मवाले (मर्त्यकृतम्) शरीरों से किये हुये (एनः) पापों को (अव अयासिषम्) दूर कर शुद्ध होता हूँ वैसे तू भी (असि) हो। हे (देव) जगदीश्वर !

आप हम लोगों की (पुरुराव्णः) बहुत दुःख देने वा (रिषः) मारने योग्य शत्रु वा पाप से (पाहि) रक्षा कीजिये अर्थात् दूर कीजिये ॥ ४८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि पाप की निवृत्ति धर्म की वृद्धि के लिये परमेश्वर की प्रार्थना निरन्तर करके जो मन वाणी वा शरीर से पाप होते हैं उनसे दूर रह के जो कुछ अज्ञान से पाप हुआ हो उसके दुःखरूप फल को जानकर फिर दूसरी वार उसको कभी न करें किन्तु सब काल में शुद्ध कर्मों के अनुष्ठान ही की वृद्धि करें ॥ ४८ ॥

पूर्णादर्वीत्यस्यौर्णवाभ ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

यज्ञ में हवन किया हुआ पदार्थ कैसा होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

पूर्णा दर्वि परा पत सुपूर्णा पुनरापत । वस्नेव विक्रीणावहाऽइषमूर्जं शतक्रतो ॥ ४९ ॥

पदार्थः—जो (दर्वि) पके हुए होम करने योग्य पदार्थों को ग्रहण करने वाली (पूर्णा) द्रव्यों से पूर्ण हुई आहुति (परापत) होम हुए पदार्थों के अंशों को ऊपर प्राप्त करती वा जो आहुति आकाश में जाकर वृष्टि से (सुपूर्णा) पूर्ण हुई (पुनरापत) फिर अच्छे प्रकार पृथिवी में उत्तम जलरस को प्राप्त करती है उस से हे (शतक्रतो) असंख्यात कर्म वा प्रज्ञा वाले जगदीश्वर ! आप की कृपा से हम यज्ञ कराने और करने वाले विद्वान् होता और यजमान दोनों (इषम्) उत्तम-उत्तम अन्नादि पदार्थ (ऊर्जम्) पराक्रमयुक्त वस्तुओं को (वस्नेव) वैश्यों के समान (विक्रीणावहै) दें वा ग्रहण करें ॥ ४९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जब मनुष्य लोग सुगन्ध्यादि पदार्थ अग्नि में हवन करते हैं तब वे ऊपर जाकर वायु वृष्टि-जल को शुद्ध करते हुए पृथिवी को आते हैं जिससे यव आदि ओषधि शुद्ध होकर सुख और पराक्रम के देने वाली होती हैं। जैसे कोई वैश्य लोग रुपया आदि को दे-ले कर अनेक प्रकार के अन्नादि पदार्थों को खरीदने वा बेचते हैं वैसे सब हम लोग भी अग्नि में शुद्ध द्रव्यों को छोड़कर वा अनेक सुखों को खरीदते हैं, खरीदकर फिर वृष्टि और सुखों के लिये अग्नि में हवन करते हैं ॥ ४९ ॥

देहि म इत्यस्यौर्णवाभ ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में सब आश्रमों में रहने वाले मनुष्यों के व्यवहारों का उपदेश किया है ॥

देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे । निहारं च हरासि मे निहारं निर्हराणि ते स्वाहा ॥ ५० ॥

पदार्थः—हे मित्र ! तुम (स्वाहा) जैसे सत्यवाणी हृदय में कहे वैसे (मे) मुझ को यह वस्तु (देहि) दे वा मैं (ते) मुझ को यह वस्तु (ददामि) देऊँ वा देऊँगा तथा तू (मे) मेरी यह वस्तु (निधेहि) धारण कर मैं (ते) तुम्हारी यह वस्तु (निदधे) धारण करता हूँ और तू (मे) मुझ को (निहारम्) मोल से खरीदने योग्य वस्तु को (हरासि) ले। मैं (ते) तुझको (निहारम्) पदार्थों का मोल (निहराणि) निश्चय करके देऊँ (स्वाहा) ये सब व्यवहार सत्यवाणी से करें अन्यथा से व्यवहार सिद्ध नहीं होते हैं ॥ ५० ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को देना लेना पदार्थों को रखना रखवाना वा धारण करना आदि व्यवहार सत्यप्रतिज्ञा से ही करने चाहिये। जैसे किसी मनुष्य ने कहा कि यह वस्तु तुम हमको देना, मैं यह नहीं देता तथा देऊँगा, ऐसा कहे तो वैसा ही करना तथा किसी ने कहा कि मेरी यह वस्तु तुम अपने पास रख लेओ, जब इच्छा करूँ तब तुम दे देना। इसी प्रकार मैं तुम्हारी यह वस्तु रख लेता हूँ, जब तुम इच्छा करोगे तब देऊँगा वा उसी समय मैं तुम्हारे पास आऊँगा वा तुम आकर ले लेना इत्यादि ये सब व्यवहार सत्यवाणी ही से करने चाहियें और ऐसे व्यवहारों के विना किसी मनुष्य की प्रतिष्ठा वा कार्यों की सिद्धि नहीं होती और इन दोनों के विना कोई मनुष्य सुखों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता ॥ ५० ॥

अक्षन्नित्यस्य गोतम ऋषिः। इन्द्रो देवता। विराट् पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः ॥

उस यज्ञादि व्यवहार से क्या क्या होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अक्षन्नमींमदन्त ह्यव प्रियाऽअंधूषत। अस्तोंषत स्वभांनवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ५१ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सभा के स्वामी ! जो (ते) आपके सम्बन्धी मनुष्य (स्वभानवः) अपनी ही दीप्ति से प्रकाश होने वा (अव प्रियाः) औरों को प्रसन्न कराने वाले (विप्राः) विद्वान् लोग (नविष्ठया) अत्यन्त नवीन (मती) बुद्धि से (हि) निश्चय करके परमात्मा की (अस्तोषत) स्तुति और (अक्षन्) उत्तम-उत्तम अन्नादि पदार्थों को भक्षण करते हुए (अमीमदन्त) आनन्द को प्राप्त होते और उसी से वे शत्रु वा दुःखों को (न्वधूषत) शीघ्र कम्पित करते हैं वैसे ही यज्ञ में (इन्द्र) हे सभापते ! (ते) आपके सहाय से इस यज्ञ में निपुण हों और तू (परी) अपने बल और पराक्रम को हम लोगों के साथ (योज) संयुक्त कर ॥५१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि प्रतिदिन नवीन-नवीन ज्ञान वा क्रिया की वृद्धि करते रहें। जैसे मनुष्य विद्वानों के सत्सङ्ग वा शास्त्रों के पढ़ने से नवीन-नवीन बुद्धि नवीन-नवीन क्रिया को उत्पन्न करते हैं, वैसे ही सब मनुष्यों को अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ५१ ॥

सुसंदृशमित्यस्य गोतम ऋषिः। इन्द्रो देवता। विराट् पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः ॥

वह इन्द्र कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सुसंदृशं त्वा वयं मघवन् वन्दिषीमहि । प्र नूनं पूर्णबन्धुर स्तुतो यासि वशाँ२ऽअनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ५२ ॥

पदार्थः—हे (मघवन्) उत्तम-उत्तम विद्यादि धनयुक्त (इन्द्र) परमात्मन् ! तू (वयम्) हम लोग (सुसंदृशम्) अच्छे प्रकार व्यवहारों के देखने वाले (त्वा) आपकी (नूनम्) निश्चय करके (वन्दिषीमहि) स्तुति करें तथा हम लोगों से (स्तुतः) स्तुति किये हुए आप (वशान्) इच्छा किये हुए पदार्थों को (यासि) प्राप्त कराते हो और (ते) अपने (हरी) बल पराक्रमों को आप (अनुप्रयोज) हम लोगों के सहाय के अर्थ युक्त कीजिये ॥ १ ॥ (वयम्) हम लोग (सुसंदृशम्) अच्छे प्रकार पदार्थों को दिखाने वा (मघवन्) धन को प्राप्त कराने तथा (पूर्णबन्धुरः) सब जगत् के बन्धन के हेतु (त्वा) उस सूर्यलोक की (नूनम्) निश्चय करके (वन्दिषीमहि) स्तुति अर्थात् इसके गुण प्रकाश करके (स्तुतः) स्तुति किया हुआ यह हम लोगों को (वशान्) उत्तम-उत्तम व्यवहारों को सिद्धि कराने वाली कामनाओं को (यासि) प्राप्त करता है (नु) जैसे (ते) इस सूर्य के (हरी) धारण आकर्षण गुण जगत् में युक्त होते हैं वैसे आप हम लोगों को विद्या की सिद्धि करने वाले गुणों को (अनुप्रयोज) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिये ॥ ५२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं । मनुष्यों को सब जगत् के हित करने वाले जगदीश्वर ही की स्तुति करनी और किसी की न करनी चाहिये क्योंकि जैसे सूर्यलोक सब मूर्तिमान् द्रव्यों का प्रकाश करता है वैसे उपासना किया हुआ ईश्वर भी भक्तजनों के आत्माओं में विज्ञान को उत्पन्न करने से सब सत्यव्यवहारों को प्रकाशित करता है । इससे ईश्वर को छोड़कर और किसी की उपासना कभी न करनी चाहिये ॥ ५२ ॥

मनोन्वित्यस्य बन्धुर्ऋषिः । मनो देवता । अतिपादनिचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

इसके आगे मन के लक्षण का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मनो न्वाह्वामहे नाराशꣳसेन स्तोमेन । पितॄणां च मन्मभिः ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हम लोग (नाराशंसेन) पुरुषों के अत्यन्त प्रशंसनीय (स्तोमेन) स्तुतियुक्त व्यवहार और (पितॄणाम्) पालना करने वाले ऋतु वा ज्ञानवान् मनुष्यों के (मन्मभिः) जिनसे सब गुण जाने जाते हैं उन गुणों के साथ (मनः) संकल्पविकल्पात्मक चित्त को (न्वाह्वामहे) सब ओर से हटाके दृढ़ करते हैं ॥ ५३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को मनुष्यजन्म की सफलता के लिये विद्या आदि गुणों से युक्त मन को करना चाहिये । जैसे ऋतु अपने-अपने गुणों को क्रम-क्रम से प्रकाशित करते हैं तथा जैसे विद्वान् लोग क्रम-क्रम से अनेक प्रकार की अन्य-अन्य विद्याओं को साक्षात्कार करते हैं, वैसा ही पुरुषार्थ करके सब मनुष्यों को निरन्तर विद्या और प्रकाश की प्राप्ति करनी चाहिये ॥ ५३ ॥

आ न एत्वित्यस्य बन्धुर्ऋषिः । मनो देवता । विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह मन कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

आ नऽएतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥५४॥

पदार्थः—(मनः) जो स्मरण करने वाला चित्त (ज्योक्) निरन्तर (सूर्यम्) परमेश्वर, सूर्यलोक वा प्राण को (दृशे) देखने वा (क्रत्वे) उत्तम विद्या वा उत्तम कर्मों की स्मृति वा (जीवसे) सौ वर्ष से अधिक जीने (च) और अन्य शुभ कर्मों के अनुष्ठान के लिये हैं वह (नः) हम लोगों को (पुनः) वार-वार जन्म-जन्म में (आ) सब प्रकार से (एतु) प्राप्त हो ॥ ५४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को [चाहिये कि] उत्तम कर्मों के अनुष्ठान के लिये चित्त की शुद्धि वा जन्म-जन्म में उत्तम चित्त की प्राप्ति ही की इच्छा करें जिससे मनुष्य जन्म को प्राप्त होकर ईश्वर की उपासना का साधन करके उत्तम-उत्तम धर्मों का सेवन कर सकें ॥ ५४ ॥

पुनर्न इत्यस्य बन्धुर्ऋषिः । मनो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मन शब्द से बुद्धि का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः । जीवं व्रातꣳ सचेमहि ॥ ५५ ॥

पदार्थः—हे (पितरः) उत्पादक वा अन्न शिक्षा वा विद्या को देकर रक्षा करने वाले पिता आदि लोग आपकी शिक्षा से यह (दैव्यः) विद्वानों के बीच में उत्पन्न हुआ (जनः) विद्या वा धर्म से दूसरे के लिये उपकारों को प्रकट करने वाला विद्वान् पुरुष (नः) हम लोगों के लिये (पुनः) इस जन्म वा दूसरे जन्म में (मनः) धारणा करने वाली बुद्धि को (ददातु) देवे जिससे (जीवम्) ज्ञानसाधनयुक्त जीवन वा (व्रातम्) सत्य बोलने आदि गुण समुदाय को (सचेमहि) अच्छे प्रकार प्राप्त करें ॥ ५५ ॥

भावार्थः—विद्वान् माता-पिता आचार्यों की शिक्षा के विना मनुष्यों का जन्म सफल नहीं होता और मनुष्य भी उस शिक्षा के विना पूर्ण जीवन वा कर्म के संयुक्त करने को समर्थ नहीं हो सकते । इस से सब काल में विद्वान् माता-पिता और आचार्यों को उचित है कि अपने पुत्र आदि को अच्छे प्रकार उपदेश से शरीर और आत्मा के बल वाले करें ॥ ५५ ॥

वयमित्यस्य बन्धुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सोमशब्द से ईश्वर और ओषधियों के रसों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वयꣳ सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ॥ ५६ ॥

पदार्थः—हे (सोम) सब जगत् को उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर ! (तव) आपको (व्रते) सत्यभाषण आदि धर्मों के अनुष्ठान में वर्तमान होके (तनूषु) बड़े-बड़े सुखयुक्त शरीरों में (मनः) अन्तःकरण की अहङ्कारादि वृत्ति को (बिभ्रतः) धारण करते हुए और (प्रजावन्तः) बहुत पुत्र आदि राष्ट्र आदि धन वाले होके हम लोग (सचेमहि) सब सुखों को प्राप्त होवें ॥ १ ॥ (तव) इस (सोम) सोमलता आदि ओषधियों के (व्रते) सत्य-सत्य गुण ज्ञान के सेवन में (तनूषु) सुखयुक्त शरीरों में (मनः) चित्त की वृत्ति को (बिभ्रतः) धारण करते हुए (प्रजावन्तः) पुत्र राज्य आदि धनवाले होकर (वयम्) हम लोग (सचेमहि) सब सुखों को प्राप्त होवें ॥ २ ॥ ५६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । ईश्वर की आज्ञा में वर्तमान हुए मनुष्य लोग शरीर आत्मा के सुखों को निरन्तर प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार युक्ति से सोम आदि ओषधियों के सेवन से उन सुखों को प्राप्त होते हैं परन्तु आलसी मनुष्य नहीं ॥ ५६ ॥

एष त इत्यस्य बन्धुर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मन के लक्षण कहने के अनन्तर प्राण के लक्षण का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा । एष ते रुद्र भागऽआखुस्ते पशुः ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे (रुद्र) अन्यायकारी मनुष्यों को रुलाने वाले विद्वन् ! जो (ते) तेरा (एषः) यह (भागः) सेवन करने योग्य पदार्थ समूह है, उस को तू (अम्बिकया) वेदवाणी वा (स्वस्रा) उत्तम विद्या वा क्रिया के (सह) साथ (जुषस्व) सेवन कर तथा हे (रुद्र) विद्वन् ! जो (ते) तेरा (एषः) यह (भागः) धर्म से सिद्ध अंश वा (स्वाहा) वेदवाणी है उस का सेवन कर और हे (रुद्र) विद्वन् ! जो (ते) तेरा (एषः) यह (आखुः) खोदने योग्य शस्त्र वा (पशुः) भोग्य पदार्थ है (तम्) उसको (जुषस्व) सेवन कर ॥ १ ॥ जो (एषः) यह (रुद्र) प्राण है (ते) जिसका (एषः) यत् (भागः) भाग है जिसको (अम्बिकया) वाणी वा (स्वस्रा) विद्याक्रिया के (सह) साथ (जुषस्व) सेवन करता वा जो (ते) जिसका (स्वाहा) सत्य वाणीरूप (भागः) भाग है और जो इसके (आखुः) खोदने वाले पदार्थ वा (पशुः) दर्शनीय भोग्य पदार्थ हैं जिसका यह (जुषस्व) सेवन करता है उसका सेवन सब मनुष्य सदा करें ॥ ५७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जैसे भाई पूर्ण विद्यायुक्त अपनी बहिन के साथ वेदादि शब्दविद्या को पढ़कर आनन्द को भोगता है वैसे विद्वान् भी विद्या को प्राप्त होकर सुखी होता है । जैसे यह प्राण श्रेष्ठ शब्दविद्या से प्रिय आनन्ददायक होता है, वैसे सुशिक्षित विद्वान् भी सब को सुख करने वाला होता है । इन दोनों के विना कोई भी मनुष्य सत्यज्ञान वा सुख भोगों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता ॥ ५७ ॥

अव रुद्रमित्यस्य बन्धुर्ऋषिः । रुद्रो देवता । विराट् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में रुद्र शब्द से ईश्वर का उपदेश किया है ॥

अवं रुद्रमदीमह्यवं देवं त्र्यम्बकम् । यथा नो वस्यसस्करद्यथा नः श्रेयसस्करद्यथा नो व्यवसाययात् ॥ ५८ ॥

पदार्थः—हम लोग [त्र्यम्बकम्) तीनों काल में एकरस ज्ञानयुक्त (देवम्) देने वा (रुद्रम्) दुष्टों को रुलाने वाले जगदीश्वर की उपासना करके सब दुःखों को (अवादीमहि) अच्छे प्रकार नष्ट करें (यथा) जैसे परमेश्वर (नः) हम लोगों को (वस्यसः) उत्तम-उत्तम वास करने वाले (अवाकरत्) अच्छे प्रकार करे (यथा) जैसे (नः) हम लोगों को (श्रेयसः) अत्यन्त श्रेष्ठ (करत्) करे (यथा) जैसे (नः) हम लोगों को (व्यवसाययात्) निश्चय वाले करे वैसे सुख पूर्वक निवास कराने वा उत्तम गुणयुक्त तथा सत्यपन से निश्चय देने वाले परमेश्वर ही की प्रार्थना करें ॥ ५८ ॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य ईश्वर की उपासना वा प्रार्थना के विना सब दुःखों के अन्त को नहीं प्राप्त हो सकता । क्योंकि वही परमेश्वर सब सुखपूर्वक निवास वा उत्तम-उत्तम सत्य निश्चयों को कराता है इससे जैसी उसकी आज्ञा है उसका पालन वैसा ही सब मनुष्यों को करना योग्य है ॥ ५८ ॥

भेषजसीमत्यस्य बन्धुर्ऋषिः । रुद्रो देवता । स्वराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह परमेश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

भेषजमसि भेषजङ्गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम् । सुखम्मेषाय मेष्यै ॥ ५९ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! जो आप (भेषजम्) शरीर, अन्तःकरण, इन्द्रिय और गाय आदि पशुओं के रोग नाश करने वाले (असि) हैं (भेषजम्) अविद्यादि क्लेशों को दूर करने वाले (असि) हैं सो आप (नः) हम लोगों के (गवे) गौ आदि (अश्वाय) घोड़ा आदि (पुरुषाय) सब मनुष्य (मेषाय) मेढ़ा और (मेष्यै) भेड़ आदि के लिये (सुखम्) उत्तम-उत्तम सुखों को अच्छी प्रकार दीजिये ॥ ५९ ॥

भावार्थः—किसी मनुष्य का परमेश्वर की उपासना के विना शरीर आत्मा और प्रजा का दुःख दूर होकर सुख नहीं हो सकता इससे उसकी स्तुति प्रार्थना और उपासना आदि के करने और ओषधियों के सेवन से शरीर आत्मा पुत्र मित्र और पशु आदि के दुखों को यत्न से निवृत्त करके सुखों को सिद्ध करना उचित है ॥ ५९ ॥

त्र्यम्बकमित्यत्स्य वसिष्ठ ऋषिः । रुद्रो देवता । विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्। त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्। उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥ ६० ॥

पदार्थः—हम लोग जो (सुगन्धिम्) शुद्ध गन्धयुक्त (पुष्टिवर्धनम्) शरीर, आत्मा और समाज के बल को बढ़ाने वाला (त्र्यम्बकम्) रुद्ररूप जगदीश्वर है, उसकी (यजामहे) निरन्तर स्तुति करें। इनकी कृपा से (उर्वारुकमिव) जैसे खर्बूजा फल पक कर (बन्धनात्) लता के सम्बन्ध से छूट कर अमृत के तुल्य होता है वैसे हम लोग भी (मृत्योः) प्राण वा शरीर के वियोग से (मुक्षीय) छूट जावें (अमृतात्) और मोक्षरूप सुख से (मा) श्रद्धारहित कभी न होवें तथा हम लोग (सुगन्धिम्) उत्तम गन्धयुक्त (पतिवेदनम्) रक्षा करने हारे स्वामी को देने वाले (त्र्यम्बकम्) सब के अध्यक्ष जगदीश्वर का (यजामहे) निरन्तर सत्कारपूर्वक ध्यान करें और इसके अनुग्रह से (उर्वारुकमिव) जैसे खरबूजा पक कर (बन्धनात्) लता के सम्बन्ध से छूट कर अमृत के समान मिष्ट होता है, वैसे हम लोग भी (इतः) इस शरीर से (मुक्षीय) छूट जावें (अमुतः) मोक्ष और अन्य जन्म के सुख और सत्यधर्म के फल से (मा) पृथक् न होवें ॥ ६० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्य लोग ईश्वर को छोड़ कर किसी का पूजन न करें क्योंकि वेद से अविहित और दुःखरूप फल होने से परमात्मा से भिन्न दूसरे किसी की उपासना न करनी चाहिये। जैसे खर्बूजा फल लता में लगा हुआ अपने आप पक कर समय के अनुसार लता से छूट कर सुन्दर स्वादिष्ट हो जाता है वैसे ही हम लोग पूर्ण आयु को भोग कर शरीर को छोड़ के मुक्ति को प्राप्त होवें, कभी मोक्ष की प्राप्ति के लिये अनुष्ठान वा परलोक की इच्छा से अलग न होवें और न कभी नास्तिक पक्ष को लेकर ईश्वर का अनादर भी करें। जैसे व्यवहार के सुखों के लिये अन्न जल आदि की इच्छा करते हैं, वैसे ही हम लोग ईश्वर, वेद, वेदोक्त-धर्म और मुक्ति होने के लिये निरन्तर श्रद्धा करें ॥ ६० ॥

एतत्त इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। रुद्रो देवता। भुरिगास्तारपंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में रुद्र शब्द से शूरवीर के कर्मों का उपदेश किया है ॥

एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि। अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासाऽअहिंसन्नः शिवोऽतीहि ॥ ६१ ॥

पदार्थः—हे (रुद्र) शत्रुओं को रुलाने वाले युद्धविद्या में कुशल सेनाध्यक्ष विद्वन्! (अवततधन्वा) युद्ध के लिये विस्तारपूर्वक धनु को धारण करने (पिनाकावसः) पिनाक अर्थात् जिस शस्त्र से शत्रुओं के बल को पीस के अपनी रक्षा करने (कृत्तिवासः) चमड़े और कवचों के

समान दृढ़ वस्त्रों के धारण करने (शिवः) सब सुखों के देने और (परः) उत्तम सामर्थ्य वाले शूरवीर पुरुष ! आप (मूजवतः) मूंज घास आदि युक्त पर्वत से परे दूसरे देश में शत्रुओं को (अतीहि) प्राप्त कीजिये (एतत्) जो यह (ते) आपका (अवसम्) रक्षण ना है रक (तेन) उससे (नः) हम लोगों की (अहिंसन्) हिंसा को छोड़कर रक्षा करते हुए आप (अतीहि) सब प्रकार से हम लोगों का सत्कार कीजिये ॥ ६१ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम शत्रुओं से रहित होकर राज्य को निष्कंटक करके सब अस्त्रशस्त्रों का सम्पादन करके दुष्टों का नाश और श्रेष्ठों की रक्षा करो कि जिससे दुष्ट शत्रु सुखी और सज्जन लोग दुःखी कदापि न होवें ॥ ६१ ॥

त्र्यायुषमित्यस्य नारायण ऋषिः । रुद्रो देवता । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

मनुष्य को कैसी आयु भोगने के लिये ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम् ॥ ६२ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! आप (यत्) जो (देवेषु) विद्वानों के वर्त्तमान में (त्र्यायुषम्) ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रमों का परोपकार से युक्त आयु बर्त्तता जा (जमदग्नेः) चक्षु आदि इन्द्रियों का (त्र्यायुषम्) शुद्धि, बल और पराक्रमयुक्त तीन गुणा आयु और जो (कश्यपस्य) ईश्वरप्रेरित (त्र्यायुषम्) तिगुणी अर्थात् तीनसौ वर्ष स अधिक भी आयु विद्यमान है (तत्) उस शरीरः आत्मा और समाज को आनन्द देने वाले (त्र्यायुषम्) तीनसो वर्ष से अधिक आयु को (नः) हम लोगों को प्राप्त कीजिये ॥ ६२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में चक्षुः सब इन्द्रियों में और परमेश्वर सब रचना करने हारों में उत्तम है, ऐसा सब मनुष्यों को समझना चाहिये और (त्र्यायुषम्) इस पदवी की चार वार आवृत्ति होने से तीनसौ वर्ष से अधिक चारसौ वर्ष पर्यन्त भी आयु का ग्रहण किया है । इसकी प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करके और अपना पुरुषार्थ करना उचित है सौ प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिये—हे जगदीश्वर ! आपकी कृपा से जैसे विद्वान् लोग विद्या धर्म और परोपकार के अनुष्ठान से आनन्दपूर्वक तीनसौ वर्ष पर्यन्त आयु को भोगते हैं, वैसे ही तीन प्रकार के ताप से शरीर, मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्काररूप अन्तःकरण इन्द्रिय और प्राण आदि को सुख करने वाले विद्या विज्ञान सहित आयु को हम लोग प्राप्त होकर तीनसौ वा चारसौ वर्ष पर्यन्त सुखपूर्वक भोगें ॥ ६२ ॥

शिवो नामासीत्यस्य नारायण ऋषिः । रुद्रो देवता । भुरिग्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में रुद्र शब्द से उपदेश करने हारे के गुणों का उपदेश किया है ॥

शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्तेऽअस्तु मा मा हिꣳसीः ।
निर्वर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्य्याय ॥६३॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर और उपदेश करनेहारे विद्वन् ! जो आप (स्वधिति) अविनाशी होने से वज्रमय (असि) हैं जिस (ते) आपका (शिवः) सुखस्वरूप विज्ञान का देनेवाला (नाम) नाम (असि) है सो आप मेरे (पिता) पालन करने वाले (असि) हैं (ते) आप के लिये मेरा (नमः) सत्कारपूर्वक नमस्कार (अस्तु) विदित हो तथा आप (मा) मुझे (मा) मत (हिꣳसीः) अल्पमृत्यु से युक्त कीजिये और मैं आप को (आयुषे) आयु के भोगने (अन्नाद्याय) अन्न आदि के भोगने (सुप्रजास्त्वाय) उत्तम-उत्तम पुत्र आदि वा चक्रवर्ति राज्य आदि की प्राप्ति होने (सुवीर्य्याय) उत्तम शरीर आत्मा का बल पराक्रम होने और (रायस्पोषाय) विद्या वा सुवर्ण आदि धन की पुष्टि के लिये (वर्त्तयामि) वर्त्तता और वर्त्ताता हूँ । इस प्रकार वर्त्तने से सब दुखों को छुड़ा के अपने आत्मा में उपास्यरूप से निश्चय करके अन्तर्यामिरूप आप का आश्रय करके सभों में वर्त्तता हूँ ॥ ६३ ॥

भावार्थः—कोई भी मनुष्य मङ्गलमय सब की पालना करने वाले परमेश्वर की आज्ञा पालन के बिना संसार वा परलोक के सुखों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं होता । न कदापि किसी मनुष्य को नास्तिक पक्ष को लेकर ईश्वर का अनादर करना चाहिये । जो नास्तिक होकर ईश्वर का अनादर करता है, उसका सर्वत्र अनादर होता है । इस से सब मनुष्यों को आस्तिक बुद्धि से ईश्वर की उपासना करनी योग्य है ॥ ६३ ॥

इस तीसरे अध्याय में अग्निहोत्र आदि यज्ञों का वर्णन अग्नि के स्वभाव वा अर्थ का प्रतिपादन, पृथिवी के भ्रमण का लक्षण, अग्नि शब्द से ईश्वर वा भौतिक अर्थ का प्रतिपादन, अग्निहोत्र के मन्त्रों का प्रकाश, ईश्वर का उपस्थान, अग्नि का स्वरूपकथन, ईश्वर की प्रार्थना, उपासना वा इन दोनों का फल, ईश्वर के स्वभाव का प्रतिपादन, सूर्य्य की किरणों के कार्य का वर्णन, निरन्तर उपासना, गायत्री मन्त्र का प्रतिपादन यज्ञ के फल का प्रकाश, भौतिक अग्नि के अर्थ का प्रतिपादन, गृहस्थाश्रम के आवश्यक कार्यों के अनुष्ठान और लक्षण, इन्द्र और पवनों के कार्य का वर्णन, पुरुषार्थ का आवश्यक करना, पापों से निवृत्त होना, यज्ञ की समाप्ति आवश्यक करनी, सत्य से लेने देने आदि व्यवहार करना, विद्वान् वा ऋतुओं के स्वभाव का वर्णन, चार प्रकार के अन्तःकरण का लक्षण, रुद्र शब्द के अर्थ का प्रतिपादन, तीनसौ वर्ष अवश्य आयु का संपादन करना और धर्म से आयु आदि पदार्थों के ग्रहण का वर्णन किया है । इससे दूसरे अध्याय के अर्थ के साथ इस तीसरे अध्याय के अर्थ की संगति जाननी चाहिये ॥ ६३ ॥

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥

❁ अथ चतुर्थोऽध्यायारम्भः ❁



ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥ १ ॥

यजु० ३० । ३ ॥

तत्रैदमगन्मेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अबोषध्यौ देवते । विराड् ब्राह्मीजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब चौथे अध्याय का प्रारम्भ किया जाता है । इस के प्रथम मन्त्र में जल के गुण, स्वभाव और कृत्य का उपदेश किया है ॥

एदमगन्म देवयजनं पृथिव्या यत्र देवासोऽअजुषन्त विश्वे । ऋक्सामाभ्याᳬ सन्तरन्तो यजुर्भी रायस्पोषेण समिषा मदेम । इमाऽआपः शमु मे सन्तु देवीः । ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनᳬ हिᳬसीः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (पृथिव्याः) भूमि पर मनुष्यजन्म को प्राप्त हो के जो (इदम्) यह (देवयजनम्) विद्वानों का यजन पूजन वा उन के लिये दान हैं उस को प्राप्त होके (यत्र) जिस देश में (ऋक्सामाभ्याम्) ऋग्वेद, सामवेद तथा (यजुर्भिः) यजुर्वेद के मन्त्रों में कहे कर्म (रायस्पोषेण) धन की पुष्टि (समिषा) उत्तम-उत्तम विद्या आदि की इच्छा वा अन्न आदि से दुःखों के (सन्तरन्तः) अन्त को प्राप्त होते हुये (विश्वे) सब (देवासः) विद्वान् हम लोग सुखों को (अगन्म) प्राप्त हों (अजुषन्त) सब प्रकार से सेवन करें (मदेम) सुखी रहें (उ) और भी (मे) मेरे सुनियम, विद्या, उत्तम शिक्षा से सेवन किये हुए (इमाः) ये (देवीः) शुद्ध (आपः) जल सुख देने वाले होते हैं वैसे वहाँ तू भी उन को प्राप्त हो (जुषस्व) सेवन और आनन्द कर । वे जल आदि पदार्थ भी तुझ को (शम्) सुख कराने वाले (सन्तु) होवें जैसे (ओषधे) सोमलता आदि ओषधिगण सब रोगों से रक्षा करता है, वैसे तू भी हम लोगों की (त्रायस्व) रक्षा कर (स्वधिते) रोग नाश करने में वज्र के समान होकर (एनम्) इस यजमान वा प्राणीमात्र को (मा हिᳬसीः) कभी मत मार ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मनुष्य लोग ब्रह्मचर्यपूर्वक अङ्ग और उपनिषद् सहित चारों वेदों को पढ़ कर औरों को पढ़ा कर विद्या को प्रकाशित कर और विद्वान् होके उत्तम कर्मों के अनुष्ठान से सब प्राणियों को सुखी करें, वैसे ही इन विद्वानों का सत्कार कर

इन से वैदिक विद्या को प्राप्त होकर शरीर वा आत्मा की पुष्टि से धन का अत्यन्त सञ्चय करके सब मनुष्यों को आनन्दित होना चाहिये ॥ १ ॥

आपो अस्मानित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । आपो देवता । स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उन जलों से क्या-क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

आपोऽअस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु । विश्वꣳ हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूतऽएमि । दीक्षातपसोस्तनूरसि तां त्वा शिवाꣳ शग्मां परिदधे भद्रं वर्णं पुष्यन् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (भद्रम्) अति सुन्दर (वर्णम्) प्राप्त होने योग्य रूप को (पुष्यन्) पुष्ट करता हुआ मैं जो (घृतप्वः) घृत को पवित्र करने (देवीः) दिव्यगुणयुक्त (मातरः) माता के समान पालन करने वाले (आपः) जल (रिप्रम्) व्यक्त वाणी को प्राप्त करने वा जानने योग्य (विश्वम्) सब को (प्रवहन्ति) प्राप्त करते हैं जिनसे विद्वान् लोग (अस्मान्) हम मनुष्य लोगों को (शुन्धयन्तु) बाह्य देश को पवित्र करें और जो (घृतेन) घृतवत पुष्ट करने योग्य जल हैं जिनसे (नः) हम लोगों को सुखी कर सकें उनसे (पुनन्तु) पवित्र करें। जैसे मैं (इत्) भी (उत्) अच्छे प्रकार (आभ्यः) इन जलों से (शुचिः) पवित्र तथा (आपूतः) शुद्ध होकर (दीक्षातपसोः) ब्रह्मचर्य्य आदि उत्तम-उत्तम नियम सेवन से जो धर्मानुष्ठान के लिये (तनूः) शरीर (असि) है जिस (शिवाम्) कल्याणकारी (शग्माम्) सुखस्वरूप शरीर को (एमि) प्राप्त होता और (परिदधे) सब प्रकार धारण करता हूं वैसे तुम लोग भी उन जल और (ताम्) उस (त्वाम्) अत्युत्तम शरीर को धारण करो ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि जो सब सुखों को प्राप्त करने, प्राणों को धारण कराने तथा माता के समान, पालन के हेतु जल हैं उनसे सब प्रकार पवित्र हो के इन को शोध कर मनुष्यों को नित्य सेवन करने चाहियें जिस से सुन्दर वर्ण रोग-रहित शरीर को सम्पादन कर निरन्तर प्रयत्न के साथ धर्म का अनुष्ठान कर पुरुषार्थ से आनन्द भोगना चाहिये ॥ २ ॥

महीनामित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मेघो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर इस जलसमूह से उत्पन्न हुए मेघ का क्या निमित्त है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

महीनां पयोऽसि वर्चोदाऽअसि वर्चो मे देहि । वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दाऽअसि चक्षुर्मे देहि ॥ ३ ॥

पदार्थः—जो यह (महीनाम्) पृथिवी आदि के (पयः) जल रस का निमित्त (असि) है (वर्चोदाः) दीप्ति का देने वाला (असि) है जो (मे) मेरे लिये (वर्चः) प्रकाश को (देहि) देता है जो (वृत्रस्य) मेघ का (कनीनकः) प्रकाश करने वाला (असि) है वा (चक्षुर्दाः) नेत्र के व्यवहार को सिद्ध करने वाला (असि) है, वह सूर्य्य (मे) मेरे लिये (चक्षुः) नेत्रों के व्यवहार को (देहि) देता है ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जानना उचित है कि जिस सूर्य्य के प्रकाश के विना वर्षा की उत्पत्ति वा नेत्रों का व्यवहार सिद्ध कभी नहीं होता, जिसने इस सूर्य्यलोक को रचा है उस परमेश्वर को कोटि असख्यात धन्यवाद देते रहें ॥ ३ ॥

चित्पतिर्मेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृद्ब्राह्मीपंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

जिस ने सूर्य्य आदि सब जगत् को बनाया है, वह परमात्मा हमारे लिये क्या क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

चित्पतिर्मा पुनातु वाक्पतिर्मा पुनातु देवो मा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः । तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (पवित्रपते) पवित्रता के पालन करने हारे परमेश्वर ! (चित्पतिः) विज्ञान के स्वामी (वाक्पतिः) वाणी को निर्मल और (सविता) सब जगत् को उत्पन्न करने वाले (देवः) दिव्य स्वरूप आप (पवित्रेण) शुद्ध करने वाले (अच्छिद्रेण) अविनाशी विज्ञान वा (सूर्यस्य) सूर्य और प्राण के (रश्मिभिः) प्रकाश और गमनागमनों से (मा) मुझ और मेरे चित्त को (पुनातु) पवित्र कीजिये (मा) मुझ और मेरी वाणी को (पुनातु) पवित्र कीजिये (मा) मुझ तथा मेरे चक्षु को (पुनातु) पवित्र कीजिये । जिस (पवित्रपूतस्य) शुद्ध स्वाभाविक विज्ञान आदि गुणों से पवित्र (ते) आप की कृपा से (यत्कामः) जिस उत्तम कामनायुक्त मैं (पुने) पवित्र होता हूँ । जिस (ते) आपकी उपासना से (तत्) उस अत्युत्तम कर्म के करने को (शकेयम्) समर्थ होऊँ उस आपकी सेवा मुझ को क्यों न करनी चाहिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि जिस वेद के जानने वा पालन करने वाले परमेश्वर ने वेदविद्या, पृथिवी, जल, वायु और सूर्य्य आदि शुद्धि करने वाले पदार्थ प्रकाशित किये हैं उसकी उपासना तथा पवित्र कर्मों के अनुष्ठान से मनुष्यों को पूर्ण कामना और पवित्रता को संपादन अवश्य करना चाहिये ॥ ४ ॥

आ वो देवास इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को किस-किस प्रकार का पुरुषार्थ करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

आ वो॑ देवास॒ऽईमहे वा॒मं प्र॑य॒त्य॑ध्व॒रे। आ वो॑ देवास॒ऽआ॒शिषो॑ य॒ज्ञिया॑सो हवामहे ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (देवासः) विद्यादि गुणों से प्रकाशित होने वाले विद्वान् लोगो ! जैसे हम लोग (वः) तुम को (प्रयति) सुखयुक्त (अध्वरे) हिंसा करने अयोग्य यज्ञ के अनुष्ठान में में (वः) तुम्हारे (वामम्) प्रशंसनीय गुणसमूह की (आ ईमहे) अच्छे प्रकार याचना करते हैं। हे (देवासः) विद्वान् लोगो ! जैसे हम लोग इस संसार में आप लोगों से (यज्ञियाः) यज्ञ को सिद्ध करने योग्य (आशिषः) इच्छाओं को (आ हवामहे) अच्छे प्रकार स्वीकार कर सकें वैसे ही हम लोगों के लिये आप लोग सदा प्रयत्न किया कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम विद्वानों के प्रसङ्ग से उत्तम-उत्तम विद्याओं का संपादन कर अपनी इच्छाओं को पूर्ण करके इन विद्वानों का सङ्ग और सेवा सदा करना चाहिये ॥ ५ ॥

स्वाहा यज्ञमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

किस-किस प्रयोजन के लिये इस यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

स्वाहा॑ य॒ज्ञं मन॑सः॒ स्वाहो॒रोर॒न्तरि॑क्षा॒त्। स्वाहा॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॒ꣳ स्वाहा॒ वाता॒दार॑भे॒ स्वाहा॑ ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जैसे मैं (स्वाहा) वेदोक्त (स्वाहा) उत्तम शिक्षा सहित (स्वाहा) विद्याओं का प्रकाश (स्वाहा) सत्य और सब जीवों के कल्याण करने हारी वाणी और (स्वाहा) अच्छे प्रकार प्रयोग की हुई उत्तम क्रिया से (उरोः) बहुत (अन्तरिक्षात्) आकाश और (वातात्) वायु की शुद्धि कर के (द्यावापृथिवीभ्याम्) शुद्ध प्रकाश और भूमिस्थ पदार्थ (मनसः) विज्ञान और ठीक-ठीक क्रिया से (यज्ञम्) यज्ञ को पूर्ण करने के लिये पुरुषार्थ का (आरभे) नित्य आरम्भ करता हूँ, वैसे तुम लोग भी करो ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों के द्वारा जो वेद की रीति और मन वचन कर्म से अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ है वह आकाश में रहने वाले वायु आदि पदार्थों को शुद्ध करके सब को सुखी करता है ॥ ६ ॥

आकूत्यै प्रयुज इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्न्यब्बृहस्पतयो देवताः। पूर्वार्धस्य पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। आपो देवीरित्युत्तरस्यार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

किसलिये उस यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

आकूत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहा मेधायै मनसेऽग्नये स्वाहा दीक्षायै तपसेऽग्नये स्वाहा सरस्वत्यै पूष्णेऽग्नये स्वाहा । आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशंभुवो द्यावापृथिवीऽ-उरोऽअन्तरिक्ष । बृहस्पतये हविषा विधम स्वाहा ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (आकूत्यै) उत्साह (प्रयुजे) उत्तम उत्तम धर्मयुक्त क्रियाओं (अग्नये) अग्नि के प्रदीपन (स्वाहा) वेदवाणी के प्रचार (सरस्वत्यै) विज्ञानयुक्त वाणी (पूष्णे) पुष्टि करने (बृहस्पतये) बड़े-बड़े अधिपतियों के होने (अग्नये) बिजुली की विद्या के ग्रहण (स्वाहा) पढ़ने-पढ़ाने से विद्या (मेधायै) बुद्धि की उन्नति (मनसे) विज्ञान की वृद्धि (अग्नये) कारणरूप (स्वाहा) सत्यवाणी की प्रवृत्ति (दीक्षायै) धर्मनियम और आचरण की रीति (तपसे) प्रताप (अग्नये) जाठराग्नि के शोधन (स्वाहा) उत्तम स्तुतियुक्त वाणी से (बृहतीः) महागुण-सहित (विश्वशम्भुवः) सब के लिये सुख उत्पन्न कराने वाले (देवीः) दिव्यगुणसम्पन्न (आपः) प्राण वा जल से (स्वाहा) सत्य भाषण (द्यावापृथिवी) भूमि और प्रकाश की शुद्धि के अर्थ (उरो) बहुत सुख सम्पादक (अन्तरिक्ष) अन्तरिक्ष में रहने वाले पदार्थों को शुद्ध और जिस (स्वाहा) उत्तम क्रिया वा वेदवाणी से यज्ञ सिद्ध होता है, उन सबों को (हविषा) सत्य और प्रेमभाव से (विधेम) सिद्ध करें, वैसे तुम भी किया करो ॥ ७ ॥

भावार्थः—यज्ञ के अनुष्ठान के विना उत्साह, बुद्धि, सत्यवाणी, धर्माचरण की रीति, तप, धर्म का अनुष्ठान और विद्या की पुष्टि का सम्भव नहीं होता और इनके विना कोई भी मनुष्य परमेश्वर की आराधना करने को समर्थ नहीं हो सकता । इस से सब मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्ठान करके सब के लिये सब प्रकार आनन्द प्राप्त करना चाहिये ॥ ७ ॥

विश्वो देवस्येत्यस्यात्रेय ऋषिः । ईश्वरो देवता । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को परमेश्वर के आश्रय से क्या क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्त्तो वुरीत सख्यम् । विश्वो रायऽइषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥ ८ ॥

पदार्थः—जैसे (विश्वः) सब (मर्त्तः) मनुष्य (नेतुः) सब को प्राप्त वा (देवस्य) सब का प्रकाश करने वाले परमेश्वर के साथ (सख्यम्) मित्रता और गुण कर्म समूह को (वुरीत) स्वीकार और (विश्वः) सब (राये) धन की प्राप्ति के लिये (इषुध्यति) बाणों को धारण करे वह (द्युम्नम्) धन को (वृणीत) स्वीकार करे, वैसे हे मनुष्य ! इस सब का अनुष्ठान करके (स्वाहा) सत्क्रिया से तू भी (पुष्यसे) पुष्ट हो ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्यों को परमेश्वर की उपासना करके परस्पर मित्रपन का सम्पादन कर युद्ध मे दुष्टों को जीत के राज्यलक्ष्मी को प्राप्त होकर सुखी रहना चाहिये ॥ ८ ॥

ऋक्सामयोरित्यस्यांगिरस ऋषयः । विद्वान् देवता । आर्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को शिल्पविद्या की सिद्धि कैसे करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

ऋक्सामयोः शिल्पे स्थस्ते वामारभे ते मा पातमास्य यज्ञस्योदृचः । शर्म्मासि शर्म्म मे यच्छ नमस्तेऽअस्तु मा मा हिꣳसीः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! आप जो मैं (ऋक्सामयोः) ऋग्वेद और सामवेद के पढ़ने के पीछे (उदृचः) जिसमें अच्छे प्रकार ऋचा प्रत्यक्ष की जाती है (अस्य) इस (यज्ञस्य) शिल्पविद्या से सिद्ध हुए यज्ञ के सम्बन्धी (वाम्) ये (शिल्पे) मन वा प्रसिद्ध क्रिया से सिद्ध की हुई कारीगरी की जो विद्यायें (स्थ) हैं (ते) उन दोनों को (आरभे) आरम्भ करता हूँ तथा जो (मा) मेरी (आ) सब ओर से (पातम्) रक्षा करते हैं (ते) वे (स्थः) हैं, उनको विद्वानों के सकाश से ग्रहण करता हूँ । हे विद्वन् मनुष्य ! (ते) उस तेरे लिये (मे) मेरा (नमः) अन्नादि-सत्कार-पूर्वक नमस्कार (अस्तु) विदित हो तथा तुम (मा) मुझ को चलायमान मत करो और (यत्) जो (शर्म) सुख (असि) है उस (शर्म) सुख को (मे) मेरे लिये (यच्छ) देओ ॥ ९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के सकाश से वेदों को पढ़कर शिल्पविद्या वा हस्तक्रिया को साक्षात्कार कर विमान आदि यानों की सिद्धिरूप कार्य्यों को सिद्ध करके सुखों की उन्नति करें ॥ ९ ॥

ऊर्गसीत्यस्यांगिरस ऋषयः । यज्ञो देवता । कृधीत्यन्तस्य निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । उच्छ्रयस्वेत्यस्य साम्नी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

वह शिल्पविद्या यज्ञ कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

ऊर्गस्याङ्गिरस्यूर्णम्रदाऽऊर्जं मयि धेहि । सोमस्य नीविरसि विष्णोः शर्म्मासि शर्म्म यजमानस्येन्द्रस्य योनिरसि सुऽसस्याः कृषीस्कृधि । उच्छ्रयस्व वनस्पतऽऊर्ध्वो मा पाह्यꣳहसऽआस्य यज्ञस्योदृचः ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (वनस्पते) प्रकाशनीय विद्याओं का प्रचार करने वाले विद्वान् मनुष्य ! तू जो (अङ्गिरसि) अग्नि आदि पदार्थों से सिद्ध की हुई (ऊर्णम्रदाः) आच्छादन का प्रकाश

१३

वा (ऊर्क्) पराक्रम तथा अन्नादि को करने वाली शिल्पविद्या (असि) है अथवा जो (ऊर्जम्) पराक्रम वा अन्न आदि को धारण करती (असि) है, जो (सोमस्य) उत्पन्न पदार्थ समूह का (नीविः) संवरण करने वाली (असि) है, जो (विष्णोः) शिल्पविद्या में व्यापक बुद्धि (यजमानस्य) शिल्पक्रिया को जानने वाले (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य्ययुक्त मनुष्य के (शर्म) सुख का (योनिः) निमित्त (असि) है, जो (अस्य) इस (उहचः) ऋचाओं के प्रत्यक्ष करने वाले (यज्ञस्य) शिल्पक्रिया-साध्य यज्ञ की (शर्म) सुख कराने वाली। (असि) है, उसको (मयि) शिल्पविद्या को जानने की इच्छा करने वाले मुझ में (आ धेहि) अच्छे प्रकार धारण कर (सुसस्याः) उत्तम-उत्तम धान्य उत्पन्न करने वा (कृषीः) खेती वा खेंचने वाली क्रियाओं को (कृधि) सिद्ध कर (ऊर्ध्वः) ऊपर स्थित होने वाले (मा) मुझ को (उच्छ्रयस्व) उत्तम धान्यवाली खेती का सेवन कराओ और (अंहसः) पाप वा दुखों से (पाहि) रक्षा कर। जो विमान आदि यानों और यज्ञ में (वनस्पते) वृक्ष की शाखा ऊँची स्थापन की जाती है उस को भी (उच्छ्रयस्व) उपयोग में लाओ ॥ १० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को विद्वानों के सकाश से साक्षात्कार और प्रचार करके सब मनुष्यों को समृद्धियुक्त करना चाहिये ॥ १० ॥

व्रतं कृणुतेत्यस्याङ्गिरस ऋषयः। अग्निर्देवता। पूर्वस्य स्वराड् ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। ये देवा इत्युत्तरस्यार्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अब अनेक अर्थ वाले अग्नि को जानकर उससे क्या-क्या उपकार लेना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है॥

व्रतं कृणुताग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञो वनस्पतिर्यज्ञियः। दैवीं धियं मनामहे सुमृडीकामभिष्टये वर्चोधां यज्ञवाहसꣳ सुतीर्था नोऽअसद्वशे। ये देवा मनोजाता मनोयुजो दक्षक्रतवस्ते नोऽवन्तु ते नः पान्तु तेभ्यः स्वाहा॥ ११॥

पदार्थः—हम लोग जो (ब्रह्म) ब्रह्मपदवाच्य (अग्निः) अग्नि नाम से प्रसिद्ध (असत्) है, जो (यज्ञः) अग्निसंज्ञक और जो (वनस्पतिः) वनों का पालन करने वाला यज्ञ (अग्निः) अग्नि नामक है उस की उपासना कर वा उस से उपकार लेकर (अभिष्टये) इष्टसिद्धि के लिये जो (सुतीर्था) जिससे अत्युत्तम दुःखों से तारने वाले वेदाध्ययनादि तीर्थ प्राप्त होते हैं, उस (सुमृडीकाम्) उत्तम सुखयुक्त (वर्चोधाम्) विद्या वा दीप्ति को धारण करने तथा (दैवीम्) दिव्यगुणसम्पन्न (धियम्) बुद्धि वा क्रिया को (मनामहे) जानें (ये) जो (दक्षक्रतवः) शरीर, आत्मा के बल, प्रज्ञा वा कर्म से युक्त (मनोजाताः) विज्ञान से उत्पन्न हुए (मनोयुजः) सत्-असत् के ज्ञान से युक्त (देवाः) विद्वान् लोग (वशे) प्रकाशयुक्त कर्म में वर्त्तमान हैं वा जिनसे (स्वाहा) विद्यायुक्त वाणी प्राप्त होती है (तेभ्यः) उनसे पूर्वोक्त प्रज्ञा की (मनामहे) याचना करते हैं (ते) वे (नः) हम लोगों को (अवन्तु) विद्या, उत्तम क्रिया तथा शिक्षा आदिकों में प्रवेश [करायें] और (नः) हम लोगों की निरन्तर (पान्तु) रक्षा करें॥ ११।

भावार्थः—मनुष्यों को, जिसकी अग्नि संज्ञा है उस ब्रह्म को जान और उसकी उपासना करके उत्तम बुद्धि को प्राप्त करना चाहिये। विद्वान् लोग जिस बुद्धि से यज्ञ को सिद्ध करते हैं उससे शिल्पविद्याकारक यज्ञों को सिद्ध करके विद्वानों के सङ्ग से विद्या को प्राप्त होके स्वतन्त्र व्यवहार में सदा रहना चाहिये क्योंकि बुद्धि के विना कोई भी मनुष्य सुख को नहीं बढ़ा सकता। इससे विद्वान् मनुष्यों को उचित है कि सब मनुष्यों के लिये ब्रह्मविद्या और पदार्थविद्या और बुद्धि की शिक्षा करके निरन्तर रक्षा करें और वे रक्षा को प्राप्त हुए मनुष्य परमेश्वर वा विद्वानों के उत्तम-उत्तम प्रिय कर्मों का आचरण किया करें ॥ ११ ॥

श्वात्रा इत्यस्याङ्गिरस ऋषयः। आपो देवताः। ब्राह्मयनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

इसका अनुष्ठान करके आगे मनुष्यों को क्या-क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

श्वात्राः पीता भवत यूयमापोऽअस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः। ताऽअस्मभ्यमयक्ष्माऽअनमीवाऽअनागसः स्वदन्तु देवीरमृताऽऋतावृधः ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो हम ने (पीताः) पिये (अस्माकम्) मनुष्यों के (अन्तः) मध्य वा (उदरे) शरीर के भीतर स्थित हुए (अस्मभ्यम्) मनुष्यादिकों के लिये (सुशेवाः) उत्तम सुखयुक्त (अनमीवाः) ज्वरादि रोग-समूह से रहित (अयक्ष्माः) क्षयी आदि रोगकारक दोषों से रहित (अनागसः) पाप दोष निमित्तों से पृथक् (ऋतावृधः) सत्य को बढ़ाने वा (अमृताः) नाशरहित अमृतरसयुक्त (देवीः) दिव्यगुणसम्पन्न (आपः) प्राण वा जल है (ताः) उनको आप लोग (स्वदन्तु) अच्छे प्रकार सेवन किया करो। इसका अनुष्ठान करके (यूयम्) तुम सब मनुष्य सुखों को भोगने वाले (भवत) नित्य होओ ॥ १२ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को विद्वानों के सङ्ग वा उत्तम शिक्षा से विद्या को प्राप्त होकर अच्छे प्रकार परीक्षित शुद्ध किये हुए, शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाने और रोगों को दूर करने वाले जल आदि पदार्थों का सेवन करना चाहिये क्योंकि विद्या वा आरोग्यता के बिना कोई भी मनुष्य निरन्तर कर्म करने को समर्थ नहीं हो सकता। इससे इस कार्य्य का सर्वदा अनुष्ठान करना चाहिये ॥ १२ ॥

इयन्त इत्यस्याङ्गिरस ऋषयः। आपो देवताः। भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः ॥

फिर वे जल कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

इयं ते यज्ञिया तनूरपो मुञ्चामि न प्रजाम्। अꣳहोमुचः स्वाहाकृताः पृथिवीमाविशत पृथिव्या सम्भव ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् मनुष्य ! जैसे (ते) तेरा जो (इयम्) यह (यज्ञिया) यज्ञ के योग्य (तनूः) शरीर (अपः) जल प्राण वा (प्रजाम्) प्रजा की रक्षा करता है, जिस को तू नहीं छोड़ता। मैं भी अपने उस शरीर को विना पूर्ण आयु भोगे प्रमाद से बीच में (न मुञ्चामि) नहीं छोड़ता हूँ। हे मनुष्यो ! जैसे तुम (पृथिव्या) भूमि के साथ वैभवयुक्त होते (अँहोमुचः) दुःखों को छुड़ाने वा (स्वाहाकृताः) वाणी से सिद्ध किये हुए (अपः) जल और (पृथिवीम्) भूमि को (आविशत) अच्छे प्रकार विज्ञान से प्रवेश करते [हो], मैं इन से ऐश्वर्य्यसहित और इनमें प्रविष्ठ होता हूँ वैसे तू भी (सम्भव) हो और प्रवेश कर ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि विद्या से परस्पर पदार्थों का मेल और सेवन कर रोगरहित शरीर तथा आत्मा की रक्षा करके सुखी रहना चाहिये ॥ १३ ॥

अग्ने त्वमित्यस्याङ्गिरस ऋषयः। अग्निर्देवता। स्वराडार्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

फिर अग्नि के गुणों का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

अग्ने त्वꣳ सु जागृहि वयꣳ सु मन्दिषीमहि। रक्षा णोऽअप्रयुच्छन् प्रबुधे नः पुनस्कृधि ॥ १४ ॥

पदार्थः—(अग्ने) जो अग्नि (प्रबुधे) जगने के समय (सुजागृहि) अच्छे प्रकार जगाता वा जिससे (वयम्) जगत् के कर्मानुष्ठान करने वाले हम लोग (सुमन्दिषीमहि) आनन्दपूर्वक सोते हैं। जो (अप्रयुच्छन्) प्रमादरहित होके (नः) प्रमादरहित हम लोगों की (रक्ष) रक्षा तथा प्रमादसहितों को नष्ट करता और जो (नः) हम लोगों के साथ (पुनः) वार-वार इसी प्रकार (कृधि) व्यवहार करता है, उसको युक्ति के साथ सब मनुष्यों को सेवन करना चाहिये ॥ १४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जो अग्नि सोने, जागने, जीने तथा मरने का हेतु है, उसका युक्ति से सेवन करना चाहिये ॥ १४ ॥

पुनर्मन इत्यस्याङ्गिरस ऋषयः। अग्निर्देवता। भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

जीव अग्नि वायु आदि पदार्थों के निमित्त से जगने के समय वा दूसरे जन्म में प्रसिद्ध मन आदि इन्द्रियों को प्राप्त होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

पुनर्मनः पुनरायुर्मऽआगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा मऽआगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं मऽआगन्। वैश्वानरोऽदब्धस्तनूपाऽअग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात् ॥ १५ ॥

पदार्थः—जिसके सम्बन्ध वा कृपा से (मे) मुझ को जो (मनः) विज्ञानसाधक मन (आयुः) उमर (पुनः) फिर-फिर (आगन्) प्राप्त होता (मे) मुझ को (प्राणः) शरीर का आधार प्राण (पुनः) फिर (आगन्) प्राप्त होता (आत्मा) सब में व्यापक सब के भीतर की सब बातों को जानने वाले परमात्मा का विज्ञान (आगन्) प्राप्त होता (मे) मुझको (चक्षुः) देखने के लिये नेत्र (पुनः) फिर (आगन्) प्राप्त होते और (श्रोत्रम्) शब्द को ग्रहण करने वाले कान (आगन्) प्राप्त होते हैं वह (अदब्धः) हिंसा करने अयोग्य (तनूपाः) शरीर वा आत्मा की रक्षा करने और (वैश्वानरः) शरीर को प्राप्त होने वाला (अग्निः) अग्नि वा विश्व को प्राप्त होने वाला परमेश्वर (नः) हम लोगों को (अवद्यात्) निन्दित (दुरितात्) पाप से उत्पन्न हुए दुःख वा दुष्ट कर्मों से (पातु) पालन करता है ॥ १५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में श्लेषालङ्कार है। जब जीव सोने वा मरण आदि व्यवहार को प्राप्त होते हैं, तब जो-जो मन आदि इन्द्रिय नाश हुए के समान होकर फिर जगने वा जन्मान्तर में जिन कार्य्य करने के साधनों को प्राप्त होते हैं, वे इन्द्रिय जिस विद्युत् अग्नि आदि के सम्बन्ध परमेश्वर की सत्ता वा व्यवस्था से शरीर वाले होकर कार्य्य करने को समर्थ होते हैं। [मनुष्यों को योग्य है कि [जो] वह अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ जाठराग्नि सब की रक्षा करता और जो उपासना किया हुआ जगदीश्वर पापरूप कर्मों से अलग कर धर्म में प्रवृत्त कर वार-वार मनुष्यजन्म को प्राप्त कराकर दुष्टाचार वा :दुखों से पृथक् करके इस लोक वा परलोक के सुखों को प्राप्त कराता है, वह क्यों न उपयुक्त और उपास्य होना चाहिये ॥ १५ ॥

त्वमग्ने व्रतपा इत्यस्य वत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

त्वम॑ग्ने व्रत॒पाऽअ॑सि दे॒वऽआ मर्त्ये॒ष्वा। त्वं य॒ज्ञेष्वीड्यः॑। रास्वेय॑त्सो॒मा भूयो॑ भर दे॒वो नः॑ सवि॒ता वसो॑र्दा॒ता वस्व॑दात् ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्य्य के देने वाले (अग्ने) जगदीश्वर ! जो (त्वम्) आप (मर्त्येषु) मनुष्यों में (व्रतपाः) सत्य धर्माचरण की रक्षा (सविता) सब जगत् को उत्पन्न करने (यज्ञेषु) सत्कार वा उपासना आदि में (ईड्यः) स्तुति के योग्य (नः) हम लोगों के लिये (वसोः) धन के (दाता) दान करने वाले (वसु) धन को (अदात्) देते हैं सो (इयत्) प्राप्त करते हुए आप (भूयः) वारंवार अत्यन्त धन (आरास्व) दीजिये (आभर) सब सुखों से पोषण कीजिये ॥ १ ॥ (त्वम्) जो (अग्ने) अग्नि (मर्त्येषु) मरण धर्म वाले मनुष्यों के कार्यों में (व्रतपाः) नियमाचरण का पालन (देवः) प्रकाश करने (यज्ञेषु) अग्निहोत्रादि यज्ञों में (ईड्यः) खोजने योग्य (सोमः) ऐश्वर्य को देने (सविता) जगत् को प्रेरणा करने। (देवः) प्रकाशमान अग्नि है वह (नः) हम लोगों के लिये (वसोः) धन को (दाता) प्राप्त (इयत्) कराता हुआ (भूयः) अत्यन्त (वसु) धन को (अदात्) देता और (आरास्व) धन को देने का निमित्त हो के (आभर) सब प्रकार के सुखों को धारण करता है ॥ २ ॥ १६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। सब मनुष्यों को उचित है कि जैसे सत्यस्वरूप सब जगत् को उत्पन्न करने और सकल सुखों के देने वाले जगदीश्वर ही की उपासना को करके सुखी रहें इसी प्रकार कार्यसिद्धि के लिये अग्नि को संप्रयुक्त करके सब सुखों को प्राप्त करें ॥ १६ ॥

एषा त इत्यस्य वत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्चीत्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

इनको सेवन करके मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है॥

एषा ते शुक्र तनूरेतद्वर्चस्तया सम्भव भ्राजं गच्छ। जूरसि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे (शुक्र) वीर्य्य पराक्रम वाले विद्वन् मनुष्य ! (ते) तेरा जो (विष्णवे) परमेश्वर वा यज्ञ के लिये तैंने जिसको (धृता) धारण किया है (तया) उस से तू (जूः) ज्ञानी वा वेग वाला होके (एतत्) इस (वर्चः) विज्ञान और तेजयुक्त (सम्भर) संपन्न हो अच्छे प्रकार विज्ञान करने के लिए (तनूः) शरीर (असि) है उससे तू (भ्राजम्) प्रकाश को (गच्छ) प्राप्त और (धृता) धारण किये (मनसा) विज्ञान से पुरुषार्थ को प्राप्त हो ॥ १७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की आज्ञा का पालन करके विज्ञानयुक्त मन से शरीर वा आत्मा के आरोग्यपन को बढ़ा कर यज्ञ का अनुष्ठान करके सुखी रहें ॥ १७ ॥

तस्यास्त इत्यस्य वत्स ऋषिः। वाग्विद्युतौ देवते। स्वराडार्षीबृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

वह वाणी और बिजुली कैसी है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

तस्यास्ते सत्यसवसः प्रसवे तन्वो यन्त्रमशीय स्वाहा। शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवमसि ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! (सत्यसवसः) सत्य ऐश्वर्य्ययुक्त वा जगत् के निमित्त कारणरूप (ते) आपके (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में आपकी कृपा से जो (स्वाहा) वाणी वा बिजुली है (तस्याः) उन दोनों के सकाश से विद्या करके युक्त मैं जो (शुक्रम्) शुद्ध (असि) है (चन्द्रम्) आह्लादकारक (असि) है और (वैश्वदेवम्) सब देव अर्थात् विद्वानों को सुख देने वाला (असि) है (तत्) उस (यन्त्रम्) सङ्कोचन, विकाशन, चालन, बन्धन करने वाले यंत्र को (अशीय) प्राप्त होऊं ॥ १८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की उत्पन्न की हुई इस सृष्टि में विद्या से कलायन्त्रों को सिद्ध करके अग्नि आदि पदार्थों से अच्छे प्रकार पदार्थों का ग्रहण कर सब सुखों को प्राप्त करें ॥ १८ ॥

चिदसीत्यस्य वत्स ऋषिः । वाग्विद्युतौ देवते । निचृद् ब्राह्मीपंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वे वाणी और बिजुली किस प्रकार की हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

चिदसि मनासि धीरसि दक्षिणासि क्षत्रियासि यज्ञियास्यदितिरस्युभयतःशीर्ष्णी । सा नः सुप्राची सुप्रतीच्येधि मित्रस्त्वा पदि बध्नीतां पूषाऽध्वनस्पात्विन्द्रायाध्यक्षाय ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! (सत्यसवसः) सत्य ऐश्वर्य्ययुक्त (ते) आपके (प्रसवे) उत्पन्न किये संसार में जो (चित्) विद्या व्यवहार को चिताने वाली (असि) है जो (मना) ज्ञान साधन कराने हारी (असि) है जो (धीः) प्रज्ञा और कर्म को प्राप्त करने वाली (असि) है जो (दक्षिणा) विज्ञान विजय को प्राप्त करने (क्षत्रिया) राजा के पुत्र के समान वर्त्तने हारी (असि) है जो (यज्ञिया) यज्ञ को कराने योग्य (असि) है जो (उभयतःशीर्ष्णी) दोनों प्रकार से शिर के समान उत्तम गुण युक्त और (अदितिः) नाशरहित वाणी वा बिजुली (असि) है (सा) वह (नः) हम लोगों के लिये (सुप्राची) पूर्वकाल और (सुप्रतीची) पश्चिम काल में सुख देने हारी (एधि) हो जो (पूषा) पुष्टि करने हारा (मित्रः) सब का मित्र होकर मनुष्यपन के लिये (त्वा) उस वाणी और बिजुली को (पदि) प्राप्ति योग्य उत्तम व्यवहार में (अध्यक्षाय) अच्छे प्रकार व्यवहार को देखने (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य वाले परमात्मा, अध्यक्ष और श्रेष्ठ व्यवहार के लिये (बध्नीताम्) बन्धनयुक्त करे सो आप (अध्वनः) व्यवहार और परमार्थ की सिद्धि करने वाले मार्ग के मध्य में (नः) हम लोगों की निरन्तर (पातु) रक्षा कीजिये ॥ १९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है और पूर्व मन्त्र से (ते) (सत्यसवसः) (प्रसवे) इन तीन पदों की अनुवृत्ति भी आती है। मनुष्यों को जो बाह्य आभ्यन्तर की रक्षा करके सब से उत्तम वाणी वा बिजुली वर्त्तती है वही भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान काल में सुखों की कराने वाली है ऐसा जानना चाहिये। जो कोई मनुष्य प्रीति से परमेश्वर, सभाध्यक्ष और उत्तम कामों में आज्ञा के पालन के लिये सत्य वाणी और उत्तम विद्या को ग्रहण करता है, वही सब की रक्षा कर सकता है ॥ १९ ॥

अनु त्वेत्यस्य वत्स ऋषिः । वाग्विद्युतौ देवते । पूर्वार्द्धस्य साम्नी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । उत्तरार्द्धस्य भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह वाणी और बिजुली कैसी हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अनु त्वा माता मन्यतामनु पिताऽनु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः। सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोमꣳ रुद्रस्त्वावर्त्तयतु स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि ॥ २० ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! जैसे (रुद्रः) परमेश्वर वा ४४ (चवालीस) वर्ष पर्यन्त अखण्ड ब्रह्मचर्य्याश्रम सेवन से पूर्ण विद्यायुक्त विद्वान् (त्वा) तुझको जिस वाणी वा विजुली तथा (सोमम्) उत्तम पदार्थसमूह और (स्वस्ति) सुख को (इन्द्राय) परमैश्वर्य की प्राप्ति के लिये (आवर्त्तयतु) प्रवृत्त करे और जो (सा) वह (सोमसखा) विद्याप्रकाशयुक्त वाणी और (देवि) दिव्यगुणयुक्त बिजुली (देवम्) उत्तम धर्मात्मा विद्वान् को प्राप्त होती है वैसे उस को तू (पुनः) वार-वार (अच्छ) अच्छे प्रकार (इहि) प्राप्त हो और इसको ग्रहण करने के लिये (त्वा) तुझ को (माता) उत्पन्न करने वाली जननी (अनुमन्यताम्) अनुमति अर्थात् आज्ञा देवे इसी प्रकार (पिता) उत्पन्न करने वाला जनक (सगर्भ्यः) तुल्य गर्भ में होने वाला (भ्राता) भाई और (सयूथ्यः) समूह में रहने वाला (सखा) मित्र ये सब प्रसन्नता पूर्वक आज्ञा देवें। उसको तू (पुनरेहि) अत्यन्त पुरुषार्थ करके वारम्वार प्राप्त हो ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। प्रश्नः—मनुष्यों को परस्पर किस प्रकार वर्त्तना चाहिये ? उत्तरः—जैसे धर्मात्मा, विद्वान्, माता, पिता, भाई मित्र आदि सत्यव्यवहार में प्रवृत्त हों। वैसे पुत्रादि और जैसे विद्वान् धार्मिक पुत्रादि धर्मयुक्त व्यवहार में वर्तें, वैसे माता पिता आदि को भी वर्त्तना चाहिये ॥ २० ॥

वस्वीत्यस्य वत्स ऋषिः। वाग्विद्युतौ देवते। विराडार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह वाणी वा बिजुली किस प्रकार की है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

वस्व्यस्यदितिरस्यादित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि। बृहस्पतिष्ट्वा सुम्ने रम्णातु रुद्रो वसुभिराचके ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् मनुष्य ! जैसे जो (वस्वी) अग्नि आदि विद्या सम्बन्धी, जिसकी सेवा २४ चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करने वालों ने की हुई (असि) है जो (अदितिः) प्रकाशकारक (असि) है जो (रुद्रा) प्राणवायु सम्बन्ध वाली और जिसको ४४ चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य करने हारे प्राप्त हुए हों वैसी (असि) है जो (आदित्या) सूर्य्यवत् सब विद्याओं का प्रकाश करने वाली, जिसका ग्रहण ४८ अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्यसेवी मनुष्यों ने किया हो वैसी (असि) है। जो (चन्द्रा) आह्लाद करने वाली (असि) है जिसको (बृहस्पतिः) सर्वोत्तम (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने वाला परमेश्वर वा विद्वान् (सुम्ने) सुख में (रम्णातु) रमणयुक्त करता और जिस (वसुभिः) पूर्णविद्यायुक्त मनुष्यों के साथ वर्त्तमान हुई वाणी वा

बिजुली की (आचके) निर्माण वा इच्छा करता अथवा जिसकी मैं इच्छा करता हूँ वैसे तू भी (त्वा) उसको (रम्णातु) रमणयुक्त वा इसको सिद्ध करने की इच्छा कर ॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे वाणी, बिजुली और प्राण पृथिवी आदि और विद्वानों के साथ वर्तमान हुए अनेक व्यवहार की सिद्धि के हेतु हैं और जिनकी सेवा जितेन्द्रियादि धर्मसेवनपूर्वक होके विद्वानों ने की हो वैसी वाणी और बिजुली मनुष्यों को विज्ञान पूर्वक क्रियाओं से संप्रयोग की हुई बहुत सुखों के करने वाली होती है ॥ २१ ॥

अदित्यास्त्वेत्यस्य वत्स ऋषिः । वाग्विद्युतौ देवते । ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वे वाणी और बिजुली कैसी हैं इस विषय का उपदेश
अगले मन्त्र में किया है ॥

अदि॑त्यास्त्वा मूर्द्धन्नाजि॑घर्मि देवयज॑ने पृथि॒व्याऽइडा॑यास्प॒दम॑सि घृ॒तव॑त् स्वाहा॑ । अ॒स्मे र॑मस्वा॒स्मे ते॒ बन्धु॒स्त्वे रायो॑ मे रायो॑ मा व॒यꣳ रा॒यस्पोषे॑ण वियौ॑ष्म॒ तोतो॒ राय॑ः ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! तू जैसे (देवयजने) विद्वानों के यजन वा दान में इस (अदित्याः) अन्तरिक्ष (पृथिव्याः) भूमि और (इडायाः) वाणी को (स्वाहा) अच्छे प्रकार यज्ञ करने वाली क्रिया के मध्य जो (मूर्द्धन्) सब के ऊपर वर्त्तमान (घृतवत्) पुष्टि करने वाले घृत के तुल्य (पदम्) जानने वा प्राप्त होने योग्य पदवी (असि) है वा जिसको मैं (आ जिघर्मि) प्रदीप्त करता हूँ वैसे (त्वा) उसको प्रदीप्त कर और जो (अस्मे) हम लोगों में विभूति रमण करती है वह तुम लोगों में भी (रमस्व) रमण करे जिसको मैं रमण कराता हूँ उस को तू भी (रमस्व) रमण करा जो (अस्मे) हम लोगों का (बन्धुः) भाई है वह (ते) तेरा भी हो जो (रायः) विद्यादि धनसमूह (त्वे) तुझ में है वह (मे) मुझ में भी हो, जो (तोतः) जानने प्राप्त करके योग्य (रायः) विद्याधन मुझ में है सो तुझ में भी हो (रायः) तुम्हारी और हमारी समृद्धि हैं वे सब के सुख के लिये हों इस प्रकार जानते निश्चय करते वा अनुष्ठान करते हुए तुम (वयम्) हम और सब लोग (रायस्पोषेण) धन की पुष्टि से कभी (मा वियौष्म) अलग न होवें ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को सत्यविद्या, धर्म से संस्कार की हुई वाणी वा शिल्पविद्या से संप्रयोग की हुई बिजुली आदि विद्या को सब मनुष्यों के लिये उपदेश वा ग्रहण और सुख दुःख की व्यवस्था को भी तुल्य ही जानके सब ऐश्वर्य्य को परोपकार में संयुक्त करना चाहिये और किसी मनुष्य को इस प्रकार का व्यवहार कभी न करना चाहिये कि जिससे किसी की विद्या धन आदि ऐश्वर्य की हानि होवे ॥ २२ ॥

समख्य इत्यस्य वत्स ऋषिः । वाग्विद्युतौ देवते आस्तारपंक्तिश्छन्दः ।
पंचमः स्वरः ॥

इन दोनों का किस प्रकार उपयोग करना चाहिये इस विषय का उपदेश
अगले मन्त्र में किया है।

समख्ये देव्या धिया सं दक्षिणयोरुचक्षसा । मा मऽआयुः प्रमोषीर्मोऽअहं तव वीरं विदेय तव देवि संदृशि ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् मनुष्य ! जैसे (अहम्) मैं (दक्षिणया) ज्ञानसाधक अज्ञाननाशक (उरुचक्षसा) बहुत प्रकट वचन वा दर्शनयुक्त (देव्या) देदीप्यमान (धिया) प्रज्ञा वा कर्म से (तव) उस (देवि) सर्वोत्कृष्ट गुणों से युक्त वाणी वा बिजुली के (संदृशि) अच्छे प्रकार देखने योग्य व्यवहार में जावन को (समख्ये) कथन से प्रकट करता हूँ वह (मे) मेरे (आयुः) जीवन को (मा प्रमोषीः) नाश न करे उस को मैं अविद्या से (मो) नष्ट न करूँ (तव) हे सब के मित्र ! अन्याय से आप के (वीरम्) शूरवीर को (मा सविदेय) प्राप्त न होऊँ वैसे ही तू भी पूर्वोक्त सब करने अन्याय से मेरे शूरवीरो को प्राप्त मत हो ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि शुद्ध कर्म वा प्रज्ञा से वाणा वा बिजुली की विद्या को ग्रहण कर उमर का बढ़ा और विद्यादि उत्तम-उत्तम गुणों में अपने सतान और वारो को सपादन करके सदा सुखी रहें । २३ ॥

एष त इत्यस्य वत्स ऋषिः । यज्ञो देवता । पूर्वस्य ब्राह्मी जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥ अन्त्यस्य दशाक्षरस्य याजुषी पंक्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

किस के प्रतिपादन के लिये ज्ञान की इच्छा करने हारा विद्वानों को पूछे
इस विषय का उपदेश अगले मत्र में किया है ॥

एष ते गायत्रो भागऽइति मे सोमाय ब्रूतादेष ते त्रैष्टुभो भागऽइति मे सोमाय ब्रूतादेष ते जागतो भागऽइति मे सोमाय ब्रूताच्छन्दोनामानाᳬ साम्राज्यङ्गच्छेति मे सोमाय ब्रूतात् । आस्माकोऽसि शुक्रस्ते ग्रह्यो विचितस्त्वा विचिन्वन्तु ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् मनुष्य ! तू कौन इस यज्ञ का (गायत्रः) वेदस्थ गायत्री छन्दयुक्त मन्त्रों के समूहों से प्रतिपादित (भागः) सेवने योग्य भाग है (इति) इस प्रकार विद्वान् से पूछ । जैसे वह विद्वान् (ते) तुझ को उस यज्ञ का यह प्रत्यक्ष भाग है (इति) इसी प्रकार से (सोमाय) पदार्थविद्या संपादन करने वाले (मे) मेरे लिये (ब्रूतात) कहे । तू कौन इस यज्ञ का (त्रैष्टुभः) त्रिष्टुप् छन्द से प्रतिपादित (भागः) भाग है (इति) इसी प्रकार विद्वान् से पूछ । जैसे वह (ते) तुझ को उस यज्ञ का (एषः) यह भाग है (इति) इसी प्रकार

प्रत्यक्षता से समाधान (सोमाय) उत्तम रस के संपादन करने वाले (मे) मेरे लिये (ब्रूतात्) कहे । तू कौन इस यज्ञ का (जागतः) जगती छन्द से कथित (भागः) अंश है (इति) इस प्रकार आप्त से पूछ । जैसे वह (ते) तुझ को उस यज्ञ का (एषः) यह प्रसिद्ध भाग है (इति) इसी प्रकार (सोमाय) पदार्थविद्या को संपादन करने वाले (मे) मेरे लिये उत्तर (ब्रूतात्) कहे । जैसे आप (छन्दोनामानाम्) उष्णिक आदि छन्दों के मध्य में कहे हुए यज्ञ के उपदेश में (साम्राज्यम्) भले प्रकार राज्य को (गच्छ) प्राप्त हो (इति) इसी प्रकार (सोमाय) ऐश्वर्य्ययुक्त (मे) मेरे लिये सार्वभौम राज्य की प्राप्ति होने का उपाय (ब्रूतात) कहिये और जिस कारण आप (आस्माकः) हम लोगों को (शुक्रः) पवित्र करने वाले उपदेशक (असि) हैं वैसे मैं (ते) आपके (ग्रह्यः) ग्रहण करने योग्य (विचितः) उत्तम-उत्तम धनादि द्रव्य और गुणों से संयुक्त शिष्य हूं । आप मुझ को सब गुणों से बढ़ाइये इस कारण मैं (त्वा) आपको बुद्धियुक्त करता हूँ और सब मनुष्य (त्वा) आप वा इस यज्ञ तथा मुझको (विचिन्वन्तु) वृद्धियुक्त करें ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य लोग विद्वानों से पूछकर सब विद्याओं का ग्रहण करें तथा विद्वान् लोग इन विद्याओं का यथावत् ग्रहण करावें । परस्पर अनुग्रह करने वा कराने से सब वृद्धियों को प्राप्त होकर विद्या और चक्रवर्त्ति आदि राज्य को सेवन करें ॥ २४ ॥

अभि त्यमित्यस्य वत्स ऋषिः । सविता देवता । पूर्वस्य विराट् ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । सुक्रतुरित्युत्तरस्य निचृदार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर अगले मंत्र में ईश्वर, राजसभा और प्रजा के गुणों का उपदेश किया है ॥

अभि त्यं देवꣳ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवꣳ रत्नधामभि प्रियं मतिं कविम् । ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भाऽअदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत । सुक्रतुः कृपा स्वः । प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वाऽनुप्राणन्तु प्रजास्त्वमनुप्राणिहि ॥२५॥

पदार्थः—मैं (यस्य) जिस सच्चिदानन्दादिलक्षणयुक्त परमेश्वर, धार्मिक सभापति और प्रजाजन के (सवीमनि) उत्पन्न हुए संसार में (ऊर्ध्वा) उत्तम (अमतिः) स्वरूप (भाः) प्रकाशमान (अदिद्युतत्) प्रकाशित हुआ है । जिसकी (कृपा) करुणा (स्वः) सुख को करती है (हिरण्यपाणिः) जिसने सूर्य्यादि ज्योति व्यवहार में उत्तम गुण कर्मों को युक्त किया हो (सुक्रतुः) जिस उत्तम प्रज्ञा वा कर्मयुक्त ईश्वर, सभा-स्वामी और प्रजाजन ने (स्वः) सूर्य्य और सुख को (अमिमीत) स्थापित किया हो (त्यम्) उस (ओण्योः) द्यावापृथिवी वा (सवितारम्) अग्नि आदि को उत्पन्न और संप्रयोग करने तथा (कविक्रतुम्) सर्वज्ञ वा क्रान्तदर्शन (रत्नधाम्) रमणीय रत्नों को धारण करने (सत्यसवम्) सत्य ऐश्वर्य्ययुक्त (प्रियम्) प्रीतिकारक (मतिम्) वेदादि शास्त्र वा विद्वानों के मानने योग्य (कविम्) वेदविद्या का उपदेश करने तथा (देवम्) सुख देने वाले परमेश्वर, सभाध्यक्ष और प्रजाजन का

(अर्चामि) पूजन करता हूँ वा जिस (त्वा) आपको (प्रजाभ्यः) उत्पन्न हुई सृष्टि से पूजित करता हूँ। उस आप की सृष्टि में (प्रजाः) मनुष्य आदि (अनुप्राणन्तु) आयु का भोग करें (त्वम्) और आप कृपा करके (प्रजाः) प्रजा के ऊपर जीवों के अनुकूल (अनुप्राणिहि) अनुग्रह कीजिये ॥ २५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को सब जगत् के उत्पन्न करने वाले निराकार, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त परमेश्वर, धार्मिक सभापति और प्रजाजन समूह ही का सत्कार करना चाहिये उन से भिन्न और किसी का नहीं। विद्वान् मनुष्यों को योग्य है कि प्रजा-पुरुषों के सुख के लिये इस परमेश्वर की स्तुतिप्रार्थनोपासना और श्रेष्ठ सभापति तथा धार्मिक प्रजाजन के सत्कार का उपदेश नित्य करें जिससे सब मनुष्य उन की आज्ञा के अनुकूल सदा वर्त्तते रहें और जैसे प्राण में सब जीवों की प्रीति होती है वैसे पूर्वोक्त परमेश्वर आदि में भी अत्यन्त प्रेम करें ॥ २५ ॥

शुक्रं त्वेत्यस्य वत्स ऋषिः। यज्ञो देवता। भुरग्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः॥

मनुष्यों को क्या-क्या साधन करके यज्ञ को सिद्ध करना चाहिये
इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

शुक्रं त्वा शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रं चन्द्रेणामृतममृतेन। सग्मे ते गोरस्मे ते चन्द्राणि तपसस्तनूरसि। प्रजापतेर्वर्णः परमेण पशुना क्रीयसे सहस्रपोषं पुषेयम् ॥ २६ ॥

पदार्थः—जैसे (सग्मे) पृथिवी के साथ वर्त्तमान यज्ञ में (तपसः) प्रतापयुक्त अग्नि वा तपस्वी अर्थात् धर्मात्मा विद्वान् का (तनूः) शरीर (असि) है। उस को शिल्पविद्या वा सत्योपदेश की सिद्धि के अर्थ (पशुना) विक्रय किये हुए गौ आदि पशुओं करके धन आदि सामग्री से ग्रहण करके (प्रजापतेः) प्रजा के पालनहेतु सूर्य्य का (वर्णः) स्वीकार करने योग्य तेज (क्रीयसे) क्रय होता है उस (सहस्रपोषम्) असंख्यात पुष्टि को प्राप्त होके मैं (पुषेयम्) पुष्ट होऊँ। हे विद्वान् मनुष्य! जो (ते) आपको (गोः) पृथिवी के राज्य के सकाश से (चन्द्राणि) सुवर्ण आदि धातु प्राप्त हैं वे (अस्मे) हम लोगों के लिये भी हों जैसे मैं (परमेण) उत्तम (शुक्रेण) शुद्ध भाव से (शुक्रम्) शुद्धिकारक यज्ञ (चन्द्रेण) सुवर्ण से (चन्द्रम्) सुवर्ण और (अमृतेन) नाशरहित विज्ञान से (अमृतम्) मोक्षसुख को (क्रीणामि) ग्रहण करता हूँ वैसे तू भी (त्वा) उसको ग्रहण कर ॥ २६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि शरीर मन वाणी और धन से परमेश्वर की उपासना आदि लक्षणयुक्त यज्ञ का निरन्तर अनुष्ठान करके असंख्यात अतुल पुष्टि को प्राप्त करें॥ २६ ॥

मित्रो न इत्यस्य वत्स ऋषिः। विद्वान् देवता। भुरिग्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः।

मनुष्यों को विद्वान् मनुष्य के साथ और विद्वान् को सब मनुष्यों के संग कैसे वर्त्तना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मित्रो नऽएहि सुमित्रधऽइन्द्रस्योरुमाविश दक्षिणमुशन्नुशन्तँ स्योनः स्योनम् । स्वान भ्राजाङ्घारे बम्भारे हस्त सुहस्त कृशानवेते वः सोमक्रयणास्तान्रक्षध्वं मा वो दभन् ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (स्वान) उपदेश करने (भ्राज) प्रकाश को प्राप्त होने (अंघारे) छल के शत्रु (बम्भारे) विचार-विरोधियों के शत्रु (हस्त) प्रसन्न (सुहस्त) अच्छे प्रकार हस्तक्रिया को जानने और (कृशानो) दुष्टों को कृश करने (सुमित्रधः) उत्तम मित्रों को धारण करने (मित्रः) सब के मित्र (स्योनः) सुख की (उशन्) कामना करने हारे सभाध्यक्ष ! आप (नः) हम लोगों को (आ इहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये तथा (दक्षिणम्) उत्तम अङ्गयुक्त (उरुम्) बहुत उत्तम पदार्थों से युक्त वा स्वीकार करने योग्य (उशंतम्) कामना करने योग्य (स्योनम्) सुख को (आविश) प्रवेश कीजिये । हे सभाध्यक्षो ! (एते) जो (इन्द्रस्य) परमैश्वर्ययुक्त सभाध्यक्ष विद्वान् के (सोमक्रयणाः) सोम अर्थात् उत्तम पदार्थों का क्रय करने हारे प्रजा और भृत्य आदि मनुष्य (वः) तुम लोगों की रक्षा करें और आप लोग भी उनकी (रक्षध्वम्) रक्षा सदा किया करो । जैसे वे शत्रु लोग (तान्) उन (वः) तुम लोगों की हिंसा करने में समर्थ (मा दभन्) न हों वैसे ही सम्यक् प्रीति से परस्पर मिल के वर्त्तो ॥ २७ ॥

भावार्थः—राज्य और प्रजापुरुषों को उचित है कि परस्पर प्रीति, उपकार और धर्मयुक्त व्यवहार में यथावत् वर्त्तें, शत्रुओं का निवारण, अविद्या वा अन्यायरूप अन्धकार का नाश और चक्रवर्ति राज्य आदि का पालन करके सदा आनन्द में रहें ॥ २७ ॥

परि माग्न इत्यस्य वत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । पूर्वार्द्धस्य साम्नी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । उत्तरार्द्धस्य साम्न्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

सब मनुष्यों को उचित है कि सब करने योग्य उत्तम कर्मों के आरम्भ, मध्य और सिद्ध होने पर परमेश्वर की प्रार्थना सदा किया करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

परि माग्ने दुश्चरिताद्बाधस्वा मा सुचरिते भज । उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृताँ२ऽअनु ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! आप कृपा करके जिस कर्म से मैं (स्वायुषा) उत्तमतापूर्वक प्राण धारण करने वाले (आयुषा) जीवन से (अमृतान्) जीवनमुक्त और मोक्ष को प्राप्त हुए विद्वान् वा मोक्षरूपी आनन्दों को (उदस्थाम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊँ उस से (मा) मुझको संयुक्त करके (दुश्चरितात्) दुष्टाचरण से (उद्बाधस्व) पृथक् करके (मा)

मुझको (सुचरिते) उत्तम-उत्तम धर्माचरणयुक्त व्यवहार में (अन्वाभज) अच्छे प्रकार स्थापन कीजिये ॥ २८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि अधर्म के छोड़ने और धर्म के ग्रहण करने के लिये सत्य प्रेम से प्रार्थना करें क्योंकि प्रार्थना किया हुआ परमात्मा शीघ्र अधर्मों से छुड़ा कर धर्म ही में प्रवृत्त कर देता है परन्तु सब मनुष्यों को यह करना अवश्य है कि जब तक जीवन है तब तक धर्माचरण ही में रहकर संसार वा मोक्षरूपी सुखों को सब प्रकार से सेवन करें ॥ २८ ॥

प्रति पन्थामित्यस्य वत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उस परमेश्वर को प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम् । येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! आप के अनुग्रह से युक्त पुरुषार्थी होकर हम लोग (येन) जिस मार्ग से विद्वान् मनुष्य (विश्वाः) सब (द्विषः) शत्रु-सेना वा दुःख देने वाली भोगक्रियाओं को (परिवृणक्ति) सब प्रकार से दूर करता और (वसु) सुख करने वाले धन को (विन्दते) प्राप्त होता है उस (अनेहसम्) हिंसारहित (स्वस्तिगाम्) सुख पूर्वक जाने योग्य (पन्थाम्) मार्ग को (प्रत्यपद्महि) प्रत्यक्ष प्राप्त होवें ॥ २९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि द्वेषादि त्याग विद्यादि धन की प्राप्ति और धर्ममार्ग के प्रकाश के लिये ईश्वर की प्रार्थना, धर्म और धार्मिक विद्वानों की सेवा निरन्तर करें ॥ २९ ॥

अदित्यास्त्वगसीत्यस्य वत्स ऋषिः । वरुणो देवता । पूर्वस्य स्वराड्याजुषी त्रिष्टुप् छन्दः । अस्तभ्नादित्यन्तस्यार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अगले मन्त्र में ईश्वर, सूर्य्य और वायु के गुणों का उपदेश किया है ॥

अदित्यास्त्वगस्यदित्यै सदऽआसीद । अस्तभ्नाद् द्यां वृषभोऽअन्तरिक्षममिमीत वरिमाणम्पृथिव्याः । आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! जिससे (वृषभः) श्रेष्ठ गुणयुक्त आप (अदित्याः) पृथिवी के (त्वक्) आच्छादन करने वाले (असि) हैं (अदित्यै) पृथिवी आदि सृष्टि के लिये (सदः) स्थापन करने योग्य (आसीद) व्यवस्था को स्थापन करते वा (द्याम्) सूर्य्य आदि को (अस्तभ्नात्) धारण करते (वरिमाणम्) अत्यन्त उत्तम (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (अमिमीत) रचते और (सम्राट्) अच्छे प्रकार प्रकाश को प्राप्त हुए सब के अधिपति आप (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष के बीच में (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (आसीदत्)

स्थापन करते हो इससे (तान) ये (विश्वा) सब (वरुणस्य) श्रेष्ठरूप (ते) आपके (इत्) ही (व्रतानि) सत्य स्वभाव और कर्म हैं ऐसा हम लोग (अपश्चाहि) जानते हैं ॥ १ ॥ जो (वृषभः) अत्युत्तम (सम्राट्) अपने आप प्रकाशमान सूर्य्य और वायु (आदित्याः) पृथिवी आदि के (त्वक्) आच्छादन करने वाले (असि) हैं, वा (अदित्यै) पृथिवी आदि सृष्टि के लिये (सदः) लोकों को (आसीद) स्थापन (द्याम्) प्रकाश का (अस्तभ्नात्) धारण (वरिमाणम्) श्रेष्ठ (अन्तरिक्षम्) आकाश को (अमिमीत) रचना और (पृथिव्या) आकाश के मध्य में (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों का (आसीदत्) स्थापन करते हैं (तानि) वे (विश्वा) सब (ते) उस (वरुणस्य) सूर्य्य और वायु के (इत्) ही (व्रतानि) स्वभाव और कर्म हैं ऐसा हम लोग (अपश्चाहि) जानते हैं ॥ २ ॥ ३० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार और पूर्व मन्त्र से (अपश्चाहि) इस पद की अनुवृत्ति जाननी चाहिये। जैसा परमेश्वर का स्वभाव है कि सूर्य्य और वायु आदि को सब प्रकार व्याप्त होकर रच कर धारण करता है इसी प्रकार सूर्य्य और वायु का भी प्रकाश और स्थूल लोकों के धारण का स्वभाव है ॥ ३० ॥

वनेष्वित्यस्य वत्स ऋषिः । वरुणो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पयऽउस्रियासु । हृत्सु क्रतुं वरुणो विक्ष्वग्निं दिवि सूर्य्यमदधात् सोममद्रौ ॥ ३१ ॥

पदार्थः—जो (वरुणः) अत्युत्तम, परमेश्वर सूर्य्य वा प्राणवायु हैं वे (वनेषु) किरण वा वनों के (अन्तरिक्षम्) आकाश को (विततान) विस्तारयुक्त किया वा करता (अर्वत्सु) अत्युत्तम वेगादि गुणयुक्त विद्युत् आदि पदार्थ और घोड़े आदि पशुओं में (वाजम्) वेग (उस्रियासु) गौओं में (पयः) दूध (हृत्सु) हृदयों में (क्रतुम्) प्रज्ञा वा कर्म (विक्षु) प्रजा में (अग्निम्) अग्नि (दिवि) प्रकाश में (सूर्य्यम्) आदित्य (अद्रौ) पर्वत वा मेघ में (सोमम्) सोमवल्ली आदि ओषधी और श्रेष्ठ रस को (अदधात्) धारण किया करते हैं, उसी ईश्वर की उपासना और उन्हीं दोनों का उपयोग करें ॥ ३१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे परमेश्वर अपनी विद्या का प्रकाश और जगत् की रचना से सब पदार्थों में उनके स्वभावयुक्त गुणों को स्थापन और विज्ञान आदि गुणों को नियत करके पवन, सूर्य आदि को विस्तारयुक्त करता है वैसे सूर्य्य और वायु भी सब के लिये सुखों का विस्तार करते हैं ॥ ३१ ॥

सूर्य्यस्य चक्षुरित्यस्य वत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सूर्य्यस्य चक्षुरारोहाग्नेरक्ष्णः कनीनकम्। यत्रैतशेभिरीयसे भ्राजमानो विपश्चिता॥ ३२॥

पदार्थः—हे परमेश्वर! (यत्र) जहाँ आप (एतशेभिः) विज्ञान आदि गुणों से (भ्राजमानः) प्रकाशमान (विपश्चिता) मेधावी विद्वान् से (ईयसे) विज्ञात होते हो वा जहाँ प्राणवायु वा बिजुली (एतशेभिः) वेगादि गुण वा (विपश्चिता) विद्वान् से (भ्राजमानः) प्रकाशित होकर (ईयसे) विज्ञात होते हैं और जहाँ आप प्राण तथा बिजुली (सूर्य्यस्य) सूर्य्य वा बिजुली और (अग्नेः) भौतिक अग्नि के (अक्ष्णः) देखने के साधन (कनीनकम्) प्रकाश करने वाले (चक्षुः) नेत्रों को (आरोह) देखने के लिये कराते वा कराती है, वहीं हम लोग आप की उपासना और उन दोनों का उपयोग करें॥ ३२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि जैसे विद्वान् लोग ईश्वर, प्राण और बिजुली के गुणों को जान, उपासना वा कार्य्यसिद्धि करते हैं वैसे ही उनको जानकर उपासना और अपने प्रयोजनों को सदा सिद्ध करते रहें॥ ३२॥

उस्रावेतमित्यस्य वत्स ऋषिः। सूर्य्यविद्वांसौ देवते। पूर्वस्य निचृदार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। स्वस्तीत्यन्तस्य याजुषी जगती छन्दः। निषादः स्वरः।

अब सूर्य्य और विद्वान् कैसे हैं और उन से शिल्पविद्या के जानने वाले क्या करें सो अगले मन्त्र में कहा है॥

उस्रावेतं धूर्षाहौ युज्येथामनश्रूऽअवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ। स्वस्ति यजमानस्य गृहान् गच्छतम्॥ ३३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे विद्या और शिल्पक्रिया को प्राप्त होने की इच्छा करने वाले (ब्रह्मचोदनौ) अन्न और विज्ञान प्राप्ति के (अनश्रू) अव्यापी (अवीरहणौ) वीरों का रक्षण करने (उस्रौ) ज्योतियुक्त और निवास के हेतु (धूर्षाहौ) पृथिवी और धर्म के भार को धारण करने वाले विद्वान् (आ इतम्) सूर्य्य और वायु को प्राप्त होते वा (युज्येथाम्) युक्त करते और (यजमानस्य) धार्मिक यजमान के (गृहान्) घरों को (स्वस्ति) सुख से (गच्छतम्) गमन करते हैं वैसे तुम भी उनको युक्ति से संयुक्त कर के कार्यों को सिद्ध किया करो॥ ३३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे सूर्य्य और विद्वान् सब पदार्थों को धारण करने हारे सहनयुक्त और प्राप्त होकर सुखों को प्राप्त कराते हैं वैसे ही शिल्पविद्या के जानने वाले विद्वान् से यानों में युक्ति से सेवन किये हुए अग्नि और जल सवारियों को चला के सर्वत्र सुखपूर्वक गमन कराते हैं॥ ३३॥

भद्रो मेऽसीत्यस्य वत्स ऋषिः। यजमानो देवता। पूर्वस्य भुरिगार्ची गायत्री छन्दः षड्जः स्वरः। मा त्वेत्यस्य भुरिगार्ची बृहती छन्दः।

मध्यमः स्वरः। श्येनो भूत्वेत्यस्य विराडार्च्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।

उस यान से विद्वान् को क्या-क्या करना चाहिये है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

भद्रो मेऽसि प्रच्यवस्व भुवस्पते विश्वान्यभि धामानि। मा त्वा परिपरिणो विदन् मा त्वा परिपन्थिनो विदन् मा त्वा वृकाऽअघायवो विदन्। श्येनो भूत्वा परापत यजमानस्य गृहान् गच्छ तन्नौ सँस्कृतम् ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे (भुवः) पृथिवी के (पते) पालन करने वाले विद्वान् मनुष्य ! तू (मे) मेरे (भद्रः) कल्याण करने वाला बन्धु (असि) है सो तू (नौ) मेरा और तेरा (संस्कृतम्) संस्कार किया हुआ यान है (तत्) उससे (विश्वानि) सब (धामानि) स्थानों को (अभि प्रच्यवस्व) अच्छे प्रकार जा जिससे सब जगह जाते हुए (त्वा) तुझ को जैसे (परिपरिणः) छल से रात्रि में दूसरे के पदार्थों को ग्रहण करने वाले (वृकाः) चोर (मा विदन्) प्राप्त न हों और परदेश को जाने वाले (त्वा) तुझ को जैसे (परिपन्थिनः) मार्ग में लूटने वाले डाकू (मा विदन्) प्राप्त न होवें जैसे परमैश्वर्य्ययुक्त (त्वा) तुझ को (अघायवः) पाप की इच्छा करने वाले दुष्ट मनुष्य (मा विदन्) प्राप्त न हों वैसा कर्म सदा किया कर (श्येनः) श्येन पक्षी के समान वेगबलयुक्त (भूत्वा) होकर उन दुष्टों से (परापत) दूर रह और इन दुष्टों को भी दूर कर ऐसी क्रिया कर के (यजमानस्य) धार्मिक यजमान के (गृहान्) घर वा देश-देशान्तरों को (गच्छ) जा कि जिस से मार्ग में कुछ भी दुःख न हो ॥ ३४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम-उत्तम विमान आदि यानों को रच, उन में बैठ, उन को यथायोग्य चला, श्येन पक्षी के समान द्वीप वा देश-देशान्तर को जा, धनों को प्राप्त करके वहाँ से आ और दुष्ट प्राणियों से अलग रह कर सब काल में स्वयं सुखों का भोग करें और दूसरों को करावें ॥ ३४ ॥

नमो मित्रस्येत्यस्य वत्स ऋषिः। सूर्य्यो देवता। निचृदार्षी गायत्री छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर ईश्वर और सूर्य्य कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतꣳ सपर्य्यत। दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्य्याय शꣳसत ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग जो (मित्रस्य) सब के सुहृत् (वरुणस्य) श्रेष्ठ (दिवः) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर का (ऋतम्) सत्य स्वरूप है (तत्) उस चेतन की सेवा

करते हैं। वैसे तुम भी उस का सेवन सदा (सपर्य्यत) किया करो और जैसे उस (महः) बड़े (दूरेदृशे) दूरस्थित पदार्थों को दिखाने (चक्षसे) सब को देखने (देवजाताय) दिव्य गुणों से प्रसिद्ध (केतवे) विज्ञानस्वरूप (देवाय) दिव्यगुणयुक्त (पुत्राय) पवित्र करने वाले (सूर्य्याय) चराचरात्मा परमेश्वर को (नमः) नमस्कार करते हैं वैसे तुम भी (प्रशंसत) उसकी स्तुति किया करो ॥ १ ॥ हे मनुष्यो ! जो (मित्रस्य) प्रकाश (वरुणस्य) श्रेष्ठ (दिवः) प्रकाशस्वरूप सूर्य्यलोक का (ऋतम्) यथार्थ स्वरूप है (तत्) उस प्रकाशस्वरूप को तुम भी विद्या से (सपर्य्यत) सेवन किया करो। जैसे हम लोग जिस (चक्षसे) सब के दिखाने (देवजाताय) दिव्य गुणों से प्रसिद्ध (केतवे) ज्ञान कराने, अग्नि के (पुत्राय) पुत्र (दूरेदृशे) दूर स्थित हुए पदार्थों को दिखाने (महः) बड़े (देवाय) दिव्यगुण वाले (सूर्य्याय) सूर्य्य के लिये प्रवृत्त होओ ॥ ३५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को जिसकी कृपा वा प्रकाश से चोर डाकू आदि अपने कार्य्यों से निवृत्त हो जाते हैं उसी की प्रशंसा और गुणों की प्रसिद्धि करनी और परमेश्वर के समान समर्थ वा सूर्य्य के समान कोई लोक नहीं है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ३५ ॥

वरुणस्येत्यस्य वत्स ऋषिः। सूर्य्यो देवता। विराड्ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वरु॑णस्योत्तम्भ॑नमसि वरु॑णस्य स्कम्भसर्ज॑नीस्थो वरु॑णस्यऽऋत॒सद॑न्यसि वरु॑णस्यऽऋत॒सद॑नमसि वरु॑णस्यऽऋत॒सद॑नमासी॑द ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! जिस से आप (वरुणस्य) उत्तम जगत् के (उत्तम्भनम्) अच्छे प्रकार प्रतिबन्ध करने वाले (असि) हैं। जो (वरुणस्य) वायु के (स्कम्भसर्जनी) आधाररूपी पदार्थों के उत्पन्न करने (वरुणस्य) सूर्य्य के (ऋतसदनी) जलों का गमनागमन करने वाली क्रिया (स्थः) हैं उनको धारण किये हुए हैं (वरुणस्य) उत्तम (ऋतसदनम्) पदार्थों का स्थान (असि) हैं (वरुणस्य) उत्तम (ऋतसदनम्) सत्यरूपी बोधों के स्थान को (आसीद) अच्छे प्रकार प्राप्त कराते हैं इससे आपका आश्रय हम लोग करते हैं ॥ १ ॥ जो (वरुणस्य) जगत् का (उत्तम्भनम्) धारण करने वाला (असि) है। जो (वरुणस्य) वायु के (स्कम्भसर्जनी) आधारों को उत्पन्न करने वा जो (वरुणस्य) सूर्य्य के (ऋतसदनी) जलों का गमनागमन कराने वाली क्रिया (स्थः) हैं उनका धारण करने तथा जो (वरुणस्य) उत्तम (ऋतसदनम्) सत्य पदार्थों का स्थानरूप (असि) है वह (वरुणस्य) उत्तम (ऋतसदनम्) पदार्थों के स्थान को (आसीद) अच्छे प्रकार प्राप्त और धारण करता है, उसका उपयोग क्यों न करना चाहिये ॥ ३६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। कोई परमेश्वर के विना सब जगत् के रचने वा धारण, पालन और जानने को समर्थ नहीं हो सकता और कोई सूर्य्य के विना भूमि आदि जगत्

के प्रकाश और धारण करने को भी समर्थ नहीं हो सकता। इस से सब मनुष्यों को ईश्वर की उपासना और सूर्य्य का उपयोग करना चाहिये ॥ ३६ ॥

या ते धामानीत्यस्य गोतम ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर ये कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम्।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्रचरा सोम दुर्य्यान् ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर जैसे विद्वान् लोग (या) जिन (ते) आप के (धामानि) स्थानों को (हविषा) देने लेने योग्य द्रव्यों से (यजन्ति) सत्कारपूर्वक ग्रहण करते हैं वैसे हम लोग भी (ता) उन विश्वा) सभों को ग्रहण करें जैसे (ते) आप का वह यज्ञ विद्वानों को (गयस्फानः) अपत्य धन और घरों के बढ़ाने (प्रतरणः) दुःखों से पार करने (सुवीरः) उत्तम वीरों का योग कराने (अवीरहा) कायर दरिद्रतायुक्त अवीर अर्थात् पुरुषार्थरहित मनुष्य और शत्रुओं को मारने तथा (परिभूः) सब प्रकार से सुख कराने वाला है वैसे वह आप की कृपा से हम लोगों के लिये (अस्तु) हो वा जिसको विद्वान् लोग (यजन्ति) यजन करते हैं उस (यज्ञम्) यज्ञ को हम लोग भी करें। हे (सोम) सोमविद्या को संपादन करने वाले विद्वन्! जैसे हम लोग इस यज्ञ को करके घरों में आनन्द करें, जानें, इस में कर्म करें, वैसे तू भी इस को करके (दुर्य्यान्) घरों में (प्रचर) सुख का प्रचार कर, जान और अनुष्ठान कर ॥ ३७ ॥

भावार्थः—इन मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग ईश्वर में प्रीति संसार में यज्ञ के अनुष्ठान को करते हैं वैसा ही सब मनुष्यों को करना उचित है ॥ ३७ ॥

इस अध्याय में शिल्पविद्या, वृष्टि की पवित्रता का सम्पादन, विद्वानों का सङ्ग, यज्ञ का अनुष्ठान, उत्साह आदि की प्राप्ति, युद्ध का करना, शिल्पविद्या की स्तुति, यज्ञ के गुणों का वर्णन, सत्यव्रत का धारण, अग्नि, जल के गुणों का वर्णन, पुनर्जन्म का कथन, ईश्वर की प्रार्थना, यज्ञानुष्ठान, माता पिता और पुत्रादिकों का आपस में अनुकरण, यज्ञ की व्याख्या, दिव्य बुद्धि की प्राप्ति, परमेश्वर का अर्चन, सूर्य्यगुण वर्णन, पदार्थों के क्रय विक्रय का उपदेश, मित्रता करना, धर्ममार्ग में प्रचार करना, परमेश्वर वा सूर्य्य के गुणों का प्रकाश, चोर आदि का निवारण, ईश्वर सूर्य्यादि गुण वर्णन और यज्ञ का फल कहा है। इस से इस अध्यायार्थ की तीसरे अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये। ऊवट और महीधर आदि ने इस अध्याय का भी शब्दार्थ विरुद्ध ही वर्णन किया है।

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥

❁ अथ पञ्चमाध्यायारम्भः ❁

अब चौथे अध्याय की पूर्ति के पश्चात् पांचवें अध्याय के भाष्य का आरंभ किया जाता है ॥

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒ता॒नि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥ १ ॥

यजु० ३० । ३ ॥

अग्नेस्तनूरित्यस्य गोतम ऋषिः । विष्णुर्देवता । स्वराड्ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

किस किस प्रयोजन के लिये यज्ञ का अनुष्ठान करना योग्य है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अ॒ग्नेस्त॒नूर॑सि॒ विष्ण॑वे त्वा॒ सोम॑स्य त॒नूर॑सि॒ विष्ण॑वे॒ त्वाऽति॑थेराति॒थ्यम॑सि॒ विष्ण॑वे त्वा श्ये॒नाय॑ त्वा सोम॒भृ॒ते॒ विष्ण॑वे त्वा॒ऽग्नये॑ त्वा रायस्पोष॒दे विष्ण॑वे त्वा ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे मैं जो हवि (अग्नेः) बिजुली प्रसिद्ध रूप अग्नि के (तनूः) शरीर के समान (असि) है (त्वा) उसको (विष्णवे) यज्ञ की सिद्धि के लिये स्वीकार करता हूं जो (सोमस्य) जगत् में उत्पन्न हुए पदार्थ-समूह की (तनूः) विस्तारपूर्वक सामग्री (असि) है (त्वा) उसको (विष्णवे) वायु की शुद्धि के लिये उपयोग करता हूं जो (अतिथेः) संन्यासी आदि का (आतिथ्यम्) अतिथिपन वा उनकी सेवारूप कर्म (असि) है (त्वा) उसको (विष्णवे) विज्ञान-यज्ञ की प्राप्ति के लिये ग्रहण करता हूं जो (श्येनाय) श्येनपक्षी के समान शीघ्र जाने के लिये (असि) है (त्वा) उस द्रव्य को अग्नि आदि में छोड़ता हूं जो (विष्णवे) सब विद्या कर्मयुक्त (सोमभृते) सोमों को धारण करने वाले यजमान के लिये सुख (असि) है (त्वा) उसको ग्रहण करता हूं । जो (अग्नये) अग्नि बढ़ाने के लिये काष्ठ आदि हैं (त्वा) उसको स्वीकार करता हूं । जो (रायस्पोषदे) धन की पुष्टि देने वा (विष्णवे) उत्तम कर्म विद्या की व्याप्ति के लिये समर्थ पदार्थ हैं (त्वा) उसको ग्रहण करता हूं वैसे इन सब का सेवन तुम भी किया करो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को उचित है कि पूर्वोक्त फल की प्राप्ति के लिये तीन प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करें ॥ १ ॥

अग्नेर्जनित्रमित्यस्य गोतम ऋषिः । विष्णुर्यज्ञो देवता । पूर्वस्यार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः । गामत्रेत्युत्तरस्यार्ची त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह यज्ञ कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्नेर्जनित्रमसि वृषणौ स्थऽउर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवाऽअसि । गायत्रेण त्वा छन्दसा मन्थामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा मन्थामि जागतेन त्वा छन्दसा मन्थामि ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जैसे मैं जो (अग्ने) आग्नेय अस्त्रादि की सिद्धि करने हारे अग्नि के (जनित्रम्) उत्पन्न करने वाला हवि (असि) है (वृषणौ) जो वर्षा कराने वाले सूर्य्य और वायु (स्थः) हैं जो (उर्वशी) बहुत सुखों के प्राप्त कराने वाली क्रिया (असि) है जो (आयुः) जीवन (असि) है जो (पुरूरवाः) बहुत शास्त्रों के उपदेश करने का निमित्त (असि) है (त्वा) उस अग्नि (गायत्रेण) गायत्री (छन्दसा) आनन्दकारक स्वच्छन्द क्रिया से (मन्थामि) विलोडन करता हूं (त्वा) उस सोम आदि ओषधीसमूह (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् (छन्दसा) छन्द से (मन्थामि) विलोडन करता हूं (त्वा) और उस शत्रु दुःखसमूह को (जागतेन) जगती (छन्दसा) छन्द से (मन्थामि) ताड़न करके निवारण करता हूं वैसे ही तुम भी किया करो ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को योग्य है कि इस प्रकार की रीति से प्रतिपादन वा सेवन किये हुए यज्ञ से दूसरे मनुष्यों के लिये परोपकार करें ॥ २ ॥

भवतं न इत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । आर्षीपंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

यजमान और यज्ञ की सिद्धि करने वाले विद्वान् कैसे होने चाहियें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥ ३ ॥

पदार्थः—जो (अरेपसौ) प्राकृत मनुष्यों के भाषारूपी वचन से रहित (समनसौ) तुल्य विज्ञानयुक्त (सचेतसौ) तुल्य ज्ञानज्ञापनयुक्त (जातवेदसौ) वेद और उपविद्याओं को सिद्ध किये हुए पढ़ने पढ़ाने वाले विद्वान् (नः) हम लोगों के लिये उपदेश करने वाले (भवतम्) होवें। जो (यज्ञम्) पढ़ने पढ़ाने रूप यज्ञ वा (यज्ञपतिम्) विद्याप्रद यज्ञ के पालन करने वाले यजमान को (मा हिंसिष्टम्) न पीड़ित करें। वे (अद्य) आज (नः) हम लोगों के लिये (शिवौ) मङ्गल करने वाले (भवतम्) होवें ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि विद्याप्रचार के लिये पढ़ना पढ़ाना वा मङ्गलाचरण को न छोड़ें क्योंकि यही सर्वोत्तम कर्म है ॥ ३ ॥

अग्नावग्निरित्यस्य गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षीत्रिष्टुप् छन्दः ।
अत्र महीधरेण विराडित्यशुद्धं व्याख्यातम् ॥

विद्युत् और विद्वान् अग्नि कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्नावग्निश्चरति प्रविष्टऽऋषीणां पुत्रोऽअभिशस्तिपावा । स नः स्योनः सुयजा यजेह देवेभ्यो हव्यꣳ सदमप्रयुच्छन्त्स्वाहा ॥ ४ ॥

पदार्थः—जो (अभिशस्तिपावा) सब प्रकार हिंसा करने वालों से रहित (अग्नौ) विद्युत अग्नि की विद्या में (प्रविष्टः) प्रवेश करने कराने (ऋषीणाम्) वेदादि शास्त्रों के शब्द अर्थ और सम्बन्धों को यथावत जनाने वालों का (पुत्रः) पढ़ा हुआ (स्योनः) सर्वथा सुखकारी (सुयजा) विद्याओं को अच्छी प्रकार प्रत्यक्ष संग कराने हारा (अग्निः) प्रकाशात्मा (अप्रयुच्छन्) प्रमाद रहित अध्यापक विद्वान् (चरति) जो (नः) हम लोगों के लिये (इह) इस संसार में (देवेभ्यः) विद्वान् वा दिव्य गुणों से (हव्यम्) लेने देने योग्य पदार्थ वा (सदम्) ज्ञान और (स्वाहा) हवन करने योग्य उत्तम अन्नादि को प्राप्त करता है (सः) सो आप (यज) सब विद्याओं को प्राप्त कराइये ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि जो अग्नि कार्य्य कारण के भेद से दो प्रकार का निश्चित अर्थात् जो कार्य्यरूप से सूर्यादि और कारण रूप से विद्युत् अग्नि सब मूर्त्तिमान् द्रव्यों में प्रवेश कर रहा है उसका इस संसार में विद्या से संप्रयोग कर कार्यों में उपयोग करना चाहिये ॥ ४ ॥

आपतये त्वेत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्युद्देवता । पूर्वस्याष्युष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः । अनाधृष्टमित्यग्रस्य भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को किस-किस प्रयोजन के लिये परमात्मा की प्रार्थना, बिजुली का स्वीकार करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

आपतये त्वा परिपतये गृह्णामि तनूनप्त्रे शाक्वराय शक्वनऽओजिष्ठाय । अनाधृष्टमस्यनाधृष्यं देवानामोजोऽनभिशस्त्यभिशस्तिपाऽअनभिशस्तेन्यमञ्जसा सत्यमुपगेषꣳ स्विते मा धाः ॥ ५ ॥

पदार्थः—मैं हे परमात्मन् ! जिस से आप हिंसारूप कर्मों से अलग रहने और रखने वाले हैं इस से (त्वा) आपको (आपतये) सब प्रकार से स्वामी होने (परिपतये) सब ओर से रक्षा (शाक्वराय) सब सामर्थ्य की प्राप्ति (शक्वने) शूरवीर-युक्त सेना (ओजिष्ठाय) जिसमें सर्वोत्कृष्ट पराक्रम होता है, उस विद्या के होने और (तनूनप्त्रे) जिस से उत्तम शरीर होता है

उसके लिये (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं । आप अपनी कृपा से उस (देवानाम्) विद्वानों का (अनाधृष्टम्) जिस का अपमान कोई नहीं कर सकता (अनाधृष्यम्) किसी के अपमान करने योग्य नहीं है (अनभिशस्ति) किसी के हिंसा करने योग्य नहीं है (अभिशस्तेन्यम्) अहिंसारूप धर्म की प्राप्ति कराने हारा (सत्यम्) अविनाशी (ओजः) तेज है, उसका ग्रहण कराके (स्विते) अच्छे प्रकार जिस व्यवहार में सब सुख प्राप्त होते हैं, उस में (मा) मुझको (धाः) धारण करें कि जिस से (सत्यम्) सत्य व्यवहार को (उपगेषम्) जान कर करूं ॥ ५ ॥

मैं जो (अनाधृष्टम्) न हटाने (अनाधृष्यम्) न किसी से नष्ट करने (अनभिशस्ति) न हिंसा करने (अनभिशस्तेन्यम्) और हिंसारहित धर्म प्राप्त कराने योग्य (देवानाम्) विद्वान् वा पृथिवी आदिकों के मध्य में (सत्यम्) कारणरूप नित्य (ओजः) पराक्रम स्वरूप वाली (अभिशस्तिपाः) हिंसा से रक्षा का निमित्त रूप बिजुली (असि) है जो (मा) मुझे (स्विते) उत्तम प्राप्त होने योग्य व्यवहार में (धाः) धारण करती है (अञ्जसा) सहजता से (ओजिष्ठाय) अत्यन्त तेजस्वी (आपतये) अच्छे प्रकार पालन करने योग्य व्यवहार (परिपतये) जिस में सब प्रकार पालन करने वाले होते हैं (तनूनप्त्रे) जिस से उत्तम शरीरों को प्राप्त होते हैं (शाक्वराय) शक्ति के उत्पन्न करने और (शक्वने) शक्ति वाली वीरसेना की प्राप्ति के लिये है (त्वा) उसको (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं कि जिससे उन सत्य कारणरूप पदार्थों को (उपगेषम्) जान सकूं ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को परमेश्वर के विज्ञान के बिना सत्य सुख और बिजुली आदि विद्या और क्रियाकुशलता के बिना संसार के सब सुख नहीं हो सकते, इसलिये यह कार्य्य पुरुषार्थ से सिद्ध करना चाहिये ॥ ५ ॥

अग्ने व्रतपा इत्यस्य गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह परमात्मा और बिजुली कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्ने॑ व्रतपा॒स्त्वे व्र॑तपा॒ या तव॑ त॒नूरि॒यꣳ सा मयि॒ यो मम॑ त॒नूरे॒षा सा त्वयि॑ । स॒ह नौ॑ व्रतपते व्र॒तान्यनु॑ मे दी॒क्षां दी॒क्षाप॑ति॒र्मन्य॑ता॒मनु॒ तप॒स्तप॑स्पतिः ॥ ६ ॥

पदार्थः—जिसलिये हे (अग्ने) (व्रतपते) जगदीश्वर ! आप वा बिजुली सत्यधर्मादि नियमों के (व्रतपाः) पालन करने वाले हैं इसलिये (त्वे) उस आप वा बिजुली में मैं (व्रतपाः) पूर्वोक्त व्रतों के पालन करने वाली क्रिया वाला होता हूं (या) जो (इयम्) यह (तव) आप और उसकी (तनूः) विस्तृत व्याप्ति है (सा) वह (मयि) मुझ में (यो) जो (एषा) यह (मम) मेरा (तनूः) शरीर है (सा) सो (त्वयि) आप वा उसमें है (व्रतानि) जो ब्रह्मचर्य्यादि व्रत हैं वे मुझ में हों और जो (मे) मुझ में हैं वे (त्वयि)

तुम्हारे में हैं जो आप वा वह (तपस्पतिः) जितेन्द्रियत्वादिपूर्वक धर्मानुष्ठान के पालन निमित्त हैं सो (मे) मेरे लिये (तपः) पूर्वोक्त तप को (अनुमन्यताम्) विज्ञापित कीजिये वा करती है और जो आप वा वह (दीक्षापतिः) व्रतोपदेशों के रक्षा करने वाले हैं सो (मे) मेरे लिये (दीक्षाम्) व्रतोपदेश को (अनुमन्यताम्) आज्ञा कीजिये वा करती है इसलिये भी (नौ) मैं और आप पढ़ने पढ़ाने हारे दोनों प्रीति के साथ वर्त्त कर विद्वान् धार्मिक हों कि जिससे दोनों की विद्यावृद्धि सदा होवे ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को परस्पर प्रेम वा उपकार बुद्धि से परमात्मा वा बिजुली आदि का विज्ञान कर वा कराके धर्मानुष्ठान से पुरुषार्थ में निरन्तर प्रवृत्त होना चाहिये ॥ ६ ॥

अꣳशुरित्यस्य गोतम ऋषिः। सोमो देवता। आद्यस्यार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। आप्यायेत्यन्तस्यार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर वह ईश्वर बिजुली और विद्वान् कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अꣳशुरꣳशुष्टे देव सोमाप्यायतामिन्द्रायैकधनविदे। आ तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामा त्वमिन्द्राय प्यायस्व। आप्याययास्मान्त्सखीन्त्सन्न्या मेधया स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामशीय। एष्टा रायः प्रेषे भगायऽऋतमृतवादिभ्यो नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (सोम) पदार्थविद्या को जानने वा (देव) दिव्यगुणसंपन्न जगदीश्वर! विद्वन्! विद्युद्वा जिससे (ते) आप वा इस विद्युत् का सामर्थ्य (अंशुरंशुः) अवयव अवयव अङ्ग अङ्ग को (आप्यायताम्) रक्षा से बढ़ा अथवा बढ़ाती है (इन्द्रः) जो आप वा बिजुली (एकधनविदे) अर्थात् धर्मविज्ञान से धन को प्राप्त होने वाले (इन्द्राय) परमैश्वर्य्ययुक्त मेरे लिये (आप्यायताम्) बढ़ावे वा बढ़ाती है (आप्यायस्व) वृद्धियुक्त कीजिये वा करती है। वह आप बिजुली आदि पदार्थ के ठीक ठीक अर्थों की प्राप्ति को (सन्न्या) प्राप्ति कराने वाली (मेधया) प्रज्ञा से (अस्मान्) हम (सखीन्) सब के मित्रों को (आप्यायस्व) बढ़ाइये वा बढ़ावे जिससे (स्वस्ति) सुख सदा बढ़ता रहे। (सोम) हे पदार्थविद्या को जानने वाले ईश्वर वा विद्वान्! आप की शिक्षा वा बिजुली की विद्या से युक्त होकर मैं (सुत्याम्) उत्तम उत्तम उत्पन्न करने वाली क्रिया में कुशल होके (इषे) सिद्धि की इच्छा वा अन्न आदि (भगाय) ऐश्वर्य्य के लिये (एष्टाः) अभीष्ट सुखों को प्राप्त कराने वाले (रायः) धनसमूहों को (अशीय) प्राप्त होऊं और (ऋतवादिभ्यः) सत्यवादी विद्वानों को यह धन देके सत्य विद्या और (द्यावापृथिवीभ्याम्) प्रकाश वा भूमि से (ऋतम्) अन्न को प्राप्त होऊं ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की उपासना, विद्वान् की सेवा और विद्युत् विद्या का प्रचार करके शरीर और आत्मा को पुष्ट करने वाली

ओषधियों और अनेक प्रकार के धनों का ग्रहण करके चिकित्सा शास्त्र के अनुसार सब आनन्दों को भोगें ॥ ७ ॥

या त इत्यस्य गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । पूर्वस्य विराडार्षी बृहती छन्दः ।
या त इति द्वितीयस्य निचृदार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह बिजुली कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

या तेऽअग्नेऽयःशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा । उग्रं वचोऽअपावधीत्त्वेषं वचोऽअपावधीत् स्वाहा । या तेऽअग्ने रजःशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा । उग्रं वचोऽअपावधीत्त्वेषं वचोऽअपावधीत् स्वाहा । या तेऽअग्ने हरिशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा । उग्रं वचोऽअपावधीत्त्वेषं वचोऽअपावधीत् स्वाहा ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! तुम को (या) जो (ते) इस (अग्ने) बिजुलीरूप अग्नि का (अयःशया) सुवर्णादि में सोने (वर्षिष्ठा) अत्यन्त बड़ा (गह्वरेष्ठा) आभ्यन्तर में रहने वाला (तनूः) शरीर (उग्रम्) क्रूर भयङ्कर (वचः) वचन को (अपावधीत्) नष्ट करता और (त्वेषम्) प्रदीप्त (वचः) शब्द वा (स्वाहा) उत्तमता से हवन किये हुए अन्न को (अपावधीत्) दूर करता और जो (ते) इस (अग्ने) बिजुलीरूप अग्नि का (वर्षिष्ठा) अत्यन्त विस्तीर्ण (गह्वरेष्ठा) आभ्यन्तर में स्थित होने (रजः शया) लोकों में सोने वाला (तनूः) शरीर (उग्रम्) क्रूर (वचः) कथन को (अपावधीत्) नष्ट करता है (त्वेषम्) प्रदीप (वचः) कथन वा (स्वाहा) उत्तम वाणी को (अपावधीत्) नष्ट करता है उसको जान के उस से कार्य्य लेना चाहिये ॥ ८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि सब स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों में रहने वाली जो बिजुली की व्याप्ति है उस को अच्छे प्रकार जानकर उपयुक्त करके सब दुःखों का नाश करें ॥ ८ ॥

तप्तायनीत्यस्य गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । प्रथमस्य भुरिगार्षी गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः । विदेदग्निरित्यस्य भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।
नाम्नेहीत्यस्य निचृद्ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ।
अनुत्वेत्यस्य याजुष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

और किसलिये अग्नि आदि से यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

तप्तायनी मेऽसि वित्तायनी मेऽस्यवतान्मा नाथितादवतान्मा व्यथितात् । विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअङ्गिरऽआयुना नाम्नेहि योऽस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअङ्गिरऽआयुना

नाम्नेहि यो द्वितीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअङ्गिरऽआयुना नाम्नेहि यस्तृतीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे। अनु त्वा देववीतये ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे विद्या के ग्रहण करने वाले विद्वान्! जैसे मैं (यत्) जो (तप्तायनी) स्थापनीय वस्तुओं के स्थान वाली विद्युत् ज्वाला (असि) है वा जो (वित्तायनी) भोग्य वा प्रतीत पदार्थों को प्राप्त कराने वाली बिजुली (असि) है (त्वा) उसकी विद्या को जानता हूं वैस तू भी इस को (मे) मुझ से (एहि) प्राप्त हो। जैसे यह (यत्) जो (अग्निः) प्रसिद्ध अग्नि (नभः) जल वा प्रकाश को प्राप्त कराता हुआ (मा) मुझ को (व्यथितात्) भय से (अवतात्) रक्षा करता वा (नाथितात्) ऐश्वर्य से (अवतात्) रक्षा करता है वैसे तुझ से सेवन किया हुआ यह तेरी भी रक्षा करेगा। जैसे मैं (तेन) उस साधन से जो (अग्ने) जाठर रूप (अङ्गिरः) अङ्गों में रहने वाला अग्नि (आयुना) जीवन वा (नाम्ना) प्रसिद्धि से (अस्याम्) इस (पृथिव्याम्) पृथिवी में (नाम) प्रसिद्ध है (त्वा) उसको जानता हूं वैसे तू भी इसको (मे) मुझ से (एहि) अच्छे प्रकार जान। जैसे मैं (तेन) उस ज्ञान से (यत्) जो (अनाधृष्टम्) नहीं नष्ट होने योग्य (यज्ञियम्) यज्ञाङ्ग-समूह (नाम) प्रसिद्ध तेज है (त्वा) उसको (देववीतये) दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिये (त्वा) उस यज्ञ को (आदधे) धारण करता हूं वैसे तू उस से इस को उत्तम गुणों की प्राप्ति के लिये धारण कर और वैसे सब मनुष्य भी उस से इस को (विदेत्) प्राप्त होवें। जैसे मैं (तेन) जो (द्वितीयस्याम्) दूसरी (पृथिव्याम्) भूमि में (अग्ने) (अङ्गिरः) अङ्गारों में रहने वाला अग्नि (आयुना) जीवन वा (नाम्ना) प्रसिद्धि से (नाम) प्रसिद्ध है वा (यः) जो (नभः) सुख को देता है (तेन) (त्वा) उससे उसको प्राप्त हुआ हूं वैसे तू उससे इसको (ऐहि) जान और सब मनुष्य भी उससे इसको (विदेत्) प्राप्त हों। जैसे मैं (तेन) पुरुषार्थ से जो (अनाधृष्टम्) प्रगल्भगुणसहित (यज्ञियम्) यज्ञसम्बन्धी (नाम) प्रसिद्ध तेज है (त्वा) उसे भोगों की प्राप्ति के लिये (आदधे) धारण करता हूं तथा तू उसके लिये धारण कर और सब मनुष्य भी (विदेत्) धारण करें। जैसे मैं (तेन) उस क्रियाकौशल से जो (अग्निः) अग्नि (आयुना) जीवन वा प्रसिद्धि से (अङ्गिरः) अङ्गों का सूर्यरूप से पोषण करता हुआ (नाम) प्रसिद्ध है वा जो (नभः) आकाश को प्रकाशित करता है (त्वा) उसको धारण करता हूं वैसे तू उसको धारण कर वा सब लोग भी (अनुविदेत्) उस को ठीक-ठीक जान के कार्य सिद्ध करें। जैसे मैं (तेन) इन्धनादि सामग्री से जो (अनाधृष्टम्) प्रगल्भसहित (यज्ञियम्) शिल्पविद्यासम्बन्धी (नाम) प्रसिद्ध तेज है (त्वा) उस को विद्वानों की प्राप्ति के लिये (आदधे) धारण करता हूं वैसे तू उससे उसकी प्राप्ति के लिये (अन्वेहि) खोज कर और सब मनुष्य भी विद्या से सम्प्रयोग करें ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो प्रसिद्ध सूर्य बिजुली रूप से तीन प्रकार का अग्नि सब लोगों मे बाहिर भीतर रहने वाला है उसको जान और जनाकर सब मनुष्यों को कार्यसिद्धि का सम्पादन करना कराना चाहिये ॥ ९ ॥

सिꣳह्यसीत्यस्य गोतम ऋषिः । वाग्देवता । ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ।

अब अगले मन्त्र में सब विद्याओं की मुख्य सिद्धि करने वाली वाणी के गुणों का उपदेश किया है ॥

सिꣳह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः कल्पस्व सिꣳह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः । शुन्धस्व सिꣳह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः शुम्भस्व ॥ १० ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! तू जो (सपत्नसाही) जिस से शत्रुओं को सहन करते हैं वह (देवेभ्यः) उत्तम गुण शूरवीरों के लिये (कल्पस्व) पढ़ा और उपदेश करके प्राप्त कर (सिंही) जो दोषों को नष्ट करने वा शब्दों का उच्चारण करने वाली वाणी (असि) है उसको (देवेभ्यः) विद्वान् दिव्यगुण वा विद्या की इच्छा वाले मनुष्यों के लिये (शुन्धस्व) शुद्धता से प्रकाशित कर । जो (सपत्नसाही) दोषों को हनन वा (सिंही) अविद्या के नाश करने वाली वाणी (असि) है उसको (देवेभ्यः) धार्मिकों के लिये (शुन्धस्व) शुद्ध कर और जो (सपत्नसाही) दुष्ट स्वभाव और (सिंही) दुष्ट दोषों को नाश करने वाली वाणी (असि) है उसको (देवेभ्यः) सुशील विद्वानों के लिये (शुम्भस्व) शोभायुक्त कर ॥ १० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को अति उचित है कि जो इस संसार में तीन प्रकार की वाणी होती है अर्थात् एक शिक्षा विद्या से संस्कार की हुई, दूसरी सत्यभाषणयुक्त और तीसरी मधुरगुणसहित, उनका स्वीकार करें ॥ १० ॥

इन्द्रघोषस्त्वेत्यस्य गोतम ऋषिः । वाग्देवता । निचृद्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा और कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पातु प्रचेतास्त्वा रुद्रैः पश्चात्पातु मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु विश्वकर्मा त्वादित्यैरुत्तरतः पात्विदमहं तप्तं वार्बहिर्धा यज्ञान्निःसृजामि ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे (प्रचेताः) उत्तम ज्ञानयुक्त (इन्द्रघोषः) परमात्मा, वेदविद्या और बिजुली का घोष अर्थात् शब्द अर्थ और सम्बन्धों के बोधवाला (विश्वकर्मा) सब कर्मवाला में (विज्ञान) पढ़ना पढ़ाना वा होमरूप यज्ञ से (इदम्) आभ्यन्तर में रहने वाले (तप्तम्) तप्त जल (बहिर्धा) बाहर धारण होने वाले शीतल (वाः) जल को (निःसृजामि) सम्पादन करता वा निःक्षेप करता हूं वैसे आप भी कीजिये । जो (वसुभिः) अग्नि आदि पदार्थ वा चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य किये हुए मनुष्यों के साथ वर्त्तमान (इन्द्रघोषः) परमेश्वर जीव और बिजुली के अनेक शब्द सम्बन्धी वाणी है उसको (पुरस्तात्) पूर्वदेश से जैसे मैं रक्षा करता हूं वैसे आप भी (पातु) रक्षा करो जो (रुद्रैः) प्राण वा चवालीस वर्ष

ब्रह्मचर्य्य किये हुये विद्वानों के साथ वर्त्तमान (प्रचेताः) उत्तम ज्ञान करने वाली वाणी है उसकी (पश्चात्) पश्चिम देश से रक्षा करता हूं वैसे आप भी (पातु) रक्षा करें जो (पितृभिः) ज्ञानी वा ऋतुओं के साथ वर्त्तमान (मनोजवाः) मन के समान वेगवाली वाणी है उसका (दक्षिणतः) दक्षिण देश से पालन करता हूँ वैसे आप भी (पातु) रक्षा करें जो (आदित्यैः) बारह महीनों वा अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य किये हुए विद्वानों के साथ वर्त्तमान (विश्वकर्मा) सब कर्मयुक्त वाणी है उसकी (उत्तरतः) उत्तर देश से पालन करता हूं वैसे आप भी (पातु) रक्षा करें ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जो वसु रुद्र आदित्य और पितरों से सेवन की हुई वा यज्ञ को सिद्ध करने वाली वाणी वा जल को सेवन, विद्या वा उत्तम क्रिया के साथ विजुली है उसके सेवन में निरन्तर वर्त्तें। ११ ॥

सिꣳह्यसीत्यस्य गोतम ऋषिः। वाग्देवता। भुरिग्ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः॥

फिर वह कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सिꣳह्यसि स्वाहा सिꣳह्यस्यादित्यवनिः स्वाहा सिꣳह्यसि ब्रह्मवनिः क्षत्रवनिः स्वाहा सिꣳह्यसि सुप्रजावनी रायस्पोषवनिः स्वाहा सिꣳह्यस्यावह देवान्यजमानाय स्वाहा भूतेभ्यस्त्वा॥ १२॥

पदार्थः—मैं जो (आदित्यवनिः) मासों का सेवन और सिंही क्रूरत्व आदि दोषों को नाश करने वाली (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्र से संस्कारयुक्त वाणी (असि) है, जो (ब्रह्मवनिः) परमात्मा वेद और वेद के जानने वाले मनुष्यों के सेवन और (सिंही) बल के जाड्यपन को दूर करने वाली (स्वाहा) पढ़ने पढ़ाने व्यवहारयुक्त वाणी (असि) है जो (क्षत्रवनिः) राज्य धनुर्विद्या और शूरवीरों का सेवन और (सिंही) चोर डाकू अन्याय को नाश करने वाली (स्वाहा) राज्य-व्यवहार में कुशल वाणी (असि) है जो (रायस्पोषवनिः) विद्या धन की पुष्टि का सेवन और (सिंही) अविद्या को दूर करने वाली (स्वाहा) वाणी (असि) है, जो (सुप्रजावनिः) उत्तम प्रजा का सेवन और (सिंही) सब दुष्टों का नाश और (स्वाहा) व्यवहार से धन को प्राप्त कराने वाली वाणी (असि) है और जो (यजमानाय) विद्वानों के पूजन करने वाले यजमान के लिये (स्वाहा) दिव्य विद्या संपन्न वाणी (देवान्) विद्वान् दिव्यगुण वा भोगों को (आवह) प्राप्त करती है (त्वा) उसको (भूतेभ्यः) सब प्राणियों के लिये (यज्ञात्) यज्ञ से (निःसृजामि) संपादन करता हूं॥ १२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (यज्ञात्) (निः) (सृजामि) इन तीन पदों की अनुवृत्ति है। मनुष्यों को उचित है कि पढ़ना पढ़ाना आदि से इस प्रकार लक्षणयुक्त वाणी प्राप्त कर इसे सब मनुष्यों को पढ़ा कर सदा आनन्द में रहें॥ १२॥

ध्रुवोऽसीत्यस्य गोतम ऋषिः। यज्ञो देवता। भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर यह यज्ञ कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

ध्रुवोऽसि पृथिवीं दृꣳह ध्रुवक्षिदस्यन्तरिक्षं दृꣳहाच्युतक्षिदसि दिवं दृꣳहाग्नेः पुरीषमसि ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो ! जो यज्ञ (ध्रुवः) निश्चल (पृथिवीम्) भूमि को बढ़ाता (असि) है उसको तुम (दृंह) बढ़ाओ जो (ध्रुवक्षित्) निश्चल सुख और शास्त्रों का निवास कराने वाला (असि) है वा (अन्तरिक्षम्) आकाश में रहने वाले पदार्थों को पुष्ट करता है उसको तुम (दृंह) बढ़ाओ जो (अच्युतक्षित्) नाशरहित पदार्थों को निवास कराने वाला (असि) है वा (दिवम्) विद्यादि प्रकाश को प्रकाशित करता है उसको तुम (दृंह) बढ़ाओ जो (अग्नेः) बिजुली आदि अग्नि वा (पुरीषम्) पशुओं की पूर्ति करने वाला यज्ञ (असि) है उसका अनुष्ठान तुम किया करो ॥ १३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि विद्या क्रिया से सिद्ध वा त्रिलोकी के पदार्थों को पुष्ट करने वाले विद्याक्रियामय यज्ञ का अनुष्ठान करके सुखी रहें और सब को रक्खें ॥ १३ ॥

युञ्जते मन इत्यस्य गोतम ऋषिः । सविता देवता । स्वराडार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ।

अब अगले मन्त्र में योगी और ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है ॥

युञ्जते मनऽउत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः । वि होत्रा दधे वयुनाविदेकऽइन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः स्वाहा ॥ १४ ॥

पदार्थः—जैसे जो (विहोत्राः) देने लेने वाले (विप्राः) बुद्धिमान् मनुष्य हैं वे जिस (बृहतः) सब से बड़े (विप्रस्य) अनन्त ज्ञानकर्मयुक्त (विपश्चितः) सब विद्या सहित (सवितुः) सकल जगत् के उत्पादक (देवस्य) सब के प्रकाश करने वाले महेश्वर की (मही) बड़ी (परिष्टुतिः) सब प्रकार की स्तुतिरूप (स्वाहा) सत्यवाणी को जान उस में (मनः) मन को (युञ्जते) युक्त करते हैं (उत) और (धियः) बुद्धियों को भी (युञ्जते) स्थिर करते हैं वैसे (वयुनावित्) उत्तम कर्मों को जानने वाला (एकः) सहाय रहित मैं उस को जान उस में अपना मन और बुद्धि को (विदधे) सदा निश्चल विधान कर रखता हूं ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को उचित है कि परमेश्वर में ही मन बुद्धि को युक्त कर विद्वानों के सङ्ग से विद्या को पा सुखी हो अन्य मनुष्यों को भी इसी प्रकार आनन्दित करें ॥ १४ ॥

इदं विष्णुरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः विष्णुर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पाꣳसुरे स्वाहा ॥१५॥

पदार्थः—(विष्णुः) जो सब जगत् में व्यापक जगदीश्वर जो कुछ यह जगत् है उसको (विचक्रमे) रचता हुआ (इदम्) इस प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष जगत् को (त्रेधा) तीन प्रकार का धारण करता है (अस्य) इस प्रकाशवान् प्रकाशरहित और अदृश्य तीन प्रकार के परमाणु आदि रूप (स्वाहा) अच्छे प्रकार देखने और दिखलाने योग्य जगत् का ग्रहण करता हुआ (इदम्) इस (समूढम्) अच्छे प्रकार विचार करके कथन करने योग्य अदृश्य जगत् को (पांसुरे) अन्तरिक्ष में स्थापित करता है वही सब मनुष्यों को उत्तम रीति से सेवने योग्य है ॥ १५ ॥

भावार्थः—परमेश्वर ने जिस प्रथम प्रकाश वाले सूर्यादि, दूसरा प्रकाशरहित पृथिवी आदि और जो तीसरा परमाणु आदि अदृश्य जगत् है उस सब को कारण से रचकर अन्तरिक्ष में स्थापन किया है उनमें से ओषधी आदि पृथिवी में, प्रकाश आदि सूर्यलोक में और परमाणु आदि आकाश और इस सब जगत् को प्राणों के शिर में स्थापित किया है। इस लिखे हुए शतपथ के प्रमाण से गय शब्द से प्राणों का ग्रहण किया है इस में महीधर जो कहता है त्रिविक्रम अर्थात् वामनावतार को धारण करके जगत् को रचा है यह उसका कहना सर्वथा मिथ्या है ॥ १५ ॥

इरावतीत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। विष्णुर्देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अगले मंत्र में ईश्वर और सूर्य के गुणों का उपदेश किया है॥

इरा॑वती धेनु॒मती॒ हि भू॒तꣳ सू॑यव॒सिनी॒ मन॑वे दश॒स्या। व्य॑स्कभ्ना॒ रोद॑सी विष्णवे॒ते दा॒धर्त्थ॑ पृथि॒वीम॒भितो॑ म॒यूखैः॒ स्वाहा॑॥ १६॥

पदार्थः—हे (विष्णो) सर्वव्यापी जगदीश्वर! जो आप जिस (इरावती) उत्तम अन्नयुक्त (धेनुमती) प्रशंसनीय बहुत वाणीयुक्त प्रजा वा पशुयुक्त (सूयवसिनी) बहुत मिश्रित अमिश्रित वस्तुओं से सहित भूमि वा वाणी (पृथिवीम्) भूमि (हि) निश्चय करके (स्वाहा) वेदवाणी वा (भूतम्) उत्पन्न हुए सब जगत् को (मयूखैः) ज्ञानप्रकाशकादि गुणों से (अभितः) सब ओर से (दाधर्थ) धारण और (रोदसी) प्रकाश वा पृथिवीलोक का (व्यस्कभ्नाः) सम्यक् स्तम्भन करते हो उन (मनवे) विज्ञानयुक्त (दशस्या) दशन अर्थात् दांतों के बीच में स्थित जिह्वा के समान आचरण करने वाले आपके लिये (एते) ये हम लोग सब जगत् को निवेदन करते हैं॥ १॥ जो (विष्णो) व्यापनशील प्राण जो (इरावती) उत्तम अन्नयुक्त (धेनुमती) पशुसहित (सूयवसिनी) बहुत मिश्रित अमिश्रित पदार्थ वाली भूमि वा वाणी है उस (पृथिवीम्) भूमि (स्वाहा) वा इन्द्रिय को (मयूखैः) किरणों अपने बल आदि (अभितः) सब प्रकार (दाधर्थ) धारण करता वा (रोदसी) प्रकाश भूमि को (व्यस्कभ्नाः) स्तंभन करता है उस (दशस्या) दशन और दांत के समान आचरण करने वा (मनवे) विज्ञापनयुक्त सूर्य के लिये (भूतं हि) निश्चय करके सब जगत् को करने के लिये ईश्वर ने दिया है ऐसा (एते) ये सब हम लोग जानते हैं॥ २॥ ॥ १६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे सूर्य अपनी किरणों से सब भूमि आदि जगत् को प्रकाश आकर्षण और विभाग करके धारण करता है वैसे ही परमेश्वर और प्राण ने अपने सामर्थ्य से सब सूर्य आदि जगत् को धारण करके अच्छे प्रकार स्थापन किया है॥ १६॥

देवश्रुतावित्यस्य वशिष्ठ ऋषिः । विष्णुर्देवता । स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वे प्राण और अपान कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

देवश्रुतौ देवेष्वाघोषतं प्राची प्रेतमध्वरं कल्पयन्तीऽऊर्ध्वं यज्ञं नयतं मा जिह्वरतम् । स्वं गोष्ठमावदतं देवी दुर्येऽआयुर्मा निर्वादिष्टं प्रजां मा निर्वादिष्टमत्र रमेथां वर्ष्मन् पृथिव्याः ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम जैसे जो (देवेषु) विद्वान् वा दिव्यगुणों में (देवश्रुतौ) विद्वानों से श्रवण किये हुए प्राण अपान वायु (घोषतम्) व्यक्त शब्द करें और जो (प्राची) प्राप्त करने वा (कल्पयन्ती) सामर्थ्य वाला प्रकाश भूमि (ऊर्ध्वम्) उत्तम गुणयुक्त (यज्ञम्) विज्ञान वा शिल्पमय यज्ञ को (प्रेतम्) जनाते रहें (नयतम्) प्राप्त करें (मा जिह्वरतम्) कुटिल गति वाले न हों जो (देवी) दिव्यगुण सम्पन्न (दुर्ये) गृहरूप (स्वयं) अपने (गोष्ठम्) किरण और अवयवों के स्थान के (आवदतम्) उपदेश निमित्तक हों (आयुः) आयु को (मा निर्वादिष्टम्) नष्ट न करें (प्रजाम्) उत्पन्न हुई सृष्टि को (मा निर्वादिष्टम्) न नष्ट करें और वे (पृथिव्याः) आकाश के मध्य (अत्र) इस (वर्ष्मन्) सुख से सेवनयुक्त जगत् में (रमेथाम्) रमण करें तथा किया करो ॥ १७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जितना जगत् अन्तरिक्ष में वर्त्तता है उतने से बहुत बहुत उत्तम सुखों का सम्पादन करना चाहिये ॥ १७ ॥

विष्णोर्नु कमित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में व्यापक ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है ॥

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि । योऽअस्कभायदुत्तरꣳ सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम (यः) जो (विचक्रमाणः) जगत् रचने के लिये कारण के अंशों को युक्त करता हुआ (उरुगायः) बहुत अर्थों को वेद द्वारा उपदेश करने वाला जगदीश्वर (पार्थिवानि) पृथिवी के विकार अर्थात् पृथिवी के गुणों से उत्पन्न होने वाले या अन्तरिक्ष में विदित (त्रेधा) तीन प्रकार के (रजांसि) लोकों को (विममे) अनेक प्रकार से रचता है जो (उत्तरम्) पिछले अवयवों के (सधस्थम्) साथ रहने वाले कारण को (अस्कभायत्) रोक रखता है (यः) जो (विष्णवे) उपासनादि यज्ञ के लिये आश्रय किया जाता है उस (विष्णोः) व्यापक परमेश्वर के (वीर्याणि) पराक्रमयुक्त कर्मों का (प्रवोचम्) कथन करूं और हे परमेश्वर ! (नु) शीघ्र ही (कम्) सुखस्वरूप (त्वा) आपका आश्रय करता हूं ॥ १८ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को जिस परमेश्वर ने पृथिवी सूर्य और त्रसरेणु आदि भेद से तीन प्रकार के जगत् को रचकर धारण किया है उसी की उपासना करनी चाहिये ॥ १८ ॥

दिवो वेत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्देवता । निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

दिवो वा विष्णऽउत वा पृथिव्या महो वा विष्णऽउरोरन्तरिक्षात् । उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्याद्विष्णवे त्वा ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (विष्णो) सर्वव्यापी परमेश्वर ! आप कृपा करके हम लोगों को (दिवः) प्रसिद्ध वा बिजुलीरूप अग्नि से (वसुना) द्रव्य के साथ (आपृणस्व) सुखों से पूर्ण कीजिये और (पृथिव्याः) भूमि से उत्पन्न हुए पदार्थ (उत) भी (वा) अथवा (महः) महत्तत्व अव्यक्त और (उत) भी (उरोः) बहुत (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से द्रव्य के साथ सुखों को (हि) निश्चय करके पूर्ण कीजिये (विष्णो) सब में प्रविष्ट ईश्वर ! आप (दक्षिणात्) दक्षिण (उत) और (सव्यात्) वाम पार्श्व से सुखों को दीजिये (त्वा) उस आप को (विष्णवे) योग विज्ञान यज्ञ के लिये पूजन करते हैं ॥ १९ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को योग्य है कि जिस व्यापक परमेश्वर ने महत्तत्व सूर्य भूमि अन्तरिक्ष वायु अग्नि जल आदि पदार्थ वा उन में रहने वाले ओषधी आदि वा मनुष्यादिकों को रच धारण कर सब प्राणियों के लिये सुखों को धारण करता है उसी की उपासना करें ॥ १९ ॥

प्र तद्विष्णुरित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

प्र तद्विष्णु स्तवते वीर्य्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः । यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ २० ॥

पदार्थः—(यस्य) जिसके (उरुषु) अत्यन्त (त्रिषु) (त्रिविक्रमणेषु) विविध प्रकार के क्रमों में (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक (अधिक्षियन्ति) निवास करते हैं और (वीर्येण) अपने पराक्रम से (भीमः) भय करने वाले (कुचरः) निन्दित प्राणिवध को करने और (गिरिष्ठाः) पर्वत में रहने वाले (मृगः) सिंह के (न) समान पापियों को खोज दुःख देता हुआ (प्रस्तवते) उपदेश करता है (तत) इस से उसको कभी न भूलना चाहिये ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सिंह अपने पराक्रम से अपनी इच्छा के समान अन्य पशुओं का नियम करता फिरता है वैसे जगदीश्वर अपने पराक्रम से सब लोकों का नियम करता है ॥ २० ॥

विष्णो रराटमित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्देवता । भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

विष्णो॑ र॒राट॑मसि॒ विष्णो॑ः श्नप्त्रे॑ स्थो॒ विष्णो॑ः स्यूर॑सि॒ विष्णो॑र्ध्रु॒वो॒ऽसि॒ । वै॒ष्ण॒वम॑सि॒ विष्ण॑वे त्वा ॥ २१ ॥

पदार्थः—जो यह अनेक प्रकार का जगत् है वह (विष्णोः) व्यापक परमेश्वर के प्रकाश से (रराटम्) उत्पन्न होकर प्रकाशित है (विष्णोः) सर्व सुख प्राप्त करने वाले ईश्वर से (स्यूः) विस्तृत (असि) है। सब जगत् (वैष्णवम्) यज्ञ का साधन (असि) है और (विष्णोः) सब में प्रवेश करने वाले जिस ईश्वर के (श्नप्त्रे) जड़ चेतन के समान दो प्रकार का शुद्ध जगत् है उस सब जगत् के उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर ! हम लोग (त्वा) आप को (विष्णवे) यज्ञ का अनुष्ठान करने के लिये आश्रय करते हैं ॥ २१ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि इस सब जगत् का परमेश्वर ही रचने और धारण करने वाला व्यापक इष्टदेव है ऐसा जानकर सब कामनाओं की सिद्धि करें ॥ २१ ॥

देवस्य त्वेत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । पूर्वार्द्धस्य साम्नी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः । आदद इत्युत्तरस्य भुरिगार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर यह यज्ञ किसलिये करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् । आद॑दे॒ नार्य॑सी॒दम॒हꣳ रक्ष॑सां ग्री॒वाऽअपि॑कृन्तामि । बृह॒न्न॑सि बृ॒हद्र॑वा बृ॒ह॒तीमिन्द्रा॑य॒ वाचं॑ वद ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे मैं (देवस्य) सब को प्रकाश करने आनन्द देने वा (सवितुः) सकल जगत को उत्पन्न करने वाले ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में जिस यज्ञ को (आददे) ग्रहण करता हूं वैसे तू भी (त्वा) उसको ग्रहण कर जैसे मैं (नारी) यज्ञक्रिया वा (इदम्) यज्ञ के अनुष्ठान का ग्रहण करता हूं वैसे तू भी ग्रहण कर जैसे (अहम्) मैं (रक्षसाम्) दुष्ट स्वभाव वाले शत्रुओं के (ग्रीवाः) शिरों को भी (अपिकृन्तामि) छेदन करता हूं वैसे तुम भी छेदन करो। जैसे मैं इस अनुष्ठान से (बृहद्रवाः) बड़ाई पाया बड़ा होता हूं वैसे तू भी हो और जैसे मैं (इन्द्राय) परमैश्वर्य की प्राप्ति के लिये (बृहतीम्) बड़ी (वाचम्) वाणी का उपदेश करता हूं वैसे तू भी (वद) कर ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग ईश्वर की सृष्टि में विद्या से पदार्थों की परीक्षा करके कार्य्यों में उपयोग कर सुखों को प्राप्त करते हैं वैसे ही सब मनुष्यों को इस यज्ञ का अनुष्ठान कर सब सुखों को पहुंचना चाहिये ॥ २२ ॥

रक्षोहणमित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। आद्यस्य याजुषी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। मध्यमस्य स्वराड् ब्राह्मयनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। यम्मे सबन्धुरित्युत्तरस्य स्वराड् ब्राह्मयुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

सृष्टि से मनुष्यों को किस प्रकार का उपकार ग्रहण करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

रक्षोहणं बलगहनं वैष्णवीमिदमहं तं बलगमुत्किरामि यं मे निष्ट्यो यममात्यो निचखानेदमहं तं बलगमुत्किरामि यं मे समानो यमसमानो निचखानेदमहं तं बलगमुत्किरामि यं मे सबन्धुर्यमसबन्धुर्निचखानेदमहं तं बलगमुत्किरामि यं मे सजातो यमसजातो निचखानोत्कृत्याङ्किरामि ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे (अहम्) मैं (बलगहनम्) बलों को बिडोलने और (रक्षोहणम्) राक्षसों के हनन करने वाले कर्म और (वैष्णवीम्) व्यापक ईश्वर की वेदवाणी का अनुष्ठान करके (यम्) जिस (बलगम्) बल प्राप्त कराने वाले यज्ञ को (उत्किरामि) उत्कृष्टपन से प्रेरित अर्थात् इस संसार में प्रकाशित करता हूं (तम्) उस यज्ञ को वैसे ही तू भी (इदम्) इसको प्रकाशित कर और जैसे (मे) मेरा (निष्टचः) यज्ञ में कुशल (अमात्यः) मेधावी विद्वान् मनुष्य (यम्) जिस यज्ञ वा (इदम्) भूगर्भ विद्या की परीक्षा के लिये स्थान को (निचखान) निःसन्देह करता है वैसे (तम्) उसको तेरा भी भृत्य खोदे। जैसे (अहम्) भूगर्भविद्या का जानने वाला मैं (यम्) जिस (बलगम्) बल प्राप्त करने वाले खेती आदि यज्ञ वा (इदम्) खननरूपी कर्म को (उत्किरामि) अच्छे प्रकार सम्पादन करता हूं वैसे (तम्) उस को तू भी कर, जैसे (मे) मेरा (समानः) सदृश वा असदृश मनुष्य (यम्) जिस कर्म को (निचखान) खनन करता है वैसे तेरा भी खोदे, जसे (अहम्) पढ़ने पढ़ाने वाला मैं (यम्) जिस (बलगम्) आत्मबल प्राप्त करने वाले यज्ञ वा (इदम्) इस पढने पढाने रूपी कार्य को (उत्किरामि) संपन्न करता हूं वैसे (तम्) उसको तू भी कर, जैसा (मे) मेरा (सबन्धुः) तुल्य बन्धु मित्र वा (असबन्धुः) तुल्य बन्धु रहित अमित्र (यम्) जिस पालनरूपी यज्ञ वा इस कर्म को (निचखान) निःसन्देह करता है वैसे उसको तेरा भी करे, जैसे (अहम्) सब का मित्र मैं (यम्) जिस (बलगम्) राज्यबल प्राप्त करने वाले यज्ञ वा (इदम्) इस कार्य को (उत्किरामि) संपन्न करता हूं वैसे (तम्) उसको तू भी कर, जैसे (सजातः) साथ उत्पन्न हुआ (असजातः) साथ से अलग उत्पन्न हुआ मनुष्य (यम्) जिस यज्ञ वा (कृत्याम्) उत्तम क्रिया को (निचखान)

निःसन्देह करता है वैसे तेरा भी इस यज्ञ वा इस क्रिया को निःसन्देह करे। जैसे मैं इस सब कर्म को (उत्किराम) सम्पादन करता हूं वैसे तुम भी करो ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को ईश्वर की इस सृष्टि में विद्वानों का अनुकरण सदा करना और मूर्खों का अनुकरण कभी न करना चाहिये ॥ २३ ॥

स्वराडसीत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। सूर्यविद्वांसौ देवते। भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में सूर्य और सभाध्यक्ष के गुणों का उपदेश किया है।

स्वराडसि सपत्नहा सत्रराडस्यभिमातिहा जनराडसि रक्षोहा सर्वराडस्यमित्रहा ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! जिस कारण आप (स्वराट्) अपने आप प्रकाशमान (असि) हैं इससे (सपत्नहा) शत्रुओं के मारनेवाले होते हों, जिस कारण तुम (सत्रराट्) यज्ञों में प्रकाशमान हो इससे (अभिमातिहा) अभिमानयुक्त मनुष्यों को मारने वाले होते हो, जिस से (जनराट्) धार्मिक विद्वानों में प्रकाशित हैं इस से (रक्षोहा) राक्षस दुष्टों को मारने वाले होते हैं, जिससे आप (सर्वराट्) सब में प्रकाशित हैं, इस से (अमित्रहा) अमित्र अर्थात् शत्रुओं के मारने वाले होते हैं ॥ १ ॥ जिस कारण यह सूर्यलोक (स्वराट्) अपने आप (असि) प्रकाशित है इससे (सपत्नहा) मेघ के अवयवों को काटने वाला होता है, जिस कारण यह (सत्रराट्) यज्ञों में प्रकाशित (असि) है इससे (अभिमातिहा) अभिमानकारक चोर आदि का हनन करने वाला होता है. जिस कारण यह (जनराट्) धार्मिक विद्वानों के मन में प्रकाशित (असि) है, इससे (रक्षोहा) राक्षस वा दुष्टों का हनन करने वाला होता है। जिस से यह (सर्वराट्) सब में प्रकाशमान (असि) है इससे (अमित्रहा) दुष्टों को दण्ड देने का निमित्त होता है ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे सूर्य अपने प्रकाश से चोर व्याघ्र आदि प्राणियों को भय दिखा कर अन्य प्राणियों को सुखी करता है वैसे ही तु भी सब शत्रुओं को निवारण कर प्रजा को सुखी कर ॥ २४ ॥

रक्षोहण इत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। आद्यस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। बलगहनाउपेत्युत्तरस्यार्षी पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः॥

यजमान सभा आदि के अध्यक्ष यज्ञानुष्ठान करने वाले मनुष्यों को यज्ञ सामग्री का ग्रहण करावें इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है॥

रक्षोहणो वो बलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान्रक्षोहणो वो बलगहनोऽवनयामि वैष्णवान्रक्षोहणौ वो बलगहनोऽवस्तृणामि वैष्णवान्रक्षोहणौ वां बलगहनाऽ

उपदधामि वैष्णवी रक्षोहणौ वां बलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवी वैष्णवमसि वैष्णवा स्थ ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे सभाध्यक्ष आदि मनुष्यो ! जैसे तुम (रक्षोहणः) दुःखों का नाश करने वाले हो वैसे शत्रुओं के बल को अस्तव्यस्त करने हारा मैं (वैष्णवान्) यज्ञ देवता वाले (वः) आप लोगों का सत्कार कर युद्ध में शस्त्रों से (प्रोक्षामि) इन घमण्डी मनुष्यों को शुद्ध करूं, जैसे आप (रक्षोहणः) अधर्मात्मा दुष्ट दस्युओं को मारने वाले हैं वैसे (बलगहनः) शत्रुसेना की थाह लेने वाला मैं (वैष्णवान्) यज्ञसम्बन्धी (वः) तुम को सुखों से मान्य कर दुष्टों को (अवनयामि) दूर करता हूं, जैसे (बलगहनः) अपनी सेना को व्यूहों की शिक्षा से विलोडन करने वाला मैं (रक्षोहणः) शत्रुओं को मारने वा (वैष्णवान्) यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले (वः) तुम को (अवस्तृणामि) सुख से आच्छादित करता हूं वैसे तुम भी किया करो, जैसे (रक्षोहणौ) राक्षसों के मारने वा (बलगहनौ) बलों को विलोडन करने वाले (वाम्) यज्ञपति वा यज्ञ कराने वाले विद्वान् का धारण करते हो वैसे मैं भी (उपदधामि) धारण करता हूं जैसे (रक्षोहणौ) राक्षसों के मारने (बलगहनौ) बलों को विलोडने वाले (वाम्) प्रजा सभाध्यक्ष आप (वैष्णवी) सब विद्याओं में व्यापक विद्वानों की क्रिया वा (वैष्णवम्) जो विष्णुसम्बन्धी ज्ञान है इन सब को तर्क से जानते हैं वैसे मैं भी (पर्यूहामि) तर्क से अच्छे प्रकार जानूं और जैसे आप सब लोग (वैष्णवाः) व्यापक परमेश्वर की उपासना करने वाले (स्थ) हैं वैसा मैं भी होऊं ॥ २५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा और उपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को परमेश्वर की उपासनायुक्त व्यवहार से शरीर और आत्मा के बल को पूर्ण कर के यज्ञ से प्रजा की पालना और शत्रुओं को जीतकर सब भूमि के राज्य की पालना करनी चाहिये ॥ २५ ॥

देवस्य त्वेत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। आद्यस्य निचृदार्षी पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। यवोऽसीत्युत्तरस्य निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

किसलिये इस यज्ञ को करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आददे नार्यसीदमहꣳ रक्षसां ग्रीवाऽअपिकृन्तामि। यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीर्दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे मैं (सवितुः) सब जगत् के उत्पन्न करने और (देवस्य) सब आनन्द के देने वाले परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में (अश्विनोः) प्राण और अपान के (बाहुभ्याम्) बल और वीर्य तथा (पूष्णः) अतिपुष्ट वीर

के (हस्ताभ्याम्) प्रबल प्रतापयुक्त भुज और दण्ड से अनेक उपकारों को (आददे) लेता वा (इदम्) इस जगत् की रक्षा कर (रक्षसाम्) दुष्टकर्म करने वाले प्राणियों के (ग्रीवाः) शिरों का (अपि) (कृन्तामि) छेदन ही करता हूं तथा जैसे पदार्थों का उत्तम गुणों से मेल करता हूं वैसे तू भी उपकार ले और (यवय) उत्तम गुणों से पदार्थों का मेल कर जैसे मैं (द्वेषः) ईर्षा आदि दोष वा (अरातीः) शत्रुओं को (अस्मत्) अपने से दूर कराता हूं वैसे तू भी (यवय) दूर करा । हे विद्वन् ! जैसे हम लोग (दिवे) ऐश्वर्य्यादि गुण के प्रकाश होने के लिये (त्वा) तुझ को (अन्तरिक्षाय) आकाश में रहने वाले पदार्थ को शोधने के लिये (त्वा) तुझ को (पृथिव्यै) पृथिवी के पदार्थों की पुष्टि होने के लिये (त्वा) तुझ को सेवन करते हैं वैसे तुम लोग भी करो । जैसे (पितृषदनम्) विद्या पढ़े हुए ज्ञानी लोगों का यह स्थान (असि) है और जिस से (पितृषदनाः) जैसे ज्ञानियों में ठहर पवित्र होते हैं वैसे मैं शुद्ध होऊं तथा सब मनुष्य (शुन्धन्ताम्) अपनी शुद्धि करें और हे स्त्री ! तू भी यह सब इसी प्रकार कर ॥ २६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि ठीक-ठीक क्रियाक्रमपूर्वक विद्वानों का आश्रय और यज्ञ का अनुष्ठान करके सब प्रकार से अपनी शुद्धि करें ॥ २६ ॥

उद्दिवमित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ सभापति और अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ क्या करता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उद्दिवँ स्तभानान्तरिक्षं पृण दृꣳहस्व पृथिव्यां द्युतानस्त्वा मारुतो मिनोतु मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणा । ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि । ब्रह्म दृꣳह क्षत्रं दृꣳहायुर्दृꣳह प्रजां दृꣳह ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे परमविद्वन् ! जैसे (त्वा) आपको (मारुतः) वायु (ध्रुवेण) निश्चल (धर्मणा) धर्म से (मिनोतु) प्रयुक्त करे (मित्रावरुणौ) प्राण और अपान भी धर्म से प्रयुक्त करते हैं वैसे आप कृपा करके हम लोगों के लिये (दिवम्) विद्या गुणों के प्रकाश को (उत्तभान) अज्ञान से उघाड़ देओ तथा (अन्तरिक्षम्) सब पदार्थों के अवकाश को (पृण) परिपूर्ण कीजिये (पृथिव्याम्) भूमि पर (द्युतानः) सद्विद्या के गुणों का विस्तार करते हुए आप सुखों को (दृंहस्व) बढ़ाइये (ब्रह्म) वेदविद्या को (दृंह) बढ़ाइये (क्षत्रम्) राज्य को बढ़ाइये (आयुः) अवस्था को (दृंह) बढ़ाइये और (प्रजाम्) उत्पन्न हुई प्रजा को (दृंह) वृद्धियुक्त कीजिये । इसीलिये मैं (ब्रह्मवनि) ब्रह्मविद्या को सेवन करने वा कराने (क्षत्रवनि) राज्य को सेवन करने कराने (रायस्पोषवनि) और धनसमूह की पुष्टि को सेवने वा सेवन कराने वाले आप को (पर्यूहामि) सब प्रकार के तर्कों से निश्चय करता हूं वैसे आप मुझ को सर्वथा सुखदायक हूजिये और आप को सब मनुष्य तर्कों से जानें ॥ २७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! आप लोग जैसे जगदीश्वर सत्य भाव से प्रार्थित और सेवन किया हुआ अत्युत्तम विद्वान् सब को सुख देता है वैसे यह यज्ञ भी विद्या गुण को बढ़ाकर सब जीवों को सुख देता है, यह जानो ॥ २७ ॥

ध्रुवासीत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर उस यज्ञ से क्या होता है इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात्। घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे यज्ञ करने वाले यजमान की स्त्री ! जैसे तू (प्रजया) राज्य वा अपने संतानों और (पशुभिः) हाथी घोड़े गाय आदि पशुओं के सहित (अस्मिन) इस (आयतने) जगत् वा अपने स्थान वा सब के सत्कार कराने के योग्य यज्ञ में (ध्रुवा) दृढ़ संकल्प (असि) है वैसे अयम् यह (यजमानः) यज्ञ करने वाला तेरा पति यजमान भी (ध्रुवः) दृढ़ संकल्प है। तुम दोनों (घृतेन) घृत आदि सुगंधित पदार्थों से (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि को (पूर्येथाम्) परिपूर्ण करो। हे यज्ञ करने वाली स्त्री ! तू (इन्द्रस्य) अत्यन्त ऐश्वर्य को भी अपने यज्ञ से (छदिः) प्राप्त करनेवाली (असि) है। अब तू और तेरा पति यह यजमान (विश्वजनस्य) संसार का (छाया) सुख करने वाला (भूयात) हो ॥ २८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जिन यज्ञ करने वाले यजमान की पत्नी और यजमान से तथा जिस यज्ञ से दृढ़ विद्या और सुखों को पाकर दुःखों को छोड़ें उनका सत्कार तथा उस यज्ञ का अनुष्ठान सदा ही करते रहें ॥ २८ ॥

परि त्वेत्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। ईश्वरसभाध्यक्षौ देवते। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

ईश्वर और सभाध्यक्ष से क्या २ होने को योग्य है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

परि त्वा गिर्वणो गिरऽइमा भवन्तु विश्वतः। वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे (गिर्वणः) स्तुतियों से स्तुति करने योग्य ईश्वर वा सभाध्यक्ष ! (इमाः) ये मेरी की हुई (विश्वतः) समस्त (गिरः) स्तुतियें (परि) सब प्रकार से (भवन्तु) हों और उसी समय की ही न हों किन्तु (वृद्धायुम्) वृद्धों के समान आचरण करने वाले आपके (अनु) पश्चात् (वृद्धयः) अत्यन्त बढ़ती हुई और (जुष्टयः) प्रीति करने योग्य (जुष्टाः) प्यारी हों ॥ २९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे संपूर्ण उत्तम गुण कर्म्मों के साथ वर्त्तमान जगदीश्वर और सभापति स्तुति करने योग्य हैं वैसे ही तुम लोगों को भी होना चाहिये ॥ २९ ॥

इन्द्रस्येत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। ईश्वरसभाध्यक्षौ देवते। आर्च्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

इन्द्र॑स्य स्यूर॑सीन्द्र॑स्य ध्रुवो॑ऽसि ऐ॒न्द्रम॑सि वैश्वदे॒वम॑सि ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष ! जैसे (वैश्वदेवम्) समस्त पदार्थों का निवास स्थान अन्तरिक्ष है वैसे आप (ऐन्द्रम्) सब के आधार हैं इसी से हम लोगों को (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य का (स्यूः) संयोग करने वाले (असि) हैं और (इन्द्रस्य) सूर्य आदि लोक वा राज्य को (ध्रुवः) निश्चल करने वाले (असि) हैं ॥ ३० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है। जैसे सकल ऐश्वर्य्य का देने वाला जगदीश्वर है वैसे सभाध्यक्षादि मनुष्यों को होना चाहिये ॥ ३० ॥

विभूरसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

वि॒भूर॑सि प्र॒वाह॑णो॒ वह्नि॑रसि हव्य॒वाह॑नः। श्वा॒त्रो॑ऽसि प्रचे॑तास्तु॒थो॑ऽसि वि॒श्ववे॑दाः ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा विद्वन् ! जिससे आप जैसे व्यापक आकाश और ऐश्वर्य्ययुक्त राजा होता है वैसे (विभूः) व्यापक और ऐश्वर्य्ययुक्त (असि) हैं (वह्निः) जैसे होम किये पदार्थों को योग्य स्थान में पहुंचाने वाला अग्नि है वैसे (हव्यवाहनः) हवन करने के योग्य पदार्थों को संपादन करने वाले (असि) हैं जैसे जीवों में प्राण हैं वैसे (प्रचेताः) चेत करने वाले (श्वात्रः) विद्वान् (असि) हैं जैसे सूत्रात्मा पवन सब में व्याप्त है वैसे (विश्ववेदाः) विश्व को जानने (तुथः) ज्ञान को बढ़ाने वाले (असि) हैं इस से आप सत्कार करने योग्य हैं ऐसा हम लोग जानते हैं ॥ ३१ ॥

पदार्थः—इस मंत्र में श्लेष और उपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को उचित है कि ईश्वर और विद्वान् का सत्कार करना कभी न छोड़ें क्योंकि अन्य किसी से विद्या और सुख का लाभ नहीं हो सकता है इसलिये इन को जानें ॥ ३१ ॥

उशिगसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उशिगसि कविरङ्घारिरसि बम्भारिरवस्यूरसि दुवस्वाञ्छुन्ध्यूरसि मार्जालीयः। सम्राडसि कृशानुः परिषद्योऽसि पवमानो नभोऽसि प्रतक्वा मृष्टोऽसि हव्यसूदनऽऋतधामासि स्वर्ज्योतिः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! जिस कारण आप (उशिक्) कान्तिमान् (असि) हैं (अंघारिः) खोटे चलन वाले जीवों के शत्रु वा (कविः) क्रान्तप्रज्ञ (असि) हैं (बम्भारिः) बन्धन के शत्रु वा तारादि तन्तुओं के विस्तार करने वाले (असि) हैं (दुवस्वान्) प्रशंसनीय सेवायुक्त स्वयं (शुन्ध्यूः) शुद्ध (असि) हैं (मार्जालीयः) सब को शोधने वाले (सम्राट्) और अच्छे प्रकार प्रकाशमान (असि) हैं (कृशानुः) पदार्थों को अति सूक्ष्म (पवमानः) पवित्र और (परिषद्यः) सभा में कल्याण करने वाले (असि) हैं जैसे (प्रतक्वा) हर्षित और (नभः) दूसरे के पदार्थ हर लेने वालों को मारने वाले (असि) हैं (हव्यसूदनः) जैसे होम के द्रव्य को यथायोग्य व्यवहार में लाने वाले और (मृष्टः) सुख दुःख को सहन करने और कराने वाले (असि) हैं जैसे (स्वर्ज्योतिः) अन्तरिक्ष को प्रकाश करने वाले और (ऋतधामा) सत्यधाम युक्त (असि) हैं वैसे ही उक्त गुणों से प्रसिद्ध आप सब मनुष्यों को उपासना करने योग्य हैं, ऐसा हम लोग जानते हैं ॥ ३२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जिस परमेश्वर ने समस्त गुण वाले जगत् को रचा है उन्हीं गुणों से प्रसिद्ध उसकी उपासना सब मनुष्यों को करनी चाहिये ॥ ३२ ॥

समुद्रोऽसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

फिर जैसा ईश्वर है वैसा विद्वानों को भी होना अवश्य है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

समुद्रोऽसि विश्वव्यचा अजोऽस्येकपादहिरसि बुध्न्यो वागस्यैन्द्रमसि सदोस्यृतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तमध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽस्मिन् पथि देवयाने भूयात् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—जैसे परमेश्वर (समुद्रः) सब प्राणियों का गमनागमन कराने हारे (विश्वव्यचाः) जगत् में व्यापक और (अजः) अजन्मा (असि) है (एकपात्) जिसके एक पाद में विश्व है (अहिः) वा व्यापनशील (बुध्न्यः) तथा अन्तरिक्ष में होनेवाला (असि) है और (वाक्) वाणीरूप (असि) है (ऐन्द्रम्) परमैश्वर्य्य का (सदः) स्थान रूप है और (ऋतस्य) सत्य के (द्वारौ) मुखों को (मा संताप्तम्) संताप कराने वाला नहीं है (अध्वपते) हे धर्म-व्यवहार के मार्गों को पालन करने हारे विद्वानो ! वैसे तुम भी संताप न करो। हे ईश्वर ! (मा) मुझ को (अध्वनाम्) धर्मशिल्प के मार्ग से (प्रतिर) पार कीजिये

और (मे) मेरे (अस्मिन्) इस (देवयाने) विद्वानों के जाने आने योग्य (पथि) मार्ग में जैसे (स्वस्ति) सुख (भूयात्) हो वैसा अनुग्रह कीजिये ॥ ३३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालङ्कार है। ईश्वर वा जगत् के कारणरूप जीव को अनादित्व होने वा जन्म न होने से अविनाशीपन है। परमेश्वर की कृपा, उपासना, सृष्टि की विद्या वा अपने पुरुषार्थ के साथ वर्त्तमान हुए मनुष्यों को विद्वानों के मार्ग की प्राप्ति और उस में सुख होता है और आलसी मनुष्यों को नहीं होता ॥ ३३ ॥

मित्रस्येत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता स्वराड्ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर विद्वान् कैसे हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मित्रस्यं मा चक्षुषेक्षध्वमग्नंयः सगराः सगंरा स्थ सगंरेण नाम्ना रौद्रेणानीकेन पात माग्नयः पिपृत माग्नयो गोपायतं मा नमों वोऽस्तु मा मां हिꣳसिष्ट ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे (सगराः) अन्तरिक्ष अवकाश युक्त (अग्नयः) अच्छे-अच्छे पदार्थों को प्राप्त करने वाले विद्वान् लोगो ! तुम (मा) मुझ को (मित्रस्य) मित्र की दृष्टि से (ईक्षध्वम्) देखिये । आप (सगराः) विद्योपदेश अवकाशयुक्त (स्थ) हूजिये और जैसे आप (अग्नयः) संसाधित विद्युत् आदि अग्नियों की रक्षा करते हैं वैसे (सगरेण) अन्तरिक्ष के साथ वर्त्तमान (रौद्रेण) शत्रुओं को रोदन करने वाली (नाम्ना) प्रसिद्ध (अनीकेन) सेना से (मा) मुझे (पात) पालिये (अग्नयः) जैसे ज्ञानी लोग सब प्रकार सब को सुख देते हैं वैसे (पिपृत) सुखों से पूरण कीजिये (गोपायत) और सब ओर से पालन कीजिये और कभी (मा) मुझ को (मा हिंसिष्ट) नष्ट मत कीजिये (वः) इस से आप के लिये (मे) मेरा (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो ॥ ३४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्या देने से विद्वान् लोग सब मनुष्यों को सुखी करते हैं वैसे इन विद्वानों को कार्यों के करने में चतुर और विद्यायुक्त होकर विद्यार्थी लोग सेवा से सुखी करें ॥ ३४ ॥

ज्योतिरसीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद् ब्राह्मी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

ईश्वर कैसा है यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

ज्योतिंरसि विश्वरूपं विश्वेषां देवानांꣳ समित् त्वꣳ सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोंभ्योऽन्यकृतेभ्यंऽउरु यन्तासि वरूथꣳ स्वाहां । जुषाणो अप्तुराज्यंस्य वेतु स्वाहां ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्य्य देने वाले जगदीश्वर ! आप (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों के (विश्वरूपम्) सब रूपयुक्त (ज्योतिः) सब के प्रकाश करने वाले (समित्) अच्छे प्रकाशित (असि) हैं (तनूकृद्भ्यः) शरीरों को संपादन करने (द्वेषोभ्यः) और द्वेष करने वाले जीवों तथा (अन्यकृतेभ्यः) अन्य मनुष्यों के किये हुए दुष्ट कर्म्मों से (यन्ता) नियम करने वाले (असि) हैं उन से (उरु) बहुत (वरूथम्) उत्तम गृह (स्वाहा) वाणी (अप्तुः) व्यापक (आज्यस्य) विज्ञान को (जुषाणः) सेवन करता हुआ मनुष्य (स्वाहा) वेदवाणी को (वेतु) जाने ॥ ३५ ॥

भावार्थः—जिस से परमेश्वर सब लोकों का नियम करने वाला है इस से ये नियम में चलते हैं ॥ ३५ ॥

अग्ने नयेत्यस्यागस्त्य ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर ईश्वरप्रार्थना किसलिये करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सब को अच्छे मार्ग में पहुँचाने (देव) और सब आनन्दों को देने वाले (विद्वान्) समस्त विद्यान्वित जगदीश्वर ! आप कृपा से (राये) मोक्षरूप उत्तम धन के लिये (सुपथा) जैसे धार्मिक जन उत्तम मार्ग से (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) उत्तम कर्म, विज्ञान वा प्रजा को प्राप्त होते हैं वैसे (अस्मान्) हम लोगों को (नय) प्राप्त कीजिये और (जुहुराणम्) कुटिल (एनः) दुःखफलरूपी पाप को (अस्मत्) हम लोगों से (युयोधि) दूर कीजिये । हम लोग (ते) आप की (भूयिष्ठाम्) अत्यन्त (नम उक्तिम्) नमस्काररूप वाणी को (विधेम) कहते हैं ॥ ३६ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । जैसे सत्य प्रेम से उपासना किया हुआ परमेश्वर जीवों को दुष्ट मार्गों से अलग और धर्म मार्ग में स्थापन कर के इस लोक के सुखों को उन के कर्मानुसार देता है वैसे ही न्याय करने हारे भी किया करें ॥ ३६ ॥

अयं न इत्यस्यागस्त्य ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर ईश्वर की उपासना करने हारे शूरवीर के गुणों का उपदेश किया है ॥

अयं नोऽअग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुरऽएतु प्रभिन्दन् । अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावयꣳ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा ॥ ३७ ॥

पदार्थः—यह (अग्निः) परमेश्वर का उपासक जन (नः) हम प्रजास्थ जीवों की (वरिवः) निरन्तर रक्षा (कृणोतु) करे। जैसे कोई वीर पुरुष अपनी सेना को लेकर संग्राम में निन्दित दुष्ट वैरियों को पहिले ही जा घेरता है वैसे (अयम्) यह युद्ध करने में कुशल सेनापति (वाजसातौ) संग्राम में दुष्ट शत्रुओं को (पुरः) पहिले ही (एतु) जा घेरे और जैसे (अयम्) यह वीरों को हर्ष देनेवाला सेनापति दुष्ट शत्रुओं को (प्रभिन्दन्) छिन्न भिन्न करता हुआ (वाजान्) संग्रामों को (जयतु) जीते (अयम्) यह विजय कराने वाला सेनापति (जर्हृषाणः) निरंतर प्रसन्न होकर (स्वाहा) युद्ध के प्रबन्ध की श्रेष्ठ बोलियों को बोलता हुआ (जयतु) अच्छी तरह जीते ॥ ३७ ॥

भावार्थः—जो लोग परमेश्वर की उपासना नहीं करते हैं उनका विजय सर्वत्र नहीं होता। जो अच्छी शिक्षा देकर शूरवीर पुरुषों का सत्कार कर के सेना नहीं रखते हैं उनका सब जगह सहज में पराजय हो जाता है इस से मनुष्यों को चाहिये कि दो प्रबन्ध अर्थात् एक तो परमेश्वर की उपासना और दूसरा वीरों की रक्षा सदा करते रहें ॥ ३७ ॥

उरु विष्णवित्यस्यागस्त्य ऋषिः। विष्णुर्देवता। भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि। घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ॥ ३८ ॥

पदार्थः—जैसे सर्वव्यापक परमेश्वर सब जगत् की रचना करता हुआ जगत् के कारण को प्राप्त हो सब को रचता है वैसे हे विद्यादि गुणों में व्याप्त होने वाले वीर पुरुष ! अपने विद्या के फल को (उरु) बहुत (वि) अच्छी तरह (क्रमस्व) पहुंच (क्षयाय) निवास करने योग्य गृह और विज्ञान की प्राप्ति के योग्य (नः) हम लोगों को (कृधि) कीजिये। हे (घृतयोने) विद्यादि सुशिक्षायुक्त पुरुष! जैसे अग्नि घृत पी के प्रदीप्त होता है वैसे तू भी अपने गुणों में (घृतम्) घृत को (प्रप्र पिब) वारंवार पी के शरीर बलादि से प्रकाशित हो और ऋत्विज आदि विद्वान् लोग (यज्ञपतिम्) यजमान की रक्षा करते हुए उसे यज्ञ से पार करते हैं वैसे तू भी (स्वाहा) यज्ञ की क्रिया से (यज्ञम्) यज्ञ के (तिर) पार हो ॥ ३८ ॥

भावार्थः—जैसे परमेश्वर अपनी व्यापकता से कारण को प्राप्त हो सब जगत् के रचने और पालने से सब जीवों को सुख देता है वैसे आनन्द में हम सभों को रहना उचित है। जैसे अग्नि काष्ठ आदि इन्धन वा घृत आदि पदार्थों को प्राप्त हो प्रकाशमान होता है वैसे हम लोगों को भी शत्रुओं को जीत प्रकाशित होना चाहिये और जैसे होता आदि विद्वान् लोग धार्मिक यज्ञ करने वाले यजमान को पाकर अपने कामों को सिद्ध करते हैं वैसे प्रजास्थ लोग धर्मात्मा सभापति को पाकर अपने अपने सुखों को सिद्ध किया करें ॥ ३८ ॥

देव सवितरित्यस्यागस्त्य ऋषिः । सोमसवितारौ देवते । आद्यस्य साम्नी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । एतत्त्वमित्युत्तरस्यार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वे कैसे हैं यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

देव सवितरेष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व मा त्वा दभन् । एतत्त्वं देव सोम देवो देवाँ२ऽउपागाऽइदमहं मनुष्यान्त्सह रायस्पोषेण स्वाहा निर्वरुणस्य पाशान्मुच्ये ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे (देव) सब विद्याओं के प्रकाश करने वाले ऐश्वर्य्यवान् विद्वान् सभाध्यक्ष ! जैसे मैं आप के सहाय से अपने ऐश्वर्य्य को रखता हूं वैसे तू जो (एषः) यह (ते) तेरा (सोमः) ऐश्वर्य्यसमूह है (तम्) उसको (रक्षस्व) रख । जैसे मुझ को शत्रुजन दुःख नहीं दे सकते हैं वैसे (त्वाम्) तुझे भी (मा दभन्) न दे सकें । हे (देव) सुख के देने और (सोम) सज्जनों के मार्ग में चलाने हारे राजा ! (त्वम्) तू (एतत) इस कारण सभाध्यक्ष और (देवः) परिपूर्ण विद्या प्रकाश में स्थित हुआ (देवान्) श्रेष्ठ विद्वानों के (उप) समीप (अगाः) जा और मैं भी जाऊं । जैसे मैं (इदम्) इस आचरण को करके (रायः) अत्यन्त धन की (पुष्टया) पुष्टताई के साथ (मनुष्यान्) विचारवान् पुरुष और (देवान्) विद्वानों को प्राप्त होकर (वरुणस्य) दुःख से तिरस्कार करने वाले दुष्टजन की (पाशात्) बन्धन से (मुच्ये) छूटूं वैसे तू भी (निः) निरन्तर छूट ॥ ३९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्यों को योग्य है कि जिस अप्राप्त ऐश्वर्य्य की पुरुषार्थ से प्राप्ति हो उस की रक्षा और उन्नति, धार्मिक मनुष्यों का सङ्ग और इससे सज्जनों का सत्कार तथा धर्म का अनुष्ठान कर विज्ञान को बढ़ा के दुःखबन्धन से छूटें ॥ ३९ ॥

अग्ने व्रतपा इत्यस्यागस्त्य ऋषिः । अग्निर्देवता निचृद् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे कैसे वर्त्तें यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा या तव तनूर्मय्यभूदेषा सा त्वयि यो मम तनूस्त्वय्यभूदियꣳ सा मयि । यथायथं नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षां दीक्षापतिरमꣳस्तानु तपस्तपस्पतिः ॥ ४० ॥

पदार्थः—(व्रतपाः) जैसे सत्य का पालने हारा विद्वान् हो वैसे (अग्ने) हे विशेष ज्ञानवान् पुरुष ! जो मेरा (व्रतपाः) सत्यविद्या गुणों का पालने हारा आचार्य्य (अभूत्) हुआ था वैसे मैं (ते) तेरा होऊं (या) जो (तव) मेरी (तनूः) विद्या आदि गुणों में व्याप्त होने वाला देह है (सा) वह (मयि) तेरे मित्र तुझ में भी हो (एषा) यह (त्वयि)

मेरे मित्र मुझ में भी हो (या) जो (मम) मेरी (तनूः) विद्या की फैलावट है (सा) वह (त्वयि) मेरे पढ़ाने वाले तुझ में हो (इयम्) यह (मयि) तेरे शिष्य मुझ में बुद्धि हो (व्रतपते) हे सत्य आचरणों के पालने हारे ! जैसे सत्य गुण सत्य उपदेश रक्षक विद्वान् होता है वैसे मैं और तू (यथायथम्) यथायुक्त मित्र होकर (व्रतानि) सत्य आचरणों का वर्त्ताव वर्त्तें। हे मित्र ! जैसे (तव) तेरा (दीक्षापतिः) यथोक्त उपदेश का पालने हारा तेरे लिये (दीक्षाम्) सत्य का उपदेश (अमंस्त) करना जान रहा है वैसे मेरा मेरे लिये (अनु) जाने। जैसे तेरा (तपस्पतिः) अखंड ब्रह्मचर्य्य का पालनेहारा आचार्य तेरे लिये (तपः) पहिले क्लेश और पीछे सुख देने हारे ब्रह्मचर्य्य को करना जान रहा है वैसे मेरा अखंड ब्रह्मचर्य्य का पालने हारा मेरे लिये जाने ॥ ४० ॥

भावार्थः—जैसे पहिले विद्या पढ़ाने वाले अध्यापक लोग हुए वैसे हम लोगों को भी होना चाहिये। जब तक मनुष्य सुख दुःख हानि और लाभ की व्यवस्था में परस्पर अपने आत्मा के तुल्य दूसरे को न जानते तब तक पूर्ण सुख को प्राप्त नहीं होते इस से मनुष्य लोग श्रेष्ठ व्यवहार ही किया करें ॥ ४० ॥

उरु विष्णवित्यस्यागस्त्य ऋषिः। विष्णुर्देवता। भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।

फिर वे कैसे वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि। घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ॥ ४१ ॥

पदार्थः—जैसे सब पदार्थों में व्याप्त होने वाला पवन चलता है वैसे हे विद्या गुणों में व्याप्त होने वाले विद्वान् ! (उरु) अत्यन्त विस्तारयुक्त (क्षयाय) विद्योन्नति के लिये (विक्रमस्व) अपनी विद्या के अंगों से परिपूर्ण हो और (नः) हम लोगों को सुखी (कृधि) कर। जैसे जल का निमित्त बिजुली है वैसे हे पदार्थ ग्रहण करने वाले विद्वन् ! बिजुली के समान (घृतम्) जल (पिब) पी और जैसे मैं यज्ञपति को दुःख से पार करता हूँ वैसे तू भी (स्वाहा) अच्छे प्रकार हवन आदि कर्म्मों को सेवन करके (प्रप्रतिर) दुःखों से अच्छे प्रकार पार हो ॥ ४१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पवन सब को सुख देता हुआ सब के रहने का स्थान हो रहा है वैसे ही विद्वान् को होना चाहिये ॥ ४१ ॥

अत्यन्यानित्यस्यागस्त्य ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को उक्त व्यवहारों से विरुद्ध मनुष्य न सेवने चाहिये यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अत्यन्याँ२ऽअगां नान्याँ२ऽउपांगामर्वाक् त्वा परेभ्योऽविदं परोऽवरेभ्यः तं त्वां जुषामहे देव वनस्पते देवयज्यायै देवास्त्वां देवयज्यायै जुषन्तां विष्णवे त्वा । ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनं हिंसीः ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे (वनस्पते) सब बूंटियों के रखने वाले (देव) विद्वान् जन ! जैसे तू (अन्यान्) विद्वानों के विरोधी मूर्ख जनों को छोड़ के (अन्यान्) मूर्खों के विरोधी विद्वानों के समीप जाता है वैसे मैं भी विद्वानों के विरोधियों को छोड़ (उप) समीप (अगाम्) जाऊं। जो तू (परभ्यः) उत्तमों से (परः) उत्तम और (अवरेभ्यः) छोटों से (अर्वाक्) छोटे हों (तम्) (त्वाम्) उन्हें मैं (अविदम्) पाऊं। जैसे (देवाः) विद्वान् लोग (देवयज्यायै) उत्तम गुण देने के लिये (त्वा) तुझ को चाहते हैं वैसे हम लोग भी (त्वा) तुझे (जुषामहे) चाहें और हम लोग (देवयज्यायै) अच्छे अच्छे गुणों का संग होने के लिये (त्वा) तुझे चाहते हैं वैसे और भी ये लोग चाहें। जैसे ओषधियों का समूह (विष्णवे) यज्ञ के लिये सिद्ध होकर सब की रक्षा करता है वैसे हे रोगों को दूर करने और (स्वधिते) दुःखों का विनाश करने वाले विद्वान् जन ! हम लोग (त्वा) तुझे यज्ञ के लिये चाहते हैं। श्रेष्ठ विद्वान् जन ! जैसे मैं इस यज्ञ का विनाश करना नहीं चाहता वैसे तू भी (एनम्) इस यज्ञ को (मा) मत (हिंसीः) बिगाड़ ॥ ४२ ॥

भावार्थः—यहां वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि नीच व्यवहार और नीच पुरुषों को छोड़ के अच्छे अच्छे व्यवहार तथा उत्तम विद्वानों को नित्य चाहें और उत्तमों से उत्तम तथा न्यूनों से न्यून शिक्षा का ग्रहण करें। यज्ञ और यज्ञ के पदार्थों का तिरस्कार कभी न करें तथा सब को चाहिये कि एक दूसरे के मेल से सुखी हों ॥ ४२ ॥

द्यां मा लेखीरित्यस्यागस्त्य ऋषिः । यज्ञो देवता । ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को योग्य है कि यज्ञ को सिद्ध कराने वाली जो विद्या है उस का नित्य सेवन करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

द्यां मा लेखीरन्तरिक्षं मा हिंसीः पृथिव्या संभव अयं हि त्वा स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय । अतस्त्वं देव वनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे मैं सूर्य्य के सामने होकर (द्याम्) उस के प्रकाश को दृष्टिगोचर नहीं करता हूं वैसे तू भी उसको (मा) (लेखीः) दृष्टिगोचर मत कर। जसे मैं (अन्तरिक्षम्) यथार्थ पदार्थों के अवकाश को नहीं बिगाड़ता हूं वैसे तू भी उसको (मा) (हिंसीः) मत बिगाड़। जैसे मैं (पृथिव्या) पृथिवी के साथ होता हूं वैसे तू भी उस के साथ (सम्) (भव) हो (हि) जिस कारण जैसे (तेतिजानः) अत्यन्त पना (स्वधितिः) वज्र शत्रुओं का विनाश कर के ऐश्वर्य्य को देता है (अतः) इस कारण (अयम्) यह (त्वा)

तुझे (महते) अत्यन्त श्रेष्ठ (सौभगाय) सौभाग्यपन के लिये सम्पन्न करे और भी पदार्थ जैसे ऐश्वर्य्य को (प्रणिनाय) प्राप्त करते हैं वैसे तुझे ऐश्वर्य पहुंचावे। हे (देव) आनन्दयुक्त (वनस्पते) वनों की रक्षा करने वाले विद्वान्! जैसे (शतवल्शः) सैकड़ों अंकुरों वाला पेड़ फलता है वैसे तू भी इस उक्त प्रशंसनीय सौभाग्यपन से (वि) (रोह) अच्छी तरह फल और जैसे (सहस्रवल्शाः) हजारों अंकुरों वाला पेड़ फले वैसे हम लोग भी उक्त सौभाग्यपन से फलें फूलें ॥ ४३ ॥

भावार्थः—यहां वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। इस संसार में किसी मनुष्य को विद्या के प्रकाश का अभ्यास अपनी स्वतन्त्रता और सब प्रकार से अपने कामों की उन्नति को न छोड़ना चाहिये ॥ ४३ ॥

इस अध्याय में यज्ञ का अनुष्ठान, यज्ञ के स्वरूप का सम्पादन, विद्वान् और परमात्मा की प्रार्थना, विद्या और विद्वान् की व्याप्ति का निरूपण, अग्नि आदि पदार्थों से यज्ञ की सिद्धि, सब विद्या निमित्त वाणी का व्याख्यान, पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ का विवरण, योगाभ्यास का लक्षण, सृष्टि की उत्पत्ति, ईश्वर और सूर्य के कर्म्म का कहना, प्राण और अपान की क्रिया का निरूपण, सब के नियम करने वाले परमेश्वर की व्याप्ति का कहना, यज्ञ का अनुष्ठान, सृष्टि से उपकार लेना, सूर्य और सभाध्यक्ष के गुणों का कहना, यज्ञ के अनुष्ठान की शिक्षा का देना, सविता और सभाध्यक्ष के कर्म का उपदेश, यज्ञ से सिद्धि, ईश्वर और सभाध्यक्ष से कार्य्यों की सिद्धि तथा उनके स्वरूप और कर्मों का वर्णन, ईश्वर और विद्वानों का वर्त्ताव और उनके लक्षण, शूरवीरों के गुणों का कहना, ईश्वर और विद्वान् के गुणों का वर्णन, ईश्वर की उपासना करने वाले के गुणों का प्रकाश, सब बन्धन से छूटना, परस्पर की चर्चा, दुष्टों से छूटने का प्रकार, इन अर्थों के कहने से पञ्चमाध्याय में कहे हुए अर्थों की संगति चतुर्थाध्याय के अर्थों से जाननी चाहिये ॥

॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥

ॐ अथ षष्ठाध्यायस्यारम्भः ॐ

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒ताानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥ १ ॥

य० ३०। ३ ॥

अथ देवस्य त्वेत्यस्यागस्त्य ऋषिः । सविता देवता । पंक्तिश्छन्दः । धैवतः स्वरः । यवोऽसीत्यस्यासुरी दिवेत्यस्य च भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दसी । ऋषभः स्वरः ॥

अब पांचवें अध्याय के पश्चात् षष्ठाऽध्याय (६) का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में राज्याभिषेक के लिये अच्छी शिक्षायुक्त सभाध्यक्ष विद्वान् को आचार्य्यादि विश्वान् लोग क्या क्या उपदेश करें यह उपदेश किया है ॥

दे॒वस्य॑ त्वा स॒वि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्या॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् । आद॑दे॒ नार्य॑सी॒दम॒हꣳ रक्ष॑सां ग्री॒वाऽअपि॑कृन्तामि । यवो॑ऽसि य॒वया॒स्मद्द्वेषो॑ य॒वयारा॑ती॒र्दि॒वे त्वा॒ऽन्तरि॑क्षाय त्वा पृ॒थि॒व्यै त्वा॒ शुन्ध॑न्ताँल्लो॒काः पि॑तृ॒षद॑नाः पि॒तृ॒षद॑नमसि ॥ १ ॥

पदार्थः—हे सभाध्यक्ष ! जैसे (पितृषदनाः) पितरों में रहने वाले विद्वान् लोग (देवस्य) प्रकाशमय और (सवितुः) सब विश्व के उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में (अश्विनोः) प्राण और अपान के (बाहुभ्याम्) बल और उत्तम वीर्य्य से तथा (पूष्णः) पुष्टि का निमित्त जो प्राण है उस के (हस्ताभ्याम्) धारण और आकर्षण से (त्वा) तुझे ग्रहण करते हैं वैसे ही मैं (आददे) ग्रहण करता हूं जैसे मैं (रक्षसाम्) दुष्ट काम करने वाले जीवों के (ग्रीवाः) गले (कृन्तामि) काटता हूं वैसे (त्वम्) तू (अपि) भी काट । हे सभाध्यक्ष ! जिस कारण तू (यवः) संयोग विभाग करने वाला (असि) है इस कारण (अस्मत्) मुझ से (द्वेषः) द्वेष अर्थात् अप्रीति करने वाले वैरियों को (यवय) अलग कर और (अरातीः) जो मेरे निरन्तर शत्रु हैं उन को (यवय) पृथक कर । जैसे मैं न्याय व्यवहार से रक्षा करने योग्य जन (दिवे) विद्या आदि गुणों के प्रकाश करने के लिये (त्वाम्) न्याय प्रकाश करने वाले तुझ को (अन्तरिक्षाय) आभ्यन्तर व्यवहार में रक्षा करने के लिये (त्वाम्) तुझ सत्य अनुष्ठान करने का अवकाश देने वाले को तथा (पृथिव्यै) भूमि के राज्य के लिये (त्वा) तुझ राज्य विस्तार करने वाले को पवित्र करता हूं

वैसे ये लोग भी (त्वा) आप को (शुन्धन्ताम्) पवित्र करें जैसे तू (पितृषनदम्) विद्वानों के घर के समान (असि) है पिता के सदृश सब प्रजा को पाला कर। हे सभापति की नारि स्त्री ! तू भी ऐसा ही किया कर ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्या में अतिविचक्षण पुरुष ईश्वर की सृष्टि में अपनी और औरों की दुष्टता को छुड़ाकर राज्य सेवन करते हैं वे सुखसयुक्त होते हैं ॥ १ ॥

अग्रेणीरित्यस्य शाकल्य ऋषिः। सविता देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। देवस्त्वेत्यस्य स्वराट् पंक्तिश्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर वह तिलक किया हुआ सभाध्यक्ष कैसे वर्ते इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

अ॒ग्र॒णीर॑सि स्वावे॒शऽउ॑न्नेतॄ॒णामे॒तस्य॑ वि॒त्तादधि॒ त्वा स्था॑स्यति दे॒वस्त्वा॑ सवि॒ता मध्वा॑नक्तु सुपिप्प॒लाभ्य॒स्त्वौष॑धीभ्यः। द्यामग्रे॑णास्पृक्ष॒ऽआन्तरि॑क्षं॒ मध्ये॑नाप्राः पृथि॒वीमुप॑रेणादृꣳहीः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे सभाध्यक्ष ! जैसे (अग्रेणीः) पढ़ाने वाला अपने शिष्यों को वा पिता अपने पुत्रों को उन के पठनारंभ से पहिले ही अच्छी शिक्षा से उन्हें सुशील जितेन्द्रिय धार्मिकतायुक्त करता है वैसे हम सभों के लिये तू (असि) है (उन्नेतॄणाम्) जैसे उत्कर्षता पहुंचाने वालों का राज्य हो वैसे (स्वावेशः) अच्छे गुणों में प्रवेश करने वाले के समान होकर तू (एतस्य) इस राज्य के पालने को (वित्तात्) जान। हे राजन् ! जैसे (त्वा) तुझ सभासद् जन (सुपिप्पलाभ्यः) अच्छे-अच्छे फलों वाली (ओषधीभ्यः) ओषधियों से (मध्वा) निष्पन्न किये हुए मधुर गुणों से युक्त रसों से (अनक्तु) सींचें वैसे प्रजाजन भी तुझे सींचें। तू इस राज्य में अपने (अग्रेण) प्रथम यश से (द्याम्) विद्या और राजनीति के प्रकाश को (अस्पृक्षः) स्पर्श कर (मध्यमेन) मध्य अर्थात् तदन्तर बढ़ाए हुए यश से (अन्तरिक्षम्) धर्म के विचार करने के मार्ग को (आप्राः) पूरा कर और (उपरेण) अपने राज्य के नियम से (पृथिवीम्) इस भूमि के राज्य को प्राप्त होकर (अदृꣳहीः) दृढ़कर बढ़ता न जा और (देवः) समस्त राजाओं का राजा (सविता) सब जगत को अन्तर्यामीपन से प्रेरणा देने वाला जगदीश्वर (त्वा) तुझ को राजा कर के तेरे पर (स्थास्यति) अधिष्ठाता होकर रहेगा ॥ २ ॥

भावार्थः—प्रजा पुरुषों के स्वीकार किये विना राजा राज्य करने को योग्य नहीं होता तथा राजा आदि सभा जिस को आदर से न चाहे वह मंत्री होने को वा कोई पुरुष अपनी कीर्त्ति की उत्तरोत्तर दृढ़ता के विना सेना का ईश्वर यथायोग्य न्याय से दण्ड करने अर्थात् न्यायाधीश होने और राज्य के मंडल की ईश्वरता के योग्य नहीं हो सकता ॥ २ ॥

या ते धामानीत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्देवता । आर्च्युष्णिक् छन्दः । अत्राहेत्यस्य साम्न्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ब्रह्मवनित्वेत्यस्य निचृत्प्राजापत्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह वाणिज्य कर्म करने वाले मनुष्य उसको कैसा जानकर आश्रय करते हैं यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

या ते धामान्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गाऽअयासः । अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमं पदमवभारि भूरि । ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्य्यूहामि । ब्रह्म दृꣳह क्षत्रं दृꣳहायुर्दृꣳह प्रजां दृꣳह ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे सभाध्यक्ष ! (या) जिन में (ते) तेरे (धामानि) धाम अर्थात् जिन में प्राणी सुख पाते हों उन स्थानों को हम (गमध्यै) (उश्मसि) प्राप्त होने की इच्छा करते हैं वे स्थान कैसे हैं कि जैसे सूर्य्य का प्रकाश है वैसे (यत्र) जिन में (उरुगायस्य) स्तुति करने के योग्य (विष्णोः) सर्वव्यापक परमेश्वर की (भूरिश्शृङ्गाः) अत्यन्त प्रकाशित (गावः) किरणें चैतन्यकला (अयासः) फैली हैं (अत्र) (अह) इन्हीं में (तत्) उस परमेश्वर का (परमम्) सब प्रकार उत्तम (पदम्) और प्राप्त होने योग्य परमपद विद्वानों ने (भूरि) (अव) (भारि) बहुधा अवधारण किया है इस कारण (त्वा) तुझे (ब्रह्मवनि) परमेश्वर वा वेद का विज्ञान (क्षत्रवनि) राज्य और वीरों की चाहना (रायस्पोषवनि) धन की पुष्टि के विभाग करने वाले आप को मैं (पर्यूहामि) विविध तर्कों से समझता हूं कि तू (ब्रह्म) परमात्मा और वेद को (दृंह) दृढ़ कर अर्थात् अपने चित्त में स्थिर कर बढ़ (क्षत्रम्) राज्य और धनुर्वेदवेत्ता क्षत्रियों को (दृंह) उन्नति दे (आयुः) अपनी अवस्था को (दृंह) बढ़ा अर्थात् ब्रह्मचर्य्य और राजधर्म से दृढ़ कर तथा (प्रजाम्) अपने संतान वा रक्षा करने योग्य प्रजाजनों को (दृंह) उन्नति दे ॥ ३ ॥

भावार्थः—सभाध्यक्ष के रक्षा किये हुए स्थानों की कामना के विना कोई भी पुरुष सुख नहीं पा सकता न कोई जन परमेश्वर का अनादर करके चक्रवर्त्ती राज्य भोगने के योग्य होता है नहीं कोई भी जन विज्ञान सेना और जीवन अर्थात् अवस्था संतान और प्रजा की रक्षा के विना अच्छी उन्नति कर सकता है ॥ ३ ॥

विष्णोः कर्म्माणीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । निचृदार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सभापति अपने सभासद् आदि को क्या २ उपदेश करे यह अगले मंत्र में कहा है ॥

विष्णोः कर्म्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे सभासदो ! जैसे (इन्द्रस्य) परमेश्वर का (युज्यः) सदाचारयुक्त (सखा) मित्र (विष्णोः) उस व्यापक ईश्वर के (कर्माणि) जो संसार का बनाना पालन और संहार करना सत्यगुण है उनको देखता हुआ मैं (यतः) जिस ज्ञान से (व्रतानि) अपने मन में सत्यभाषणादि नियमों को (पस्पशे) बांध रहा अर्थात् नियम कर रहा हूं वैसे उसी ज्ञान से तुम भी परमेश्वर के उत्तम गुणों को (पश्यत) दृढ़ता से देखो कि जिस से राज्यादि कामों में सत्य व्यवहार के करने वाले होओ ॥ ४ ॥

भावार्थः—परमेश्वर से प्रीति और सत्याचरण के विना कोई भी मनुष्य ईश्वर के गुण कर्म और स्वभाव को देखने के योग्य नहीं हो सकता न वैसे हुए विना राज्यकर्मों को यथार्थ न्याय से सेवन कर सकता है न सत्य धर्माचार से रहित जन राज्य बढ़ाने को कभी समर्थ हो सकता है ॥ ४ ॥

तद्विष्णोरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । निचृदार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

उक्त मन्त्र के विषय में जो अनुष्ठान कहा है उससे क्या सिद्ध होता है यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

तद्विष्णोः॑ पर॒मं प॒दꣳ सदा॑ पश्यन्ति सू॒रयः॑ । दि॒वी॑व॒ चक्षु॒रात॑तम् ॥५॥

पदार्थः—हे सभ्यजनो ! जिस पूर्वोक्त कर्म से (सूरयः) स्तुति करने वाले वेदवेत्ता जन (विष्णोः) संसार की उत्पत्ति पालन और संहार करने वाले परमेश्वर के जिस (परमम्) अत्यन्त उत्तम (पदम्) प्राप्त होने योग्य पद को (दिवि) सूर्य के प्रकाश में (आततम्) व्याप्त (चक्षुः) नेत्र के (इव) समान (सदा) सब समय में (पश्यन्ति) देखते हैं (तत्) उस को तुम लोग भी निरन्तर देखो ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (पश्यत) इस पद का अनुवर्त्तन किया जाता है और पूर्णोपमालङ्कार है । निर्द्धूत अर्थात् छूट गये हैं पाप जिन के वे विद्वान् लोग अपनी विद्या के प्रकाश से जैसे ईश्वर के गुणों को देख के सत्य धर्माचारयुक्त होते हैं वैसे हम लोगों को भी होना चाहिये ॥ ५ ॥

परिवीरित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । विद्वांसो देवताः । आर्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । दिवः सूनुरसीत्यस्य भुरिक् साम्नी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर यह उपासना करने वाला सभाध्यक्ष किस प्रकार का होता है यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

प॒रि॒वीर॑सि॒ परि॑ त्वा॒ दैवी॒र्विशो॑ व्ययन्तां॒ परी॒मं यज॑मान॒ꣳ रायो॑ मनु॒ष्या᳖णाम् । दि॒वः सू॒नुर॑स्ये॒ष ते॑ पृथि॒व्याँल्लो॒कऽआ॑र॒ण्यस्ते॑ प॒शुः ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे सभाध्यक्ष राजन् ! तू (परिवीः) सब विद्याओं में अच्छे प्राप्त होने वाले के समान (असि) है (त्वाम्) तुझे (दैवीः) विद्वानों के (विशः) सन्तान के समान प्रजा (परि) (व्ययन्ताम्) सर्वव्याप्त अर्थात् सब ठिकाने व्याप्त हुए तेरे कार्यकारी हों (दिवः) प्रकाश के पुञ्ज सूर्य से (सूनुः) उत्पन्न हुए किरण समुदाय के तुल्य तू (असि) है (ते) तेरा (पृथिव्याम्) पृथिवी में (लोकः) राजधानी का देश हो और (आरण्यः) बनैले सिंहादि दुष्ट पशु तेरे वश्य भी हों ॥ ६ ॥

भावार्थः—राज्य का आचरण करते हुए राजा को प्रजा लोग प्राप्त होकर अपने पदार्थों का कर चुकावें और वह राजा उन प्रजाओं की रक्षा करने के लिये सिंह और शूकर वा अन्य और दुष्ट जीव तथा डाकू चोर उठाईगीरे और गांठ कटे आदि दुष्ट जनों को दण्ड से वश में कर अपनी प्रजा को यथायोग्य धर्म में प्रवृत्त करें ॥ ६ ॥

उपावीरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः त्वष्टा देवता । आर्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह प्रजाजनों के प्रति क्या करे और वे प्रजाजन उस राजा के प्रति क्या करें यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उपावीरस्युप देवान्दैवीर्विशः प्रागुरुशिजो वह्नितमान् । देव त्वष्टर्वसु रम हव्या ते स्वदन्ताम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे देव दिव्यगुणसम्पन्न (त्वष्टः) सब दुःख के छेदन करने वाले सभाध्यक्ष ! जिससे तू (उपावीः) शरणागत पालक सदृश (असि) है इसी से (दैवीः) विद्वानों से सम्बन्ध रखने वाली दिव्यगुण सम्पन्न (विशः) प्रजा जैसे (उशिजः) श्रेष्ठ गुण शोभित कामना के योग्य (वह्नितमान्) अतिशय धर्म मार्ग में चलने और चलाने वाले (देवान्) विद्वानों को (उपप्रागुः) प्राप्त हुए वैसे तुझे भी प्राप्त होते हैं जैसे तेरे आश्रय से प्रजा धनाढ्य होके सुखी हो वैसे तू भी प्राप्त हुए प्रजाजनों से सत्कृत होकर (रमस्व) हर्षित हो जैसे तू प्रजा के पदार्थों को भोगता है वैसे प्रजा भी तेरे (हव्या) भोगने योग्य अमूल्य (वसु) धनादि पदार्थों को (स्वदन्ताम्) भोगें ॥ ७ ॥

भावार्थः—जैसे गुण के ग्रहण करने वाले उत्तम गुणवान् विद्वान् का सेवन करते हैं वैसे न्याय करने में चतुर राजा का सेवन प्रजाजन करते हैं इसी से परस्पर की प्रीति से सब की उन्नति होती है ॥ ७ ॥

रेवती रमध्वमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । प्राजापत्यानुष्टुप् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ऋतस्य त्वेत्यस्य निचृत् प्राजापत्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।

अब पिता आदि रक्षकजन अपने सन्तानों को कैसे पढाने वालों को कैसे दें ? और वह उन को कैसे स्वीकार करें ? यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

रेवती रमध्वं बृहस्पते धारया वसूनि । ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेन प्रति मुञ्चामि धर्षा मानुषः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (रेवतीः) अच्छे धन वाले सन्तानो ! तुम विद्या और अच्छी शिक्षा में (रमध्वम्) रमो । हे (बृहस्पते) वेदवाणी पालने वाले विद्वन् ! आप (ऋतस्य) सत्य न्याय व्यवहार से प्राप्त (वसूनि) धन अर्थात् हम लोगों के दिये द्रव्य आदि पदार्थों को (धारय) स्वीकार कीजिये (अब अध्यापक का उपदेश शिष्य के लिये है) हे राजन् ! प्रजा पुरुष ! वा (मानुषः) सर्व शास्त्र का विचार करने वाला मैं (पाशेन) अविद्या बन्धन से तुझे (प्रति मुञ्चामि) छुटाता हूं तू विद्या और अच्छी शिक्षाओं में धृष्ट हो । ८ ॥

भावार्थः—विद्वानों को अपनी शिक्षा से कुमार ब्रह्मचारी और कुमारी ब्रह्मचारिणियों को परमेश्वर से ले के पृथिवी पर्य्यन्त पदार्थों का बोध कराना चाहिये कि जिससे वे मूर्खपनरूपी बन्धन को छोड़ के सदा सुखी हों ॥ ८ ॥

देवस्य त्वेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । सविता आश्विनौ पूषा च देवताः । प्राजापत्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । अग्नीषोमाभ्यामित्यस्य पङ्क्तिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह गुरु शिष्य को क्या उपदेश करे यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं नियुनज्मि । अद्भ्यस्त्वौषधीभ्योऽनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः । अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे शिष्य ! मैं (सवितुः) समस्त ऐश्वर्ययुक्त (देवस्य) वेदविद्या प्रकाश करने वाले परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए इस जगत् में (अश्विनोः) सूर्य्य और चन्द्रमा के (बाहुभ्याम्) गुणों से वा (पूष्णः) पृथिवी के (हस्ताभ्याम्) हाथों के समान धारण और आकर्षण गुणों से (त्वाम्) तुझे (आददे) स्वीकार करता हूं तथा (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोम के तेज और शान्ति गुणों से (जुष्टम्) प्रीति करते हुए (त्वा) तुझ को जो ब्रह्मचर्य धर्म के अनुकूल जल और ओषधि हैं उन (अद्भ्यः) जल और (ओषधीभ्यः) गोधूम आदि अन्नादि पदार्थों से (नियुनज्मि) नियुक्त करता हूं तुझे मेरे समीप रहने के लिये तेरी (माता) जननी (अनु) (मन्यताम्) अनुमोदित करे (पिता) पिता अनुमोदित करे (सगर्भ्यः) सहोदर (भ्राता) भाई (अनु) अनुमोदित करे (सखा) मित्र (अनु) अनुमोदित करे और (सयूथ्यः) तेरे सहवासी (अनु) अनुमोदित करें (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोम के तेज और शान्ति गुणों में (जुष्टम्) प्रीति करते हुए (त्वा) तुझ को (प्र उक्षामि) उन्हीं गुणों से ब्रह्मचर्य्य के नियम पालने के लिये अभिषिक्त करता हूं ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस संसार में माता पिता बन्धुवर्ग और मित्रवर्गों को चाहिये कि अपने सन्तान आदि को अच्छी शिक्षा देकर ब्रह्मचर्य करावें जिस से वे गुणवान् हों ॥ ६ ॥

अपां पेरुरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। आपो देवता। प्राजापत्या बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। सन्त इत्यस्य निचृदार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अब यज्ञोपवीत होने के पश्चात् शिष्य को अत्यावश्यक है कि विद्या, उत्तम शिक्षा ग्रहण और अग्निहोत्रादिक का अनुष्ठान करे ऐसा उपदेश गुरु किया करे यह अगले मन्त्र में कहा है॥

अपां पेरुरस्यापो देवीः स्वदन्तु स्वात्तं चित्सद्देवहविः। सं ते प्राणो वातेन गच्छताᳪ समङ्गानि यजत्रैः सं यज्ञपतिराशिषा॥ १०॥

पदार्थः—हे शिष्य! तू (अपाम्) जल आदि पदार्थों का (पेरुः) रक्षा करने वाला (असि) है, संसारस्थ जीव तेरे यज्ञ से शुद्ध हुए (देवीः) दिव्य सुख देने वाले (आपः) जलों को (चित्) और (स्वात्तम्) धर्मयुक्त व्यवहार से प्राप्त हुए पदार्थों को (देवहविः) विद्वानों के भोगने के समान (संस्वदन्तु) अच्छी तरह से भोगें (आशिषा) मेरे आशीर्वाद से (ते) तेरे (अङ्गानि) शिर आदि अवयव (यजत्रैः) यज्ञ कराने वालों के साथ (सम्) सम्यक् नियुक्त हों और (प्राणः) प्राण (वातेन) पवित्र वायु के संग (सङ्गच्छताम्) उत्तमता से रमण करे और तू (यज्ञपतिः) विद्याप्रचाररूपी यज्ञ का पालन करने हारा हो॥ १०॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालंकारः। जो यज्ञ में दी हुई आहुति हैं वे सूर्य के उपस्थित रहती हैं अर्थात् सूर्य की आकर्षण शक्ति से परमाणुरूप होकर सब पदार्थ पृथिवी के ऊपर आकाश में हैं उसी पृथिवी का जल ऊपर खिंचकर वर्षा होती है उस वर्षा से अन्न और अन्न से सब जीवों को सुख होता है इस परम्परा सम्बन्ध से यज्ञशोधित जल और होम किये द्रव्य को सब जीव भोगते हैं॥ १०॥

घृतेनाक्तावित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। वातो देवता। भुरिगार्च्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अब यज्ञ करने और कराने वालों के कर्त्तव्य काम का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

घृतेनाक्तौ पशूँस्त्रायेथाᳪ रेवति यजमाने प्रियं धाऽआविश। उरोरन्तरिक्षात्सजूर्देवेन वातेनास्य हविषस्त्मना यज समस्य तन्वा भव। वर्षो वर्षीयसि यज्ञे यज्ञपतिं धाः स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा॥ ११॥

पदार्थः—हे (घृतेन, अक्तौ) घृतप्रसक्त अर्थात् घृत चाहने और यज्ञ के कराने हारो! तुम (पशून्) गौ आदि पशुओं को (त्रायेथाम्) पालो, तुम एक एक जन (देवेन) सर्वगत (वातेन) पवन से (सजूः) समान प्रीति करते हुए समान (उरोः) विस्तृत (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से उत्पन्न हुए (प्रियम्) प्रिय सुख को (रेवति) अच्छे ऐश्वर्ययुक्त (यजमाने) यज्ञ करने वाले धनी पुरुष में (धाः) स्थापन करो तथा (आविश) उस के अभिप्राय को प्राप्त होओ

और (अस्य) इस के (हविषः) होम के योग्य पदार्थ को (त्मना) आप ही निष्पादन किये हुए के समान (यज) अग्नि में होमो अर्थात् यज्ञ की किसी क्रिया का विपरीत भाव न करो और (अस्य) इसके (तन्वा) शरीर के साथ (सम्) (भव) एकी भाव रक्खो किन्तु विरोध से द्विधा आचरण मत करो। हे (वर्षो) यज्ञकर्म से सर्व सुख के पहुंचाने वालो! (देवेभ्यः) (स्वाहा) (देवेभ्यः) (स्वाहा) सत्कर्म के अनुष्ठान से प्रकाशित धर्मिष्ठ ज्ञानी पुरुष जो कि यज्ञ देखने की इच्छा करते हुए बार बार यज्ञ में आते हैं उन विद्वानों के लिये अच्छे सत्कार कराने वाली वाणियों को उच्चारण करते हुए यज्ञपति को (वर्षीयसि) सर्व सुख वर्षने वाले यज्ञ में (धाः) अभियुक्त करो ॥ ११ ॥

भावार्थः—यज्ञ के लिये घृत आदि पदार्थ चाहने वाले मनुष्य को गाय आदि पशु रखने चाहियें और घृतादि अच्छे अच्छे पदार्थों से अग्निहोत्र से लेकर उत्तम उत्तम यज्ञों से जल और पवन की शुद्धि कर सब प्राणियों को सुख उत्पन्न करना चाहिये ॥ ११ ॥

माहिर्भूरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। विद्वांसो देवताः। भुरिक् प्राजापत्यानुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

वह विद्वान् कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मा हिर्भूर्मा पृदाकुर्नमस्तऽआतानानर्वा प्रेहि। घृतस्य कुल्याऽउपऽऋतस्य पथ्याऽअनु ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (आतान) अच्छे प्रकार सुख से विस्तार करने वाले विद्वान्! तू (मा) मत (अहिः) सर्प के समान कुटिलमार्गगामी और (मा) मत (पृदाकुः) मूर्खजन के समान अभिमानी वा व्याघ्र के समान हिंसा करने वाला (भूः) हो (ते) (नमः) सब जगह तेरे सुख के लिये अन्न आदि पदार्थ पहले ही प्रवृत्त हो रहे हैं और (अनर्वा) अश्व आदि सवारी के विना निराश्रय पुरुष जैसे (घृतस्य) जल की (कुल्याः) बड़ी धाराओं को प्राप्त हो वैसे (ऋतस्य) सत्य के (पथ्याः) मार्गों को प्राप्त हो ॥ १२ ॥

भावार्थः—किसी मनुष्य को कुटिलगामी सर्प आदि दुष्ट जीवों के समान धर्ममार्ग में कुटिल न होना चाहिये किन्तु सर्वदा सरल भाव से ही रहना चाहिये ॥ १२ ॥

देवीराप इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। आपो देवताः। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ॥ गान्धारः स्वरः ॥

अब ब्रह्मचारी बालक और ब्रह्मचारिणी कन्याओं को गुरुपत्नियों का कैसे मान करना चाहिये यह अगले मंत्र में कहा है ॥

देवीरापः शुद्धा वोढ्वꣳ सुपरिविष्टा देवेषु सुपरिविष्टा वयं परिवेष्टारो भूयास्म ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे कुमारियो ! तुम जैसे (आपः) श्रेष्ठगुणों में रमण करने वाली (शुद्धाः) सत्कर्माऽनुष्ठान से पवित्र (देवीः) विद्या प्रकाशवती विदुषी स्त्रीजन (देवेषु) श्रेष्ठ विद्वान् पतियों के निमित्त (सुपरिविष्टाः) और उन की सेवा करने को सन्मुख प्रवृत्त होकर अपने समान पतियों को (वोढ्वम्) प्राप्त होती हैं और वे विद्वान् पतिजन उन स्त्रियों को प्राप्त होते हैं वैसे तुम हो और हम भी (परिवेष्टा) उस कर्म की योग्यता को (भूयास्म) पहुँचें ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे विदुषी अर्थात् विद्वानों की स्त्री पातिव्रत धर्म में तत्पर रहती हैं वैसे ब्रह्मचारिणी कन्या भी उन के गुण और स्वभाव वाली हों और ब्रह्मचारी भी गुरुजनों की शिक्षा से स्त्री और पुरुष आदि की रक्षा करने में तत्पर हों ॥ १३ ॥

वाचं त इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। विद्वांसो देवताः। भुरिगार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अब वे गुरुपत्नी और गुरुजन यथायोग्य शिक्षा से अपने-अपने विद्यार्थियों को अच्छे-अच्छे गुणों में कैसे प्रकाशित करते हैं यह अगले मन्त्र में कहा है॥

वाचं॑ ते शुन्धामि प्राणं ते॑ शुन्धामि चक्षु॑स्ते शुन्धामि श्रोत्रं॑ ते शुन्धामि नाभिं॑ ते शुन्धामि मेढ्रं॑ ते शुन्धामि पायुं ते॑ शुन्धामि च॒रित्राँ॑स्ते शुन्धामि ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे शिष्य ! मैं विविध शिक्षाओं से (ते) तेरी (वाचम्) जिस से बोलता है उस वाणी को (शुन्धामि) शुद्ध अर्थात् सद्धर्मानुकूल करता हूं (ते) तेरे (चक्षुः) जिस से देखता है उस नेत्र को (शुन्धामि) शुद्ध करता हूं (ते) तेरी (नाभिम्) जिस से नाड़ी आदि बांधे जाते हैं उस नाभि को (शुन्धामि) पवित्र करता हूं (ते) तेरे (मेढ्रम्) जिससे मूत्रोत्सर्गादि किये जाते हैं उस लिङ्ग को (शुन्धामि) पवित्र करता हूं (ते) तेरे (पायुम्) जिस से रक्षा की जाती है उस गुदेन्द्रिय को (शुन्धामि) पवित्र करता हूं (चरित्रान्) समस्त व्यवहारों को (शुन्धामि) पवित्र शुद्ध अर्थात् धर्म के अनुकूल करता हूं तथा गुरुपत्नी पक्ष में सर्वत्र "करती हूं" वह योजना करनी चाहिये ॥ १४ ॥

भावार्थः—गुरु और गुरुपत्नियों को चाहिये कि वेद और उपवेद तथा वेद के अङ्ग और उपाङ्गों की शिक्षा से देह इन्द्रिय अन्तःकरण और मन की शुद्धि शरीर की पुष्टि तथा प्राण की संतुष्टि देकर समस्त कुमार और कुमारियों को अच्छे-अच्छे गुणों में प्रवृत्त करावें ॥ १४ ॥

मनस्त इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। विद्वांसो देवताः। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर भी प्रकारान्तर से अगले मन्त्र ने उक्त अर्थ का प्रकाश किया है॥

मनस्तऽआप्यायतां वाक्तऽआप्यायतां प्राणस्तऽआप्यायतां चक्षुस्तऽआप्यायताᳬं श्रोत्रं तऽआप्यायताम् । यत्ते क्रूरं यदास्थितं तत्तऽआप्यायतां निष्ट्यायतां तत्ते शुध्यतु शमहोभ्यः । ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनᳬं हिᳬंसीः ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे शिष्य ! मेरी शिक्षा से (ते) तेरा (मनः) मन (आप्यायताम्) पर्य्याप्त गुणयुक्त हो (ते) तेरा (प्राणः) प्राण (आप्यायताम्) बलादि गुणयुक्त हो (ते) तेरी (चक्षुः) दृष्टि (आप्यायताम्) निर्मल हो (ते) तेरे (श्रोत्रम्) कर्ण (आप्यायताम्) सद्गुण व्याप्त हों (ते) तेरा (यत्) जो (क्रूरम्) दुष्ट व्यवहार है वह (निः) (स्त्यायताम्) दूर हो और (यत्) जो (ते) तेरा (आस्थितम्) निश्चय है वह (आप्यायताम्) पूरा हो इस प्रकार से (ते) तेरा समस्त व्यवहार (शुध्यतु) शुद्ध हो और (अहोभ्यः) प्रतिदिन तेरे लिये (शम्) सुख हो । हे (ओषधे) प्रवर अध्यापक ! आप (एनम्) इस शिष्य की (त्रायस्व) रक्षा कीजिये और (मा हिंसीः) व्यर्थ ताड़ना मत कीजिये । हे (स्वधिते) प्रशस्ताध्यापिके ! तू इस कुमारिका शिष्या की (त्रायस्व) रक्षा कर और इस को अयोग्य ताड़ना मत दे ॥ १५ ॥

भावार्थः—सत्कर्म करने से सब की उन्नति होती है इस से सब मनुष्यों को चाहिये कि सुशिक्षा पाकर समस्त सत्कर्मों का अनुष्ठान करें इसी से अध्यापक जन गुण ग्रहण कराने ही के लिये शिष्यों को ताड़ना देते हैं वह उनकी ताड़ना अत्यन्त सुख की करने वाली होती है । स्त्री और पुरुष इस प्रकार उपदेश करें कि हे सर्वोत्तम अध्यापक ! यह आपका विद्यार्थी जैसे शीघ्र विद्वान् हो जाय वैसा प्रयत्न कीजिये । हे प्रिये ! यह कन्या जिस प्रकार अतिशीघ्र विद्यायुक्त हो वैसा काम कर ॥ १५ ॥

रक्षसां भाग इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ देवते ॥
ब्राह्मयुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब शिष्यवर्गों में से प्रति शिष्य को यथायोग्य उपदेश करना अगले मन्त्र में कहा है ॥

रक्षसां भागोऽसि निरस्तᳬं रक्षऽइदमहᳬं रक्षोऽभितिष्ठामीदमहᳬं रक्षोऽवबाधऽइदमहᳬं रक्षोऽधमं तमो नयामि । घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथां वायो वे स्तोकानामग्निराज्यस्य वेतु स्वाहा स्वाहाकृतेऽऊर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे दुष्टकर्म करने वाले जन ! तू (रक्षसाम्) दुष्टों अर्थात् परार्थ नाश कर अपना अभीष्ट करने वालों का (भागः) भाग (असि) है इस कारण (रक्षः) राक्षस

स्वभावी तू (निरस्तम्) निकल जा (अहम्) मैं (इदम्) ऐसे (रक्षः) स्वार्थसाधक को (अभितिष्ठाभि) तिरस्कार करने के लिये सन्मुख होता हूं और केवल सन्मुख ही नहीं किन्तु (अहम्) मैं (इदम्) ऐसे (रक्षः) दुष्ट जन को (अवबाधे) अत्यन्त तिरस्कार के साथ पीटता हूं जिस से वह फिर सामने न हो और (अहम्) में (इदम्) ऐसे (रक्षः) दुष्ट जन को (अधमम्) दुःसह दुःख को (नयामि) पहुंचाता हूं। अब श्रेष्ठ गुणग्राही शिष्य के लिये उपदेश है। हे वायो! गुणग्राहक सत् असत् व्यवहार की विवेचना करने वाला तू (स्तोकानाम्) सूक्ष्म से सूक्ष्म व्यवहारों को (वेः) जान और तेरे यज्ञशोधित जल से (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (प्रोर्णुवाथाम्) अच्छे प्रकार आच्छादित हों (अग्निः) समस्त विद्यायुक्त विद्वान् तेरे घृत आदि पदार्थ के (स्वाहा) अच्छे होम किये हुए को (वेतु) जाने तथा (स्वाहाकृते) हवन किये हुए स्नेहद्रव्य को प्राप्त पूर्वोक्त जो सूर्य और भूमि हैं वे (ऊर्द्ध्वनभसम्) तेरे यज्ञ से शुद्ध हुए जल को ऊपर पहुंचाने वाले (मरुतम्) पवन को (गच्छतम्) प्राप्त हों ॥ १६ ॥

भावार्थः—बुद्धिमान् श्रेष्ठ और अनिष्ट के विवेक करने वाले विद्वान् लोग अपने शिष्यों में यथायोग्य शिक्षा विधान करते हैं यज्ञकर्म से जल और पवन की शुद्धि उस की शुद्धि से वर्षा और उस से सब प्राणियों को सुख उत्पन्न होता है ॥ १६ ॥

इदमाप इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आपो देवताः । निचृद्ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब निर्दोष जल से क्या संभावना करनी चाहिये यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

इदमापः प्रवहतावद्यं च मलं च यत् । यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपेऽअभीरुणम् । आपो मा तस्मादेनसः पवमानश्च मुञ्चतु ॥ १७ ॥

पदार्थः—भो (आपः) सर्वविद्याव्यापक विद्वान् लोगो! आप जैसे (आपः) जल शुद्धि करते हैं वैसे मेरा (यत्) जो (अवद्यम्) अकथनीय निंद्यकर्म (च) और विकार तथा (यत्) जो (मलम्) अविद्यारूपी मल है (इदम्) इस को (प्रवहत) बहाइये अर्थात् दूर कीजिये (च) और (यत्) जो मैं (अनृतम्) झूंठ मूंठ किसी से (दुद्रोह) द्रोह करता होऊं (च) और (यत्) जो (अभीरुणम्) निर्भय निरपराधी पुरुष को (शेपे) उलाहने देता हूं (तस्मात्) उस उक्त (एनसः) पाप से (मा) मुझे अलग रक्खो (च) और जैसे (पवमानः) पवित्र व्यवहार (मा) मुझ को पाप व्यवहार से अलग रखता है वैसे (च) अन्य मनुष्यों को भी रक्खे ॥ १७ ॥

भावार्थः—जैसे जल सांसारिक पदार्थों का शुद्धि का निदान है वैसे विद्वान् लोग सुधार का निदान हैं इस से वे अच्छे कामों को करें। मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की उपासना और विद्वानों के संग से दुष्टाचरणों को छोड़ सदा धर्म में प्रवृत्त रहें ॥ १७ ॥

सं त इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । प्राजापत्यानुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । रेडसीत्यस्य दैवीपङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब रण में युद्ध करने वाला शिष्य कैसा हो यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

सं ते मनो मनसा सं प्राणः प्राणेन गच्छताम् । रेडस्यग्निष्ट्वा श्रीणात्वापस्त्वा समरिणन्वातस्य त्वा ध्राज्यै पूष्णो रंह्याऽऊष्मणो व्यथिषत्प्रयुतं द्वेषः ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे युद्धशील शूरवीर ! संग्राम में (ते) तेरा (मनः) मन (मनसा) विद्याबल और (प्राणः) प्राण (प्राणेन) प्राण के साथ (सम्) (गच्छताम्) संगत हो । हे वीर ! तू (रेट्) शत्रुओं को मारने वाला (अग्नि) है (त्वा) तुझे (अग्निः) युद्ध से उत्पन्न हुए क्रोध का अग्नि (श्रीणातु) अच्छे पचावे तू (प्रयुतम्) करोड़ों प्रकार के शत्रुओं की सेना को प्राप्त होता है तुझ को तजन्य (ऊष्मणः) गरमी का (द्वेषः) द्वेष मत (व्यथिषत्) अत्यन्त पीड़ायुक्त करे जिस से (वातस्य) (ध्राज्यै) पवन की गति के तुल्य गति के लिये वा (पूष्णः) पुष्टिकारक सूर्य के (रंह्यै) वेग के तुल्य वेग के लिये अर्थात् यथार्थता से युद्ध करने में प्रवृति होने के लिये (आपः) अच्छे-अच्छे जल (सम्) (अरिणन्) अच्छे प्रकार प्राप्त हों ॥ १८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अपने बल के बढ़ाने वाले अन्न जल और शस्त्र-अस्त्र आदि पदार्थों को इकट्ठा करके शत्रुओं को मार कर संग्राम जीतें ॥ १८ ॥

घृतं घृतपावान इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । ब्राह्मयनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर युद्धकर्म में क्या होना चाहिये यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा । दिशः प्रदिशऽआदिशो विदिशऽ उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (घृतपावानः) जल के पीने वाले वीर पुरुषो ! तुम (घृतम्) अमृतात्मक जल को (पिबत) पिओ । हे (वसापावानः) नीति के पालने वाले वीरो ! तुम (वसाम्) जो वीर रस की वाणी अर्थात् शत्रुओं को स्तंभन करने वाली है उस को (पिबत) पिओ । हे सेनाध्यक्ष चक्रव्यूहादि सेनारचक प्रत्येक वीर को तू जिस से (अन्तरिक्षस्य) आकाश की (हविः) रुकावट अर्थात् युद्ध में बहुतों के बीच शत्रुओं को घेरना (असि) है उस (स्वाहा) शोभन वाणी से जो (दिशः) पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण (प्रदिशः) आग्नेयी नैर्ऋति वायवी और ऐशानी उपदिशा (आदिशः) आमने सामने मुहाने की दिशा (विदिशा) पीछे की दिशा और (उद्दिशः) जिस ओर शत्रु लक्षित हो वे दिशा हैं उन सब (दिग्भ्यः) दिशाओं से यथायोग्य वीरों को बांट के शत्रुओं को जीतो ॥ १९ ॥

भावार्थः—सेनाध्यक्षों को उचित है कि अपनी-अपनी सेना के वीरों को अत्यन्त पुष्ट कर युद्ध के समय चक्रव्यूह, श्येनव्यूह तथा शकटव्यूह आदि रचनादि युद्ध कर्मों से सब दिशाओं में अपनी सेनाओं के भागों को स्थापन कर सब प्रकार से शत्रुओं को घेर घार जीतकर न्याय से प्रजापालन करें ॥ १९ ॥

ऐन्द्रः प्राण इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । त्वष्टा देवता । ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर संग्राम में वीर पुरुष आपस में कैसे वर्तें यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

ऐन्द्रः प्राणोऽअङ्गेऽअङ्गे निदीध्यदैन्द्रऽउदानोऽअङ्गेऽअङ्गे निधीतः । देव त्वष्टर्भूरि ते सꣳसमेतु सलक्ष्मा यद्विषुरूपं भवाति । देवत्रा यन्तमवसे सखायोऽनु त्वा माता पितरो मदन्तु ॥ २० ॥

पदार्थः—हे (त्वष्टः) शत्रुबलविदारक (देव) दिव्यविद्यासंपन्न सेनापति ! आप (अवसे) रक्षा आदि के लिये (अङ्गे अङ्गे) जैसे अङ्ग अङ्ग में (ऐन्द्रः) इन्द्र अर्थात् जीव जिस का देवता है वह सब शरीर में ठहरने वाला प्राणवायु सब वायुओं को तिरस्कार करता हुआ आप ही प्रकाशित होता है वैसे आप संग्राम में सब शत्रुओं का तिरस्कार करते हुए (निदीध्यत्) प्रकाशित हूजिये अथवा (अङ्गे अङ्गे) जैसे अङ्ग २ में (उदानः) अन्न आदि पदार्थों को ऊर्ध्व पहुंचाने वाला उदानवायु प्रवृत्त है वैसे अपने विभव से सब वीरों को उन्नति देते हुए संग्राम में (निधीतः) निरंतर स्थापित किये हुए के समान प्रकाशित हूजिये (यत्) जो (ते) आप का (विषुरूपम्) विविध रूप (सलक्ष्म) परस्पर युद्ध का लक्षण (भवाति) हो वह (संग्रामे) संग्राम में (भूरि) विस्तार से (संसम्) (एतु) प्रवृत्त हो । हे सेनाध्यक्ष ! तेरी रक्षा के लिये सब शूरवीर पुरुष (सखायः) मित्र हो के वर्त्तें (माता) माता (पितरः) पिता, चाचा, ताऊ, भृत्य और शुभचिन्तक (देवत्रा) देवों अर्थात् विद्वानों, धर्मयुक्त युद्ध और व्यवहार को (यंतम्) प्राप्त होते हुए (त्वा) तेरा (अनुमदन्तु) अनुमोदन करें ॥ २० ॥

भावार्थः—सेनापति सब प्राणियों का मित्र भाव वर्त्तने वाला जैसे प्रत्येक अङ्ग में प्राण और उदान प्रवर्त्तमान हैं, वैसे संग्राम में विचरता हुआ सेना और प्रजापुरुषों को हर्षित करके शत्रुओं को जीते ॥ २० ॥

समुद्रं गच्छेत्यादेर्दीर्घतमा ऋषिः । सेनापतिर्देवता । याजुष्य उष्णिषश्छन्दांसि । ऋषभः स्वरः ॥

अब राज्यकर्म करने योग्य शिष्य को गुरु क्या २ उपदेश करे यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

समुद्रं गच्छ स्वाहाऽन्तरिक्षं गच्छ स्वाहा देवꣳ सवितारं गच्छ स्वाहा । मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहाऽहोरात्रे गच्छ स्वाहा छन्दांꣳसि गच्छ स्वाहा द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा यज्ञं गच्छ स्वाहा सोमं गच्छ स्वाहा दिव्यं नभो गच्छ स्वाहाग्निं वैश्वानरं गच्छ स्वाहा मनो मे हार्दि यच्छ दिवं ते धूमो गच्छतु स्वर्ज्योतिः पृथिवीं भस्मना पृण स्वाहा ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे धर्मादि राज्यकर्म करने योग्य शिष्य ! तू (स्वाहा) बड़े-बड़े अश्वतरी नाव अर्थात् धूम्रांकष आदि बनाने की विद्या से नौकादि यान पर बैठ (समुद्रम्) समुद्र को (गच्छ) जा (स्वाहा) खगोलप्रकाश करने वाली विद्या से सिद्ध किये हुए विमानादि यानों से (अन्तरिक्षम्) आकाश को (गच्छ) जा (स्वाहा) वेदवाणी से (देवम्) प्रकाशमान (सवितारम्) सब को उत्पन्न करने वाले परमेश्वर को (गच्छ) जान (स्वाहा) वेद और सज्जनों के सङ्ग मे शुद्ध संस्कार को प्राप्त हुई वाणी से (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान को (गच्छ) जान (स्वाहा) ज्योतिषविद्या से (अहोरात्रे) दिन और रात्रि वा उन के गुणों को (गच्छ) जान (स्वाहा) वेदाङ्ग विज्ञानसहित वाणी से (छन्दांसि) ऋग्यजुः साम और अथर्व इन चारों वेदों को (गच्छ) अच्छे प्रकार से जान (स्वाहा) भूमियान आकाश मार्ग विमान और भूगोल वा भूगर्भ आदि यान बनाने की विद्या से (द्यावापृथिवी) भूमि और सूर्य-प्रकाशस्थ अभीष्ट देश देशान्तरों को (गच्छ) जान और प्राप्त हो (स्वाहा) संस्कृत वाणी से (यज्ञम्) अग्निहोत्र कारीगरी और राजनीति आदि यज्ञ को (गच्छ) प्राप्त हो (स्वाहा) वैद्यक विद्या से (सोमम्) ओषधिसमूह अर्थात् सोमलतादि को (गच्छ) जान (स्वाहा) जल के गुण और अवगुणों को बोध कराने वाली विद्या से (दिव्यम्) व्यवहार में लाने योग्य पवित्र (नभः) जल को (गच्छ) जान और (स्वाहा) बिजुली आग्नेयास्त्रादि तारबर्क़ी तथा प्रसिद्ध सब कलायंत्रों को प्रकाशित करने वाली विद्या से (अग्निम्) विद्युत् रूप अग्नि को (गच्छ) अच्छी प्रकार जान और (मे) मेरे (मनः) मन को (हार्द्दि) प्रीतियुक्त (यच्छ) सत्यधर्म में स्थित कर अर्थात् मेरे उपदेश के अनुकूल वर्त्ताव वर्त्त और (ते) तेरे (धूमः) कलाओं और यज्ञ के अग्नि का धूंआं (दिवम्) सूर्य्यप्रकाश को तथा (ज्योतिः) उस की लपट (स्वः) अन्तरिक्ष को (गच्छतु) प्राप्त हो और तू यन्त्रकला अग्नि में (स्वाहा) काष्ठ आदि पदार्थों को भस्म कर उस (भस्मना) भस्म से (पृथिवीम्) पृथिवी को (आपृण) ढांप दे ॥ २१ ॥

भावार्थः—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष राज्य और बनिज व्यापार चाहने वाले पुरुष भूमियान, अन्तरिक्षयान और आकाशमार्ग में जाने आने के विमान आदि रथ वा नाना प्रकार के कलायंत्रों को बनाकर तथा सब सामग्री को जोड़ कर धन और राज्य का उपार्जन करें ॥ २१ ॥

माप इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । वरुणो देवता । ब्राह्मी स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । सुमित्रिया न इत्यस्य विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब बनिजव्यापार करने के लिये राज्यप्रबन्ध अगले मन्त्र में कहा है ॥

मापो मौषधीर्हिꣳसीर्धाम्नोधाम्नो राजँस्ततो वरुण नो मुञ्च । यदाहुरघ्न्या-ऽइति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च । सुमित्रिया नऽआपऽओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (राजन्) सभापति ! आप अपने प्रत्येक स्थानों में (आपः) जल और (ओषधीः) अन्न पान पदार्थ तथा किराने आदि बनज के पदार्थों को (मा) मत (हिंसी) नष्ट करो अर्थात प्रत्येक जगह हम लोगों को सब चहिते पदार्थ मिलते रहें न केवल यही करो किन्तु (ततः) उस (धाम्नः धाम्नः) स्थान स्थान से (नः) हम लोगों को (मा) मत (मुञ्च) त्यागो। हे (वरुण) न्याय करने वाले सभापति ! किये हुए न्याय में (अघ्न्याः) न मारने योग्य गौ आदि पशुओं की शपथ है (इति) इस प्रकार जो आप कहते हैं और हम लोग भी (शपामहे) शपथ करते हैं आप भी उस प्रतिज्ञा को मत छोड़िये और हम लोग भी न छोड़ेंगे। हे वरुण ! आपके राज्य में (नः) हम लोगों को (आपः) जल और ओषधियां (सुमित्रियाः) श्रेष्ठमित्र के तुल्य (सन्तु) हों तथा (यः) जो (अस्मान्) हम लोगों से द्वेष्टि) वैर रखता है (च) और (वयम्) हम लोग (यम्) जिससे (द्विष्मः) वैर करते हैं (तस्मै) उस के लिये वे ओषधियां (दुर्मित्रियाः) दुःख देने देने वाले शत्रु के तुल्य (सन्तु) हों ॥ २२ ॥

भावार्थः—राजा और राजाओं के कामदार लोग अनीति से प्रजाजनों का धन न लेवें किन्तु राज्य-पालन के लिये राजपुरुष प्रतिज्ञा करें कि हम लोग अन्याय न करेंगे अर्थात् हम सर्वदा तुम्हारी रक्षा और डाकू चोर लम्पट लवाड़ कपटी कुमार्गी अन्यायी और कुकर्मियों को निरन्तर दण्ड देवेंगे ॥ २२ ॥

हविष्मतीरित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। अब्यज्ञसूर्या देवताः। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर परस्पर मिल कर राजा और प्रजा किससे क्या २ करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

हविष्मतीरिमाऽआपो हविष्माँ२ऽआविवासति। हविष्मान्देवो ऽअध्वरो हविष्माँ२ऽअस्तु सूर्यः ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! तुम उन कामों को किया करो कि जिन से (इमाः) ये (आपः) जल (हविष्मतीः) अच्छे अच्छे दान और आदान क्रिया शुद्धि और सुख देने वाले हों अर्थात् जिन से नाना प्रकार का उपकार दिया लिया जाय (हविष्मान्) पवन उपकार अनुपकार को (आ) अच्छे प्रकार (विवासति) प्राप्त होता है (देवः) सुख का देने वाला (अध्वरः) यज्ञ भी (हविष्मान्) परमानन्दप्रद (सूर्य्यः) तथा सूर्यलोक भी (हविष्मान्) सुगन्धादियुक्त होके सुखदायक (अस्तु) हो ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जिस वायु जल के संयोग से अनेक सुख सिद्धि किये जाते हैं, जिन से देश देशान्तरों में जाने से उत्तम वस्तुओं का पहुंचाना होता है उन अग्नि जल आदि पदार्थों से उक्त काम को क्रियाओं में चतुर ही पुरुष कर सकता है और जो नाना प्रकार की कारीगरी आदि अनेक क्रियाओं का प्रकाश करने वाला है वही यज्ञ वर्षा आदि उत्तम उत्तम सुख का करने वाला होता है ॥ २३ ॥

अग्नेर्व इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । आर्ची त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।
अमूर्य्येत्यस्य त्रिपाद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब गुरुपत्नी ब्रह्मचर्य्य के अनुकूल जो कन्याजन हैं उन को क्या २ उपदेश करें यह अगल मन्त्र में कहा है ॥

अग्नेर्वोऽपन्नगृहस्य सदसि सादयामीन्द्राग्न्योर्भागधेयी स्थ मित्रावरुणयोर्भागधेयी स्थ विश्वेषां देवानां भागधेयी स्थ । अमूर्याऽउप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे ब्रह्मचारिणी कन्याओ ! (अमूः) वे (याः) जो स्वयंवर विवाह से पतियों को स्वीकार किये हुए हैं उन के समान जो (इन्द्राग्न्योः) सूर्य और बिजुली के गुणों को (भागधेयीः) अलग अलग जानने वाली (स्थ) हैं (मित्रावरुणयाः) प्राण और उदान के गुणों को (भागधेयीः) अलग अलग जानने वाली (स्थ) हैं (विश्वेषाम्) विद्वान् और पृथिवी आदि पदार्थों के (भागधेयीः) सेवने वाली (स्थ) हैं उन (वः) तुम सभों को (अपन्नगृहस्य) जिसको गृहकृत्य नहीं प्राप्त हुआ है उस ब्रह्मचर्य धर्मानुष्ठान करने वाले और (अग्नेः) सब विद्यादि गुणों से प्रकाशित उत्तम ब्रह्मचारी की (सदसि) सभा में मैं (सादयामि) स्थापित करता हूँ और जो (याः) (उप) (सूर्ये) सूर्यलोक गुणों में (उप) उपस्थित होती हैं (वा) अथवा (याभिः) जिन के (सह) साथ (सूर्य) सूर्यलोक वर्त्तमान जो सूर्य के गुणों में अति चतुर हैं (ताः) वे सब (नः) हमारे (अध्वरम्) घर के काम काज को विवाह करके (हिन्वन्तु) बढावें ॥ २४ ॥

भावार्थः—ब्रह्मचर्य धर्म को पालन करने वाली कन्याओं को अविवाहित ब्रह्मचारी और अपने तुल्य गुण कर्म स्वाभावयुक्त पुरुषों के साथ विवाह करने की योग्यता है इस हेतु से गुरुजनों की स्त्रियां ब्रह्मचारिणी कन्याओं को वैसा ही उपदेश करें कि जिस से वे अपने प्रसन्नता के तुल्य पुरुषों के साथ विवाह करके सदा सुखी रहें और जिस का पति वा जिस की स्त्री मर जाय और सन्तान की इच्छा हो वे दोनों नियोग करें अन्य व्यभिचारादि कर्म कभी न करें ॥ २४ ॥

हृदे त्वेत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । सोमो देवता । आर्षी विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे क्या-क्या उपदेश करें यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्य्याय त्वा । ऊर्ध्वमिममध्वरं दिवि देवेषु होत्रा यच्छ ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे ब्रह्मचारिणी कन्या ! तू जैसे हम सब (देवेषु) अपने सुख देने वाले पतियों के निकट रहने और (होत्राः) अग्निहोत्र आदि कर्म का अनुष्ठान करने वाली हैं वैसी हो और जैसे हम (हृदे) सौहार्द सुख के लिये (त्वा) तुझे वा (मनसे) भला बुरा विचारने के

लिये (त्वा) तुझे वा (दिवे) सब सुखों के प्रकाश करने के लिये (त्वा) तुझे वा (सूर्य्याय) सूर्य्य के सदृश गुणों के लिये (त्वा) तुझे शिक्षा करती हैं वैसे तू भी (दिवि) समस्त सुखों के प्रकाश करने के निमित्त (इमम्) इस (अध्वरम्) निरन्तर सुख देने वाले गृहाश्रमरूपी यज्ञ को (उदध्वंम्) उन्नति (यच्छ) दिया कर ॥ २५ ॥

भावार्थः—जैसे अपने पतियों की सेवा करती हुई उनके समीप रहने वाली पतिव्रता गुरुपत्नी अग्निहोत्रादि कर्मों में स्थिर बुद्धि रखती है वैसे विवाह के अनन्तर ब्रह्मचारिणी कन्याओं और ब्रह्मचारियों को परस्पर वर्त्तना चाहिये ॥ २५ ॥

सोम राजन्नित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।
शृणोत्वित्यस्यार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब गुरुजन क्षत्रिय शिष्य और प्रजाजन को उपदेश करता है यह अगले मंत्र में कहा है ॥

सोम॑ राज॒न्विश्वा॒स्त्वं प्र॒जाऽउ॒पाव॑रोह॒ विश्वा॒स्त्वां प्र॒जाऽउ॒पाव॑रोहन्तु । शृ॒णोत्व॒ग्निः स॒मिधा॒ हवं॑ मे शृ॒ण्वन्त्वापो॒ धि॒षणा॑श्च दे॒वीः । श्रोता॑ ग्रावाणो वि॒दुषो॒ न य॒ज्ञꣳ शृ॒णोतु॑ दे॒वः स॑वि॒ता हवं॑ मे॒ स्वाहा॑ ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (सोम) श्रेष्ठ ऐश्वर्ययुक्त (राजन्) समस्त उत्कृष्ट गुणों से प्रकाशमान सभाध्यक्ष ! (त्वम्) तू पिता के तुल्य (विश्वाः) समस्त (प्रजाः) प्रजा-जनों का (उपावरोह) समीपवर्ती होकर रक्षा कर और (त्वाम्) तुझे (विश्वाः) समस्त (प्रजाः) प्रजा जन पुत्र के समान (उपावरोहन्तु) आश्रित हों । हे सभाध्यक्ष ! आप जैसे (समिधा) प्रदीप्त करने वाले पदार्थ से (अग्निः) सर्व गुण वाला अग्नि प्रकाशित होता है वैसे (मे) मेरी (हवम्) प्रगल्भवाणी को (शृणोतु) सुन के न्याय से प्रकाशित हूजिये (च) और (आपः) सब गुणों में व्याप्त (धिषणाः) विद्या बुद्धियुक्त (देवीः) उत्तमोत्तम गुणों से प्रकाशमान तेरी पत्नी भी माताओं के समान स्त्रीजनों के न्याय को (शृण्वन्तु) सुनें । हे (ग्रावाणः) सत् असत् के करने वाले विद्वान् सभासदो ! तुम हम लोगों के अभिप्राय को हमारे कहने से (श्रोत) सुनो तथा (देवः) विद्या से प्रकाशित (सविता) ऐश्वर्य्यवान् सभापति (विदुषः) विद्वानों के (यज्ञम्) यज्ञ के (न) समान (मे) हमारे प्रजा लोगों के (हवम्) निवेदन को (स्वाहा) स्तुतिरूप वाणी जैसे हो वैसे (शृणोतु) सुने ॥ २६ ॥

भावार्थः—राजा और प्रजा जन परस्पर सम्मति से समस्त राज्यव्यवहारों की पालना करें ॥ २६ ॥

देवीराप इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । आपो देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर राजा और प्रजा कैसे वर्त्ताव को वर्त्तें यह अगले मंत्र में कहा है ॥

देवीरापोऽअपां नपाद्यो वऽऊर्म्मिर्हविष्यऽइन्द्रियावान् मदिन्तमः । तं देवेभ्यो देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्यो येषां भाग स्थ स्वाहा ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (आपः) श्रेष्ठ गुणों में व्याप्त (देवीः) शुभकर्मों से प्रकाशमान प्रजालोगो ! तुम राजसेवी (स्थ) हो (शुक्रपेभ्यः) शरीर और आत्मा के पराक्रम के रक्षक (देवेभ्यः) दिव्यगुणयुक्त विद्वानों के लिये (येषाम्) जिन (वः) तुम्हारा बली रूप विद्वानों का (यः) जो (अपां नपात्) जलों के नाशरहित स्वाभाविक (ऊर्मिः) जलतरंग के सदृश प्रजारक्षक (इन्द्रियावान्) जिस में प्रशंसनीय इन्द्रियां होती हैं और (मदिन्तमः) आनन्द देने वाला (हविष्यः) भोग के योग्य पदार्थों से निष्पन्न (भागः) भाग हैं वे तुम सब (तम्) उसको (स्वाहा) आदर के साथ ग्रहण करो जैसे राजादि सभ्यजन (देवत्रा) दिव्य भोग देते हैं वैसे तुम भी इस को आनन्द (दत्त) देओ ॥ २७ ॥

भावार्थः—प्रजाजनों को यह उचित है कि आपस में संमति कर किसी उत्कृष्ट गुणयुक्त सभापति को राजा मान कर राज्य-पालन के लिये कर देकर न्याय को प्राप्त हों ॥ २७ ॥

कार्षिरसीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । प्रजा देवताः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब अध्यापक जन प्रत्येक जन को क्या २ उपदेश करें यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

कार्षिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्याऽउन्नयामि । समापोऽअद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे वैश्यजन ! तू (कार्षिः) हल जोतने योग्य (असि) है (त्वा) तुझे (समुद्रस्य) अन्तरिक्ष के (अक्षित्यै) परिपूर्ण होने के लिये (सम् उत् नयामि) अच्छे प्रकार उत्कर्ष देता हूं तुम सब लोग (अद्भिः) यज्ञशोधित जलों से (आपः) जल और (ओषधीभिः) ओषधियों से (ओषधीः) ओषधियों को (सम् अग्मत) प्राप्त होओ ॥ २८ ॥

भावार्थः—क्षेत्र आदि स्थानों में अनेक ओषधियां उत्पन्न होती हैं, ओषधियों से अग्निहोत्र आदि यज्ञ, यज्ञों से शुद्ध हुए जो जल के परमाणु ऊंचे होते हैं उन से आकाश भरा रहता है इस कारण विद्वान् लोग निर्बुद्धि जनों को खेती बारी ही के कामों में रखते हैं क्योंकि वे विद्या का अभ्यास करने को समर्थ ही नहीं होते हैं ॥ २८ ॥

यमग्न इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब वह अध्यापक को क्या कहता है यह अगले मंत्र में उपदेश किया है ॥

यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः स्वाहा ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जब कभी विवेक के करने वाले आप ! (पृत्सु) संग्रामों में (यम्) जिस मनुष्य की (अवाः) रक्षा करते और (वाजेषु) अन्न आदि पदार्थों की सिद्धि करने के निमित्त (यम्) जिसको (जुनाः) नियुक्त करते हो (सः) वह (शश्वतीः) निरंतर अनादिरूप (इषः) अपनी प्रजाओं का (यन्ता) निर्वाह करने हारा होता है अर्थात् उन के नियमों को पहुंचाता है ॥ २९ ॥

भावार्थः—गुरुजनों की शिक्षा से सब का सुख बढ़ता ही है ॥ २९ ॥

देवस्य त्वेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । सविता देवता । स्वराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ सभापति कर-धन देने वाले प्रजाजनों को कैसे स्वीकार करे यह गुरुजन का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्या॑म् पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् । आद॑दे रावा॑सि गभी॒रमि॒मम॑ध्व॒रं कृ॒धीन्द्रा॑य सु॒षूत॑मम् । उ॒त्तमेन प॒विनो॒र्ज॑स्वन्तं॒ मधु॑मन्तं॒ पय॑स्वन्तं निग्रा॒भ्या॑ स्थ दे॒व॒श्रुत॑स्त॒र्प्पय॑त मा॒ ॥ ३० ॥

पदार्थः—सब सुख देने (सवितुः) और समस्त ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए संसार में (अश्विनोः) सूर्य और चन्द्रमा के (बाहुभ्याम्) बल और पराक्रम गुणों से (पूष्णः) पुष्टि करने वाले सोम आदि ओषधिगण के (हस्ताभ्याम्) रोगनाश करने और धातुओं की समता रखने वाले गुणों से (त्वा) तुझ कर-धन देने वाले को (आददे) स्वीकार करता हूं । तू (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य वाले मेरे लिये (उत्तमेन) उत्तम अर्थात् सभ्यता की (पविना) वाणी से (इमम्) इस (गभीरम्) अत्यन्त समझने योग्य (सुषूतमम्) सब पदार्थों से उत्पन्न हुए (ऊर्जस्वन्तम्) राज्य को बलिष्ठ करने वाले (मधुमन्तम्) समस्त मधु आदि श्रेष्ठ पदार्थयुक्त (पयस्वन्तम्) दुग्ध आदि सहित कर-धन को (अध्वरम्) निष्कपट (कृधि) कर दे (देवश्रुतः) श्रेष्ठ राज्य-गुणों को सुनने वाले तुम मेरे (निग्राभ्यः) निरन्तर स्वीकार करने के योग्य (स्थ) हो (मा) मुझे इस कर के देने से (तर्प्पयत) तृप्त करो ॥ ३० ॥

भावार्थः—प्रजाजनों की योग्यता है कि सभाध्यक्ष को प्राप्त होकर उस के लिये अपने समस्त पदार्थों से यथायोग्य भाग दें जिस कारण राजा, प्रजापालन के लिये संसार में उत्पन्न हुआ है इसी से राज्य करने वाला यह राजा संसार के पदार्थों का अंश लेने वाला होता है ॥ ३० ॥

मनो म इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । प्रजासभ्यराजानो देवताः । उष्णिषश्छन्दांसि । ऋषभः स्वरः ॥

अब राजा अपने सभासदों और सभा राजा को क्या उपदेश करे यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

मनो॑ मे तर्प्पयत॒ वाचं॑ मे तर्प्पयत प्रा॒णं मे॑ तर्प्पयत॒ चक्षु॑र्मे तर्प्पयत॒ श्रोत्रं॑ मे तर्प्पयता॒त्मानं॑ मे तर्प्पयत प्र॒जां मे॒ तर्प्पयत प॒शून्मे॑ तर्प्पयत ग॒णान्मे॑ तर्प्पयत ग॒णा मे॒ मा वितृ॑षन् ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे सभ्यजनो और प्रजाजनो ! तुम अपने गुणों से (मे) मेरे (मनः) मन को (तर्प्पयत) तृप्त करो (मे) मेरी (वाचम्) वाणी को (तर्प्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (प्राणम्) प्राण को (तर्प्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (चक्षुः) नेत्रों को (तर्प्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (श्रोत्रम्) कानों को (तर्प्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (आत्मानम्) आत्मा को (तर्प्पयत) तृप्त करो (मे) मेरी (प्रजाम्) संतानादि प्रजा को (तर्प्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (पशून्) गौ, हाथी, घोड़े आदि पशुओं को (तर्प्पयत) तृप्त करो (मे) मेरे (गणान्) सेवकों को (तर्प्पयत) तृप्त करो जिस से (मे) मेरे (गणाः) राज्य वा प्रजा कर्माधिकारी वा सेवकजन कामों में (मा) मत (वितृषन्) उदास हों ॥ ३१ ॥

भावार्थः—राज्य का प्रबन्ध सभाधीन ही होने के योग्य है जिस से प्रजाजन राजसेवक और राजपुरुष प्रजा की सेवा करने हारे अपने-अपने कामों में प्रवृत्त होके सब प्रकार एक दूसरे को आनन्दित करते रहें ॥ ३१ ॥

इन्द्राय त्वेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । सभापतीराजा देवता । पञ्चपाज्ज्योतिष्मती जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

जो राज्य व्यवहार सभा के ही आधीन हो तो किसलिये प्रजाजनों को सभापति का स्वीकार करना चाहिये यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

इन्द्रा॑य त्वा॒ वसु॑मते रु॒द्रव॑त॒ऽइन्द्रा॑य त्वादि॒त्यव॑त॒ऽइन्द्रा॑य त्वाभिमाति॒घ्ने श्ये॒नाय॑ त्वा सोम॒भृते॒ऽग्नये॑ त्वा रायस्पोष॒दे ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे सभापते ! (वसुमते) जिस कर्म में चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य सेवन कर अच्छे २ विद्वान् होते हैं (रुद्रवते) जिस में चवालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य सेवन करते हैं उस (इन्द्राय) परमैश्वर्य्ययुक्त पुरुष के लिये (त्वा) आप को ग्रहण करते हैं (आदित्यवते) जिस में अडतालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य सेवन कर सूर्य्यसदृश परम विद्वान् होते हैं उस (इन्द्राय) उत्तम गुण पाने के लिये (त्वा) आप के (अभिमातिघ्ने) जिस कर्म में बड़े-बड़े अभिमानी शत्रुजन मारे जायं उस (इन्द्राय) परमोत्कृष्ट शत्रुविदारक काम के लिये (त्वा) आप (सोमभृते) उत्तम ऐश्वर्य धारण करने हारे (श्येनाय) युद्धादि कामों में श्येनपक्षी के तुल्य लपट झपट मारने वाले (त्वा) आप (रायस्पोषदे) धन की दृढ़ता देने के लिये और (अग्नये) विद्युत् आदि पदार्थों के गुण प्रकाश कराने के लिये (त्वा) आपको हम स्वीकार करते हैं ॥ ३२ ॥

भावार्थः—जो इन्द्र अग्नि यम सूर्य वरुण और धनाढ्य के गुणों से युक्त विद्वानों का प्रिय विद्या का प्रचार कराने वाला सब को सुख देवे उसी को राजा मानना चाहिये ॥ ३२ ॥

यच्च इत्यस्य मधुच्छन्दाः ऋषिः । सोमो देवता । भुरगार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

ऐसा सभापति प्रजा को क्या लाभ पहुंचा सकता है यह अगले मंत्र में कहा है ॥

यत्ते सोम द्विविज्योतिर्यत्पृथिव्यां यदुरावन्तरिक्षे । तेनास्मै यजमानायोरु राये कृद्ध्यधि दात्रे वोचः ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे (सोम) समस्त ऐश्वर्य के निमित्त प्रेरणा करने हारे सभापति ! (ते) तेरा (यत्) जो (दिवि) सूर्यलोक में (पृथिव्याम्) पृथिवी में और (यत्) जो (उरौ) विस्तृत (अंतरिक्षे) आकाश में (ज्योतिः) जैसे ज्योति हो वैसा राजकर्म है (तेन) उस से तू (अस्मै) इस परोपकार के अर्थ (यजमानाय) यज्ञ करते हुए यजमान के लिये (उरु) (कृधि) अत्यन्त उपकार कर तथा (राये) धन बढ़ने के लिये (अधि, वोचः) अधिक २ राज्य-प्रबन्ध कर ॥ ३३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । सभापति राजा अपने राज्य के उत्कर्ष से सब जनों को निरालस्य करता रहे जिस से वे पुरुषार्थी होकर धनादि पदार्थों को निरन्तर बढ़ावें ॥ ३३ ॥

श्वात्रा स्थ इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराडार्षी पथ्या बृहतीच्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब उक्त सभाध्यक्षादिकों की स्त्री कैसे कर्म्म करने वाली हों यह अगले मंत्र में कहा है ॥

श्वात्रा स्थ वृत्रतुरो राधोगूर्त्ताऽअमृतस्य पत्नीः । ता देवीर्देवत्रेमं यज्ञं नयतोपहूताः सोमस्य पिबत ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे (देवीः) विद्यायुक्त स्त्रियो ! तुम (वृत्रतुरः) बिजुली के सदृश मेघ की वर्षा के तुल्य सुखदायक की गति तुल्य चलने (राधोगूर्त्ताः) धन का उद्योग करने (पत्न्यः) और यज्ञ में सहाय देने वाली (स्थ) हों (देवत्रा) तथा अच्छे अच्छे गुणों से प्रकाशित विद्वान् पतियों में प्रीति से स्थित हों (इदम्) इस यज्ञ को (नयत) सिद्धि को प्राप्त किया कीजिये और (उपहूताः) बुलाई हुई अपने पतियों के साथ (अमृतस्य) अति स्वाद-युक्त सोम आदि ओषधियों के रस को (पिबत) पीओ ॥ ३४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे विद्वानों की पत्नी स्त्रीजन स्वधर्म व्यवहार से अपने पतियों को प्रसन्न करती हैं उसी प्रकार पुरुष उन अपनी स्त्रियों को निरंतर प्रसन्न करें ऐसे परस्पर अनुमोद से गृहाश्रमधर्म को पूर्ण करें ॥ ३४ ॥

मा भेर्मेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ देवते । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुष परस्पर कैसा वर्त्ताव वर्त्तें यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मा भेर्मा संविक्थाऽऊर्जं धत्स्व धिषणे वीड्वी सती वीडयेथामूर्जं दधाथाम्। पाप्मा हतो न सोमः ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे स्त्री ! तू (विड्वी) शरीरात्मबलयुक्त होती हुई पति से (मा, भेः) मत डर (मा संविक्थाः) मत कंप और (उर्जम्) देह और आत्मा के बल और पराक्रम को (धत्स्व) धारण कर। हे पुरुष ! तू भी वैसे ही अपनी स्त्री से वर्त। तुम दोनों स्त्री पुरुष (धिषणे) सूर्य्य और भूमि के समान परोपकार और पराक्रम को धारण करो जिस से (वीडयेथाम्) दृढ़ बल वाले हों ऐसा वर्त्ताव वर्तते हुए तुम दोनों का (पाप्मा) अपराध (हतः) नष्ट हो और (सोमः) चन्द्र के तुल्य आनन्द शान्त्यादि गुण बढ़ा कर एक दूसरे का आनन्द बढ़ाते रहो ॥ ३५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। स्त्री पुरुष ऐसे व्यवहार में वर्त्तें कि जिस से उनका परस्पर भय और उद्वेग नष्ट होकर आत्मा की दृढ़ता, उत्साह और गृहाश्रम व्यवहार की सिद्धि से ऐश्वर्य्य बढ़े और वे दोष तथा दुःख को छोड़ चन्द्रमा के तुल्य आह्लादित हों ॥ ३५ ॥

प्रागपागित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। सोमो देवता। उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

अब उनके पुत्र क्या २ करें और वे पुत्रों को कैसे पालें यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रागपागुदगधराक्सर्वतस्त्वा दिशऽआधावन्तु। अम्ब निष्पर समरीर्विदाम् ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे (अम्ब) प्रेम से प्राप्त होने वाली माता ! जो तेरी (अरीः) संतानादि प्रजा (प्राक्) पूर्व (अपाक्) पश्चिम (उदक्) उत्तर (अधराक्) दक्षिण और भी (सर्वतः) सब (दिशः) दिशाओं से (त्वा) तुझे (आ) (धावंतु) धाय धाय प्राप्त हों उन्हें (निः) (पर) निरन्तर प्यार कर और वे भी तुझे (सम्) अच्छे भाव से जानें ॥ ३६ ॥

भावार्थः—माता और पिता को योग्य है कि अपने संतानों को विद्यादि अच्छे अच्छे गुणों में प्रवृत्त कराकर अच्छे प्रकार उन के शरीर की रक्षा करें अर्थात् जिस से वे नीरोग शरीर और उत्साह के साथ गुण सीखें और उन पुत्रों को योग्य है कि माता पिता की सब प्रकार से सेवा करें ॥ ३६ ॥

त्वमङ्ग इत्यस्य गौतम ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिगार्ष्यनुष्टुप्छन्दः। गांधारः स्वरः ॥

अब प्रजाजन किये हुए सभापति की प्रशंसा कैसे करें यह अगले मंत्र में उपदेश किया है ॥

त्वम॒ङ्ग प्रश॑ꣳसिषो दे॒वः श॑विष्ठ मर्त्य॑म्। न त्वद॒न्यो म॑घवन्नस्ति मर्डि॒तेन्द्र॒ ब्रवी॑मि ते॒ वचः॑ ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे (अंग) (शविष्ठ) अत्यन्त बलयुक्त (मघवन्) महाराज के समान (इन्द्र) ऋद्धि सिद्धि देनेहारे सभापते ! (त्वम्) आप (मर्त्यम्) प्रजास्थ मनुष्य को (प्रशंसिषः) प्रशंसायुक्त कीजिये। आप (देवः) देव अर्थात् शत्रुओं को अच्छे प्रकार जीतने वाले हैं (न) नहीं (त्वदन्यः) तुम से अन्य (मर्डिता) सुख देने वाला है ऐसा मैं (ते) आप को (वचः) पूर्वोक्त राज्यप्रबन्ध के अनुकूल वचन (ब्रवीमि) कहता हूँ ॥ ३७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जैसे ईश्वर सर्वसुहृत् पक्षपातरहित है वैसे सभापति राज्यधर्म्मानुवर्त्ती राजा होकर प्रशंसनीय की प्रशंसा निंदनीय की निंदा दुष्ट को दण्ड श्रेष्ठ की रक्षा कर के सब का अभीष्ट सिद्ध करे ॥ ३७ ॥

इस अध्याय में राज्य के अभिषेकपूर्वक शिक्षा, राज्य का कृत्य, प्रजा को राजा का आश्रय, सभाध्यक्षादिकों का काम, विष्णु का परम पद वर्णन, सभाध्यक्ष को ईश्वरोपासना करनी, राजा प्रजा का आपस में कृत्य, गुरु को शिष्य का स्वीकार और उस शिष्य को शिक्षा करना, यज्ञ का अनुष्ठान, होम किये द्रव्य के फल का वर्णन, विद्वानों के लक्षण, मनुष्यकृत्य, मनुष्यों का परस्पर वर्त्तमान, दुष्ट दोष निवृत्ति फल, ईश्वर से क्या-क्या प्रार्थना करनी चाहिये, रण में योद्धा का वर्णन, युद्धकृत्य निरूपण, युद्ध में परस्पर वर्त्ताव का प्रकार, वीरों को उत्साह देना, राज्यप्रबन्ध का कारण और साध्य साधन, राजा के प्रति ईश्वरोपदेश, राज्यकर्म का अनुष्ठान, राजा और प्रजा का कृत्य, राजा और प्रजा की सभाओं का परस्पर वर्त्ताव, प्रजा से सभापति का उत्कर्ष करना, प्रजाजन के प्रति सभापति की प्रेरणा, प्रजा को स्वीकार करने के योग्य सभापति का लक्षण, प्रजा और राजसभा की परस्पर प्रतिज्ञा करनी, सभापति के स्वीकार करने का प्रयोजन, प्रजा-सुख के लिये सभापति के कर्त्तव्य कामों का अनुष्ठान, सभापत्यादिकों की पत्नियों को क्या करना चाहिये, स्त्री पुरुषों का परस्पर वर्त्ताव, माता पिता के प्रति संतानों का काम और सभापति के प्रति प्रजाजनों का उपदेश वर्णन है, इस से पंचम अध्याय में कहे हुए अर्थों के साथ इस छठे अध्याय के अर्थों की संगति है, ऐसा जानना चाहिये।

॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥

❀ अथ सप्तमाध्यायस्यारम्भः ❀

अव सप्तम अध्याय का प्रारम्भ किया जाता है ॥

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥ १ ॥

य० ३० । ३ ॥

वाचस्पतय इत्यस्य गोतम ऋषिः । प्राणो देवता । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

इस सप्तम अध्याय के प्रथम मंत्र में सृष्टि के निमित्त बाहर और भीतर के व्यवहार का उपदेश है ॥

वाचस्पतये पवस्व वृष्णोऽअंशुभ्यां गभस्तिपूतः । देवो देवेभ्यः पवस्व येषां भागोऽसि ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य तू (वाचः) वाणी के (पतये) पालन हारे ईश्वर के लिये (पवस्व) पवित्र हो (वृष्णः) बलवान् पुरुष के (अंशुभ्याम्) भुजाओं के समान बाहर भीतर का व्यवहार होने के लिये जैसे (गभस्तिपूतः) सूर्य्य की किरणों से पदार्थ पवित्र होते हैं वैसे शास्त्रों से (देवः) दिव्य-गुण युक्त विद्वान् होकर (येषाम्) जिन विद्वानों की (भागः) सेवन करने के योग्य है उन (देवेभ्यः) देवों के लिये (पवस्व) पवित्र हो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । सब जीवों को योग्य है कि वेदों की रक्षा करने वाले नित्य पवित्र परमात्मा को जान और विद्वानों के संग से विद्यादि उत्तम गुणों में निष्णात होकर सत्यवाणी को बोलने वाले हों ॥ १ ॥

मधुमतीरित्यस्य गोतम ऋषिः । सोमो देवता । निचृदार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्य लोग परस्पर व्यवहार में कैसे वर्त्तें यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

मधुमतीर्नऽइषस्कृधि यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा स्वाहोर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्य्ययुक्त विद्वन् ! आप (नः) हम लोगों के लिये (मधुमतीः) मधुरादिगुणसहित (इषः) अन्न आदि पदार्थों को (कृधि) कीजिये तथा हे

(सोम) शुभ कर्मों में प्रेरणा करने वाले विद्वन् ! मैं (यत्) जिससे (ते) आपका (अदाभ्यम्) अहिंसनीय अर्थात् रक्षा करने के योग्य (जागृवि) प्रसिद्ध (नाम) नाम है (तस्मै) उस (सोमाय) ऐश्वर्य की प्राप्ति और (ते) आपके लिये अर्थात् आपकी आज्ञा वर्त्तने के लिये (स्वाहा) सत्यधर्म्म-युक्त क्रिया (स्वाहा) सत्य वाणी और (उरु) (अन्तरिक्षम्) अवकाश को (एमि) प्राप्त होता हूं ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्य जैसे अपने सुख के लिये अन्न जलादि पदार्थों को सम्पादन करें वैसे ही औरों के लिये भी दिया करें और जैसे कोई मनुष्य अपनी प्रशंसा करें वैसे ही औरों की आप भी किया करें जैसे विद्वान् लोग अच्छे गुण वाले होते हैं वैसे आप भी हों ॥ २ ॥

स्वांकृत इत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवताः । विराट् ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर अगले मंत्र में आत्मक्रिया का निरूपण किया है ॥

स्वाङ्कृतोसि विश्वेभ्यऽइन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्य्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यो देवांशो यस्मै त्वेडे तत्सत्यमुपरिप्रुता भङ्गेन हतोऽसौ फट् प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (अंशो) सूर्य्य के तुल्य प्रकाशमान ! जो तू (दिव्येभ्यः) दिव्य (विश्वेभ्यः) समस्त (पार्थिवः) पृथिवी पर प्रसिद्ध (इन्द्रियेभ्यः) इन्द्रियों और (मरीचिपेभ्यः) किरणों के समान पवित्र करने वाले (देवेभ्यः) विद्वानों और वायु आदि पदार्थों के लिये (स्वाङ्कृतः) स्वयं सिद्ध (असि) हैं उस (त्वा) तुझ को (मनः) विज्ञान और (स्वाहा) वेद वाणी (अष्टु) प्राप्त हों । हे (सुभव) श्रेष्ठ गुणवान् होने वाले मैं (सूर्य्याय) सर्व प्रेरक चराचरात्मा परमेश्वर के लिये (त्वाम्) तेरी (ईडे) प्रशंसा करता हूं तू भी (तत्) उस प्रशंसा के योग्य (सत्यम्) सत्य परमात्मा को प्रीति से ग्रहण कर (उपरिप्रुता) सब से उत्तम उत्कर्ष पाने हारे तूने (भंगेन) मर्दन से (असौ) यह अज्ञानरूप शत्रु (फट्) झट (हतः) मारा उस (त्वाम्) तुझे (प्राणाय) जीवन के लिये प्रशंसित करता और (व्यानाय) विविध प्रकार के सुख प्राप्त करने के लिये (त्वा) तुझे प्रशंसा देता हूं ॥ ३ ॥

भावार्थः—जीव आप ही स्वयंसिद्ध अनादिरूप है इस से इन को चाहिये कि देह प्राण इन्द्रियों और अंतःकरण को निर्मल धर्म्मयुक्त व्यवहारों में प्रवृत्त होकर परमेश्वर की उपासना में स्थिर हो तथा पुरुषार्थ से दुष्टों को झट पट मार और भलों की रक्षा करके आनन्दित रहें ॥ ३ ॥

उपयामगृहीत इत्यस्य गोतम ऋषिः । मघवा देवता । आर्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर मन से आत्मा के बीच में कैसे प्रयत्न करे यह उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

उपयामगृहीतोऽस्यन्तर्य्यच्छ मघवन् पाहि सोमम् । उरुष्य रायऽएषो यजस्व ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे योग चाहने वाले ! जिस से तू (उपयामगृहीतः) योग में प्रवेश करने वाले नियमों से ग्रहण किये हुए के समान (असि) है इस कारण (अंतः) भीतरले जो प्राणादि पवन मन और इन्द्रियां हैं इन को (यच्छ) नियम में रख । हे (मघवन्) परमपूजित धनी के समान ! तू (सोमम्) योगविद्यासिद्ध ऐश्वर्य्य को (पाहि) रक्षा कर (उरुष्य) और जो अविद्या आदि क्लेश हैं उनको अत्यन्त योगविद्या के बल से नष्ट कर जिस से (रायः) ऋद्धि और (इषः) इच्छासिद्धियों को (आयजस्व) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । योग जिज्ञासु पुरुष को चाहिये कि यम नियम आदि योग के अङ्गों से चित्त आदि अन्तःकरण की वृत्तियों को रोक और अविद्यादि दोषों का निवारण करके संयम से ऋद्धि सिद्धियों को सिद्ध करें ॥ ४ ॥

अन्तस्त इत्यस्य गोतम ऋषिः । ईश्वरो देवता । आर्षी पंक्तिश्छन्दः ।
पंचमः स्वरः ॥

अब ईश्वर जो योग में प्रथम ही प्रवृत्त होता है उसके लिये विज्ञान का उपदेश अगले मन्त्र से करता है ॥

अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम् । सजूर्देवेभिरवरैः परैश्चान्तर्य्यामे मघवन् मादयस्व ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (मघवन्) योगी ! मैं परमेश्वर (ते) तेरे (अन्तः) हृदयाकाश में (द्यावापृथिवी) सूर्य्य भूमि के समान विज्ञानादि पदार्थों को (दधामि) स्थापित करता हूं तथा (उरु) विस्तृत (अन्तरिक्षम्) अवकाश को (अन्तः) शरीर के भीतर (दधामि) धारता हूं (सजूः) मित्र के समान तू (देवेभ्यः) विद्वानों से विद्या को प्राप्त हो के (अवरैः) (परैः) (च) थोड़े वा बहुत योग व्यवहारों से (अन्तर्य्यामे) भीतरले नियमों में वर्त्तमान होकर अन्य सब को (मादयस्व) प्रसन्न किया कर ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । ईश्वर का यह उपदेश है कि ब्रह्माण्ड में जिस प्रकार के जितने पदार्थ हैं उसी प्रकार के उतने ही मेरे ज्ञान में वर्त्तमान हैं । योगविद्या को नहीं जानने वाला उन को नहीं देख सकता और मेरी उपासना के विना कोई योगी नहीं हो सकता है ॥ ५ ॥

स्वाङ्कृतोसीत्यस्य गोतम ऋषिः । योगी देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर ईश्वर योगविद्या चाहने वाले के प्रति उपदेश करता है ॥

स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्यऽइन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यऽउदानाय त्वा ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (सुभव) शोभन ऐश्वर्य्य युक्त योगी ! तू (स्वाङ्कृतः) अनादि काल से स्वयंसिद्ध (असि) है। मैं (दिव्येभ्यः) शुद्ध (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) प्रशस्त गुण और प्रशंसनीय पदार्थों से युक्त विद्वानों और (मरीचिपेभ्यः) योग के प्रकाश से युक्त व्यवहारों से (त्वा) तुझ को स्वीकार करता हूं (पार्थिवेभ्यः) पृथिवी पर प्रसिद्ध पदार्थों के लिये भी (त्वा) तुझ को स्वीकार करता हूँ (सूर्य्याय) सूर्य्य के समान योग प्रकाश करने के लिये वा (उदानाय) उत्कृष्ट जीवन और बल के अर्थ (त्वाम्) तुझे ग्रहण करता हूं जिससे (त्वा) तुझ योग चाहने वाले को (मनः) योग समाधियुक्त मन और (स्वाहा) सत्यानुष्ठान करने की क्रिया (अष्टु) प्राप्त हो ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्य जब तक श्रेष्ठाचार करने वाला नहीं होता तब तक ईश्वर भी उस को स्वीकार नहीं करता जब तक जिस को ईश्वर स्वीकार नहीं करता है तब तक उसका पूरा-पूरा आत्मबल नहीं हो सकता और जब तक आत्मबल नहीं बढ़ता तब तक उस को अत्यंत सुख भी नहीं होता ॥ ६ ॥

आ वायो भूषेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता । निचृज्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर योगी का कृत्य अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ वायो भूष शुचिपाऽउप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार । उपो तेऽअन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयं वायवे त्वा ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (शुचिपाः) अत्यन्त शुद्धता को पालने और (वायो) पवन के तुल्य योग क्रियाओं में प्रवृत्त होने वाले योगी ! तू (सहस्रम्) हजारों (नियुतः) निश्चित शमादिक गुणों को (आभूष) सब प्रकार सुभूषित कर। हे (विश्ववार) समस्त गुणों के स्वीकार करने वाले ! जो (ते) तेरा (मद्यम्) अच्छी तृप्ति देने वाला (अन्धः) अन्न है उस को (उपो) तेरे समीप (अयामि) पहुंचाता हूं। हे (देव) योगबल से आत्मा को प्रकाश करने वाले ! (यस्य) जिस तेरा (पूर्वपेयम्) श्रेष्ठ योगियों को रक्षा करने के योग्य योगबल है जिस को तू (दधिषे) धारण कर रहा है (वायवे) उस योग के जानने के लिये (त्वा) तुझे स्वीकार करता हूं ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो योगी प्राण के तुल्य सब को भूषित करता ईश्वर के तुल्य अच्छे-अच्छे गुणों में व्याप्त होता है और अन्न वा जल के सदृश सुख देता है वही योग के बीच में समर्थ होता है ॥ ७ ॥

इन्द्रवायू इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रवायू देवते । इन्द्रवायू इत्यस्यार्षी गायत्री छन्दः । उपयामगृहीत इत्यस्यार्षी स्वराड् गायत्रीच्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह योगी कैसा होता है यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्र॑वायूऽइ॒मे सु॒ताऽउप॒ प्रयो॑भि॒राग॑तम् । इन्द॑वो वामु॒शन्ति॒ हि । उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि वा॒यव॑ऽइन्द्रवा॒युभ्यां॑ त्वै॒ष ते॒ योनिः॑ स॒जोषो॑भ्यां त्वा ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्रवायू) प्राण और सूर्य्य के समान योगशास्त्र के पढ़ने पढ़ाने वालो ! (हि) जिस से (इमे) ये (सुताः) उत्पन्न हुए (इन्दवः) सुखकारक जलादि पदार्थ (वाम्) तुम दोनों को (उशन्ति) प्राप्त होते हैं इससे तुम (प्रयोभिः) इन मनोहर पदार्थों के साथ ही (आगतम्) जानो । हे योग चाहने वाले ! तू इस योग पढ़ाने वाले अध्यापक से (वायवे) पवन के तुल्य योगसिद्धि को पाने के लिये अथवा योगबल से चराचर के ज्ञान की प्राप्ति के लिये (उपयामगृहीतः) योग के यम नियमों के साथ स्वीकार किया गया (असि) है । हे भगवन् योगाध्यापक ! (एषः) यह योग (ते) तुम्हारा (योनिः) सब दुखों के निवारण करने वाले घर के समान है और (इन्द्रवायुभ्याम्) बिजुली और प्राणवायु के समान योगवृद्धि और समाधि चढ़ाने और उतारने की शक्तियों से (जुष्टम्) प्रसन्न हुए (त्वा) आपको और हे योग चाहने वाले ! (सजोषोभ्याम्) सेवन किये हुए उक्त गुणों से प्रसन्न हुए (त्वा) तुझे मैं अपने सुख के लिये चाहता हूँ ॥ ८ ॥

भावार्थः—वे ही लोग पूर्ण योगी और सिद्ध हो सकते हैं जो कि योगविद्याभ्यास करके ईश्वर से लेके पृथिवी पर्य्यन्त पदार्थों को साक्षात् करने का यत्न किया करते और यम नियम आदि साधनों से युक्त योग में रम रहे हैं और जो इन सिद्धों का सेवन करते हैं वे भी इस योगसिद्धि को प्राप्त होते हैं अन्य नहीं ॥ ८ ॥

अयं वामित्यस्य गृत्समद ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । आर्षी गायत्री छन्दः । उपयामगृहीतोसीत्यस्यासुरी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर अध्यापक और शिष्य का कर्म्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

अ॒यं वां॑ मित्रावरुणा सु॒तः सोम॑ऽऋतावृधा । ममेदि॒ह श्रु॑त॒ꣳ हव॑म् । उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि मि॒त्राव॑रुणाभ्यां त्वा ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान वर्त्तमान (ऋतावृधा) सत्य विज्ञान वर्द्धक योगविद्या के पढ़ने वालो ! (वाम्) तुम्हारा (अयम्) यह (सोमः) योग का ऐश्वर्य (सुतः) सिद्ध किया हुआ है उस से तुम (इह) यहां (मम) योगविद्या से प्रसन्न होने वाले मेरी (हवम्) स्तुति को (श्रुतम्) सुनो, हे यजमान ! जिस से तू (उपयामगृहीतः) अच्छे नियमों के साथ स्वीकार किया हुआ (इत्) ही (असि) है इस से मैं (मित्रावरुणाभ्याम्) प्राण और उदान के साथ वर्त्तमान (त्वा) तुझ को ग्रहण करता हूं ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि इस योगविद्या का ग्रहण श्रेष्ठ पुरुषों का उपदेश सुन और यमनियमों को धारण करके योगाभ्यास के साथ अपना वर्त्ताव रक्खें ॥ ९ ॥

राया वयमित्यस्य त्रिसदस्युर्ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी योग पढ़ने पढ़ाने वालों के कृत्य का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

राया वयꣳ संसवाꣳसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः। तां धेनुं मित्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीमेष ते योनिर्ऋतायुभ्यां त्वा ॥ १० ॥

पदार्थः—(हे ससवांस्तः) भले बुरे के अलग-अलग करने वाले (देवाः) विद्वानो ! आप और (वयम्) हम लोग (यवसेन) तृण घास भूसा से (गावः) गौ आदि पशुओं के समान (हव्येन) ग्रहण करने के योग्य (राया) धन से (मदेम) हर्षित हों और हे (मित्रावरुणा) प्राण के समान उत्तम जनो ! (युवम्) तुम दोनों (नः) हमारे लिये (विश्वाहा) सब दिनों में (अनपस्फुरन्तीम्) ठीक-ठीक ज्ञान देने वाली (धेनुम्) वाणी को (धत्तम्) धारण कीजिये। हे यजमान ! जिससे (ते) तेरा (एषः) यह विद्याबोध (योनिः) घर है इस से (ऋतायुभ्याम्) सत्य व्यवहार चाहने वालों के सहित (त्वा) तुझ को हम लोग स्वीकार करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुरुषार्थ और विद्वानों के संग से परोपकार की सिद्धि और कामना को पूर्ण करने वाली वेदवाणी को प्राप्त होकर आनन्द में रहें ॥ १० ॥

या वां कशेत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। अश्विनौ देवते। ब्राह्मी उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी इन योगविद्या पढ़ने पढ़ाने वालों के करने योग्य काम का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

या वां कशा मधुमत्याश्विना सूनृतावती। तया यज्ञं मिमिक्षतम् ॥ उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्यां त्वा ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (अश्विनौ) सूर्य्य और चन्द्र के तुल्य प्रकाशित योग के पढ़ने-पढ़ाने वालो ! (या) जो (वाम्) तुम्हारी (मधुमती) प्रशंसनीय मधुरगुणयुक्त (सूनृतावती) प्रभात समय में क्रम-क्रम से प्रदीप्त होने वाली उषा के समान (कशा) वाणी है (तया) उस से (यज्ञम्) ईश्वर से संग कराने हारे योगरूपी यज्ञ को (मिमिक्षतम्) सिद्ध करना चाहो। हे

योग पढ़ने वाले ! तू (उपयामगृहीतः) यमनियमादिकों से स्वीकार किया गया (असि) है (ते) तेरा (एषः) यह योग (योनिः) घर के समान सुखदायक है इस से (अश्विभ्याम्) प्राण और अपान के योगोचित नियमों के साथ वर्त्तमान (त्वा) तुझ और हे योगाध्यापक ! (माध्वीभ्याम्) माधुर्य्य लिए जो श्रेष्ठ नीति और योगरीति हैं उन के साथ वर्त्तमान (त्वा) आप का हम लोग आश्रय करते हैं अर्थात् समीपस्थ होते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। योगी लोग मधुर प्यारी वाणी से योग सीखने वालों को उपदेश करें और अपना सर्वस्व योग ही को जानें तथा अन्य मनुष्य वैसे योगी का सदा आश्रय किया करें ॥ ११ ॥

तं प्रत्नथेत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृदार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः। उपयामगृहीत इत्यस्य पङ्क्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः ॥

फिर भी अगले मन्त्र में योगी के गुणों का उपदेश किया है ॥

तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदं स्वर्विदम्। प्रतीचीनं वृजनं दोहसे धुनिमाशुं जयन्तमनु यासु वर्द्धसे। उपयामगृहीतोऽसि शण्डाय त्वैष ते योनिर्वीरतां पाह्यपमृष्टः शण्डो देवास्त्वा शुक्रपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे योगिन् ! (उपयामगृहीतः) योग के अंगों अर्थात् शौच आदि नियमों के ग्रहण करने वाले (असि) हैं (ते) आप का (एषः) यह योगयुक्त स्वभाव (योनिः) सुख का हेतु है। योग से आप (अपमृष्टः) अविद्यादि दोषों से अलग हुए (शण्डः) शमादि गुणयुक्त (असि) हैं (यासु) जिन योगक्रियाओं में आप (वर्द्धसे) वृद्धि को प्राप्त होते हैं और (विश्वथा) समस्त (प्रत्नथा) प्राचीन महर्षि (पूर्वथा) पूर्वकाल के योगी और (इमथा) वर्त्तमान योगियों के समान (ज्येष्ठतातिम्) अत्यन्त प्रशंसनीय (बर्हिषदम्) हृदयाकाश में स्थिर (स्वर्विदम्) सुख लाभ करने (प्रतीचीनम्) अविद्यादि दोषों से प्रतिकूल होने (आशुम्) शीघ्र सिद्धि देने (उदयन्तम्) उत्कर्ष पहुंचाने और (धुनिम्) इन्द्रियों को कंपाने वाले (वृजनम्) योगबल को (दोहसे) परिपूर्ण करते हैं (तम्) उस योगबल को (शुक्रपाः) जो कि योगबल की रक्षा करने हारे (देवाः) योगबल के प्रकाश से प्रकाशित योगी लोग हैं, वे (त्वा) आप को (प्रणयन्तु) अच्छे प्रकार पहुंचावें। उस योगबल को प्राप्त हुए (शंडाय) शमदमादिगुणयुक्त आप के लिये उसी योग की (अनाधृष्टा) दृढ़ वीरता (असि) हो, आप उस (वीरताम्) वीरता की (पाहि) रक्षा कीजिये (अनु) वह रक्षा को प्राप्त हुई वीरता (त्वा) आप को पाले ॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे योगविद्या की इच्छा करने वाले ! जैसे शमदमादि गुणयुक्त पुरुष योगबल से विद्याबल की उन्नति कर सकता है, वही अविद्यारूपी अंधकार

का विध्वंस करने वाली योगविद्या सज्जनों को प्राप्त होकर जैसे यथोचित सुख देती है वैसे आप को दे ॥ १२ ॥

सुवीर इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृदार्षीत्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः। शुक्रस्येत्यस्य प्राजापत्या गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

उक्त योग का अनुष्ठान करने वाला योगी कैसा होता है यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सुवीरो वीरान् प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम्। संजग्मानो दिवा पृथिव्या शुक्रः शुक्रशोचिषा निरस्तः शण्डः शुक्रस्याधिष्ठानमसि ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे योगिन्! (सुवीरः) श्रेष्ठ वीर के समान योगबल को प्राप्त हुए आप (वीरान्) अच्छे-अच्छे गुणयुक्त पुरुषों को (प्रजनयन्) प्रसिद्ध करते हुए (परीहि) सब जगह भ्रमण कीजिये। इसी प्रकार (यजमानम्) धन आदि पदार्थों को देने वाले उत्तम पुरुषों के (अभि) सन्मुख (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि से (संजग्मानः) संगत हूजिये और आप (दिवा) सूर्य्य और (पृथिव्या) पृथिवी के गुणों के साथ (शुक्रः) अति बलवान् (शुक्रशोचिषा) सब को शोधने वाले सूर्य्य की दीप्ति से (निरस्तः) अन्धकार के समान पृथक् हुए ही योगबल के प्रकाश से विषयवासना से छूटे हुए (शण्डः) शमदमादि गुणयुक्त (शुक्रस्य) अत्यन्त योगबल के (अधिष्ठानम्) आधार (असि) हैं ॥ १३ ॥

भावार्थः—शमदमादि गुणों का आधार योगाभ्यास में तत्पर योगी-जन अपनी योगविद्या के प्रचार से योगविद्या चाहने वालों का आत्मबल बढ़ाता हुआ सब जगह सूर्य्य के समान प्रकाशित होता है ॥ १३ ॥

अच्छिन्नस्य त इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। स्वराड् जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

अब शिष्य के पढ़ाने की युक्ति अगले मंत्र में कही है ॥

अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्य्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम। सा प्रथमा सँस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रोऽअग्निः ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे (देव) योगविद्या चाहने वाले (सोम) प्रशंसनीय गुणयुक्त शिष्य! हम अध्यापक लोग (ते) तेरे लिये (सुवीर्य्यस्य) जिस पदार्थ से शुद्ध पराक्रम बढ़े उसके समान (अच्छिन्नस्य) अखण्ड (रायः) योगविद्या से उत्पन्न हुए धन की (पोषस्य) दृढ़पुष्टि के (ददितारः) देने वाले (स्याम) हों। जो यह (प्रथमा) पहिली (विश्ववारा) सब ही सुखों के स्वीकार कराने योग्य (संस्कृतिः) विद्यासुशिक्षाजनित नीति है (स) वह तेरे लिये इस जगत् में सुखदायक हो और हम लोगों में जो (वरुणः) श्रेष्ठ (अग्निः) अग्नि के समान सब

विद्याओं से प्रकाशित अध्यापक है (सः) वह (प्रथमः) सब से प्रथम तेरा (मित्रः) मित्र हो ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। योगविद्या में संपन्न शुद्धचित्त युक्त योगियों को योग्य है कि जिज्ञासुओं के लिये नित्य योग और विद्यादान देकर उन्हें शारीरिक और आत्मबल से युक्त किया करें ॥ १४ ॥

स प्रथम इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृद्ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब स्वामी और सेवक के कर्म्म को अगले मंत्र में कहा है ॥

स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वाँस्तस्मा॑ऽइन्द्राय सुतमाजुहोत स्वाहा । तृम्पन्तु होत्रा मध्वो याः स्विष्टा याः सुप्रीताः सुहुता यत्स्वाहायाडग्नीत् ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे शिष्यो ! तुम लोग जैसे वह पूर्व मंत्र से प्रतिपादित (प्रथमः) आदि मित्र (चिकित्वान्) विज्ञानवान् (बृहस्पतिः) सब विद्यायुक्त वाणी का पालने वाला जिस ऐश्वर्य के लिये प्रयत्न करता है वैसे (तस्मै) उस (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी और (सुतम्) निष्पादित श्रेष्ठ व्यवहार का (आजुहोत) अच्छे प्रकार ग्रहण करो और जैसे (यत्) जो (होत्राः) योग स्वीकार करने के योग्य वा (याः) जो (मध्वः) माधुर्य्यादि-गुणयुक्त (स्विष्टाः) जिनसे कि अच्छे २ इष्ट काम बनते हैं (याः) वा जो ऐसी हैं कि (सुहुताः) जिन से अच्छे प्रकार हवन आदि कर्म्म सिद्ध होते हैं (सुप्रीताः) और अच्छे प्रकार प्रसन्न रहती हैं वे विद्वान् स्त्रीजन (अग्नीत्) या कोई अच्छी प्रेरणा को प्राप्त हुआ विद्वान् योगी (स्वाहा) सत्यवाणी से (अयाट्) सभों को सत्कृत करता और तृप्त रहता है। आप लोग उन स्त्रियों और उस योगी के समान (तृम्पन्तु) तृप्त हूजिये ॥ १५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे योगी विद्वान् और योगिनी विद्वानों की स्त्रीजन परमैश्वर्य्य के लिये यत्न करें और जैसे सेवक अपने स्वामी का सेवन करता है वैसे अन्य पुरुषों को भी उचित है कि उन-उन कामों में प्रवृत्त होकर अपनी अभीष्ट सिद्धि को पहुँचें ॥ १५ ॥

अयं वेन इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । आद्यस्य निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । उपयाम इत्यस्य साम्नी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सभाध्यक्ष राजा को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने । इममपाᳬसङ्गमे सूर्य्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति । उपयामगृहीतोऽसि मर्काय त्वा ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे शिल्पविधि के जानने वाले सभाध्यक्ष विद्वन् ! आप (उपयामगृहीतः) सेना आदि राज्य के अङ्गों से युक्त (असि) हैं। इस से मैं (रजसः) लोकों के मध्य (पृश्निगर्भाः) जिन में अवकाश अधिक है उन लोगों के (ज्योतिर्जरायुः) तारागणों को ढांपने वाले के समान (अयम्) यह (वेनः) अति मनोहर चंद्रमा (चोदयत्) यथायोग्य अपने-अपने मार्ग में अभियुक्त करता है (इमम्) इस चन्द्रमा को (अपाम्) जलों और (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (संगमे) सम्बन्धी आकर्षणादि विषयों में (शिशुम्) शिक्षा के योग्य बालक को (मतिभिः) विद्वान् लोग अपनी बुद्धियों से (रिहन्ति) सत्कार कर के (न) समान आदर के साथ ग्रहण कर रहे हैं और मैं (मर्काय) दुष्टों को शान्त करने और श्रेष्ठ व्यवहारों के स्थापन करने के लिये (विमाने) अनन्त अन्तरिक्ष में (त्वा) तुझे विविध प्रकार के यान बनाने के लिये स्वीकार करता हूं ॥ १६ ॥

भावार्थः—सभाध्यक्ष को चाहिये कि सूर्य्य और चन्द्रमा के समान श्रेष्ठ गुणों को प्रकाशित और दुष्ट व्यवहारों को शान्त कर के श्रेष्ठ व्यवहार से सज्जन पुरुषों को आह्लाद देवे ॥ १६ ॥

मनो न येष्वित्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मंत्र में कहा है ॥

मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता । आ यः शर्य्याभिस्तुविनृम्णोऽअस्याश्रीणीतादिशं गभस्तावेष ते योनिः प्रजाः पाह्यपमृष्टो मर्को देवास्त्वा मन्थिपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे शिल्पविद्या में चतुर सभापते ! (एषः) यह राजधर्म (ते) तेरा (योनिः) सुखपूर्वक स्थिरता का स्थान है। जैसे तू (यः) जो (तुविनृम्णः) अत्यन्त धनयुक्त प्रजा का पालने वाला वा (विपः) बुद्धिमान् प्रजाजन ये तुम दोनों (येषु) जिन हवनादि कर्म्मों में (शर्य्याभिः) वेगों से (तिग्मम्) वज्र के तुल्य अतिदृढ (मनः) मन के (न) समान वेग से (द्रवन्तौ) चलते हुए (शच्या) बुद्धि के साथ (आवनुथः) परस्पर कामना करते हो वैसे प्रत्येक प्रजापुरुष (अस्य) इस प्रजापति का (गभस्तौ) अंगुली-निर्देश से (आदिशम्) सब दिशाओं में तेज जैसे हो वैसे शत्रुओं को (आ, अश्रीणीत) अच्छे प्रकार दुःख दिया करे (मर्कः) मरण के तुल्य दुःख देने और कुढङ्ग चालचलन रखने वाला शत्रु (अपमृष्टः) दूर हो और तू (प्रजाः) प्रजा का (पाहि) पालन कर (मंथिपाः) शत्रुओं को मंथने वाले वीरों के रक्षक (देवाः) विद्वान् लोग (त्वा) तुझे (प्र, नयन्तु) प्रसन्न करें। हे प्रजाजनो ! तुम जिस से (अनाधृष्टा) प्रगल्भ निर्भय और स्वाधीन (असि) हो उस राजा की रक्षा किया करो ॥ १७ ॥

भावार्थः—प्रजापुरुष राज्यकर्म्म में जिस राजा का आश्रय करें वह उन की रक्षा करे और वे प्रजाजन उस न्यायाधीश के प्रति अपने अभिप्राय को शंका समाधान के साथ कहें। राजा के नौकर चाकर भी न्यायकर्म्म ही से प्रजाजनों की रक्षा करें ॥ १७ ॥

सुप्रजा इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । मन्थिनोधिष्ठानमित्यस्य प्राजापत्या गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

न्यायाधीश को प्रजाजनों के प्रति कैसे वर्त्तना चाहिये यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम् । संजग्मानो दिवा पृथिव्या मन्थी मन्थिशोचिषा निरस्तो मर्को मन्थिनोऽधिष्ठानमसि ॥ १८ ॥

पदार्थः—भो न्यायाधीश ! (सुप्रजाः) उत्तम प्रजायुक्त आप (प्रजाः) प्रजाजनों को (प्रजनयन्) प्रकट करते हुए (रायः) धन की (पोषेण) दृढ़ता के साथ (यजमानम्) यज्ञादि अच्छे कर्मों के करने वाले पुरुष को (अभि) (परि) (इहि) सर्वथा धन की वृद्धि से युक्त कीजिये (मन्थी) वाद विवाद के मंथन करने और (दिवा) सूर्य्य वा (पृथिव्या) पृथिवी के (संजग्मानः) तुल्य धीरतादि गुणों में वर्त्तने वाले आप (मन्थिनः) सदसद्विवेचन करने योग्य गुणों के (अधिष्ठानम्) आधार के समान (असि) हो इस कारण तुम्हारी (मन्थिशोचिषा) सूर्य्य की दीप्ति के समान न्यायदीप्ति से (मर्कः) मृत्यु देने वाला अन्यायी (निरस्तः) निवृत्त होवे ॥ १८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । न्यायाधीश राजा को चाहिये कि धर्म्म से यज्ञ करने वाले सत्पुरुष पुरोहित के समान प्रजा का निरन्तर पालन करे ॥ १८ ॥

ये देवास इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब राजा और सभासदों के काम अगले मन्त्र में कहे हैं ॥

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ । अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥ १९ ॥

पदार्थः—(ये) जो (महिना) अपनी महिमा से (दिवि) विद्युत् के स्वरूप में (एकादश) ग्यारह अर्थात् प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान, नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और जीवात्मा (देवासः) दिव्यगुणयुक्त देव (स्थ) हैं (पृथिव्याम्) भूमि के (अधि) ऊपर (एकादश) ग्यारह अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, आदित्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, अहंकार महत्तत्व और प्रकृति (स्थ) हैं तथा (अप्सुक्षितः) प्राणों में ठहरने वाले (एकादश) ग्यारह श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, नासिका, वाणी, हाथ, पांव गुदा, लिंग और मन (स्थ) हैं (ते) वे जैसे अपने-अपने कामों में वर्त्तमान हैं वैसे हे (देवासः) राजसभा

के सभासदो ! आप लोग यथायोग्य अपने-अपने कामों में वर्त्तमान होकर (इमम्) इस (यज्ञम्) राज और प्रजा सम्बन्धी व्यवहार का (जुषध्वम्) सेवन किया करें ॥ १९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। जैसे अपने-अपने कामों में प्रवृत्त हुए अन्तरिक्षादिकों में सब पदार्थ हैं वैसे राजसभासदों को चाहिये कि अपने-अपने न्यायमार्ग में प्रवृत्त रहें ॥ १९ ॥

उपयामगृहीतोसीत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृदार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अब राजा और विद्वानों के उपदेश की रीति अगले मन्त्र में कही है॥

उपयामगृहीतोऽस्याग्रयणोऽसि स्वाग्रयणः। पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं विष्णुस्त्वामिन्द्रियेण पातु विष्णुं त्वं पाह्यभि सवनानि पाहि ॥ २० ॥

पदार्थः—हे सभापते राजन् वा उपदेश करने वाले ! जिस कारण आप (उपयामगृहीतः) विनय आदि राजगुणों वा वेदादि शास्त्रबोध से युक्त (असि) हैं इस से (यज्ञम्) राजा और प्रजा की पालना कराने हारे यज्ञ को (पाहि) पालो और (स्वाग्रयणः) जैसे उत्तम विज्ञानयुक्त कर्म्मों को पहुँचाने वाले होते हैं वैसे (आग्रयणः) उत्तम विचारयुक्त कर्म्मों को प्राप्त होने वाले हूजिये इस से (यज्ञपतिम्) यथावत् न्याय की रक्षा करने वाले को (पाहि) पालो यह (विष्णुः) जो समस्त अच्छे गुण और कर्म्मों को ठीक-ठीक जानने वाला विद्वान् है वह (इन्द्रियेण) मन और धन से (त्वाम्) तुझे (पातु) पाले और तुम उस (विष्णुम्) विद्वान् की (पाहि) रक्षा करो (सवनानि) ऐश्वर्य्य देने वाले कामों की (अभि) सब प्रकार से (पाहि) रक्षा करो॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजा और विद्वानों को योग्य है कि वे निरन्तर राज्य की उन्नति किया करें क्योंकि राज्य की उन्नति के विना विद्वान् लोग सावधानी से विद्या का प्रचार और उपदेश भी नहीं कर सकते और न विद्वानों के संग और उपदेश के विना कोई राज्य की रक्षा करने के योग्य होता है तथा राजा प्रजा और उत्तम विद्वानों की परस्पर प्रीति के विना ऐश्वर्य्य की उन्नति के विना आनन्द भी निरन्तर नहीं हो सकता ॥ २० ॥

सोमः पवत इत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः। सोमो देवता। स्वराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। एष त इत्यस्य याजुषी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अब राजा का कर्म्म अगले मन्त्र में कहा है॥

सोमः पवते सोमः पवतेऽस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्रायास्मै सुन्वते यजमानाय पवतऽइषऽऊर्ज्जे पवतेऽद्भ्यऽओषधीभ्यः पवते द्यावापृथिवीभ्यां पवते सुभूताय पवते विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! जैसे यह (सोमः) सोम्यगुण सम्पन्न राजा (अस्मै) इस (ब्रह्मणे) परमेश्वर वा वेद को जानने के लिये (पवते) पवित्र होता है (अस्मै) इस (क्षत्राय) क्षत्रिय-धर्म के लिये (पवते) ज्ञानवान् होता है (अस्मै) इस (सुन्वते) समस्त विद्या के सिद्धान्त को निष्पादन (यजमानाय) और उत्तम संग करने हारे विद्वान् के लिये (पवते) निर्मल होता है (इषे) अन्न के गुण और (ऊर्ज्जे) पराक्रम के लिये (पवते) शुद्ध होता है (अद्भ्यः) जल और प्राण वा (ओषधीभ्यः) सोम आदि ओषधियों को (पवते) जानता है (द्यावापृथिवाभ्यीम्) सूर्य्य और पृथिवी के लिये (पवते) शुद्ध होता है (सुभूताय) अच्छे व्यवहार के लिये (पवते) बुरे कामों से बचता है। वैसे (सोमः) सभाजन और प्रजाजन भी सब को यथोक्त जाने माने और आप भी वैसा पवित्र रहे। हे राजन् सभ्यजन वा प्रजाजन ! जिस (ते) आप का (एषः) यह राजधर्म्म (योनिः) घर है। उस (त्वा) आप को (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये तथा (त्वा) आप को (विश्वेभ्यः) संपूर्ण दिव्यगुणों के लिये हम लोग स्वीकार करते हैं ॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे चन्द्रलोक सब जगत् के लिये हितकारी होता है और जैसे राजा सभा के जन और प्रजाजनों के साथ उन के उपकार के लिये धर्म्म के अनुकूल व्यवहार का आचरण करता है वैसे ही सभ्य पुरुष और प्रजाजन राजा के साथ वर्त्तें। जो उत्तम व्यवहार गुण और कर्म का अनुष्ठान करने वाला होता है वही राजा और सभा-पुरुष न्यायकारी हो सकता है तथा जो धर्मात्मा जन है वही प्रजा में अग्रगण्य समझा जाता है। इस प्रकार ये तीनों परस्पर प्रीति के साथ पुरुषार्थ से विद्या आदि गुण और पृथिवी आदि पदार्थों से अखिल सुख को प्राप्त हो सकते हैं ॥ २१ ॥

उपयामगृहीतोसीत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब कैसे मनुष्य को सेनापति करे यह अगले मंत्र में कहा है ॥

उपयामगृहीतोऽसीन्द्रायं त्वा बृहद्वते वयस्वतऽउक्थाव्यं गृह्णामि । यत्तंऽइन्द्र बृहद्वयस्तस्मैं त्वा विष्णवे त्वैष ते योनिरुक्थेभ्यंस्त्वा देवेभ्यंस्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सेनापते ! तू (उपयामगृहीतः) अच्छे नियमों से विद्या को पढ़ने वाला (असि) है, इस हेतु से (बृहद्वते) जिस के अच्छे बड़े बड़े कर्म्म हैं (वयस्वते) और जिसकी दीर्घ आयु है, उस (इन्द्राय) परमैश्वर्य्यवाले सभापति के लिये (उक्थाव्यम्) प्रशंसनीय स्तोत्र वा विशेष शस्त्रविद्या वाले (त्वा) तेरा (गृह्णामि) ग्रहण जैसे मैं करता हूं, वैसे (यत्) जो (ते) तेरा (बृहत्) अत्यन्त (वयः) जीवन है (तस्मै) उस के पालन करने के अर्थ और (विष्णवे) ईश्वरज्ञान वा वेदज्ञान के लिये (त्वा) तुझे (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं और (एषः) यह सेना का अधिकार (ते) तेरा (योनिः) स्थित होने के लिये स्थान है। हे सेनापते ! (उक्थेभ्यः) प्रशंसा योग्य वेदोक्त कर्मों के लिये (त्वा) तुझे

(देवेभ्यः) और विद्वानों वा दिव्य गुणों के लिये (देवाव्यम्) उन के पालन करने वाले (त्वा) तुझ को (यज्ञस्य) राज्यपालनादि व्यवहार के (आयुषे) बढ़ाने के लिये (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥ २२ ॥

भावार्थः—सब विद्याओं के जानने वाले विद्वान् को योग्य है कि राज्यव्यवहार में सेना के वीर पुरुषों की रक्षा करने के लिये अच्छी शिक्षायुक्त, शस्त्र और अस्त्र विद्या में परम प्रवीण यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले वीर पुरुष को सेनापति के काम में युक्त करे और सभापति तथा सेनापति को चाहिये कि परस्पर सम्मति कर के राज्य और यज्ञ को बढ़ावें ॥ २२ ॥

मित्रावरुणाभ्यान्त्वेत्यस्य वत्सारः काश्यप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । मित्रावरुणाभ्यामित्यस्यानुष्टुप्, इन्द्राग्निभ्यामित्यस्य प्राजापत्यानुष्टुप्, इन्द्रावरुणाभ्यामित्यस्य स्वराट् साम्न्यनुष्टुप् छन्दांसि । गान्धारः स्वरः । इन्द्राबृहस्पतिभ्यामित्यस्य भुरिगार्ची गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥ इन्द्राविष्णुभ्यामित्यस्य भुरिक् साम्न्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरश्च ॥

सब विद्याओं में प्रवीण पुरुष को सभा का अधिकारी करे यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

मि॒त्राव॑रु॑णाभ्यां त्वा दे॒वा॒व्यं॑ य॒ज्ञस्यायु॑षे गृह्णा॒मीन्द्रा॑य त्वा दे॒वा॒व्यं॑ य॒ज्ञस्यायु॑षे गृह्णा॒मीन्द्रा॒ग्निभ्यां॑ त्वा दे॒वा॒व्यं॑ य॒ज्ञस्यायु॑षे गृह्णा॒मीन्द्रा॒वरु॑णाभ्यां त्वा दे॒वा॒व्यं॑ य॒ज्ञस्यायु॑षे गृह्णा॒मीन्द्रा॒बृह॒स्पति॑भ्यां त्वा दे॒वा॒व्यं॑ य॒ज्ञस्यायु॑षे गृह्णा॒मीन्द्रा॒विष्णु॑भ्यां त्वा दे॒वा॒व्यं॑ य॒ज्ञस्यायु॑षे गृह्णामि ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे सभापते ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की इच्छा करने वाला मैं (यज्ञस्य) अग्निहोत्र से लेकर राज्य पालन पर्य्यन्त यज्ञ की (आयुषे) उन्नति होने के लिये (मित्रावरुणाभ्याम्) मित्र और उत्तम विद्यायुक्त पुरुषों के अर्थ (देवाव्यम्) विद्वानों की रक्षा करने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं। हे सेनापते विद्वन् ! (यज्ञस्य) सत्संगति करने की (आयुषे) उन्नति के लिये (इन्द्राय) परमैश्वर्य्यवान् पुरुष के अर्थ (देवाव्यम्) विद्वानों की रक्षा करने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं। हे शस्त्रास्त्रविद्या के जानने वाले प्रवीण ! (यज्ञस्य) शिल्पविद्या के कामों की सिद्धि की (आयुषे) प्राप्ति के लिये (इन्द्राग्निभ्याम्) बिजुली और प्रसिद्ध आग के गुण प्रकाश होने के अर्थ (देवाव्यम्) दिव्य विद्या बोध की रक्षा करने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि)ग्रहण करता हूं। हे शिल्पिन् ! (यज्ञस्य) क्रिया-चतुराई का (आयुषे) ज्ञान होने के (इन्द्रावरुणाभ्याम्) बिजुली और जल के गुण प्रकाश होने के अर्थ (देवाव्यम्) उन की विद्या जानने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं। हे अध्यापक ! (यज्ञस्य) पढ़ने पढ़ाने की (आयुषे)

उन्नति के लिये (इन्द्राबृहस्पतिभ्याम्) राजा और शास्त्रवेत्ताओं के अर्थ (देवाव्यम्) प्रशंसित योगविद्या के जानने और प्राप्त कराने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं। हे विद्वन्! (यज्ञस्य) विज्ञान की (आयुषे) बढ़ती के लिये (इन्द्राविष्णुभ्याम्) ईश्वर और वेदशास्त्र के जानने के अर्थ (देवाव्यम्) ब्रह्मज्ञानी को तृप्त करने वाले (त्वा) तुझ को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥ २३ ॥

भावार्थः—प्रजाजनों को उचित है कि सकल शास्त्र का प्रचार होने के लिये सब विद्याओं में कुशल और अत्यन्त ब्रह्मचर्य्य के अनुष्ठान करने वाले पुरुष को सभापति करें और वह सभापति भी परम प्रीति के साथ सकल शास्त्र का प्रचार करता कराता रहे ॥ २३ ॥

मूर्द्धानमित्यस्य भारद्वाज ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

इसके अनन्तर विद्वानों का कर्म्म अगले मन्त्र में कहा है॥

मूर्द्धानं दिवोऽअरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतऽआ जातमग्निम्। कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥ २४ ॥

पदार्थः—जैसे (देवाः) धनुर्वेद के जानने वाले विद्वान् लोग उस धनुर्वेद की शिक्षा से (दिवः) प्रकाशमान सूर्य के (मूर्द्धानम्) शिर के समान (पृथिव्याः) पृथिवी के गुणों को (अरतिम्) प्राप्त होने वाले (ऋते) सत्य मार्ग में (आजातम्) सत्य व्यवहार में अच्छे प्रकार प्रसिद्ध (वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों को आनन्द पहुंचाने और (जनानाम्) सत्पुरुषों के (अतिथिम्) अतिथि के समान सत्कार करने योग्य और (आसन्) अपने शुद्ध यज्ञरूप मुख में (पात्रम्) समस्त शिल्प-व्यवहार की रक्षा करने (कविम्) और अनेक प्रकार से प्रदीप्त होने वाले (अग्निम्) शुभगुण प्रकाशित अग्नि को (सम्राजम्) एक-चक्र राज्य करने वाले के समान (आ) अच्छे प्रकार से (जनयंत) प्रकाशित करते हैं वैसे सब मनुष्यों को करना योग्य है ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सत्पुरुष धनुर्वेद के जानने वाले परोपकारी विद्वान् लोग धनुर्वेद में कही हुई क्रियाओं से यानों और शस्त्रास्त्र विद्या में अनेक प्रकार से अग्नि को प्रदीप्त कर शत्रुओं को जीता करते हैं, वैसे ही अन्य सब मनुष्यों को भी अपना आचरण करना योग्य है ॥ २४ ॥

उपयामगृहीत इत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। वैश्वानरो देवता। याजुष्यनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः। ध्रुवोसीत्यस्य ध्रुवमित्यस्य च विराडार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है॥

उपयामगृहीतोऽसि ध्रुवोऽसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणां ध्रुवतमोऽच्युतानामच्युतक्षित्तमऽएष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा । ध्रुवं ध्रुवेण मनसा वाचा सोममवनयामि । अथा नऽइन्द्रऽइद्विशोऽसपत्नाः समनसस्करत् ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! आप (उपयामगृहीतः) शास्त्रप्राप्त नियमों से स्वीकार किये जाते (असि) हैं, ऐसे ही (ध्रुवः) स्थिर (असि) हैं कि (ध्रुवक्षितिः) जिन आप में भूमि स्थिर हो रही है और (ध्रुवाणाम्) स्थिर आकाश आदि पदार्थों में (ध्रुवतमाः) अत्यन्त स्थिर (असि) हूँ तथा (अच्युतानाम्) अविनाशी जगत् का कारण और अनादि सिद्ध जीवों में (अच्युतक्षित्तमः) अतिशय करके अविनाशीपन वसाने वाले हैं (एषः) यह सत्य के मार्ग का प्रकाश (ते) आप के (योनिः) निवास-स्थान के समान है (वैश्वानराय) समस्त मनुष्यों को सत्य मार्ग में प्राप्त कराने वाले वा इस राज्यप्रकाश के लिये (ध्रुवेण) दृढ़ (मनसा) मन और (वाचा) वाणी से (सोमम्) समस्त जगत् के उत्पन्न कराने वाले (त्वा) आप को (ध्रुवम्) निश्चयपूर्वक जैसे हो वैसे (अवनयामि) स्वीकार करता हूं (अथ) इस के अनन्तर (इन्द्रः) सब दुःख के विनाश करने वाले आप (नः) हमारे (विशः) प्रजाजनों को (असपत्नाः) शत्रुओं से रहित और (समनसः) एक मन अर्थात् एक दूसरे के चाहने वाले (इत) ही (करत्) कीजिये ॥ २५ ॥

भावार्थः—जो नित्य पदार्थों में नित्य और स्थिरों में भी स्थिर परमेश्वर है, उस समस्त जगत् के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर की प्राप्ति और योगाभ्यास के अनुष्ठान से ही ठीक-ठीक ज्ञान हो सकता है, अन्यथा नहीं ॥ २५ ॥

यस्त इत्यस्य देवश्रवा ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब ईश्वर यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले को उपदेश करता है ॥

यस्ते द्रप्स स्कन्दति यस्तेऽअंशुर्ग्रावच्युतो धिषणयोरुपस्थात् । अध्वर्य्योर्वा परि वा यः पवित्रात्तं ते जुहोमि मनसा वषट्कृतꣳ स्वाहा देवानामुत्क्रमणमसि ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे यज्ञपते ! (यः) जो (ते) तेरा (द्रप्सः) यज्ञ के पदार्थों का समूह (स्कन्दति) पवन के साथ सब जगह में प्राप्त होता है और (यः) जो (ते) तेरे यज्ञ से युक्त (ग्रावच्युतः) मेघमण्डल से छूटा हुआ (अंशुः) यज्ञ के पदार्थों का विभाग (धिषणयोः) प्रकाश भूमि के (पवित्रात्) पवित्र (उपस्थात्) गोद के समान स्थान से (वा) अथवा (यः) जो (अध्वर्य्योः) यज्ञ करने वालों से (वा) अथवा (परि) सब से प्रकाशित होता है इस से (तम्) उस यज्ञ को मैं (ते) तेरे लिये (स्वाहा) सत्यवाणी और (मनसा) मन से (वषट्कृतम्) किये हुए संकल्प के समान (जुहोमि) देता हूं अर्थात् उसके फलदायक होने

से तेरे लिये उस पदार्थ को पहुंचाता हूं जिस लिये यज्ञ का अनुष्ठान करने हारा तू (देवानाम्) विद्वानों के लिये (उत्क्रमणम्) ऊंची श्रेणी को प्राप्त करने वाले ऐश्वर्य्य के समान (असि) है इससे तुझ को सुख प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। होता आदि विद्वान् लोग अत्यन्त दृढ़ सामग्री से यज्ञ करते हुए जिन सुगन्धि आदि पदार्थों को अग्नि में छोड़ते हैं वे पवन और जलादि पदार्थों को पवित्र कर उसके साथ पृथिवी पर आ और सब प्रकार के रोगों को निवृत्त करके सब प्राणियों को आनन्द देते हैं इस कारण सब मनुष्यों को इस यज्ञ का सदा सेवन करना चाहिये ॥ २६ ॥

प्राणायेत्यस्य देवश्रवा ऋषिः। यज्ञपतिर्देवता। प्राणायेत्यस्य चासुर्य्यनुष्टुप्, उदानायेत्यस्यासुर्युष्णिक्, व्यनायेत्यस्य वाचेम इत्यस्य साम्नी गायत्री, क्रतूदक्षाभ्यामित्यस्यासुरी गायत्री, श्रोत्रायमेत्यस्यासुर्य्यनुष्टुप्, चक्षुर्भ्यामित्यस्य चासुर्युष्णिक् छन्दांसि। अनुष्टुभो गान्धारो गायत्र्याः षड्ज उष्णिज ऋषभश्च स्वरः ॥

फिर पठनपाठन यज्ञ के करने वाले का विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व व्यानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वोदानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व वाचे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व क्रतूदक्षाभ्यां मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व श्रोत्राय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व चक्षुर्भ्यां मे वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (वर्चोदाः) यथायोग्य विद्या पढ़ने पढ़ाने रूप यज्ञकर्म करने वाले! आप (मे) मेरे (प्राणाय) हृदयस्थ जीवन के हेतु प्राणवायु और (वर्चसे) वेदविद्या के प्रकाश के लिये (पवस्व) पवित्रता से वर्त्तें। हे (वर्चोदाः) ज्ञानदीप्ति के देने वाले जाठराग्नि के समान आप (मे) मेरे (व्यानाय) सब शरीर में रहने वाले पवन और (वर्चसे) अन्न आदि पदार्थों के लिये (पवस्व) पवित्रता से प्राप्त होवें। हे (वर्चोदाः) विद्याबल देने वाले! आप (मे) (उदानाय) श्वास से ऊपर को आने वाले उदान-संज्ञक पवन और (वर्चसे) पराक्रम के लिये (पवस्व) ज्ञान दीजिये। हे (वर्चोदाः) सत्य बोलने का उपदेश करने वाले आप (मे) मेरी (वाचे) वाणी और (वर्चसे) प्रगल्भता के लिये (पवस्व) प्रवृत्त हूजिये (वर्चोदा) विज्ञान देने वाले आप (मे) मेरे (क्रतूदक्षाभ्याम्) बुद्धि और आत्मबल की उन्नति और (वर्चसे) अच्छे बोध के लिये (पवस्व) शिक्षा कीजिये। हे (वर्चोदाः) शब्दज्ञान के देने वाले यज्ञपति! आप (मे) मेरे (श्रोत्राय) शब्द ग्रहण करने वाले कर्णेन्द्रिय के लिये (वर्चसे) शब्दों के अर्थ और सम्बन्ध का (पवस्व) उपदेश करें। हे (वर्चोदसौ) सूर्य्य और चन्द्रमा के समान अतिथि और पढ़ाने वाले आप दोनों (मे) मेरे (चक्षुर्भ्याम्) नेत्रों के लिये (वर्चसे) शुद्ध सिद्धांत के प्रकाश को (पवेथाम्) प्राप्त हूजिये ॥ २७ ॥

भावार्थः—जो विद्या की वृद्धि के लिये पठनपाठन रूप यज्ञकर्म्म करने वाला मनुष्य है वह अपने यज्ञ के अनुष्ठान से सब की पुष्टि तथा संतोष करने वाला होता है इस से ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यों को करना उचित है ॥ २७ ॥

आत्मन इत्यस्य देवश्रवा ऋषिः । यज्ञपतिर्देवता । ब्राह्मी बृहतीच्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

आत्मने मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वौजसे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वायुषे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व विश्वाभ्यो मे प्रजाभ्यो वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (वर्चोदाः) योग और ब्रह्मविद्या देने वाले विद्वन् ! आप (मे) मेरे (आत्मने) इच्छादि गुणयुक्त चेतन के लिये (वर्चसे) अपने आत्मा के प्रकाश को (पवस्व) प्राप्त कीजिये । हे (वर्चोदाः) उक्त विद्या देने वाले विद्वन् ! आप (मे) मेरे (ओजसे) आत्मबल होने के लिये (वर्चसे) योगबल को (पवस्व) जनाइये । हे (वर्चोदाः) बल देने वाले ! (मे) मेरे (आयुषे) जीवन के लिये (वर्चसे) रोग छुड़ाने वाले औषध को (पवस्व) प्राप्त कीजिये । हे (वर्चोदसौ) योगविद्या के पढ़ने पढ़ाने वालो ! तुम दोनों (मे) मेरी (विश्वाभ्यः) समस्त (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (वर्चसे) सद्गुण प्रकाश करने को (पवेथाम्) प्राप्त कराया करो ॥ २८ ॥

भावार्थः—योगविद्या के बिना कोई भी मनुष्य पूर्ण विद्यावान् नहीं हो सकता और न पूर्णविद्या के बिना अपने स्वरूप और परमात्मा का ज्ञान कभी होता है और न इसके बिना कोई न्यायाधीश सत्पुरुषों के समान प्रजा की रक्षा कर सकता है इसलिये सब मनुष्यों को उचित है कि इस योगविद्या का सेवन निरन्तर किया करें ॥ २८ ॥

कोऽसीत्यस्य देवश्रवा ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आर्चीपंक्तिश्छन्दः भूर्भुवस्व-रित्यस्य भुरिक्साम्नी पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

सभापति राजा प्रजा सेना और सभ्यजनों को क्या २ कहे यही अगले मन्त्र में कहा है ॥

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि । यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम । भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याꣳ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ॥ २९ ॥

पदार्थः—सभा सेना और प्रजा में रहने वाले हम लोग पूछते हैं कि तू (कः) कौन (असि) है (कतमः) बहुतों के बीच कौनसा (असि) है (कस्य) किसका (असि) है (कः) क्या (नाम) तेरा नाम (असि) है (यस्य) जिस (ते) तेरी (नाम) संज्ञा को (अमन्महि) जानें और (यम्) जिस (त्वा) तुझ को (सोमेन) धन आदि पदार्थों से (अतीतृपाम) तृप्त

करें। यह कह उन से सभापति कहता है कि (भूः) भूमि (भुवः) अन्तरिक्ष और (स्वः) आदित्यलोक के सुख के सदृश आत्मसुख की कामना करने वाला मैं तुम (प्रजाभिः) प्रजालोगों के साथ (सुप्रजाः) श्रेष्ठ प्रजा वाला (वीरैः) तुम वीरों से (सुवीरः) श्रेष्ठ वीरयुक्त (पोषैः) पुष्टिकारक पदार्थों से (सुपोषः) अच्छा पुष्ट (स्याम्) होऊं अर्थात् तुम सब लोगों से पृथक् न तो स्वतन्त्र मेरा कोई नाम और न कोई विशेष सम्बन्धी है ॥ २९ ॥

भावार्थः—सभापति राजा को योग्य है कि सत्य न्याययुक्त प्रिय व्यवहार से सभा सेना और प्रजा के जनों की रक्षा कर के उन सभों को उन्नति देवे और अति प्रबल वीरों को सेना में रक्खे जिस से कि बहुत सुख बढ़ाने वाले राज्य से भूमि आदि लोकों के सुख को प्राप्त होवे ॥ २९ ॥

उपयामगृहीतोसीत्यस्य देवश्रवा ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आद्यस्य साम्नी गायत्री द्वितीयस्यासुर्य्यनुष्टुप् तृतीयचतुर्थपंचमानां साम्नी गायत्री षष्ठस्यासुर्य्यनुष्टुप् सप्तमाष्टमयोर्याजुषी पंक्तिर्नवमस्य साम्नी गायत्री दशमस्यासुर्य्यनुष्टुप् एकादशस्य साम्नी गायत्री द्वादशस्यासुर्य्यनुष्टुप् त्रयोदशस्यासुर्य्युष्णिक् छन्दांसि । अत्र गायत्र्या षड्जः, अनुष्टुभो गांधारः, पंक्तेः पञ्चमः, उष्णिज ऋषभश्च स्वराः ॥

फिर भी विषयान्तर से वही उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उपयामगृहीतोऽसि मधवे त्वोपयामगृहीतोऽसि माधवाय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुक्राय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुचये त्वोपयामगृहीतोऽसि नभसे त्वोपयामगृहीतोऽसि नभस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसीषे त्वोपयामगृहीतोऽस्यूर्ज्जे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहसे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसि तपसे त्वोपयामगृहीतोऽसि तपस्याय त्वोपयामगृहीतोऽस्यंहसस्पतये त्वा ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे राजन् ! जिस से आप (उपयामगृहीतः) अच्छे-अच्छे राज्य प्रबन्ध के नियमों से स्वीकार किये हुए (असि) हैं, इस से (त्वा) आपको (मधवे) चैत्र मास की सभा के लिये अर्थात् चैत्र मास प्रसिद्ध सुख कराने वाले व्यवहार की रक्षा के लिये हम लोग स्वीकार करते हैं, सभापति कहता है कि हे सभासदो तथा प्रजा वा सेनाजनो ! तुम में से एक-एक (उपयामगृहीतः) अच्छे-अच्छे नियमों से स्वीकार किया हुआ (असि) है इसलिये तुम को चैत्र मास के सुख के लिये स्वीकार करता हूं इसी प्रकार बारहों महीनों के यथोक्त सुख के लिये राजा, राजसभासद्, प्रजाजन और सेनाजन परस्पर एक दूसरे को स्वीकार करते रहें ॥ ३० ॥

भावार्थः—सभाध्यक्ष राजा को चाहिये कि यथोचित समय को प्राप्त होकर श्रेष्ठ राज्य-व्यवहार से प्रजाजनों के लिये सब सुख देता रहे और प्रजाजन भी राजा की आज्ञा के अनुकूल व्यवहारों में वर्त्ता करें ।। ३० ।।

इन्द्राग्नीत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

अब राज्य के व्यवहार से नियत राजकर्म्म में प्रवृत्त हुए राजा और प्रजा के पुरुषों के प्रति कोई सत्कार से कहता है यह अगले मन्त्र में कहा है ।।

इन्द्रा॑ग्नी॒ऽआग॑तꣳ सु॒तं गी॒र्भिर्नभो॒ वरे॑ण्यम् । अ॒स्य पा॑तं धि॒येषि॒ता । उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसीन्द्रा॒ग्निभ्यां॑ त्वै॒ष ते॒ योनि॑रिन्द्रा॒ग्निभ्यां॑ त्वा ।। ३१ ।।

पदार्थः—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य्य और अग्नि के तुल्य प्रकाशमान सभापति और सभासद् ! तुम दोनों (आगतम्) आओ मिलकर (गीर्भिः) अच्छी शिक्षायुक्त वाणियों से हमारे लिये (वरेण्यम्) श्रेष्ठ (नभः) सुख को (सुतम्) उत्पन्न करो तथा (इषिता) पढ़ाये हुए वा हमारी प्रार्थना को प्राप्त हुए तुम (धिया) अपनी बुद्धि वा राजशासन कर्म से (अस्य) इस सुख की (पातम्) रक्षा करो। वे राजा और सभासद् कहते हैं कि हे प्रजाजन ! तू (उपयामगृहीतः) प्रजा के धर्म्म और नियमों से स्वीकार किया हुआ (असि) है (त्वा) तुझ को (इन्द्राग्निभ्याम्) उक्त महाशयों के लिये हम लोग वैसा ही मानते हैं (एषः) यह राजनीति (ते) तेरा (योनिः) घर है (इन्द्राग्निभ्याम्) उक्त महाशयों के लिये (त्वा) तुझ को हम चिताते हैं अर्थात् राजशासन को प्रकाशित करते हैं ।। ३१ ।।

भावार्थः—अकेला पुरुष यथोक्त राजशासन कर्म नहीं कर सकता इस कारण और श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार करके राज कार्य्यों में युक्त करे वे भी यथायोग्य व्यवहार में इस राजा का सत्कार करें ।। ३१ ।।

आ घा ये अग्निमित्यस्य त्रिशोक ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । आद्यस्यार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । उपेत्यस्याच्युर्ष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ।।

अब उक्त विषय को प्रकारान्तर से अगले मन्त्र में कहा है ।।

आ घा॒ऽये अ॒ग्निमि॑न्ध॒ते स्तृ॒णन्ति॑ ब॒र्हिरा॑नु॒षक् । येषा॒मिन्द्रो॒ युवा॒ सखा॑ । उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽस्यग्नी॒न्द्राभ्यां॑ त्वै॒ष ते॒ योनि॑रग्नी॒न्द्राभ्यां॑ त्वा ।। ३२ ।।

पदार्थः—(ये) वेदविद्यासंपन्न विद्वान् सभासद् (अग्निम्) विद्युत् आदि अग्नि (घ) ही को (इन्धते) प्रकाशित करते और (आनुषक्) अनुक्रम अर्थात् यज्ञ के यथोक्त क्रम से (बर्हिः) अन्तरिक्ष का (आ) (स्तृणन्ति) आच्छादन करते हैं तथा (येषाम्) जिनका (युवा) सर्वाङ्ग पुष्ट सर्वाङ्ग सुन्दर सर्वविद्या विचक्षण तरुण अवस्था और (इन्द्रः) सकलैश्वर्य्ययुक्त सभापति (सखा) मित्र है (अग्नीन्द्राभ्याम्) उन अग्नि और सूर्य्य के समान प्रकाशमान सभासदों से (उपयामगृहीतः) प्रजाधर्म्म से युक्त तू ग्रहण किया गया (असि) है। जिस

(ते) तेरा (एषः) न्याययुक्त सिद्धान्त (योनिः) घर के सदृश है उस (त्वा) तुझ को प्राप्त हुए हम लोग (अग्नीन्द्राभ्याम्) उक्त महापदार्थों के लिये (त्वा) तुझ को उपदेश करते हैं ॥ ३२ ॥

भावार्थः—राजधर्म्म में सब काम सभा के आधीन होने से विचार-सभाओं में प्रवृत्त राजमार्गी जनों में से दो तीन वा बहुत सभासद् मिलकर अपने विचार से जिस अर्थ को सिद्ध करें उसी के अनुकूल राजपुरुष और प्रजाजन अपना वर्त्ताव रक्खें ॥ ३२ ॥

ओमास इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । आद्यस्यार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । उपयाम इत्यस्यार्ची बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

पढ़ने और पढ़ाने वालों का परस्पर व्यवहार अगले मन्त्र में कहा है ॥

ओमा॑सश्चर्षणीधृतो॒ विश्वे॑ देवास॒ऽआग॑त । दा॒श्वाᳫंसो॑ दा॒शुषः॑ सु॒तम् । उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि॒ विश्वे॑भ्यस्त्वा दे॒वेभ्य॑ऽए॒ष ते॒ योनि॒र्विश्वे॑भ्यस्त्वा दे॒वेभ्यः॑ ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे (चर्षणीधृतः) मनुष्यों की पुष्टि संतुष्टि करने और (ओमासः) उत्तम उत्तम गुणों से रक्षा करने हारे (विश्वे) समस्त (देवासः) विद्वानो ! तुम (दाश्वांसः) उत्कृष्ट ज्ञान को देते हुए (दाशुषः) दान करने वाले उत्तम जन का (सुतम्) जो अच्छे कामों के करने से ऐश्वर्य्य को प्राप्त होने वाला है उसके (आ, गत) सन्मुख आओ । हे उक्त दानशील पुरुष के पढ़ने वाले बालक ! तू (उपयामगृहीतः) पढ़ाने के नियमों से ग्रहण किया हुआ (असि) है, इसलिये (त्वा) तुझे (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये अर्थात् उन की सेवा करने को आज्ञा देता हूं, जिसलिये (ते) तेरा (एषः) यह विद्या और अच्छी २ शिक्षा का संग्रह होना (योनिः) कारण है इसलिये (त्वा) तुझे (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) विद्वानों से विद्या और अच्छी २ शिक्षा दिलाता हूं ॥ ३३ ॥

भावार्थः—सब विद्वान् और विदुषी स्त्रियों की योग्यता है कि समस्त बालक और कन्याओं के लिये निरन्तर विद्यादान करें । राजा और धनी आदि लोगों के धन आदि पदार्थों से अपनी जीविका करें और वे राजा आदि धनी जन भी विद्या और अच्छी शिक्षा से प्रवीण होकर अपने पढ़ाने वाले विद्वान् वा विदुषी स्त्रियों को धन आदि अच्छे २ पदार्थों को देकर उनकी सेवा करें माता और पिता आठ २ वर्ष के पुत्र वा आठ २ वर्ष की कन्याओं को विद्याभ्यास ब्रह्मचर्य्य सेवन और अच्छी शिक्षा किये जाने के लिये विद्वान् और विदुषी स्त्रियों को सौंप दें वे भी विद्या ग्रहण करने में नित्य मन लगावें और पढ़ाने वाले भी विद्या और अच्छी शिक्षा देने में नित्य प्रयत्न करें ॥ ३३ ॥

विश्वेदेवास आगत इत्यस्य गृत्समद ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । आद्यस्यार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । उपायाम इत्यस्य निचृदार्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब प्रतिदिन पढ़ाने की योग्यता का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

विश्वे देवासऽआगत शृणुता मऽइमꣳ हवम्। एदं बर्हिर्निषीदत। उपयामगृहीतोऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे पूर्वमन्त्रप्रतिपादित गुणकर्म्मस्वभाववाले (विश्वेदेवासः) समस्त विद्वान् लोगो! आप हमारे समीप (आगत) आइये और हम लोगों के दिये हुए (इदम्) इस (बर्हिः) आसन पर (आ निषीदत) यथावकाश सुखपूर्वक बैठिये (मे) मेरी (हवम्) इस स्तुतियुक्त वाणी को (शृणुत) सुनिये। गृहस्थ अपने पुत्रादिकों के प्रति कहे कि हे पुत्र! जिस कारण तू (उपयामगृहीतः) विद्वानों का ग्रहण किया हुआ (असि) है, इस से हम (त्वा) तुझे (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) अच्छे २ विद्या पढ़ाने वाले विद्वानों को सौंपें, जिसलिये (एषः) यह समस्त विद्या का संग्रह (ते) तेरा (योनिः) घर के तुल्य है इसलिये (त्वा) तुझे (विश्वेभ्यः) (देवेभ्यः) समस्त उक्त महाशयों से विद्या दिलाना चाहते हैं ॥ ३४ ॥

भावार्थः—विद्वान् लोगों को उचित है कि प्रतिदिन विद्यार्थियों को पढ़ावें और परम विद्वान् पण्डित लोग उन की परीक्षा भी प्रत्येक महीने में किया करें उस परीक्षा से जो तीक्ष्णबुद्धि-युक्त परिश्रम करने वाले प्रतीत हों उन को अत्यन्त परिश्रम से पढ़ाया करें ॥ ३४ ॥

इन्द्र इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। निचृदार्षीत्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः। उपयाम इत्यस्यार्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

अब राजा पढ़ाने आदि व्यवहार की रक्षा को किस प्रकार से करे यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्र मरुत्वऽइह पाहि सोमं यथा शार्य्यातेऽअपिबः सुतस्य। तव प्रणीती तव शूर शर्म्मन्नाविवासन्ति कवयः सुयज्ञाः। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सब विघ्नों के दूर करने वाले सब सम्पत्ति से युक्त तेजस्वी (मरुत्वः) प्रशंसनीय धर्म्मयुक्त प्रजा पालने हारे सभापति राजन्! आप (इह) इस संसार में (यथा) जैसे (शार्य्याते) अपने हाथ पैरों के परिश्रम से निष्पन्न किये हुए व्यवहार में (सुतस्य) अभ्यास किये हुए विद्या रस को (अपिबः) पी चुके हो वैसे (सोमम्) समस्त अच्छे गुण ऐश्वर्य और सुख करने वाले पठनपाठन-रूपी यज्ञ को (पाहि) पालो। हे (शूर) धर्म्म-विरोधियों को दण्ड देने वाले! (तव) तुम्हारे (शर्म्मन्) राज्य घर में (सुयज्ञाः) अच्छे पढ़ने वाले विद्वानों के समान (कवयः) बुद्धिमान् लोग (तव) तुम्हारी (प्रणीती) उत्तम नीति का (आविवासन्ति) सेवन करते हैं। हे शूर! जिस कारण तुम (उपयामगृहीतः) प्रजापालनादि नियमों से स्वीकार किये हुए (असि) हो, इस से (त्वा) (इन्द्राय) परमैश्वर्य और (मरुत्वते) प्रजा-सम्बन्ध के लिये हम लोग चाहते हैं कि जो (ते) (एषः)

यह विद्या का प्रचार (योनिः) घर के समान है। इससे (त्वा) तुम को (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य और (मरुत्वते) प्रजापालन सम्बन्ध के लिये मानते हैं ॥ ३५ ॥

भावार्थः—सब विद्वानों को उचित है कि जैसे न्यायाधीशों की न्याययुक्त सभा से जो आज्ञा हो उस को कभी उल्लङ्घन न करें वैसे वे राजसभा के सभासद् भी वेदज्ञ विद्वानों की आज्ञा को उल्लङ्घन न करें जो सब गुणों से उत्तम हो उसी को सभापति करें और वह सभापति भी उत्तम नीति से समस्त राज्य के प्रबन्धों को चलावे ॥ ३५ ॥

मरुत्वन्तमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। उपयामेत्यस्य द्वितीयभागस्यार्षी तृतीयस्य साम्न्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी राजा और प्रजा को क्या करना चाहिये यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यꣳ शासमिन्द्रम्। विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रꣳ सहोदामिह तꣳ हुवेम। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते। उपयामगृहीतोऽसि मरुतां त्वौजसे ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(कवयः) पूर्वोक्त हम विद्वान् लोग (नूतनाय) नवीन २ (अवसे) रक्षा आदि गुणों के लिये (मरुत्वन्तम्) प्रशंसनीय प्रजायुक्त (वृषभम्) सब से उत्तम (वावृधानम्) अत्यन्त शुभगुण और कर्मों में उन्नति को प्राप्त (अकवारिम्) समस्त धर्मविरोधी दुष्टों का निवारण करने वाले (दिव्यम्) शुद्ध (विश्वासाहम्) सर्व सहनशील (उग्रम्) प्रचण्ड पराक्रमयुक्त (सहोदाम्) सहायता (शासम्) और सब को शिक्षा देने वाले (तम्) उस पूर्वोक्त (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्ययुक्त सभापति को निम्नलिखित प्रकार से (हुवेम) स्वीकार करें। हे मुख्य सभासद् राजन्! तू जिस कारण (उपयामगृहीतः) समस्त बड़े-बड़े और छोटे-छोटे नियमों की सामग्री से सहित (असि) है, इस से (त्वा) तुझ को (मरुत्वते) प्रशंसनीय प्रजायुक्त (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान् सभापति होने के लिये स्वीकार करते हैं (एषः) यह सभा में न्याय करने का काम (ते) तेरा (योनिः) घर के तुल्य है इस से (त्वा) तुझे (मरुत्वते) उत्तम प्रजा से युक्त (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य के पालन और वृद्धि होने के लिये स्वीकार करते हैं और जिस कारण तू (उपयामगृहीतः) उक्त सब नियम और उपनियमों से संयुक्त (असि) है, इस से (मरुताम्) प्रजाजनों का (ओजसे) बल बढ़ाने के लिये (त्वा) तुझे ग्रहण करते हैं ॥ ३६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से (कवयः) इस पद की अनुवृत्ति आती है। प्रजाजनों को योग्य है कि जो सर्वोत्तम समस्त विद्याओं में निपुण सकल शुभगुणयुक्त विद्वान् शूरवीर हो उस को सभा के मुख्य काम में स्थापन करें और वह सभा के सब कामों में स्थापित किया हुआ सभापति सत्य न्याययुक्त धर्म्म कार्य्य से प्रजा के उत्साह की उन्नति करे ॥ ३६ ॥

सजोषेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। आद्यस्य निचृदार्षी त्रिष्टुप्, उपयामेत्यस्य प्राजापत्या त्रिष्टुप् छन्दसी। धैवतः स्वरः ॥

अब सेनापति का काम अगले मन्त्र में कहा है ॥

सजोषाऽइन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् । जहि शत्रूँ२ऽरप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ ३७ ॥

पदार्थः—ईश्वर कहता है कि हे (इन्द्र) सब सुखों के धारण करने हारे (शूर) शत्रुओं के नाश करने में निर्भय ! जिस से तू (उपयामगृहीतः) सेना के अच्छे-अच्छे नियमों से स्वीकार किया हुआ (असि) है इससे (मरुत्वते) जिस में प्रशंसनीय वायु की अस्त्रविद्या है उस (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य पहुंचाने वाले युद्ध के लिये (त्वा) तुझ को उपदेश करता हूं कि (ते) तेरा (एषः) यह सेनाधिकार (योनिः) इष्ट सुखदायक है इस से (मरुत्वते) (इन्द्राय) उक्त युद्ध के लिये यत्न करते हुए तुझ को मैं अङ्गीकार करता हूं और (सजोषाः) सब से समान प्रीति करने वाला (सगणः) अपने मित्रजनो के सहित तू (मरुद्भिः) जैसे पवन के साथ (वृत्रहा) मेघ के जल को छिन्न भिन्न करने वाला सूर्य्य (सोमम्) समस्त पदार्थों के रस को खींचता है वैसे सब पदार्थों के रस को (पिब) सेवन कर और इस से (विद्वान्) ज्ञानयुक्त हुआ तू (शत्रून्) सत्यन्याय के विरोध में प्रवृत्त हुए दुष्ट जनों का (जहि) विनाश कर (अध) इस के अनन्तर (मृधः) जहां दुष्ट जन दूसरे के दुःख से अपने मन को प्रसन्न करते हैं उन संग्रामों को (अपनुदस्व) दूर कर और (नः) हम लोगों को (विश्वतः) सब जगह से (अभयम्) भय रहित (कृणुहि) कर ॥ ३७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे जीव प्रेम के साथ अपने मित्र वा शरीर की रक्षा करता है वैसे ही राजा प्रजा की पालना करे और जैसे सूर्य्य वायु और बिजुली के साथ मेघ का भेदन कर जल से सब को सुख देता है वैसे राजा को चाहिये कि युद्ध की सामग्री जोड़ और शत्रुओं को मार कर प्रजा को सुख धर्म्मात्माओं को निर्भयता और दुष्टों को भय देवे ॥ ३७ ॥

मरुत्वानित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृदार्षीत्रिष्टुप् छन्दः । उपयामेत्यस्य प्राजापत्या त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब सभाध्यक्ष के लिये अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

मरुत्वाँ२ऽइन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय । आसिञ्चस्व जठरे मध्वऽऊर्म्मिं त्वꣳ राजासि प्रतिपत्सुतानाम् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) शत्रुओं के जीतने वाले सभापते! जिस कारण आप (उपयामगृहीतः) राजनियमों से स्वीकार किये हुए (असि) हो इसलिये हम लोग तुम को (मरुत्वते) जिस में अच्छे अच्छे अस्त्रों और शस्त्रों का काम है उस (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य को प्राप्त करने वाले युद्ध के लिये युक्त करते हैं जिस से (ते) आपका (एषः) यह युद्ध परमैश्वर्य्य का (योनिः) कारण है इसलिये (त्वा) तुम को (मरुत्वते) (इन्द्राय) उस युद्ध के लिये कहते हैं कि आप (प्रतिपत्) प्रत्येक बड़े-बड़े विचार के कामों में (राजा) प्रकाशमान (मरुत्वान्)

प्रशंसनीय प्रजायुक्त और (वृषभः) अत्यन्त श्रेष्ठ हो इससे (रणाय) युद्ध और (मदाय) आनन्द के लिये (अनुष्वधम्) प्रत्येक भोजन में (सोमम्) सोमलतादि पुष्ट करने वाली ओषधियों के रस को (पिब) पीओ (सुतानाम्) उत्तम सस्कारों से बनाये हुए अन्नों के (मध्वः) मधुर रस की (ऊर्मिम्) लहरी को अपने (जठरे) उदर में (आसिञ्चस्व) अच्छे प्रकार स्थापन करो ॥ ३८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। सभा और सेनापति आदि मनुष्यों को चाहिये कि उत्तम से उत्तम पदार्थों के भोजन से शरीर और आत्मा को पुष्ट और शत्रुओं को जीत कर न्याय की व्यवस्था से सब प्रजा का पालन किया करें ॥ ३८ ॥

महानित्यस्य भरद्वाज ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। आद्यस्य भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। उपयामेत्यस्य साम्नी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब ईश्वर अपने गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में करता है॥

म॒हाँ२ऽइन्द्रो॒ नृव॒दा च॑र्षणि॒प्राऽउ॒त द्वि॒बर्हा॑ऽअमि॒नः सहो॑भिः। अ॒स्म॒द्र्य॒ग्वावृधे वी॒र्या॑यो॒रुः पृ॒थुः सुकृ॑तः क॒र्तृभि॑र्भूत्। उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि म॒हेन्द्राय॑ त्वै॒ष ते॒ योनि॑र्म॒हेन्द्राय॑ त्वा ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे भगवन् जगदीश्वर ! जिस कारण आप (उपयामगृहीतः) योगाभ्यास से ग्रहण करने के योग्य (असि) हैं इस से (महेन्द्राय) अत्यन्त उत्तम ऐश्वर्य के लिये हम लोग (त्वा) आप की उपासना हमारे लिये (योनिः) कल्याण का कारण है इस से (त्वा) तुम को (महेन्द्राय) परमैश्वर्य्य पाने के लिये हम सेवन करते हैं जो (महान्) सर्वोत्तम अत्यन्त पूज्य (नृवत्) मनुष्यों के तुल्य (आ) अच्छे प्रकार (चर्षणिप्राः) सब मनुष्यों को सुखों से परिपूर्ण करने (द्विबर्हाः) व्यवहार और परमार्थ के ज्ञान को बढ़ाने वाले दो प्रकार के ज्ञान से संयुक्त (अस्मद्र्यक्) हम सब प्राणियों को अपनी सर्वज्ञता से जानने वाले (अमिनः) अतुल पराक्रमयुक्त (कर्त्तृभिः) अच्छे कर्म्म करने वाले जीवों ने (सुकृतः) अच्छे कर्म्म करने वाले के समान ग्रहण किये हुए और (इन्द्रः) अत्यन्त उत्कृष्ट ऐश्वर्य्य वाले आप हैं उन्हीं का आश्रय किये हुए समस्त हम लोग (सहोभिः) अच्छे-अच्छे बलों के साथ (वीर्य्याय) परम उत्तम बल की प्राप्ति के लिये (वावृधे) दृढ़ उत्साहयुक्त होते हैं ॥ ३६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। ईश्वर का आश्रय न करके कोई भी मनुष्य प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता। जैसे ईश्वर सनातन न्याय का आश्रय करके सब जीवों को सुख देता है वैसे ही राजा को भी चाहिये कि प्रजा को अपनी न्याय व्यवस्था से सुख देवे ॥ ३६ ॥

महानिन्द्र इत्यस्य वत्स ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। आर्षीगायत्री छन्दः। उपयामेत्यस्य विराडार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर भी ईश्वर के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

म॒हाँ२ऽइन्द्रो॒ यऽओज॑सा प॒र्जन्यो॑ वृष्टि॒माँ२ऽइ॑व। स्तोमै॑र्व॒त्सस्य॑ वावृधे। उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि म॒हेन्द्राय॑ त्वै॒ष ते॒ योनि॑र्म॒हेन्द्राय॑ त्वा ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे अनादिसिद्ध योगिन् सर्वव्यापी ईश्वर ! जो आप योगियों के (उपयामगृहीतः) यमनियमादि योग के अङ्गों से स्वीकार किये हुए (असि) हैं इस कारण हम लोग (त्वा) आप को (महेन्द्राय) योग से प्रकट होने वाले अच्छे ऐश्वर्य के लिये आश्रय करते हैं (ते) आपका (एषः) यह योग हमारे कल्याण का (योनिः) निमित्त है इसलिये (त्वा) आपका (महेन्द्राय) मोक्ष कराने वाले ऐश्वर्य के लिये ध्यान करते हैं (यः) जो (महान्) बड़े २ गुण कर्म्म और स्वभाव वाला (वृष्टिमान्) वर्षने वाले (पर्जन्य इव) मेघ के तुल्य (वत्सस्य) स्तुतिकर्त्ता की (स्तोमैः) स्तुतियों से (ओजसा) अनन्त बल के साथ प्रकाशित होता है उस ईश्वर को जानकर योगी (वावृधे) अत्यन्त उन्नति को प्राप्त होता है ।। ४० ।।

भावार्थः—जैसे मेघ वर्षा समय में अपने जल के समूह से सब पदार्थों को तृप्त करता हुआ उन्नति देता है वैसे ईश्वर भी योगाभ्यास करने वाले योगी पुरुष के योग को अत्यन्त बढ़ाता है ।। ४० ।।

उदुत्यमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्य्यो देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।।

इस के पीछे सूर्य्य की उपमा से ईश्वर के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्य्यꣳ स्वाहा ॥ ४१ ॥

पदार्थः—जैसे किरण (विश्वाय) समस्त जगत् के प्रयोजन के (दृशे) देखने जानने के लिये (जातवेदसम्) जो उत्पन्न हुए सब पदार्थों को जानता वा मूर्तिमान् पदार्थों को प्राप्त होता है (त्यम्) उस (सूर्य्यम्) (देवम्) दिव्यगुणसम्पन्न सूर्य्य को (उ) तर्क के साथ (उत्) (वहन्ति) प्राप्त कराते हैं वैसे विद्वान् के (केतवः) प्रकृष्ट ज्ञान और (स्वाहा) सत्य वाणी या उपदेश मनुष्य को परब्रह्म की प्राप्ति करा देता है ।। ४१ ।।

भावार्थः—जैसे प्राणियों के लिये सूर्य्य की किरण उस को प्रकाशित करती हैं वैसे मनुष्य की अनेक विद्यायुक्त बुद्धियां ईश्वर का प्रकाश करा देती हैं ।। ४१ ।।

चित्रं देवानामित्यस्य कुत्स ऋषिः । सूर्य्यो देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

फिर भी वैसे ही ईश्वर के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्रा द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षꣳ सूर्य्यऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को अति उचित है कि जो (सूर्य्यः) सविता (स्वाहा) सत्य क्रिया से (देवानाम्) नेत्र आदि के समान विद्वानों (मित्रस्य) मित्र वा प्राण (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष वा उदान और (अग्नेः) अग्नि के (चित्रम्) अद्भुत (अनीकम्) बलवत्तर सेना के तुल्य प्रसिद्ध (चक्षुः) प्रभाव के दिखलाने वाले गुणों को (उत्) (अगात्) अच्छे प्रकार प्राप्त होता और (जगतः) जङ्गम प्राणी और (तस्थुषः) स्थावर संसारी पदार्थों का

(आत्मा) आत्मा के तुल्य होकर (द्यावापृथिवी) आकाश तथा भूमि और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (आ) सब प्रकार से (अप्राः) व्याप्त होने के समान परमात्मा है उसी की उपासना निरन्तर किया करो ॥ ४२ ॥

भावार्थः—जिस कारण परमेश्वर आकाश के समान सब जगह व्याप्त सूर्य्य के तुल्य स्वयं प्रकाशमान और सूत्रात्मा वायु के सदृश सब का अन्तर्य्यामी है इस से सब जीवों के लिये सत्य और असत्य को बोध कराने वाला है जिस किसी पुरुष को परमेश्वर को जानने की इच्छा हो वह योगाभ्यास करके अपने आत्मा में उसे देख सकता है अन्यत्र नहीं ॥ ४२ ॥

अग्ने नयेत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । अन्तर्यामी जगदीश्वरो देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर की प्रार्थना अगले मन्त्र में कही है ॥

अग्ने नयं सुपथा रायेऽअस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोद्ध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम स्वाहा ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सब के अन्तःकरण में प्रकाश करने वाले परमेश्वर ! आप (सुपथा) सत्यविद्या धर्म्मयोगयुक्त मार्ग से (राये) योग की सिद्धि के लिये (अस्मान्) हम लोगों को (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) योग के विद्वानों को (नय) पहुंचाइये जिस से हम लोग (स्वाहा) अपनी सत्यवाणी वा वेदवाणी से (ते) आप की (भूयिष्ठाम्) बहुत (नमउक्तिम्) नमस्कारपूर्वक स्तुति को (विधेम) करें । हे (देव) योगविद्या को देने वाले ईश्वर ! (विद्वान्) समस्त योग के गुण और क्रियाओं को जानने वाले आप कृपा कर के (जुहुराणम्) हम लोगों के अन्तःकरण के कुटिलतारूप (एनः) दुष्ट कर्म्मों को (अस्मत्) योगानुष्ठान करने वाले हम लोगों से (युयोधि) दूर कर दीजिये ॥ ४३ ॥

भावार्थः—कोई भी पुरुष परमात्मा की प्रेम भक्ति के विना योगसिद्धि को प्राप्त नहीं होता और जो प्रेम-भक्ति युक्त होकर योगबल से परमेश्वर का स्मरण करता है उस को वह दयालु परमात्मा शीघ्र योगसिद्धि देता है ॥ ४३ ॥

अयमित्यस्याङ्गिरस ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब संग्राम में परमेश्वर के उपासक शूरवीरों को किस प्रकार युद्ध करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अयं नोऽअग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुरऽएतु प्रभिन्दन् । अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावयꣳ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा ॥ ४४ ॥

पदार्थः—(अयम्) यह प्रथम (अग्निः) वैद्यक विद्या का प्रकाश करने वाला वैद्य (स्वाहा) वैद्यक और युद्ध को शिक्षायुक्त वाणी से (वाजसातौ) युद्ध में (नः) हम लोगों को (वरिवः) सुखकारक सेवन (कृणोतु) करे (अयम्) यह दूसरा युद्ध करने वाला मुख्य

वीर (प्रभिन्दन्) शत्रुओं को विदीर्ण करता हुआ (मृधः) संग्राम के (पुरः) आगे (एतु) चले (अयम्) यह तीसरा वीर रसकारक उपदेश करने वाला योद्धा (वाजान्) अत्यन्त वेगादिगुणयुक्त वीरों को (जयतु) उत्साहयुक्त करता रहे (अयम्) यह चौथा वीर (जर्हृषाणः) निरन्तर आनन्दयुक्त होकर (शत्रून्) धर्म्मविरोधी शत्रुजनों को (जयतु) जीते ॥ ४४ ॥

भावार्थः—जब युद्धकर्म में चार वीर अवश्य हों उन में से एक तो वैद्यकशास्त्र की क्रियाओं में चतुर सब की रक्षा करने हारा वैद्य, दूसरा सब वीरों को हर्ष देने वाला उपदेशक, तीसरा शत्रुओं का अपमान करने हारा और चौथा शत्रुओं का विनाश करने वाला हो, तब समस्त युद्ध की क्रिया प्रशंसनीय होती है ॥ ४४ ॥

रूपेणेत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृज्जगतीच्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब तीन सभाओं से राज्य की शिक्षा करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

रूपेण वो रूपमभ्यागां तुथो वो विश्ववेदा विभजतु । ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा वि स्वः पश्य व्यन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे सेना और प्रजाजनो ! जैसे मैं (रूपेण) अपने दृष्टिगोचर आकार से (वः) (तुम्हारे) (रूपम्) स्वरूप को (अभि) (आ) (अगाम्) प्राप्त होता हूं । वैसे (विश्ववेदाः) सब को जानने वाले परमात्मा के समान सभापति (वः) तुम लोगों को (वि) (भजतु) पृथक् २ अपने २ अधिकार में नियत करे । हे सभापते ! (तुथः) सब से अधिक ज्ञान वाले प्रतिष्ठित आप (स्वः) प्रताप को प्राप्त हुए सूर्य्य के समान (ऋतस्य) सत्य के (पथा) मार्ग से (अंतरिक्षम्) अविनाशी राजनीति वा ब्रह्मविज्ञान को (वि) अनेक प्रकार से (पश्य) देखो और सभा के बीच में (सदस्यैः) सभासदों के साथ सत्य-मार्ग से (प्र) (यतस्व) विशेष २ यत्न करो तथा हे (चन्द्रदक्षिणाः) सुवर्ण के दान करने वाले राजपुरुषो ! तुम लोग धर्म्म को (वीत) विशेषता से प्राप्त होओ ॥ ४५ ॥

भावार्थः—सभापति राजा को चाहिये कि अपने पुत्रों के तुल्य प्रजा सेना के पुरुषों को प्रसन्न रक्खे और परमेश्वर के तुल्य पक्षपात छोड़ कर न्याय करे । धार्म्मिक सभ्यजनों की तीन सभा होनी चाहियें उन में से एक राजसभा जिस के आधीन राज्य के सब कार्य्य चलें और सब उपद्रव निवृत्त रहें, दूसरी विद्यासभा जिस से विद्या का प्रचार अनेकविधि किया जावे और अविद्या का नाश होता रहे और तीसरी धर्म्मसभा जिससे धर्म्म की उन्नति और अधर्म्म की हानि निरन्तर की जाय । सब लोगों को उचित है कि अपने आत्मा और परमात्मा को देखकर अन्याय मार्ग से अलग हो, धर्म्म का सेवन और सभासदों के साथ समयानुकूल अनेक प्रकार से विचार करके सत्य और असत्य के निर्णय करने में प्रयत्न किया करें ॥ ४५ ॥

ब्राह्मणमित्यस्याङ्गिरस ऋषिः । विद्वांसो देवताः । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब दक्षिणा किस को और किस प्रकार देनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

ब्राह्मणमद्य विदेयं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयꣳ सुधातुदक्षिणम् । अस्मद्राता देवत्रा गच्छत प्रदातारमाविशत ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे प्रजा सभा और सेना के मनुष्यो ! जैसे मैं (अद्य) आज (ब्राह्मणम्) वेद और ईश्वर को जानने वाला (पितृमन्तम्) प्रशंसनीय पितृ अर्थात् सत्यासत्य के विवेक से जिस के सर्वथा रक्षक हैं (पैतृमत्यम्) पितृभाव को प्राप्त (ऋषिम्) वेदार्थ विज्ञान कराने वाला ऋषि (आर्षेयम्) जो ऋषिजनों के इस योग से उत्पन्न हुए विज्ञान को प्राप्त (सुधातुदक्षिणम्) जिस के अच्छी २ पुष्टिकारक दक्षिणारूप धातु हैं उस (प्रदातारम्) अच्छे दानशील पुरुष को (विदेयम्) प्राप्त होऊं वैसे तुम लोग (अस्मद्राताः) हमारे लिये अच्छे गुणों के देने वाले होकर (देवत्रा) शुद्ध गुण कर्म स्वभावयुक्त विद्वानों के (आगच्छत) समीप आओ और शुभ गुणों में (आविशत) प्रवेश करो ॥ ४६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । उत्साही पुरुष को क्या नहीं प्राप्त हो सकता । कौन ऐसा पुरुष है कि जो प्रयत्न के साथ विद्वानों का सेवन कर ऋषि लोगों के प्रकाशित किये हुए योगविज्ञान को न सिद्ध कर सके । कोई भी विद्वान् अच्छे गुण कर्म्म और स्वभाव से विपरीत नहीं हो सकता और दाताजनों को कृपणता कभी नहीं आती हे इस से जो देने वाले दक्षिणा में प्रशंसनीय पदार्थ सुपात्र धार्मिक सर्वोपकारक विद्वानों को देते हैं उनकी अचल कीर्त्ति क्योंकर न हो ॥ ४६ ॥

अग्नये त्वेत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । वरुणो देवता । आद्यस्य भुरिक् प्राजापत्या, रुद्राय त्वेत्यस्य स्वराट् प्राजापत्या, बृहस्पतयेत्वेत्यस्य निचृदार्ची, यमाय त्वेत्यस्य विराडार्ची जगत्यश्छन्दांसि । निषादः स्वरः ॥

अब किस प्रयोजन के लिये दान और प्रतिग्रह का सेवन करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्नये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्त्वमशीयायुर्दात्रऽएधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे रुद्राय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्त्वमशीय प्राणो दात्रऽएधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे बृहस्पतये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्त्वमशीय त्वग्दात्रऽएधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे यमाय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्त्वमशीय हयो दात्रऽएधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे वसुसंज्ञक पढ़ाने वाले ! जिस (अग्नये) चौबीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य का सेवन कर के अग्नि के समान तेजस्वी होने वाले (मह्यम्) मेरे लिये (त्वा) तुझ अध्यापक को (वरुणः) सर्वोत्तम विद्वान् (ददातु) देवे (सः) वह मैं (अमृतत्वम्) अपने शुद्ध कर्म्मों से सिद्ध किये सत्य आनन्द को (अशीय) प्राप्त होऊं उस (दात्रे) दानशील विद्वान् का (आयुः)

बहुत कालपर्य्यन्त जीवन (एधि) बढ़ाइये और (प्रतिग्रहीत्रे) विद्याग्रहण करने वाले (मह्यम्) मुझ विद्यार्थी के लिये (मयः) सुख बढ़ाइये । हे दुष्टों को रुलाने वाले अध्यापक ! जिस (रुद्राय) चवालीस वर्षपर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्याश्रम का सेवन करके रुद्र के गुण धारण करने की इच्छा वाले (मह्यम्) मेरे लिये (त्वा) रुद्र नामक पढ़ाने वाले आपको (वरुणः) अत्युत्तम गुणयुक्त (ददातु) देवे (सः) वह मैं (अमृतत्वम्) मुक्ति के साधनों को (अशीय) प्राप्त होऊं उस (दात्रे) विद्या देने वाले विद्वान् के लिये (प्राणः) योगविद्या का बल (एधि) प्राप्त कराइये और (प्रतिग्रहीत्रे) विद्याग्रहण करने वाले (मह्यम्) मेरे लिये (वयः) तीनों अवस्था का सुख प्राप्त कीजिये । हे सूर्य्य के समान तेजस्वि अध्यापक ! जिस (बृहस्पतये) अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य्य सेवन की इच्छा करने वाले (मह्यम्) मेरे लिये (त्वा) पूर्णविद्या पढ़ाने वाले आप को (वरुणः) पूर्णविद्या से शरीर और आत्मा के बलयुक्त विद्वान् (ददातु) देवे (सः) वह मैं (अमृतत्वम्) विद्या के आनन्द का (अशीय) भोग करूं उस (दात्रे) पूर्ण विद्या देने वाले महाविद्वान् के अर्थ (त्वक्) सरदी गरमी के स्पर्श का सुख (एधि) बढ़ाइये और (प्रतिग्रहीत्रे) पूर्ण विद्या के ग्रहण करने वाले (मह्यम्) मुझ शिष्य के लिये (मयः) पूर्ण विद्या का सुख उन्नत कीजिये । हे गृहाश्रम से होने वाले विषय-सुख से विमुख विरक्त सत्योपदेश करने हारे आप्त विद्वन् ! जिस (यमाय) गृहाश्रम के सुख के अनुराग से होने वाले (मह्यम्) मेरे लिये (त्वा) सर्वदोषरहित उपदेश करने वाले आप को (वरुणः) सकल शुभगुणयुक्त विद्वान् (ददातु) देवे (सः) वह मैं (अमृतत्वम्) मुक्ति के सुख को (अशीय) प्राप्त होऊं । उस (दात्रे) ब्रह्मविद्या देने वाले महाविद्वान् के लिये (हयः) ब्रह्मज्ञान की वृद्धि (एधि) कीजिये और (प्रतिग्रहीत्रे) मोक्षविद्या के ग्रहण करने वाले (मह्यम्) मेरे लिये (वयः) तीनों अवस्था के सुख को प्राप्त कीजिये ।। ४७ ।।

भावार्थः—सब मनुष्यों को योग्य है कि जो सब से उत्तम गुण वाला सब विद्याओं में सब से बढ़कर विद्वान् हो उस के आश्रय से अन्य अध्यापक विद्वानों की परीक्षा करके अपनी २ कन्या और पुत्रों को उन-उन के पढ़ाने योग्य विद्वानों से पढ़वावें और पढ़ने वालों को भी चाहिये कि अपनी २ अधिक न्यून बुद्धि को जान के अपने २ अनुकूल अध्यापकों की प्रीतिपूर्वक सेवा करते हुए उन से निरन्तर विद्या का ग्रहण करें ।। ४७ ।।

कोऽदादित्यस्याङ्गिरस ऋषिः । आत्मा देवता । आर्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर जीवों को उपदेश करता है ॥

कोऽदात्कस्माऽअदात्कामोऽदात्कामायादात् । कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते ॥ ४८ ॥

पदार्थः—(कः) कौन कर्म्म-फल को (अदात्) देता और (कस्मै) किस के लिये (अदात्) देता है । इन दो प्रश्नों के उत्तर (कामः) जिसकी कामना सब करते हैं वह परमेश्वर (अदात्) देता और (कामाय) कामना करने वाले जीव को (अदात्) देता है । अब विवेक करते हैं कि (कामः) जिसकी योगी जन कामना करते हैं वह परमेश्वर (दाता) देने वाला है

(कामः) कामना करने वाला जीव (प्रतिग्रहीता) लेनेवाला है । हे (काम) कामना करने वाले जीव ! (ते) तेरे लिये मैंने वेदों के द्वारा (एतत्) यह समस्त आज्ञा की है ऐसा तू निश्चय करके जान ॥ ४८ ॥

भावार्थः—इस संसार में कर्म्म करने वाले जीव और फल देने वाला ईश्वर है । यहां यह जानना चाहिये कि कामना के विना कोई आंख का पलक भी नहीं हिला सकता । इस कारण जीव कामना करे परन्तु धर्म्मसम्बन्धी कामना करे अधर्म्म की नहीं । यह निश्चय कर जानना चाहिये कि जो इस विषय में मनुजी ने कहा है वह वेदानुकूल है । जैसे इस संसार में अति कामना प्रशंसनीय नहीं और कामना के विना कोई कार्य्य सिद्ध नहीं हो सकता इसलिये धर्म्म की कामना करनी और अधर्म्म की नहीं क्योंकि वेदों का पढ़ना पढ़ाना और वेदोक्त धर्म का आचरण करना आदि कामना इच्छा के विना कभी सिद्ध नहीं हो सकती ॥ १ ॥ इस संसार में तीनों काल में इच्छा के विना कोई क्रिया नहीं दीख पड़ती जो जो कुछ क्रिया जाता है सो सो सब इच्छा ही का व्यापार है । इसलिये श्रेष्ठ वेदोक्त कामों की इच्छा करनी इतर दुष्ट कामों की नहीं ॥ ४८ ॥

इस अध्याय में बाहर भीतर का व्यवहार, मनुष्यों का परस्पर वर्त्ताव, आत्मा का कर्म्म, आत्मा में मन की प्रवृत्ति, प्रथम सिद्ध योगी के लिये ईश्वर का उपदेश, ज्ञान चाहने वाले को योगाभ्यास करना, योग का लक्षण, पढ़ने पढ़ाने वालों की रीति, योगविद्या के अभ्यास करने वालों का वर्त्ताव, योगविद्या से अन्तःकरण की शुद्धि, योगाभ्यासी का लक्षण, गुरु शिष्य का परस्पर व्यवहार, स्वामी सेवक का वर्त्ताव, न्यायाधीश को प्रजा के रक्षा करने की रीति, राजपुरुष और सभासदों का कर्म्म, राजा का उपदेश, राजाओं का कर्त्तव्य, परीक्षा करके सेनापति का करना पूर्ण विद्वान् को सभापति का अधिकार देना, विद्वानों का कर्त्तव्य कर्म्म, ईश्वर के उपासक को उपदेश, यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले का विषय, प्रजाजन आदि के साथ सभापति का वर्त्ताव, राजा और प्रजा के जनों का सत्कार, गुरु शिष्य की परस्पर प्रवृत्ति, नित्य पढ़ने का विषय, विद्या की वृद्धि करना, राजा को कर्त्तव्य, सेनापति का कर्म्म, सभाध्यक्ष की क्रिया, ईश्वर के गुणों का वर्णन, उसकी प्रार्थना, शूरवीरों को युद्ध का अनुष्ठान, सेना में रहने वाले पुरुषों का कर्त्तव्य, ब्रह्मचर्य्य सेवन की रीति और ईश्वर का जीवों के प्रति उपदेश, इस वर्णन के होने से सप्तम अध्याय के अर्थ की षष्ठाध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥

❁ अथाष्टमाध्यायस्यारम्भः ❁

अब आठवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है ॥

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒ता॑नि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥ १ ॥

य० ३० । ३ ॥

उपयाम इत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । बृहस्पतिस्सोमो देवता । आर्ची पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

उस के प्रथम मन्त्र से गृहस्थ धर्म के लिये ब्रह्मचारिणी कन्या को कुमार ब्रह्मचारी का ग्रहण करना चाहिये यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽस्यादि॒त्येभ्य॑स्त्वा । विष्ण॑ऽउरुगा॒यै॒ष ते॒ सोम॒स्तꣳ र॑क्षस्व॒ मा त्वा॑ दभन् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे कुमार ब्रह्मचारिन् ! चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य सेवने वाली मैं (आदित्येभ्यः) जिन्होंने अड़तालीस वर्षतक ब्रह्मचर्य सेवन किया है उन सज्जनों की सभा में (त्वा) अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य सेवन करने वाले आप को स्वीकार करती हूं आप (उपयामगृहीतः) शास्त्र के नियम और उपनियमों को ग्रहण करने वाले (असि) हो । हे (विष्णो) समस्त श्रेष्ठ विद्या गुण कर्म और स्वभाव वाले श्रेष्ठजन ! (ते) आपका (एषः) यह गृहस्थाश्रम (सोमः) सोमलता आदि के तुल्य ऐश्वर्य का बढ़ाने वाला है (तम्) उस की (रक्षस्व) रक्षा करें । हे (उरुगाय) बहुत शास्त्रों को पढ़ने वाले ! (त्वा) आप को काम के बाण जैसे (मा दभन्) दुःख देने वाले न होवें वैसा साधन कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थः—सब ब्रह्मचर्याश्रम सेवन की हुई युवती कन्याओं को ऐसी आकांक्षा अवश्य रखनी चाहिये कि अपने सदृश रूप गुण कर्म स्वभाव और विद्या वाला अपने से अधिक बलयुक्त अपनी इच्छा के योग्य अन्तःकरण से जिस पर विशेष प्रीति हो ऐसे पति को स्वयंवर विधि से स्वीकार करके उसकी सेवा किया करें । ऐसे हा कुमार ब्रह्मचारी लोगों को भी चाहिये कि अपने अपने समान युवती स्त्रियों का पाणिग्रहण करें, इस प्रकार दोनों स्त्री पुरुषों को सनातन गृहस्थों के धर्म का पालन करना चाहिये और परस्पर अत्यन्त विषय की लोलुपता तथा वीर्य का विनाश कभी न करें किन्तु सदा ऋतुगामी हों । दश सन्तानों को उत्पन्न करें और उन्हें अच्छी शिक्षा देकर अपने ऐश्वर्य की वृद्दिध कर प्रीतिपूर्वक रमण करें जैसे आपस में एक से दूसरे का वियोग अप्रीति और व्यभिचार आदि दोष न हों वैसा वर्त्ताव वर्त कर आपस में एक दूसरे की रक्षा सब प्रकार सब काल में किया करें ॥ १ ॥

कदा चन इत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । गृहपतिर्मघवा देवता । भुरिक् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थों के धर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे । उपोपेन्नु मघवन्भूयऽइन्नु ते दानं देवस्य पृच्यतऽआदित्येभ्यस्त्वा ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य्य से युक्त पति ! जिस कारण आप (कदा) कभी (चन) भी (स्तरीः) अपने स्वभाव को छिपाने वाले (न) नहीं (असि) हैं इस कारण (दाशुषे) दान देने वाले पुरुष के लिये (उपोप) समीप (सश्चसि) प्राप्त होते हैं । हे (मघवन्) प्रशंसित धनयुक्त भर्त्ता ! (देवस्य) विद्वान् (ते) आप का जो (दानम्) दान अर्थात् अच्छी शिक्षा वा धन आदि पदार्थों का देना है (इत्) वही (नु) शीघ्र (भूयः) अधिक करके मुझ को (पृच्यते) प्राप्त होवे । इसी से मैं स्त्रीभाव से (आदित्येभ्यः) प्रति महीने सुख देने वाले आपका आश्रय करती हूं ॥ २ ॥

भावार्थः—विवाह की कामना करने वाली युवती स्त्री को चाहिये कि जो छल कपट आदि आचरणों से रहित प्रकाश करने और एक ही स्त्री को चाहने वाला जितेन्द्रिय सब प्रकार का उद्योगी धार्मिक और विद्वान् पुरुष हो उस के साथ विवाह करके आनन्द में रहे ॥ २ ॥

कदा चन प्रयुच्छसीत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । आदित्यो गृहपतिर्देवता । निचृदार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ का धर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

कदा चन प्रयुच्छस्युभे निपासि जन्मनी । तुरीयादित्य सवनं तऽइन्द्रियमातस्थावमृतं दिव्यादित्येभ्यस्त्वा ॥ ३ ॥

पदार्थः—इस मन्त्र में नकार का अध्याहार आकांक्षा के होने से होता है । हे पते ! आप जो (कदा) कभी (चन) भी (प्र) (युच्छसि) प्रमाद नहीं करते हो तो अपने (उभे) दोनों (जन्मनी) वर्त्तमान और परजन्म को (पासि) निरन्तर पालते हो । हे (आदित्य) विद्या गुणों में सूर्य के तुल्य प्रकाशमान ! जो (ते) आपके (सवनम्) उत्पत्ति धर्मयुक्त कार्य्य सिद्ध करने हारे (इन्द्रियम्) मन आदि इन्द्रिय के (आ) (तस्थौ) वश में रहें तो आप (दिवि) प्रकाशित व्यवहारों में (अमृतम्) अविनाशी सुख को प्राप्त हो जावें । हे (तुरीय) चतुर्थाश्रम के पूर्ण करने वाले ! (आदित्येभ्यः) प्रति मास के सुख के लिये (त्वा) दृढ़ेन्द्रिय आप को मैं स्त्री स्वीकार करती हूं ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो प्रमादी पुरुष विवाहित स्त्री को छोड़ कर परस्त्री का सेवन करता है वह इस लोक और परलोक में दुर्भागी होता है और जो संयमी अपनी ही स्त्री का चाहने वाला दूसरे की स्त्री को नहीं चाहता वह दोनों लोक में परम सुख को क्यों न भोगे ? इस से सब स्त्रियों को योग्य है कि जितेन्द्रिय पति का सेवन करें अन्य का नहीं ॥ ३ ॥

यज्ञो देवानामित्यस्य कुत्स ऋषिः । आदित्यो गृहपतिर्देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर भी गृहाश्रम का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः । आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासदादित्येभ्यस्त्वा ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (आदित्यासः) सूर्य्यलोकों के समान विद्या आदि शुभ गुणों से प्रकाशमान ! आप जो (देवानाम्) विद्वान् (वः) आप लोगों का यह (यज्ञः) स्त्रीपुरुषों के वर्त्तने योग्य गृहाश्रम व्यवहार (सुम्नम्) सुख को (प्रति) (एति) निश्चय कर के प्राप्त करता है और (या) जो (अंहोः) गृहाश्रम के सुख को सिद्ध करने वाली (अर्वाची) अच्छी शिक्षा और विद्याभ्यास के पीछे विज्ञानप्राप्ति का हेतु (वरिवोवित्तरा) सत्यव्यवहार का निरन्तर विज्ञान देने वाली आप लोगों की (सुमतिः) श्रेष्ठ बुद्धि श्रेष्ठ मार्ग में (आ) निरन्तर (ववृत्यात्) प्रवृत्त होवे जो (आदित्येभ्यः) आप्त विद्वानों से उत्तम विद्या और शिक्षा जो (त्वा) तुझ को (असत्) प्राप्त हो (चित्) उस बुद्धि से ही युक्त हम दोनों स्त्री पुरुष को (मृडयन्तः) सदा सुख देते (भवत) रहिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—विवाह करके स्त्रीपुरुषों को चाहिये कि जिस २ काम से विद्या अच्छी शिक्षा बुद्धि धन सुहृद्भाव और परोपकार बढ़े उस कर्म का सेवन अवश्य किया करें ॥ ४ ॥

विवस्वन्नित्यस्य कुत्स ऋषिः । गृहपतयो देवताः । आद्यस्य प्राजापत्याऽनुष्टुप् छन्दः । गांधारः स्वरः । अदित्युत्तरस्य निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ का धर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन् मत्स्व । श्रदस्मै नरो वचसे दधातन यदाशीर्दा दम्पती वाममश्नुतः । पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्वधा विश्वाहारपऽएधते गृहे ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (विवस्वन्) विविध प्रकार के स्थानों में वसने वाले (आदित्य) अविनाशीस्वरूप विद्वान् गृहस्थ ! (एषः) यह जो (ते) आपका (सोमपीथः) जिस में सोमलता आदि ओषधियों के रस पीने में आवें ऐसा गृहाश्रम है (तस्मिन्) उस में आप (विश्वाहा) सब दिन (मत्स्व) आनन्दित रहो । हे (नरः) गृहाश्रम करने वाले गृहस्थो ! आप लोग (अस्मै) इस (वचसे) गृहाश्रम के वाग् व्यवहार के लिये (श्रत्) सत्य ही का (दधातन) धारण करो (यत्) जिस (गृहे) गृहाश्रम में (दम्पती) स्त्रीपुरुष (वामम्) प्रशंसनीय गृहाश्रम के धर्म को (अश्नुतः) प्राप्त होते हैं उस में (आशीर्दा) कामना देने वाला (अरपः) निष्पाप धर्मात्मा (पुमान्) पुरुषार्थी (पुत्रः) वृद्धावस्था के दुःखों से रक्षा करने वाला पुत्र (जायते) उत्पन्न होता है और वह उत्तम (वसु) धन को (विन्दते) प्राप्त होता है (अध) इस के अनन्तर वह विद्या कुटुम्ब और धन के ऐश्वर्य से (एधते) बढ़ता है ॥ ५ ॥

भावार्थः—स्त्रीपुरुषों को चाहिये कि अच्छी प्रीति से परस्पर परीक्षापूर्वक स्वयंवर विवाह और सत्य आचरणों से संतानों को उत्पन्न कर बहुत ऐश्वर्य को प्राप्त होके नित्य उन्नति पावें ॥ ५ ॥

वाममद्येत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । गृहपतयो देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

फिर भी गृहस्थों को किस प्रकार प्रयत्न करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवे दिवे वाममस्मभ्यꣳ सावीः । वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (देव) सुख देने (सवितः) और समस्त ऐश्वर्य के उत्पन्न करने वाले मुख्यजन ! आप (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (अद्य) आज (वामम्) अति प्रशंसनीय सुख (उ) और आज ही क्या किन्तु (श्वः) अगले दिन (वामम्) उक्त सुख तथा (दिवे-दिवे) दिन-दिन (वामम्) उस सुख को (सावीः) उत्पन्न कीजिये जिससे हम लोग आप की कृपा से उत्पन्न हुई (अया) इस (धिया) श्रेष्ठ बुद्धि से (भूरेः) अनेक पदार्थों से युक्त (वामस्य) अत्यन्त सुन्दर (क्षयस्य) गृहाश्रम के बीच में (वामभाजः) प्रशंसनीय कर्म करने वाले (हि) ही (स्याम) होवें ॥ ६ ॥

भावार्थः—गृहस्थजनों को चाहिये कि ईश्वर के अनुग्रह से प्रशंसनीय बुद्धियुक्त मङ्गलकारी गृहाश्रमी होकर इस प्रकार का प्रयत्न करें कि जिस से तीनों अर्थात् भूत भविष्यत् और वर्तमान काल में अत्यन्त सुखी हों ॥ ६ ॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । सविता गृहपतिर्देवता । विराड् ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

फिर भी गृहाश्रम का धर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि चनोधाश्चनोधाऽअसि चनो मयि धेहि । जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिं भगाय देवाय त्वा सवित्रे ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे पुरुष ! तुझ से जैसे मैं नियम और उपनियमों से ग्रहण करी गई हूं वैसे मैंने आप को (उपयामगृहीतः) विवाह नियम से ग्रहण किया (असि) है जैसे आप (चनोधाः) (चनोधाः) अन्न २ के धारण करने वाले (असि) हैं और (सावित्रः) सविता समस्त संतानादि सुख उत्पन्न करने वाले आप को अपना इष्टदेव मानने वाले (असि) हैं वैसे मैं भी हूँ । जैसे आप (मयि) मेरे निमित्त (चनः) अन्न को (धेहि) धरिये, वैसे मैं भी आपके निमित्त धारण करूं जैसे आप (यज्ञम्) दृढ़ पुरुषों के सेवन योग्य धर्म व्यवहार को (जिन्व) प्राप्त हों वैसे मैं भी प्राप्त होऊं और जैसे (सवित्रे) सन्तानों की उत्पत्ति के हेतु (भगाय) धनादि सेवनीय (देवाय) दिव्य ऐश्वर्य के लिये (यज्ञपतिम्) गृहाश्रम को पालने हारे आप को मैं प्रसन्न रक्खूं वैसे आप भी (जिन्व) तृप्त कीजिये ॥ ७ ॥

२६

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विवाहित स्त्री पुरुषों को योग्य है कि लाभ के अनुकूल व्यवहार से परस्पर ऐश्वर्य पावें और प्रीति के साथ संतानोत्पत्ति का आचरण करें॥ ७॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। विश्वेदेवा गृहपतयो देवताः। आद्यस्य प्राजापत्या गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। सुशर्म्मेत्यस्य निचृदार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर भी गृहस्थ को सेवने योग्य धर्म्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उपयामगृहीतोऽसि सुशर्म्मासि सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षाय नमः। विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः॥ ८॥

पदार्थः—हे पते! जैसे मैंने आप को (उपयामगृहीतः) नियम उपनियमों से ग्रहण किया है (असि) है और (सुप्रतिष्ठानः) अच्छी प्रतिष्ठा और (सुशर्मा) अच्छे घर वाले (असि) हो उन (बृहदुक्षाय) अत्यन्त वीर्य देने वाले आप को (नमः) अच्छे प्रकार संस्कार किया हुआ चित्त को प्रसन्न करने वाला अन्न उचित समय पर देती हूं जिस आप का (एषः) यह (योनिः) सुखदायक महल है (त्वा) उस आप को (विश्वेभ्यः) सब (देवेभ्यः) दिव्य सुखों के लिये सेवन करती हूं और (त्वा) आप को (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये नियुक्त करती हूं वैसे आप मुझ को कीजिये॥ ८॥

भावार्थः—जिस गृहाश्रम भोगने की इच्छा रखने वाले पुरुष का सब ऋतुओं में सुख देने वाला घर हो और आप वीर्यवान् हो उसी को स्त्री पतिभाव से स्वीकार करे और उस के लिये यथोचित समय पर सुख देवे तथा आप उस पति से उचित समय में दिव्य सुख भोगें और वे स्त्री पुरुष दोनों विद्वानों का सत्संग किया करें॥ ८॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः। गृहपतयो विश्वेदेवा देवताः। आद्यस्य प्राजापत्यागायत्री, बृहस्पतिसुतस्येति मध्यमस्याष्र्युष्णिक्, अहमित्युत्तरस्य स्वराडार्षी पंक्तिश्च छन्दांसि। क्रमेणषड्जर्षभपञ्चमाः स्वराः॥

फिर गृहस्थ का धर्म्म अगले मन्त्र में कहा है॥

उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतिसुतस्य देवसोम तऽइन्दोरिन्द्रियावतः। पत्नीवतो ग्रहाँ२ऽऋद्ध्यासम्। अहं परस्तादहमवस्ताद्यदन्तरिक्षं तदु मे पिताभूत्। अहꣳसूर्य्यमुभयतो ददर्शाहं देवानां परमं गुहा यत्॥ ९॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्य्यसम्पन्न (देव) अति मनोहर पते! जिस आप को मैं कुमारी ने (उपयामगृहीतः) विवाह नियमों से स्वीकार किया (असि) है उन (इन्दोः) सोमगुणसम्पन्न (इन्द्रियावतः) बहुत धन वाले और (पत्नीवतः) यज्ञ-समय में प्रशंसनीय स्त्री ग्रहण करने वाले (बृहस्पतिसुतस्य) और बड़ी वेदवाणी के पालने वाले के पुत्र (ते) आप के गृह और सम्बन्धियों को प्राप्त होके मैं (परस्तात्) आगे और (अवस्तात्) पीछे के समय

में (ऋध्यासम्) सुखों से बढ़ती जाऊं (यत्) जिस (देवानाम्) विद्वानों की (गुहा) बुद्धि में स्थित (अंतरिक्षम्) सत्य विज्ञान को मैं (एमि) प्राप्त होती हूं उसी को तू भी प्राप्त हो और जो (मे) मेरा (पिता) पालन करने हारा (अभूत) हो (अहम्) मैं (उभयतः) उसके अगले पिछले उन शिक्षा-विषयों से जिस (सूर्य्यम्) चर अचर के आत्मा रूप परमेश्वर को (ददर्श) देखूं उसी को तू भी देख ॥ ९ ॥

भावार्थः—स्त्री और पुरुष विवाह से पहिले परस्पर एक दूसरे की परीक्षा कर के अपने समान गुण कर्म्म स्वभाव रूप बल आरोग्य पुरुषार्थ और विद्यायुक्त होकर स्वयंवर विधि से विवाह करके ऐसा यत्न करें कि जिससे धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि को प्राप्त हों जिसके माता और पिता विद्वान् न हों उनके संतान भी उत्तम नहीं हो सकते इससे अच्छी और पूर्ण विद्या को ग्रहण कर के ही गृहाश्रम के आचरण करें इस के पूर्व नहीं ॥ ९ ॥

अग्ना३इ पत्नीवन्नित्यस्य भरद्वाज ऋषिः । गृहपतयो देवताः । विराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

स्त्री अपने पुरुष की किस प्रकार से प्रशंसा और प्रार्थना करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्ना३इ पत्नीवन्त्सजूर्देवेन त्वष्ट्रा सोमं पिब स्वाहा । प्रजापतिर्वृषासि रेतोधा रेतो मयि धेहि प्रजापतेस्ते वृष्णो रेतोधसो रेतोधामशीय ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) समस्त सुख पहुंचाने वाले स्वामिन् ! (सजूः) समान प्रीति करने वाले आप मेरे (देवेन) दिव्य सुख देने वाले (त्वष्ट्रा) समस्त दुःख विनाश करने वाले गुण के साथ (स्वाहा) सत्यवाणीयुक्त क्रिया से (सोमम्) सोमवल्ली आदि ओषधियों के विशेष आसव को (पिब) पीओ । हे (पत्नीवन्) प्रशंसनीय यज्ञसंबधिनी स्त्री को ग्रहण करने (वृषा) वीर्य्य सींचने (रेतोधाः) वीर्य्य धारण करने (प्रजापतिः) और सन्तानादि के पालने वाले ! जो आप (असि) हैं वह (मयि) मुझ विवाहित स्त्री में (रेतः) वीर्य्य को (धेहि) धारण कीजिये । हे स्वामिन् ! मैं (वृष्णः) वीर्य्य सीचने (रेतोधसः) पराक्रम धारण करने (प्रजापतेः) सन्तान आदि की रक्षा करने वाले (ते) आपके संग से (रेतोधाम्) वीर्य्यवान् अति पराक्रमयुक्त पुत्र को (अशीय) प्राप्त होऊं ॥ १० ॥

भावार्थः—इस संसार में मनुष्यजन्म को पाकर स्त्री और पुरुष ब्रह्मचर्य्य उत्तम विद्या अच्छे गुण और पराक्रमयुक्त होकर विवाह करें । विवाह की मर्यादा ही से सन्तानों की उत्पत्ति और रतिक्रीड़ा से उत्पन्न हुए सुख को प्राप्त होकर नित्य आनन्द में रहें बिना विवाह के स्त्री पुरुष वा पुरुष स्त्री के समागम की इच्छा मन से भी न करें जिससे मनुष्यशक्ति की बढ़ती होवे इस से गृहाश्रम का आरम्भ स्त्री पुरुष करें ॥ १० ॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । गृहपतयो देवताः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर गृहस्थों का धर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

उपयामगृहीतोऽसि हरिरसि हारियोजनो हरिभ्यां त्वा । हर्य्योर्द्धाना स्थ सहसोमाऽइन्द्राय ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे पते ! आप (उपयामगृहीतः) गृहाश्रम के लिये ग्रहण किये हुए (असि) हैं (हारियोजनः) घोड़ों को जोड़ने वाले सारथि के समान (हरिः) यथायोग्य गृहाश्रम के व्यवहार को चलाने वाले (असि) हैं इस कारण (हरिभ्याम्) अच्छी शिक्षा को पाए हुए घोड़े से युक्त रथ में विराजमान (त्वा) आप की मैं सेवा करूं । तुम लोग गृहाश्रम करने वाले (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये (सहसोमाः) उत्तम गुणयुक्त होकर (हर्य्योः) वेगादि गुण वाले घोड़ों को (धानाः) स्थानादिकों में स्थापन करने वाले (स्थ) होओ ॥ ११ ॥

भावार्थः—ब्रह्मचर्य्य से शुद्ध शरीर सद्गुण सद्विद्या युक्त होकर विवाह की इच्छा करने वाले कन्या और पुरुष युवावस्था को पहुंच और परस्पर एक दूसरे के धन की उन्नति को अच्छे प्रकार देख कर विवाह करें नहीं तो धन के अभाव में दुःख की उन्नति होती है । इसलिये उक्त गुणों से विवाह कर आनन्दित हुए प्रतिदिन ऐश्वर्य की उन्नति करें ॥ ११ ॥

यस्त इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । गृहपतयो देवताः । आर्षीपंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब गृहस्थों की मित्रता अगले मन्त्र में कही है ॥

यस्तेऽअश्वसनिर्भक्षो यो गोसनिस्तस्य तऽइष्टयजुष स्तुतस्तोमस्य शस्तोक्थस्योपहूतस्योपहूतो भक्षयामि ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे प्रियवीर पुरुष मित्र ! जो आप (उपहूतः) मुझ से सत्कार को प्राप्त होकर (अश्वसनिः) अग्नि आदि पदार्थ वा घोड़ों और (गोसनिः) संस्कृत वाणी भूमि और विद्या प्रकाश आदि अच्छे पदार्थों के देने वाले (असि) हैं उन (शस्तोक्थस्य) प्रशंसित ऋग्वेद के सूक्तयुक्त (इष्टयजुषः) इष्ट सुखकार यजुर्वेद के भागयुक्त वा (स्तुतस्तोमस्य) सामवेद के गान के प्रशंसा करने हारे (ते) आप का (यः) जो (भक्षः) चाहना से भोजन करने योग्य पदार्थ है उस को आप से सत्कृत हुई मैं (भक्षयामि) भोजन करूं तथा हे प्रिय सखि ! जो तू अग्नि आदि पदार्थ वा घोड़ों के देने और संस्कृत वाणी भूमि विद्या प्रकाश आदि अच्छे २ पदार्थ देने वाली है उस प्रशंसनीय ऋक्सूक्त यजुर्वेद भाग से स्तुति किये हुए सामगान करने वाली तेरा जो यह भोजन करने योग्य पदार्थ है उस को अच्छे मान से बुलाया हुआ मैं भोजन करता हूं ॥ १२ ॥

भावार्थः—अच्छे उत्साह बढ़ाने वाले कामों में गृहाश्रम का आचरण करने वाली स्त्री अपनी सहेलियों वा पुरुष गृहाश्रमी पुरुष अपने इष्टमित्र और बन्धुजन आदि को बुला कर भोजन आदि पदार्थों से यथायोग्य सत्कार करके प्रसन्न करें और परस्पर भी सदा प्रसन्न रहें और उपदेश शास्त्रार्थ विद्या वाग्विलास को करें ॥ १२ ॥

देवकृतस्येत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । गृहपतयो विश्वेदेवा देवताः । मनुष्यकृतस्येत्यस्य साम्न्युष्णिक्, पितृकृतस्येत्यस्यात्मकृतस्येत्यस्य च निचृत्साम्न्युष्णिक्, एनस

इत्यस्य प्राजापत्योष्णिक्, यच्चाहमित्यस्य निचृदार्ष्युष्णिक् च छन्दांसि । ऋषभः स्वरः ॥

अगले मन्त्र में पूर्वोक्त विषय प्रकारान्तर से कहा है ॥

देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमस्यात्मकृतस्यैनसोऽवयजनमस्येनसऽएनसोऽवयजनमसि । यच्चाहमेनो विद्वाँश्चकार यच्चाविद्वाँस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे सब के उपकार करने वाले मित्र ! आप (देवकृतस्य) दान देने वाले के (एनसः) अपराध के (अवयजनम्) विनाश करने वाले (असि) हो (मनुष्यकृतस्य) साधारण मनुष्यों के किये हुए (एनसः) अपराध के (अवयजनम्) विनाश करने वाले (असि) हो (पितृकृतस्य) पिता के किये हुए (एनसः) विरोध आचरण के (अवयजनम्) अच्छे प्रकार हरने वाले (असि) हो (आत्मकृतस्य) अपने किये हुए (एनसः) पाप के (अवयजनम्) दूर करने वाले (असि) हो (एनसः) अधर्म्म अधर्म्म के (अवयजनम्) नाश करने हारे (असि) हो (विद्वान्) जानता हुआ मैं (यत्) जो (च) कुछ भी (एनः) अधर्म्माचरण (चकार) किया, करता हूं वा करूं (अविद्वान्) अनजान मैं (यत्) जो (च) कुछ भी किया करता हूं वा करूं (तस्य) उस (सर्वस्य) सब (एनसः) दुष्ट आचरण के (अवयजनम्) दूर करने वाले आप (असि) हैं ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार हैं । जैसे विद्वान् गृहस्थ पुरुष दान आदि अच्छे काम के करने वाले जनों के अपराध दूर करने में अच्छा प्रयत्न करें । जाने वा विना जाने अपने कर्त्तव्य अर्थात् जिस को किया चाहता हो उस अपराध को आप छोड़ें तथा औरों के किये हुए अपराध को औरों से छुड़ावें वैसे कर्म करके सब लोग यथोक्त समस्त सुखों को प्राप्त हों ॥ १३ ॥

सं वर्चसेत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । गृहपतयो देवताः । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी मित्रकृत्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन । त्वष्टा सुदत्रो वि दधातु रायोऽनु मार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे सब विद्याओं के पढ़ाने (त्वष्टा) सब व्यवहारों के विस्तारकारक (सुदत्रः) अत्युत्तम दान के देने वाले विद्वन् ! आप (संशिवेन) ठीक २ कल्याणकारक (मनसा) विज्ञानयुक्त अन्तःकरण (संवर्चसा) अच्छे अध्ययन अध्यापन के प्रकाश (पयसा) जल और अन्न से (यत्) जिस (तन्वः) शरीर की (विलिष्टम्) विशेष न्यूनता को (अनुमार्ष्टु) अनुकूल शुद्धि से पूर्ण और (रायः) उत्तम धनों को (विदधातु) विधान करो । उस देह और शरीरों को हम लोग (तनूभिः) ब्रह्मचर्य्य व्रतादि सुनियमों से बलयुक्त शरीरों से (समगन्महि) सम्यक् प्राप्त हों ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ से विद्या का संपादन, विधिपूर्वक अन्न और जल का सेवन, शरीरों को नीरोग और मन को धर्म में निवेश करके सदा सुख की उन्नति करें और जो कुछ न्यूनता हो उस को परिपूर्ण करें, तथा जैसे कोई मित्र तुम्हारे सुख के लिये वर्त्ताव वर्त्ते वैसे उसके सुख के लिये आप भी वर्त्तो ॥ १४ ॥

समिन्द्रेत्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतिर्देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर मित्र का कृत्य अगले मन्त्र में कहा है॥

समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सꣳ सूरिभिर्मघवन्त्सꣳ स्वस्त्या। सं ब्रह्मणा देवकृतं यदस्ति सन्देवानाꣳ सुमतौ यज्ञियानाꣳ स्वाहा॥ १५॥

पदार्थः—हे (मघवन्) पूज्य धनयुक्त (इन्द्र) सत्यविद्यादि ऐश्वर्य्य सहित (सम्) सम्यक् पढ़ाने और उपदेश करने हारे! आप जिस से (सम्) (मनसा) उत्तम अंतःकरण से (सम्) अच्छे मार्ग (गोभिः) गौओं वा (सम्) (स्वस्त्या) अच्छे २ वचनयुक्त सुखरूप व्यवहारों से (सूरिभिः) विद्वानों के साथ (ब्रह्मणा) वेद के विज्ञान वा धन से विद्या और (यत्) जो (यज्ञियानाम्) यज्ञ के पालन करने वाले को करने योग्य (देवानाम्) विद्वानों की (स्वाहा) सत्य वाणीयुक्त (सुमतौ) श्रेष्ठ बुद्धि में (देवकृतम्) विद्वानों के किये कर्म्म हैं उन को (स्वाहा) सत्य वाणी से (नः) हम लोगों को (सन्नेषि) सम्यक् प्रकार से प्राप्त करते हो, इसी से आप हमारे पूज्य हो॥ १५॥

भावार्थः—गृहस्थ जनों को विद्वान् लोग इसलिये सत्कार करने योग्य हैं कि वे बालकों को अपनी शिक्षा से गुणवान् और राजा तथा प्रजा के जनों को ऐश्वर्य्ययुक्त करते हैं॥ १५॥

संवर्चसा इत्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतिर्देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सं वर्च्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन। त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम्॥ १६॥

पदार्थः—हे आप्त अत्युत्तम विद्वानो! आप लोगों की सुमति में प्रवृत्त हुए हम लोग जो आप लोगों के मध्य (सुदत्रः) विद्या के दान से विज्ञान को देने और (त्वष्टा) अविद्यादि दोषों का नष्ट करने वाला विद्वान् हम को (संवर्च्चसा) उत्तम दिन और (पयसा) रात्रि से (संशिवेन) अति कल्याणकारक (मनसा) विज्ञान से (यत्) जिस (तन्वः) शरीर से हानिकारक कर्म्म को (अनुमार्ष्टु) दूर करे और (रायः) पुष्टिकारक द्रव्यों को (विदधातु) प्राप्त करावें उस और उन पदार्थों को (समगन्महि) प्राप्त हों॥ १६॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि दिन रात उत्तम सज्जनों के संग से धर्म्मार्थ काम और मोक्ष की सिद्धि करते रहें॥ १६॥

धाता रातिरित्यस्यात्रिर्ऋषिः। विश्वेदेवा गृहपतयो देवताः। स्वराडार्षी त्रिष्टुप्

छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर गृहस्थों के कर्म्म का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपा देवोऽअग्निः । त्वष्टा विष्णुः प्रजया सꣳ रराणा यजमानाय द्रविणं दधातु स्वाहा ॥ १७ ॥

पदार्थः——हे गृहस्थो ! तुम (धाता) गृहाश्रम धर्म्म धारण करने (रातिः) सब के लिये सुख देने (सविता) समस्त ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करने (प्रजापतिः) संतानादि के पालने (निधिपाः) विद्या आदि (ऋद्धि) अर्थात् धन समृद्धि के रक्षा करने (देवः) दोषों के जीतने (अग्निः) अविद्या रूप अंधकार के दाह करने (त्वष्टा) सुख के बढ़ाने और (विष्णुः) समस्त उत्तम-उत्तम शुभ गुण कर्म्मों में व्याप्त होने वालों के सदृश हो के (प्रजया) अपने संतानादि के साथ (संरराणाः) उत्तम दानशील होते हुए (स्वाहा) सत्य क्रिया से (इदम्) इस गृहकार्य्यं को (जुषन्ताम्) प्रीति के साथ सेवन करो और बलवान् गृहाश्रमी होकर (यजमानाय) यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले के लिये जिस बल से उत्तम २ बली पुरुष बढ़ते जायं उस (द्रविणम्) धन को (दधात) धारण करो ॥ १७ ॥

भावार्थः—गृहस्थों को उचित है कि यथायोग्य रीति से निरन्तर गृहाश्रम में रह के अच्छे गुण कर्मों का धारण ऐश्वर्य की उन्नति तथा रक्षा प्रजापालन योग्य पुरुषों को दान, दुःखियों का दुःख छुड़ाना, शत्रुओं को जीतने और शरीरात्मबल में प्रवृत्ति आदि गुण धारण करें ॥ १७ ॥

सुगा व इत्यस्यात्रिर्ऋषिः । गृहपतयो देवताः । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर गृहकर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सुगा वो देवाः सदनाऽअकर्म्म यऽआजग्मेदꣳ सवनं जुषाणाः । भरमाणा वहमाना हवीꣳष्यस्मे धत्त वसवो वसूनि स्वाहा ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे (वसवः) श्रेष्ठ गुणों में रमण करने वाले (देवाः) व्यवहारी जनो ! (ये) जो (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (इदम्) इस (सवनम्) ऐश्वर्य का (जुषाणाः) सेवन (भरमाणाः) धारण करने (वहमानाः) औरों से प्राप्त होते हुए हम लोग तुम्हारे लिये (सुगा) अच्छी प्रकार प्राप्त होने योग्य (सदना) जिनं के निमित्त पुरुषार्थ किया जाता हैं उन (हवींषि) देने लेने योग्य (वसूनि) धनों को (अकर्म) प्रकट कर रहे और (आजग्म) प्राप्त हुए हैं (अस्मे) हमारे लिये उन (वसूनि) धनों को आप (धत्त) धरो ॥ १८ ॥

भावार्थः—जैसे पिता पति श्वशुर सासू मित्र और स्वामी पुत्र कन्या स्त्री स्नुषा सखा और भृत्यों का पालन करते हुए सुख देते हैं वैसे पुत्रादि भी इन की सेवा करना उचित समझें ॥ १८ ॥

याँ२ऽआवह इत्यस्यात्रिर्ऋषिः । विश्वेदेवा गृहपतयो देवताः । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी घर का काम अगले मन्त्र में कहा है ॥

याँ२ऽआवह॑ऽउश॒तो दे॑व दे॒वाँस्तान् प्रेर॑य॒ स्वेऽअ॑ग्ने स॒धस्थे॑। ज॒क्षि॒वाᳬंस॑ः पपि॒वाᳬंस॑श्च॒ विश्वे॒ऽसुं घ॒र्म्मᳬं स्व॒राति॑ष्ठ॒तानु॒ स्वाहा॑ ॥ १६ ॥

पदार्थः— हे (देव) दिव्य स्वभाव वाले अध्यापक ! तू (स्वे) अपने (सधस्थे) साथ बैठने के स्थान में (यान्) जिन (उशतः) विद्या आदि अच्छे २ गुणों की कामना करते हुए (देवान्) विद्वानों को (आ) (अवहः) प्राप्त हो (तान्) उन को धर्म्म में (प्र) (ईरय) नियुक्त कर। हे गृहस्थ ! (जक्षिवांसः) अन्न खाते और (पपिवांसः) पानी पीते हुए (विश्वे) सब तुम लोग (स्वाहा) सत्य वाणी से (घर्मम्) अन्न और यज्ञ तथा (असुम्) श्रेष्ठ बुद्धि वा (स्वः) अत्यन्त सुख को (अनु) (आ) (तिष्ठत) प्राप्त होकर सुखी रहो ॥ १६ ॥

भावार्थः—इस संसार में उपदेश करने वाले अध्यापक से विद्या और श्रेष्ठगुण को प्राप्त जो बालक सत्य धर्म्म कर्म्म वर्त्तने वाले हों वे सुखभागी हों और नहीं ॥ १६ ॥

वयमित्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतयो देवताः। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब व्यवहार करने वाले गृहस्थ के लिये उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

व॒यᳬं हि त्वा॑ प्रय॒ति य॒ज्ञेऽअ॒स्मिन्नग्ने॒ होता॑रमवृ॑णीमही॒ह। ऋध॑गया॒ऽऋध॑गु॒ताश॑मिष्ठाः प्रजा॒नन् य॒ज्ञमुप॑याहि वि॒द्वान्त्स्वाहा॑ ॥ २० ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) ज्ञान देने वाले (वयम्) हम लोग (इह) (प्रयति) इस प्रयत्नसाध्य (यज्ञे) गृहाश्रमरूप यज्ञ में (त्वा) तुझ को (होतारम्) सिद्ध करने वाला (अवृणीमहि) ग्रहण करें (विद्वान्) सब विद्यायुक्त (प्रजानन्) क्रियाओं के जानने वाले आप (ऋधक्) समृद्धिकारक (यज्ञम्) गृहाश्रमरूप यज्ञ को (स्वाहा) शास्त्रोक्त क्रिया से (उप) (याहि) समीप प्राप्त हो (उत) और केवल प्राप्त ही नहीं किन्तु (अयाः) उस से दान सत्संग श्रेष्ठ गुण वालों का सेवन कर (हि) निश्चय करके (अस्मिन्) इस (ऋधक्) अच्छी ऋद्धि सिद्धि के बढ़ाने वाले गृहाश्रम के निमित्त में (अशमिष्ठाः) शांत्यादि गुणों को ग्रहण करके सुखी हो ॥ २० ॥

भावार्थः—सब व्यवहार करने वालों को चाहिये कि जो मनुष्य जिस काम में चतुर हो उस को उसी काम में प्रवृत्त करें ॥ २० ॥

देवा गातुविदित्यस्यात्रिर्ऋषिः। गृहपतयो देवताः। स्वराडार्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर भी गृहस्थों का कर्म अगले मन्त्र में कहा है॥

देवा॑ गातुविदो गा॒तुं वि॒त्त्वा गा॒तुमि॑त। मन॑सस्पतऽइ॒मं दे॑व य॒ज्ञᳬं स्वाहा॒ वाते॑ धाः ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे (गातुविदः) अपने गुण कर्म और स्वभाव से पृथिवी के आने जाने को जानने (देवाः) तथा सत्य और असत्य के अत्यन्त प्रशंसा के साथ प्रचार करने वाले विद्वान्

लोगो ! तुम (गातुम्) भूगर्भविद्यायुक्त भूगोल को (वित्त्वा) जान कर (गातुम्) पृथिवी राज्य आदि उत्तम कामों के उपकार को (इत) प्राप्त हूजिये। हे (मनसस्पते) इन्द्रियों के रोकने हारे (देव) श्रेष्ठ विद्याबोधसम्पन्न विद्वानो ! तुम में से प्रत्येक विद्वान् गृहस्थ (स्वाहा) धर्म बढ़ाने वाली क्रिया से (इमम्) इस गृहाश्रम रूप (यज्ञम्) सब सुख पहुंचाने वाले यज्ञ को (वाते) विशेष जानने योग्य व्यवहारों में (धाः) धारण करो ॥ २१ ॥

भावार्थः—गृहस्थों को चाहिये कि अत्यन्त प्रयत्न के साथ भूगर्भ-विद्याओं को जान इन्द्रियों को जीत परोपकारी होकर और उत्तम धर्म्म से गृहाश्रम के व्यवहारों को उन्नति देकर सब प्राणीमात्र को सुखी करें ॥ २१ ॥

यज्ञ यज्ञमित्यस्यात्रिर्ऋषिः । गृहपतयो देवताः । भुरिक् साम्न्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । एष इत्यस्य विराडार्ची बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर गृहस्थों के लिये विशेष उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

यज्ञ॑ य॒ज्ञं ग॑च्छ य॒ज्ञप॑तिं गच्छ॒ स्वां योनिं॒ गच्छ॒ स्वाहा॑ । ए॒ष ते॑ य॒ज्ञो य॑ज्ञपते स॒हसू॑क्तवाकः॒ सर्व॑वीर॒स्तं जु॑षस्व॒ स्वाहा॑ ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (यज्ञ) सत्कर्म्मों से संगत होने वाले गृहाश्रमी ! तू (स्वाहा) सत्य २ क्रिया से (यज्ञम्) विद्वानों के सत्कारपूर्वक गृहाश्रम को (गच्छ) प्राप्त हो (यज्ञपतिम्) संग करने योग्य गृहाश्रम के पालने वाले को (गच्छ) प्राप्त हो (स्वाम्) अपने (योनिम्) घर और स्वभाव को (गच्छ) प्राप्त हो (यज्ञपते) गृहाश्रम धर्म्मपालक तू (ते) तेरा जो (एषः) यह (सहसूक्तवाकः) ऋग् यजुः साम और अथर्व वेद के सूक्त और अनुवाकों से कथित (सर्ववीरः) जिस से आत्मा और शरीर के पूर्णबलयुक्त समस्त वीर प्राप्त होते हैं (यज्ञः) प्रशंसनीय प्रजा की रक्षा के निमित्त विद्याप्रचाररूप यज्ञ है (तम्) उसका तू (स्वाहा) सत्यविद्या न्याय प्रकाश करने वाली वेदवाणी से (जुषस्व) प्रीति से सेवन कर ॥ २२ ॥

भावार्थः—प्रजाजन गृहस्थ पुरुष बड़े-बड़े यत्नों से घर के कार्यों को उत्तम रीति से करें। राजभक्ति राजसहायता और उत्तम धर्म्म से गृहाश्रम को सब प्रकार से पालें और राजा भी श्रेष्ठ विद्या के प्रचार से सब को संतुष्ट करे ॥ २२ ॥

माहिर्भूरित्यस्यात्रिर्ऋषिः । गृहपतयो देवताः । आद्यस्य याजुष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । उरुमित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । नम इत्यस्यासुरी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में राजा के लिये उपदेश किया है ॥

माहिर्भू॒र्मा पृदा॑कुः । उ॒रु१ हि राजा॒ वरु॑णश्च॒कार॒ सूर्या॑य॒ पन्था॒मन्वे॑तवा॒ऽउ॑ । अ॒पदे॒ पादा॒ प्रति॑धातवेऽकरुता॒प॑व॒क्ता हृ॑द॒याविध॑श्चित् । नमो॒ वरु॑णाया॒भिष्ठि॑तो॒ वरु॑णस्य॒ पाशः॑ ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे राजन् सभापते ! तू (वरुणस्य) उत्तम ऐश्वर्य्य के वास्ते (उरुम्) बहुत गुणों से युक्त न्याय को (अकः) कर (सूर्य्याय) चराचर के आत्मा जगदीश्वर के विज्ञान होने (सूर्य्याय) और प्रजागणों को यथायोग्य धर्म्म प्रकाश में चलने के लिये (पंथाम्) न्यायमार्ग को (चकार) प्रकाशित कर (उत) और कभी (अपवक्ता) झूंठ बोलने वाला (हृदयाविधः) धर्मात्माओं के मन को संताप देने वाले के (चित्) सदृश (पृदाकुः) खोटे वचन कहने वाला (मा) मत हो और (अहिः) सर्प्प के समान क्रोधरूपी विष का धारण करने वाला (मा) मत (भूः) हो और जैसे (वरुणस्य) वीर गुण वाले तेरा (अभिष्ठितः) अति प्रकाशित (नमः) वज्ररूप दण्ड और (पाशः) बन्धन करने की सामग्री प्रकाशमान रहे वैसे प्रयत्न को सदा किया कर ॥ २३ ॥

भावार्थः—प्रजाजनों को चाहिये कि जो विद्वान् इन्द्रियों का जीतने वाला धर्मात्मा और पिता जैसे अपने पुत्रों को वैसे प्रजा की पालना करने में अति चित्त लगावे और सब के लिये सुख करने वाला सत्पुरुष हो उसी को सभापति करें और राजा वा प्रजाजन कभी अधर्म के कामों को न करें, जो किसी प्रकार कोई करे तो अपराध के अनुकूल प्रजा राजा को और राजा प्रजा को दंड देवे किन्तु कभी अपराधी को दण्ड दिये बिना न छोड़े और निरपराधी को निष्प्रयोजन पीड़ा न देवे। इस प्रकार सब कोई न्यायमार्ग से धर्माचरण करते हुए अपने २ प्रत्येक कामों के चिंतवन में रहें जिस से अधिक मित्र, थोड़े प्रीति रखने वाले और शत्रु न हों और विद्या तथा धर्म के मार्गों का प्रचार करते हुए सब लोग ईश्वर की भक्ति में परायण हो के सदा सुखी रहें ॥ २३ ॥

अग्नेरनीकमित्यस्यात्रिर्ऋषिः । गृहपतिर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ राजा और प्रजाजन गृहस्थों के लिये उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अ॒ग्नेरनी॑कम॒पऽआवि॑वेशा॒पान्नपा॑त् प्रति॒रक्ष॑न्नसु॒र्य्य॑म् । दमे॑दमे स॒मिधं॑ यक्ष्यग्ने॒ प्रति॑ ते जि॒ह्वा घृ॒तमुच्च॑रण्य॒त् स्वाहा॑ ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे गृहस्थ ! तू (अग्नेः) अग्नि की (अनीकम्) लपटरूपी सेना के प्रभाव और (अपः) जलों को (आ) (विवेश) अच्छी प्रकार समझ (अपाम्) उत्तम व्यवहार सिद्धि कराने वाले गुणों को जान कर (नपात्) अविनाशीस्वरूप ! तू (असुर्यम्) मेघ और प्राण आदि अचेतन पदार्थों से उत्पन्न हुए सुवर्ण आदि धन को (प्रतिरक्षन्) प्रत्यक्ष रक्षा करता हुआ (दमेदमे) घर २ में (समिधम्) जिस क्रिया से ठीक २ प्रयोजन निकले उस को (यक्षि) प्रचार कर और (ते) तेरी (जिह्वा) जीभ (घृतम्) घी का स्वाद लेवे (स्वाहा) सत्यव्यवहार से (उत) (चरण्यत्) देह आदि साधनसमूह सब काम किया करे ॥ २४ ॥

भावार्थः—अग्नि और जल संसार के सब व्यवहारों के कारण हैं, इस से गृहस्थजन विशेष कर अग्नि और जल के गुणों को जानें और गृहस्थ के सब काम सत्य व्यवहार से करें ॥ २४ ॥

समुद्रे त इत्यस्यात्रिर्ऋषिः । गृहपतिर्देवता । भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर गृहस्थों के लिये उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः । यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमोवाके विधेम यत् स्वाहा ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे (यज्ञपते) जैसे गृहाश्रम धर्म्म के पालने हारे ! हम लोग (स्वाहा) प्रेमास्पदवाणी से (यज्ञस्य) गृहाश्रमानुकूल व्यवहार के (सूक्तोक्तौ) उस प्रबन्ध कि जिस में वेद के वचनों के प्रमाण से अच्छी २ बातें हैं और (नमोवाके) वेद प्रमाणसिद्ध अन्न और सत्कारादि पदार्थों के वादानुवाद रूप (समुद्रे) आर्द्र व्यवहार और (अप्सु) सब प्रमाणों में (ते) तेरे (यत्) जिस (हृदयम्) हृदय को संतुष्टि में (विधेम) नियत करें वैसे उस से जानी हुई (ओषधीः) यव गेहूं चना सोमलतादि सुख देने वाले पदार्थ (आ) (विशंतु) प्राप्त हों (उत) और न केवल ये ही किन्तु (आपः) अच्छे जल भी तुझ को सुख करने वाले हों ॥ २५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। पढ़ाने और उपदेश करने वाले सज्जन पुरुष गृहस्थों को सत्यविद्या को ग्रहण कराकर अच्छे यत्नों से सिद्ध होने योग्य घर के कामों में सब को युक्त करें जिस से गृहाश्रम चाहने और करने वाले पुरुष शरीर और अपने आत्मा का बल बढ़ावें ॥ २५ ॥

देवीराप इत्यस्यात्रिर्ऋषिः । गृहपतयो देवताः । स्वराडार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब विवाहित स्त्रियों को करने योग्य उपदेश अगले मन्त्र में किया जाता है ॥

देवीरापऽएष वो गर्भस्तꣳ सुप्रीतꣳ सुभृतं बिभृत । देव सोमैष ते लोकस्तस्मिञ्छञ्च वक्ष्व परि च वक्ष्व ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (आपः) समस्त शुभ गुण कर्म्म और विद्याओं में व्याप्त होने वाली (देवीः) अति शोभायुक्त स्त्रीजनो ! तुम सब (यः) जो (एषः) यह (वः) तुम्हारा (गर्भः) गर्भ (लोकः) पुत्र पति आदि के साथ सुखदायक है (तम्) उसको (सुप्रीतम्) श्रेष्ठ प्रीति के साथ (सुभृतम्) जैसे उत्तम रक्षा से धारण किया जाय वैसे (बिभृत) धारण और उस की रक्षा करो। हे (देव) दिव्य गुणों से मनोहर (सोम) ऐश्वर्य्ययुक्त ! तू जो (एषः) यह (ते) तुम्हारा (लोकः) देखने योग्य पुत्र स्त्री भृत्यादि सुखकारक गृहाश्रम है (तस्मिन्) इस के निमित्त (शम्) सुख (च) और शिक्षा (वक्ष्व) पहुंचा (च) तथा इसकी रक्षा (परिवक्ष्व) सब प्रकार कर ॥ २६ ॥

भावार्थः—पढ़ी हुई स्त्री यथोक्त विवाह की विधि से विद्वान् पति को प्राप्त होकर उस को आनन्दित कर परस्पर प्रसन्नता के अनुकूल गर्भ को धारण करे। वह पति भी स्त्री की रक्षा और उसकी प्रसन्नता करने को नित्य उत्साही हो ॥ २६ ॥

अवभृथेत्यस्यात्रिर्ऋषिः । दम्पती देवते । भुरिक् प्राजापत्यानुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । अवदेवैरित्यस्य स्वराडार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर गृहस्थ धर्म्म में स्त्री का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः । अव देवैर्देवकृतमेनोऽयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि । देवानांᳪ समिदसि ॥२७॥

पदार्थः—हे (अवभृथ) गर्भ के धारण करने के पश्चात् उसकी रक्षा करने (निचुम्पुण) और मन्द २ चलने वाले पति ! आप (निचुम्पुणः) नित्य मन हरने और (निचेरुः) धर्म्म के साथ नित्य द्रव्य का संचय करने वाले (असि) हैं तथा (देवानाम्) विद्वानों के बीच में (समित्) अच्छे प्रकार तेजस्वी (असि) हैं । हे (देव) सब से अपनी जय चाहने वाले ! (देवैः) विद्वान् और (मर्त्यैः) साधारण मनुष्यों के साथ वर्त्तमान आप, जो मैं (देवकृतम्) कामी पुरुषों वा (मर्त्यकृतम्) साधारण मनुष्यों के किये हुए (एनः) अपराध को (अयासिषम्) प्राप्त होना चाहूं उस (पुरुराव्णः) बहुत से अपराध करने वालों के (रिषः) धर्म्म छुड़ाने वाले काम से मुझे (पाहि) दूर रख ॥ २७ ॥

भावार्थः—स्त्री अपने पति की नित्य प्रार्थना करे कि जैसे मैं सेवा के योग्य आनन्दित चित्त आप को प्रतिदिन चाहती हूं वैसे आप भी मुझे चाहो और अपने पुरुषार्थ भर मेरी रक्षा करो जिस से मैं दुष्टाचरण करने वाले मनुष्य के किये हुए अपराध की भागिनी किसी प्रकार न होऊं ॥ २७ ॥

एजत्वित्यस्यात्रिर्ऋषिः । दम्पती देवते । एवायमित्यस्यापि साम्न्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । यथायमित्यस्य प्राजापत्यानुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब गृहस्थ धर्म्म में गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है ॥

एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह । यथायं वायुरेजति यथा समुद्रऽएजति । एवायं दशमास्योऽअस्रज्जरायुणा सह ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुष ! जैसे (वायुः) पवन (एजति) कम्पता है वा जैसे (समुद्रः) समुद्र (एजति) अपनी लहरी से उछलता है वैसे तुम्हारा (अयम्) यह (दशमास्यः) पूर्ण दश महीने का गर्भ (एजतु) क्रम २ से बढ़े और ऐसे बढ़ता हुआ (अयम्) यह (दशमास्यः) दश महीने में परिपूर्ण होकर ही (अस्रत्) उत्पन्न होवे ॥ २८ ॥

भावार्थः—ब्रह्मचर्यधर्म्म से शरीर की पुष्टि, मन की संतुष्टि और विद्या की वृद्धि को प्राप्त होकर और विवाह किये हुए जो स्त्री पुरुष हों वे यत्न के साथ गर्भ को रक्खें कि जिस से वह दश महीने के पहिले गिर न जाय क्योंकि जो गर्भ दश महीने से अधिक. दिनों का होता है वह प्रायः बल और बुद्धि वाला होता है और जो इस से पहिले होता है वह वैसा नहीं होता ॥ २८ ॥

यस्या इत्यस्यात्रिर्ऋषिः । दम्पती देवते । भुरिगार्च्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ धर्म्म में गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है ॥

यस्य ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्ययी । अङ्गान्यह्रुता यस्य तं मात्रा समजीगमꣳ स्वाहा ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे विवाहित सौभाग्यवती स्त्री ! मैं तेरा स्वामी (यस्यै) जिस (ते) तेरी (हिरण्ययी) रोगरहित शुद्ध गर्भाशय है और (यस्यै) जिस तेरा (यज्ञियः) यज्ञ के योग्य (गर्भः) गर्भ है (यस्य) जिस गर्भ के (अह्रुता) सुन्दर सीधे (अङ्गानि) अङ्ग हैं (तम्) उस को (मात्रा) गर्भ की कामना करने वाली तेरे साथ समागम करके (स्वाहा) धर्म्मयुक्त क्रिया से (सम्) (अजीगमम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊं ॥ २९ ॥

भावार्थः—पुरुष को चाहिये कि गृहाश्रम के बीच इन्द्रियों का जीतना वीर्य्य की बढ़ती शुद्धि से उस की उन्नति करें, स्त्री भी ऐसा ही करे और पुरुष से गर्भ को प्राप्त होके उस की स्थिति और योनि आदि की आरोग्यता तथा रक्षा करे और जो स्त्री पुरुष परस्पर आनन्द से सन्तान को उत्पन्न करें तो प्रशंसनीय रूप, गुण, कर्म, स्वभाव और बल वाले सन्तान उत्पन्न हों ऐसा सब लोग निश्चित जानें ॥ २९ ॥

पुरुदस्म इत्यस्यात्रिर्ऋषिः । दम्पती देवते । आर्षी जगती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी गर्भ की व्यवस्था अगले मन्त्र में कही है ॥

पुरुदस्मो विषुरूपऽइन्दुरन्तर्महिमानमानञ्ज धीरः । एकपदीं द्विपदीं त्रिपदीं चतुष्पदीमष्टापदीं भुवनानु प्रथन्ताꣳ स्वाहा ॥ ३० ॥

पदार्थः—(पुरुदस्मः) जिस के गुणों से बहुत दुःखों का नाश होता है (विषुरूपः) जिस ने जन्मक्रम से अनेक रूप रूपान्तर विद्या-विषयों में प्रवेश किया है (इन्दुः) जो परमैश्वर्य्य को सिद्ध करने वाला (धीरः) समस्त व्यवहारों में ध्यान देने हारा पुरुष है वह गृहस्थ-धर्म्म से विवाही हुई अपनी स्त्री के (अन्तः) भीतर (महिमानम्) प्रशंसनीय ब्रह्मचर्य्य और जितेन्द्रियता आदि शुभ कर्मों से संस्कार प्राप्त होने योग्य गर्भ को (आनञ्ज) कामना करै, गृहस्थ लोग ऐसे सृष्टि की उत्पत्ति का विधान करके जिस (एकपदीम्) जिस में एक यह ओम् पद (द्विपदीम्) जिस में दो अर्थात् संसारसुख और मोक्षसुख (त्रिपदीम्) जिस से वाणी मन और शरीर तीनों के आनन्द (चतुष्पदीम्) जिस से चारों धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष (अष्टापदीम्) और जिस से आठों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण तथा ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चारों आश्रम प्राप्त होते हैं उस (स्वाहा) समस्त विद्यायुक्त वाणी को जान कर सब गृहस्थ जन (भुवना) जिन में प्राणीमात्र निवास किया करते हैं उन घरों की (प्रथन्ताम्) प्रशंसा करें और उस से सब मनुष्यों को (अनु) अनुकूलता से बढ़ावें ॥ ३० ॥

भावार्थ—विवाह किये हुए स्त्री पुरुषों को चाहिये कि गृहाश्रम की विद्या को सब प्रकार जानकर उसके अनुसार संतानों को उत्पन्न कर मनुष्यों को बढ़ा और उन को ब्रह्मचर्य्य

नियम से समस्त अङ्ग उपांगसहित विद्या का ग्रहण करा के उत्तम २ सुखों को प्राप्त होके आनन्दित करें ॥ ३० ॥

मरुतो यस्येत्यस्य गोतम ऋषिः। दम्पती देवते। आर्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

अगले मन्त्र में भी गृहस्थधर्म्म का विषय कहा है ॥

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः। स सुगोपातमो जनः। ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे (विमहसः) विविध प्रकार से प्रशंसा करने योग्य (मरुतः) विद्वान् गृहस्थ लोगो! तुम (यस्य) जिस गृहस्थ के (क्षये) घर में सुवर्ण उत्तम रूप (दिवः) दिव्य गुण स्वभाव वा प्रत्येक कामों के करने की रीति को (पाथ) प्राप्त हों (सः) (हि) वह (सुगोपातमः) अच्छे प्रकार वाणी और पृथिवी की पालना करने वाला (जनः) मनुष्य सेवा के योग्य है ॥ ३१ ॥

भावार्थः—इस बात का निश्चय है कि ब्रह्मचर्य्य उत्तम शिक्षा विद्या शरीर और आत्मा का बल आरोग्य पुरुषार्थ ऐश्वर्य सज्जनों का संग आलस्य का त्याग यम नियम और उत्तम सहाय के विना किसी मनुष्य से गृहाश्रम धारा जा नहीं सकता [इसके विना धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि नहीं हो सकती इसलिये इस का पालन सब को बड़े यत्न से करना चाहिये] ॥ ३१ ॥

मही द्यौरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। दम्पती देवते। आर्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर गृहस्थों के कर्मों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मही द्यौः पृथिवी च नऽइमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुष! तुम दोनों (मही) अति प्रशंसनीय (द्यौः) दिव्य पुरुष की आकृतियुक्त पति और अति प्रशंसनीय (पृथिवी) बढ़े हुए शील और क्षमा धारण करने आदि की सामर्थ्य वाली तू (भरीमभिः) धीरता और सब को संतुष्ट करने वाले गुणों से युक्त व्यवहारों वा पदार्थों से (नः) हमारा (च) औरों का भी (इमम्) इस (यज्ञम्) विद्वानों के प्रशंसा करने योग्य गृहाश्रम को (मिमिक्षताम्) सुखों से अभिषिक्त और (पिपृताम्) परिपूर्ण करना चाहो ॥ ३२ ॥

भावार्थः—जैसे सूर्यलोक जलादि पदार्थों को खींच और वर्षा कर रक्षा और पृथिवी आदि पदार्थों का प्रकाश करता है वैसे यह पति श्रेष्ठ गुण और पदार्थों का संग्रह करके देने से रक्षा और विद्या आदि गुणों को प्रकाशित करता है तथा जिस प्रकार यह पृथिवी सब प्राणियों को धारण कर उन की रक्षा करती है वैसे स्त्री गर्भ आदि व्यवहारों को धारण कर सब की पालना करती है। इस प्रकार स्त्री और पुरुष इकट्ठे होकर स्वार्थ को सिद्ध कर मन वचन और कर्म से सब प्राणियों को भी सुख देवें ॥ ३२ ॥

अतिष्ठेत्यस्य गोतम ऋषिः । गृहपतयो देवताः । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । उपयामेत्यस्य आर्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब प्रकारान्तर से गृहस्थ का धर्म्म अगले मन्त्र में कहा है ।

आतिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी । अर्वाचीनꣳ सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा षोडशिनऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे (वृत्रहन्) शत्रुओं मारने वाले गृहाश्रमी ! तू (ग्रावा) मेघ के तुल्य सुख बरसाने वाला है (ते) तेरे जिस रमणीय विद्या प्रकाशमय गृहाश्रम वा रथ में (ब्रह्मणा) जल वा धन से (हरी) धारण और आकर्षण अर्थात् खींचने के समान घोड़े (युक्ता) युक्त किये जाते हैं उस गृहाश्रम करने की (आतिष्ठ) प्रतिज्ञा कर इस गृहाश्रम में (ते) तेरा जो (मनः) मन (अर्वाचीनम्) मन्दपन को पहुंचाता है उस को (वग्नुना) वेदवाणी से शान्त कर जिस से तू (उपयामगृहीतः) गृहाश्रम करने की सामग्री ग्रहण किये हुए (असि) है इस कारण (षोडशिने) सोलह कलाओं से परिपूर्ण (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य देने वाले गृहाश्रम करने के लिये (त्वा) तुझ को उपदेश करता हूं । (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य के लिये (त्वा) तुझ को उपदेश करता हूँ, कि जो (एषः) यह (ते) तेरा (योनिः) घर है इस (षोडशिने) सोलह कलाओं से परिपूर्ण (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य देने वाले गृहाश्रम करने के लिये (त्वा) तुझ को आज्ञा देता हूँ ॥ ३३ ॥

भावार्थः—गृहाश्रम के आधीन सब आश्रम हैं और वेदोक्त श्रेष्ठ व्यवहार से जिस गृहाश्रम की सेवा की जाय उस से इस लोक और परलोक का सुख होने से परमैश्वर्य्य पाने के लिये गृहाश्रम ही सेवना उचित है ॥ ३३ ॥

युक्ष्वा हीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । गृहपतिर्देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । उपयामेत्यस्य पूर्ववच्छन्दः स्वरश्च ॥

अथ राजविषये प्रतिपादितप्रकारेण गृहस्थधर्म्ममाह ॥

अब राजविषय में उक्त प्रकार से गृहाश्रम का धर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा । अथा नऽइन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिनऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे (सोमपाः) ऐश्वर्य्य की रक्षा करने और (इन्द्र) शत्रुओं का विनाश करने वाले ! तुम (केशिना) जिन के अच्छे २ बाल हैं उन (वृषणा) बैल के समान बलवान् (कक्ष्यप्रा) अभीष्ट देश तक पहुंचाने वाले (हरी) यान के चलाने हारे घोड़ों को (रथे) रथ में (युक्ष्व) जोड़ो (अथ) इस के अनन्तर (नः) हम लोगों की (गिराम्) विनयपत्रों को (उपश्रुतिम्) प्रार्थना को (हि) चित्त देकर (चर) जानो । आप (उपयामगृहीतः) गृहाश्रम की सामग्री को ग्रहण किये हुए (असि) हैं इस कारण

(षोडशिने) सोलह कलाओं से परिपूर्ण (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य के लिये (त्वा) तुझ को उपदेश करता हूं कि जो (एषः) यह (ते) तेरा (योनिः) घर है इस (षोडशिने) सोलह कलाओं से परिपूर्ण (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य देने वाले गृहाश्रम के लिये (त्वा) तुझे आज्ञा देता हूं ॥ ३४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से "रथं" यह पद अर्थ से आता है। प्रजा, सेना और सभा के मनुष्य सभाध्यक्ष से ऐसे कहें कि आपको शत्रुओं के विनाश और राज्य भर में न्याय रहने के लिये घोड़े आदि सेना के अङ्गों को अच्छी शिक्षा देकर आनन्दित और बल वाले रखने चाहिये फिर हम लोगों के विनयपत्रों को सुनकर राज्य और ऐश्वर्य की भी रक्षा करनी चाहिये ॥ ३४ ॥

इन्द्रमिदित्यस्य गोतम ऋषिः। गृहपतिर्देवता। विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। उपयामेत्यस्य सर्वं पूर्ववत् ॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम्। ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम्। उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा षोडशिनऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे (सोमपाः) ऐश्वर्य्य की रक्षा और (इन्द्र) शत्रुओं का विनाश करने वाले सभाध्यक्ष ! आप जो (हरी) हरणकारक बल और आकर्षणरूप घोड़ों से (अप्रतिधृष्टशवमम्) जिस ने अपना अच्छा बल बढ़ा रक्खा है उस (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्यं बढ़ाने और सेना रखने वाले सेना समूह को (वहतः) बहाते हैं उन से युक्त होकर (ऋषीणाम्) वेदमन्त्र जानने वाले विद्वानों और (च) वीरों के (स्तुतीः) गुणों के ज्ञान और (मानुषाणाम्) साधारण मनुष्यों के (यज्ञम्) सङ्गम करने योग्य व्यवहार और (च) उन की पालना करो और (उप) समीप प्राप्त हो जिस (ते) तेरा (एषः) यह (योनिः) निमित्त राज्यधर्म्म है जो तू (उपयामगृहीतः) सब सामग्री से संयुक्त है उस (त्वा) तुझ को (षोडशिने) षोडश कलायुक्त (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य्य के लिये प्रजा सेनाजन आश्रय लेवें और हम भी लेवें ॥ ३५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से (इन्द्र) (सोमपाः) (चर) इन तीन पदों की योजना होती है। राजा राज्यकर्म्म में विचार करने वाले जन और प्रजाजनों को यह योग्य है कि प्रशंसा करने योग्य विद्वानों से विद्या और उपदेश पाकर औरों का उपकार सदा किया करें ॥ ३५ ॥

यस्मान्नेत्यस्य विवस्वान् ऋषिः। परमेश्वरो देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब गृहाश्रम की इच्छा करने वालों को ईश्वर ही की उपासना करनी चाहिये यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

यस्मान्न जातः परोऽअन्योऽस्ति यऽआविवेश भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(यस्मात्) जिस परमेश्वर से (परः) उत्तम (अन्यः) और दूसरा (न) नहीं (जातः) हुआ और (यः) जो परमात्मा (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोकों को (आविवेश) व्याप्त हो रहा है (सः) वह (प्रजया) सब संसार से (संरराणः) उत्तम दाता होता हुआ (षोडशी) इच्छा प्राण श्रद्धा पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश दशों इन्द्रिय मन अन्न वीर्य्य तप मन्त्र लोक और नाम इन सोलह कलाओं के स्वामी (प्रजापतिः) संसार मात्र के स्वामी परमेश्वर (त्रीणि) तीन (ज्योतिंषि) ज्योति अर्थात् सूर्य्य बिजुली और अग्नि को (सचते) सब पदार्थों में स्थापित करता है ॥ ३६ ॥

भावार्थः—गृहाश्रम की इच्छा करने वाले पुरुषों को चाहिये कि जो सर्वत्र व्याप्त सब लोकों का रचने और धारण करने वाला दाता न्यायकारी सनातन अर्थात् सदा ऐसा ही बना रहता है, सत् अविनाशी चैतन्य और आनन्दमय नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव और सब पदार्थों से अलग रहने वाला छोटे से छोटे बड़े से बड़ा सर्वशक्तिमान् परमात्मा जिस से कोई भी पदार्थ उत्तम वा जिस के समान नहीं है उसकी उपासना करें ॥ ३६ ॥

इन्द्रश्चेत्यस्य विवस्वानृषिः। सम्राड्माण्डलिकौ राजानौ देवते। साम्नी त्रिष्टुप् छन्दः। तयोरहमित्यस्य विराडार्ची त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अथ गृहाश्रम के उपयोगी राजविषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रश्च सम्राड् वरुणश्च राजा तौ ते भक्षं चक्रतुरग्रऽएतम्। तयोरहमनु भक्षं भक्षयामि वाग्देवी जुषाणा सोमस्य तृप्यतु सह प्राणेन स्वाहा ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे प्रजाजन ! जो (इन्द्रः) परमैश्वर्य्ययुक्त (च) राज्य के अंग, उपाङ्गसहित (सम्राट्) सब जगह एकचक्र राज करने वाला राजा (वरुणः) अति उत्तम (च) और (राजा) न्यायादि गुणों से प्रकाशमान माण्डलिक सेनापति है (तौ) वे दोनों (अग्रे) प्रथम (ते) तेरा (भक्षम्) सेवन अर्थात् नाना प्रकार से रक्षा करें और (अहम्) मैं (तयोः) उनका (एतम्) इस (भक्षम्) स्थित पदार्थ का (अनु) पीछे (भक्षयामि) सेवन करके कराऊं। ऐसे करते हुए हम तुम सब को (सोमस्य) विद्यारूपी ऐश्वर्य्य के बीच (जुषाणा) प्रीति कराने वाली (देवी) सब विद्याओं की प्रकाशक (वाक्) वेदवाणी है उस से (स्वाहा) सब मनुष्य (तृप्यतु) संतुष्ट रहें ॥ ३७ ॥

भावार्थः—प्रजा के बीच अपनी २ सभाओं सहित राजा होने के योग्य दो होते हैं। एक चक्रवर्त्ती अर्थात् एक चक्र राज करने वाला और दूसरा माण्डलिक कि जो मण्डल २ का ईश्वर हो। ये दोनों प्रकार के राजाजन उत्तम २ न्याय नम्रता सुशीलता और वीरतादि गुणों से प्रजा की रक्षा अच्छे प्रकार करें फिर उन प्रजाजनों से यथायोग्य राज्य-कर लेवें और सब व्यवहारों में विद्या की वृद्धि सत्य वचन का आचरण करें। इस प्रकार धर्म्म अर्थ और कामनाओं से प्रजाजनों को

संतोष देकर आप संतोष पावें। आपत्काल में राजा प्रजा की तथा प्रजा राजा की रक्षा कर परस्पर आनन्दित हों ॥ ३७ ॥

अग्ने पवस्वेत्यस्य वैखानस ऋषिः। राजादयो गृहपतयो देवताः। भुरिक् त्रिपाद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। उपयामेत्यस्य स्वराडार्च्यनुष्टुप् छन्दः। अग्नेवर्चस्विन्नित्यस्य भुरिगार्च्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी प्रकारान्तर से पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने पवस्व स्वपाऽअस्मे वर्चः सुवीर्य्यम्। दधद्रयिं मयि पोषम्। उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चसऽएष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे। अग्ने वर्चस्विन्वर्चस्वाँस्त्वं देवेष्वसि वर्चस्वानहं मनुष्येषु भूयासम् ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे (स्वपाः) उत्तम २ काम तथा (वर्चस्विन्) सुन्दर प्रकार से वेदाध्ययन करने वाले (अग्ने) सभापति ! आप (अस्मे) हम लोगों के लिये (सुवीर्य्यम्) उत्तम पराक्रम (वर्चः) वेद का पढ़ना तथा (मयि) निरन्तर रक्षा करने योग्य अस्मदादि जन में (रयिम्) धन और (पोषम्) पुष्टि को (दधत्) धारण करते हुए (पवस्व) पवित्र हूजिए (उपयामगृहीतः) राज्य-व्यवहार के लिये हम ने स्वीकार किये हुए (असि) आप हैं (त्वा) तुझको (वर्चसे) उत्तम तेज बल पराक्रम के लिये (अग्नये) वा विज्ञानयुक्त परमेश्वर की प्राप्ति के लिये हम स्वीकार करते हैं (ते) तुम्हारी (एषः) यह (योनिः) राजभूमि निवासस्थान है (त्वा) तुझ को (वर्चसे) हम लोग अपने विद्या प्रकाश सब प्रकार सुख के लिये बार २ प्रत्येक कामों में प्रार्थना करते हैं। हे तेजधारी सभापते राजन् ! जैसे (त्वम्) आप (देवेषु) उत्तम २ विद्वानों में (वर्चस्वान्) प्रशंसनीय विद्याध्ययन करने वाले (असि) हैं, वैसे (अहम्) मैं (मनुष्येषु) विचारशील पुरुषों में आप के सदृश (भूयासम्) होऊं ॥ ३८ ॥

भावार्थः—राजा आदि सभ्य जनों को उचित है कि सब मनुष्यों में उत्तम २ विद्या और अच्छे अच्छे गुणों को बढ़ाते रहें जिस से समस्त लोग श्रेष्ठ गुण और कर्म्म प्रचार करने में उत्तम होवें ॥ ३८ ॥

उत्तिष्ठन्नित्यस्य वैखानस ऋषिः। राजादयो गृहस्था देवताः। उत्तिष्ठन्नित्यस्योपेत्येतस्य चार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। इन्द्रेत्यस्याच्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रेऽअवेपयः। सोममिन्द्र चमू सुतम्। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वौजसऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वौजसे। इन्द्रौजिष्ठौजिष्ठस्त्वं देवेष्वस्योजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य रखने वाले वा ऐश्वर्य में रमने वाले सभापते ! आप (चमू) सेना के साथ (सुतम्) उत्पादन किये हुए (सोमम्) सोम को (पीत्वी)

पीके (ओजसा) शरीर आत्मा राजसभा और सेना के बल के (सह) साथ (उत्तिष्ठन्) अच्छे गुण कर्म और स्वभावों में उन्नति को प्राप्त होते हुए (शिप्रे) युद्धादि कर्मों से डाढ़ी और नासिका आदि अङ्गों को (अवेपयः) कम्पाओ अर्थात् यथायोग्य कामों में अङ्गों की चेष्टा करो। हम लोगों ने आप (उपयामगृहीतः) राज्य के नियम उपनियमों से ग्रहण किये (असि) हैं इस से (त्वा) आप को सावधानता से (इन्द्राय) परमैश्वर्य देने वाले जगदीश्वर की प्राप्ति के लिये सेवन करते हैं (ओजसे) अत्यन्त पराक्रम और (इन्द्राय) शत्रुओं के विदारण के लिये (त्वा) आप को प्रेरणा करते हैं, हे (ओजिष्ठ) अत्यन्त तेजधारी जैसे (त्वम्) आप (देवेषु) शत्रुओं को जीतने की इच्छा करने वालों में (ओजिष्ठः) अत्यन्त पराक्रम वाले (असि) हैं, वैसे ही मैं भी (मनुष्येषु) साधारण मनुष्यों में (भूयासम्) होऊं ॥ ३९ ॥

भावार्थः—राजपुरुषों को यह योग्य है कि भोजन वस्त्र और खाने पीने के पदार्थों से शरीर के बल को उन्नति देवें किन्तु व्यभिचारादि दोषों में कभी न प्रवृत्त होवें और परमेश्वर की उपासना भी यथोक्त व्यवहारों में करें ॥ ३९ ॥

अदृश्रमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । गृहपतयो राजादयो देवताः । अदृश्रमित्यस्य सूर्य्येत्यस्य चार्षी गायत्री छन्दः । उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य स्वराडार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी प्रकारान्तर से पूर्वोक्त विषय ही अगले मन्त्र में कहा है ॥

अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ२ऽअनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा । उपयामगृहीतोऽसि सूर्य्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्य्याय त्वा भ्राजाय । सूर्य्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि भ्राजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ॥ ४० ॥

पदार्थः—जैसे (अस्य) इस जगत् के पदार्थों में (भ्राजन्तः) प्रकाश को प्राप्त हुई (रश्मयः) कान्ति (केतवः) वा उन पदार्थों को जनाने वाले (अग्नयः) सूर्य्य विद्युत् और प्रसिद्ध अग्नि हैं वैसे ही (जनान्) मनुष्यों को (अनु) एक अनुकूलता के साथ (अदृश्रम्) मैं दिखलाऊं । हे सभापते ! आप (उपयामगृहीतः) राज्य के नियम और उपनियमों से स्वीकार किये हुए (असि) हैं, जिन (ते) आपका (एषः) यह राज्यकर्म्म (योनिः) ऐश्वर्य्य का कारण है उन (त्वा) आपको (भ्राजाय) जिलाने वाले (सूर्य्याय) प्राण के लिये चिताता हूं तथा उन्हीं आपको (भ्राजाय) सर्वत्र प्रकाशित (सूर्य्याय) चराचरात्मा जगदीश्वर के लिये भी चिताता हूं । हे (भ्राजिष्ठ) अति पराक्रम से प्रकाशमान (सूर्य्य) सूर्य्य के समान सत्य विद्या और गुणों से प्रकाशमान जैसे (त्वम्) आप (देवेषु) समस्त विद्याओं से युक्त विद्वानों में प्रकाशमान (भ्राजिष्ठः) अत्यन्त प्रकाशित हैं वैसे मैं भी (मनुष्येषु) साधारण मनुष्यों में (भूयासम्) प्रकाशमान होऊं ॥ ४० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे इस संसार में सूर्य्य की किरण सब जगह फैल के प्रकाश करती हैं वैसे राजा प्रजा और सभासद् जन शुभ गुण कर्म्म और स्वभावों में प्रकाशमान् हों क्योंकि ऐसा है कि मनुष्यशरीर पाकर किसी उत्साह पुरुषार्थ सत्पुरुषों का सङ्ग

और योगाभ्यास का आचरण करते हुए मनुष्य को धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि तथा शरीर आत्मा और समाज की उन्नति करना दुर्लभ नहीं है। इस से सब मनुष्यों को चाहिये कि आलस्य को छोड़ के नित्य प्रयत्न किया करें॥ ४० ॥

उदु त्यमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः। सूर्य्यो देवता। पूर्वस्य निचृदार्षी। उपयामेत्यस्य स्वराडार्षी गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब ईश्वरपक्ष में गृहस्थ के कर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्य्यम्। उपयामगृहीतोऽसि सूर्य्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्य्याय त्वा भ्राजाय॥ ४१ ॥

पदार्थः—(जातवेदसम्) जो उत्पन्न हुए पदार्थों को जानता वा प्राप्त कराता वा वेद और संसार के पदार्थ जिससे उत्पन्न हुए हैं (देवम्) शुद्धस्वरूप जगदीश्वर जिसको (विश्वाय) संसार के उपकार के लिये (दृशे) ज्ञानचक्षु से देखने को (केतवः) किरणों के तुल्य सर्व अंशों में प्रकाशमान विद्वान् (उत्) (वहन्ति) अपने उत्कर्ष से वादानुवाद कर व्याख्यान करते हैं (उ) तर्क वितर्क के साथ (त्यम्) उस जगदीश्वर को हम लोग प्राप्त हों। हे जगदीश्वर! जो आप हम लोगों ने (भ्राजाय) प्रकाशमान अर्थात् अत्यन्त उत्साह और पुरुषार्थयुक्त (सूर्य्याय) प्राण के लिये (उपयामगृहीतः) यम नियमादि योगाभ्यास उपासना आदि साधनों से स्वीकार किये हुए (असि) हैं उन (त्वा) आपको उक्त कामना के लिये समस्त जन स्वीकार करें और हे ईश्वर! जिन (ते) आपका (एषः) यह कार्य्य और कारण की व्याप्ति से एक अनुमान होना (योनिः) अनुपम प्रमाण है उन (त्वा) आपको (भ्राजाय) प्रकाशमान (सूर्य्याय) ज्ञानरूपी सूर्य्य को पाने के लिये एक कारण जानते हैं॥ ४१ ॥

भावार्थः—जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं वैसे ही वह जगदीश्वर सब को उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है॥ ४१ ॥

आजिघ्रेत्यस्य कुसुरुविन्दु ऋषिः। पत्नी देवता। स्वराड्ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अब गृहस्थ के कर्म्म में स्त्री के उपदेश विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आजिघ्र कलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः। पुनरूर्जा निवर्त्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्माविशताद्रयिः॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे (महि) प्रशंसनीय गुणवाली स्त्री! जो तू (उरुधारा) विद्या और अच्छी अच्छी शिक्षाओं को अत्यंत धारण करने (पयस्वती) प्रशंसित अन्न और जल रखने वाली है वह गृहाश्रम के शुभ कामों में (कलशम्) नवीन घट का (आजिघ्र) आघ्राण कर अर्थात् उस को जल से पूर्ण कर उस की उत्तम सुगन्धि को प्राप्त हो (पुनः) फिर (त्वा) तुझे (सहस्रम्)

असंख्यात (इन्दवः) सोम आदि ओषधियों के रस (आविशन्तु) प्राप्त हों जिस से तू दुःख से (निवर्तस्व) दूर रहे अर्थात् कभी तुझ को दुःख न प्राप्त हो । तू (ऊर्जा) पराक्रम से (नः) हम को (धुक्ष्व) परिपूर्ण कर (पुनः) पीछे (मा) मुझे (रयिः) धन (आविशतात्) प्राप्त हो ॥ ४२ ॥

भावार्थः—विद्वान् स्त्रियों को योग्य है कि अच्छी परीक्षा किए हुए पदार्थ को जैसे आप खायें वैसे ही अपने पति को भी खिलावें कि जिस से बुद्धि बल और विद्या की वृद्धि हो और धनादि पदार्थों को भी बढ़ाती रहे ॥ ४२ ॥

इडे रन्त इत्यस्य कुसुरुविन्दुऋषिः । पत्नी देवता । आर्षीपंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी प्रकारान्तर से उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति । एता तेऽघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात् ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे (अघ्न्ये) ताड़ना न देने योग्य (अदिते) आत्मा से विनाश को प्राप्त न होने वाली (ज्योते) श्रेष्ठ शील से प्रकाशमान (इडे) प्रशंसनीय गुणयुक्त (हव्ये) स्वीकार करने योग्य (काम्ये) मनोहर स्वरूप (रन्ते) रमण करने योग्य (चन्द्रे) अत्यन्त आनन्द देने वाली (विश्रुति) अनेक अच्छी बातें और वेद जानने वाली (महि) अत्यन्त प्रशंसा करने योग्य (सरस्वती) प्रशंसित विज्ञान वाली पत्नी ! उक्त गुण प्रकाश करने वाले (ते) तेरे (एता) ये (नामानि) नाम हैं तू (देवेभ्यः) उत्तम गुणों के लिये (मा) मुझ को (सुकृतम्) उत्तम उपदेश (ब्रूतात्) किया कर ॥ ४३ ॥

भावार्थः—जो विद्वानों से शिक्षा पाई हुई स्त्री हो वह अपने २ पति और अन्य सब स्त्रियों को यथायोग्य उत्तम कर्म्म सिखलावे जिससे किसी तरह वे अधर्म्म की ओर न डिगें । वे दोनों स्त्री पुरुष विद्या की वृद्धि और बालकों तथा कन्याओं को शिक्षा किया करें ॥ ४३ ॥

वि न इत्यस्य शास ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । उपयामेत्यस्य विराडार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सिंह जैसे पीछे लौट कर देखता है इस प्रकार गृहस्थ कर्म्म के निमित्त राजपक्ष में कुछ उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वि नऽइन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः । योऽअस्माँ२ऽ अभिदासत्यधरं गमया तमः । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विमृधऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विमृधे ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सेनापते ! तू (नः) हमारे (पृतन्यतः) हम से युद्ध करने के लिये सेना की इच्छा करने हारे शत्रुओं को (जहि) मार और उन (नीचा) नीचों को (यच्छ) वश में ला और जो शत्रुजन (अस्मान्) हम लोगों को (अभिदासति) सब प्रकार दुःख देवे उस (विमृधः) दुष्ट को (तमः) जैसे अन्धकार को सूर्य्य नष्ट करता है वैसे (अधरम्)

अधोगति को (गमय) प्राप्त करा जिस (ते) तेरा (एषः) उक्त कर्म्म करना (योनिः) राज्य का कारण है इससे तू हम लोगों से (उपयामगृहीतः) सेना आदि सामग्री से ग्रहण किया हुआ (असि) है इसी से (त्वा) तुझ को (विमृधः) जिस में बड़े २ युद्ध करने वाले शत्रुजन हैं (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य देने वाले उस युद्ध के लिये स्वीकार करते हैं (त्वा) तुझ को (विमृधे) जिस के शत्रु नष्ट हो गये हैं उस (इन्द्राय) राज्य के लिये प्रेरणा देते हैं अर्थात् अधर्म्म से अपना वर्त्ताव न वर्त्ते ॥ ४४ ॥

भावार्थः—जो खोटे काम करने वाला पुरुष अनेक प्रकार से अपने बल को उन्नति देकर सब को दुःख देना चाहे, उस को राजा सब प्रकार से दण्ड दे। तो भी वह अपनी अत्यन्त खोटाइयों को न छोड़े तो उस को मार डाले अथवा नगर से इस को दूर निकाल बन्द रक्खे ॥ ४४ ॥

वाचस्पतिमित्यस्य शास ऋषिः। ईश्वरसभेशौ राजानौ देवते। भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। उपयामेत्यस्य स्वराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। आद्यस्य धैवतः परस्य गान्धारः स्वरश्च ॥

अब गृहस्थ कर्म में राज और ईश्वर का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

वाचस्पतिं विश्वकर्म्माणमूतये मनोजुवं वाजेऽअद्या हुवेम। स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्म्मा। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मणऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मणे ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हम (अद्य) अब (वाजे) विज्ञान वा युद्ध के निमित्त जिन (वाचः) वेदवाणी के (पतिं) स्वामी वा रक्षा करने वाले (विश्वकर्म्माणम्) जिन के सब धर्म्मयुक्त कर्म्म हैं जो (मनोजुवम्) मन चाहती गति का जानने वाला है उस परमेश्वर वा सभापति को (हुवेम) चाहते हैं सो आप (साधुकर्म्मा) अच्छे २ कर्म्म करने वाले (विश्वशम्भूः) समस्त सुख को उत्पन्न कराने वाले जगदीश्वर वा सभापति (नः) हमारे (अवसे) प्रेम बढ़ाने के लिये (विश्वानि) (हवनानि) दिये हुए सब प्रार्थनावचनों को (जोषत्) प्रेम से मानें जिन (ते) आपका (एषः) यह उक्त कर्म्म (योनिः) एक प्रेमभाव का कारण है वे आप (उपयामगृहीतः) यमनियमों से ग्रहण किये हुए (असि) हैं इस से (विश्वकर्म्मणे) समस्त कामों के उत्पन्न करने तथा (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के लिये (त्वा) आप की प्रार्थना तथा (विश्वकर्म्मणे) समस्त काम की सिद्धि के लिये शिल्पक्रिया कुशलता से उत्तम ऐश्वर्य्य वाले आप का सेवन करते हैं ॥ ४५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो परमेश्वर वा न्यायाधीश सभापति हमारे किये हुए कामों को जांच कर उन के अनुसार हम को यथायोग्य नियमों में रखता है, जो किसी को दुःख देने वाले छल कपट के काम को नहीं करता, जिस परमेश्वर वा सभापति के सहाय से मनुष्य मोक्ष और व्यवहारसिद्धि को पाकर धर्म्मशील होता है वही ईश्वर परमार्थसिद्धि वा सभापति व्यवहारसिद्धि के निमित्त हम लोगों को सेवने योग्य है ॥ ४५ ॥

विश्वकर्म्मन्नित्यस्य शास ऋषिः। विश्वकर्मेन्द्रो देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः। उपयामेत्यस्य विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है।

विश्वकर्म्मन् हविषा वर्द्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम् । तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मणऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मणे ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे (विश्वकर्म्मन्) समस्त अच्छे काम करने वाले जन! आप (वर्द्धनेन) वृद्धि के निमित्त (हविषा) ग्रहण करने योग्य विज्ञान से (अवध्यम्) जिस बुरे व्यसन और अधर्म्म से रहित (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य्य देने तथा (त्रातारम्) समस्त प्रजाजनों की रक्षा करने वाले सभापति को (अकृणोः) कीजिये कि (तस्मै) उसे (पूर्वीः) प्राचीन धार्म्मिक जनों ने जिन प्रजाओं को शिक्षा दी हुई है वे (विशः) प्रजाजन (समनमन्त) अच्छे प्रकार मानें जैसे (अयम्) यह सभापति (उग्रः) दुष्टों को दण्ड देने को अच्छे प्रकार चमत्कारी और (विहव्यः) अनेक प्रकार के राज्यसाधन पदार्थ अर्थात् शस्त्र आदि रखने वाला (असत्) हो वैसे प्रजा भी इस के साथ वर्तें ऐसी युक्ति कीजिये। (उपयामगृहीतः) यहां से ले कर मन्त्र का पूर्वोक्त ही अर्थ जानना चाहिये ॥ ४६ ॥

भावार्थः—इस संसार में मनुष्य सब जगत् की रक्षा करने वाले ईश्वर तथा सभाध्यक्ष को न भूलें किन्तु उनकी अनुमति में सब कोई अपना २ वर्त्ताव रक्खें, प्रजा के विरोध से कोई राजा भी अच्छी ऋद्धि को नहीं पहुंचता और ईश्वर वा राजा के विना प्रजाजन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सिद्ध करने वाले काम भी नहीं कर सकते, इससे प्रजाजन और राजा ईश्वर का आश्रय कर एक दूसरे के उपकार में धर्म्म के साथ अपना वर्त्ताव रक्खें ॥ ४६ ॥

उपयामगृहीतोऽसीत्यस्य शास ऋषिः । विश्वकर्म्मेन्द्रो देवता । विराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वर ॥

फिर भी प्रकारान्तर से उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा गायत्रच्छन्दसं गृह्णामीन्द्राय त्वा त्रिष्टुप्छन्दसं गृह्णामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जगच्छन्दसं गृह्णाम्यनुष्टुप्तेऽभिगरः ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे (विश्वकर्म्मन्) अच्छे २ कर्म्म करने वाले जन! मैं जो (ते) आप का (अनुष्टुप्) अज्ञान का छुड़ाने वाला (अभिगरः) सब प्रकार से विख्यात प्रशंसावाक्य है उन अग्नि आदि पदार्थों के गुण कहने और वेदमन्त्र गायत्रीछन्द के अर्थ को जनाने वाले (त्वा) आप को (अग्नये) अग्नि आदि पदार्थों के गुण जानने के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं वा (त्रिष्टुप्छन्दसम्) परम ऐश्वर्य्य देने वाले त्रिष्टुप् छन्दयुक्त वेदमन्त्रों का अर्थ कराने हारे (त्वा) आपको (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं (जगच्छन्दसम्) समस्त जगत् के दिव्य २ गुण कर्म्म और स्वभाव के बोधक वेदमन्त्रों का अर्थविज्ञान कराने वाले (त्वा) आप को (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) अच्छे २ गुण कर्म्म और स्वभावों के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं (उपयामगृहीतः) उक्त सब काम के लिये हम लोगों ने आप को सब प्रकार स्वीकार कर रक्खा (असि) है ॥ ४७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से (विश्वकर्म्मन्) इस पद की अनुवृत्ति आती है। मनुष्यों को चाहिये कि अग्नि आदि पदार्थविद्या साधन कराने वाली क्रियाओं का उत्तम बोध कराने वाले गायत्री आदि छन्दयुक्त ऋग्वेदादि वेदों के बोध होने के लिये उत्तम पढ़ाने वाले का सेवन करें क्योंकि उत्तम पढ़ाने वाले के विना किसी को विद्या नहीं प्राप्त हो सकती ॥ ४७ ॥

व्रे॒शीनां॒ त्वेत्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतयो देवताः। याजुषी त्रिष्टुप्। कुकूननानामित्यस्य याजुषी जगती। भन्दनानामित्यस्य मदिन्तमानामित्यस्य मधुन्तमानामित्यस्य च याजुषी त्रिष्टुप्, शुक्रं त्वेत्यस्य साम्नी बृहती छन्दांसि। तेषु त्रिष्टुभो धैवतः, जगत्या निषादः, बृहत्या मध्यमश्च स्वराः ॥

अब गार्हस्थ्य कर्म्म में पत्नी अपने पति को उपदेश देती है, यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

व्रे॒शीनां॑ त्वा॒ पत्म॒न्नाधू॑नोमि। कु॒कू॒न॒नानां॑ त्वा॒ पत्म॒न्नाधू॑नोमि। भ॒न्द॒नानां॑ त्वा॒ पत्म॒न्नाधू॑नोमि। म॒दिन्त॑मानां॒ त्वा॒ पत्म॒न्नाधू॑नोमि। म॒धुन्त॑मानां॒ त्वा॒ पत्म॒न्नाधू॑नोमि। शु॒क्रं त्वा॑ शु॒क्रऽआधू॑नो॒म्यह्नो॑ रू॒पे सूर्य॑स्य र॒श्मिषु॑ ॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे (पत्मन्) धर्म्म में न चित्त देने वाले पते! (व्रशीनाम्) जलों के समान निर्मल विद्या और सुशीलता में व्याप्त जो पराई पत्नियां हैं उन में व्यभिचार से वर्त्तमान (त्वा) तुम को मैं वहां से (आधूनोमि) अच्छे प्रकार डिगाती हूं। हे (पत्मन्) अधर्म्म में चित्त देने वाले पते! (कुकूननानाम्) निरन्तर शब्दविद्या से नम्रीभाव को प्राप्त हो रही हुई औरों की पत्नियों के समीप मूर्खपन से जाने वाले (त्वा) तुझ को मैं (आ) (धूनोमि) वहां से अच्छे प्रकार छुड़ाती हूं। हे (पत्मन्) कुचाल में चित्त देने वाले पते! (भन्दनानाम्) कल्याण का आचरण करती हुई परपत्नियों के समीप अधर्म से जाने वाले (त्वा) तुझ को वहां से मैं (आ) अच्छे प्रकार (धूनोमि) पृथक् करती हूं। हे (पत्मन्) चञ्चल चित्त वाले पते! (मदिन्तमानाम्) अत्यन्त आनन्दित परपत्नियों के समीप उन को दुःख देते हुए (त्वा) तुम को मैं वहां से (आ) वार २ (धूनोमि) कंपाती हूं। हे (पत्मन्) कठोरचित्त पते! (मधुन्तमानाम्) अतिशय करके मीठी २ बोलने वाली परपत्नियों के निकट कुचाल से जाते हुए (त्वा) तुम को मैं (आ) अच्छे प्रकार (धूनोमि) हटाती हूं। हे (पत्मन्) अविद्या में रमण करने वाले! (अह्नः) दिन के (रूपे) रूप में अर्थात् (सूर्यस्य) सूर्य की फैली हुई किरणों के समय में घर में संगति की चाह करते हुए (शुक्रम्) शुद्ध वीर्य वाले (त्वा) तुम को (शुक्रे) वीर्य के हेतु (आ) भले प्रकार (धूनोमि) छुड़ाती हूं ॥ ४८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे सूर्य्य की किरणों को प्राप्त होकर संसार के पदार्थ शुद्ध होते हैं वैसे ही दुराचारी पुरुष अच्छी शिक्षा और स्त्रियों के सत्य उपदेश से दण्ड को पाकर पवित्र होते हैं. गृहस्थों को चाहिये कि अत्यन्त दुःख देने और कुल को भ्रष्ट करने वाले व्यभिचार कर्म्म से सदा दूर रहें क्योंकि इस से शरीर और आत्मा के बल का नाश होने से धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि नहीं होती ॥ ४८ ॥

ककुभमित्यस्य देवा ऋषयः । विश्वेदेवा प्रजापतयो देवताः । विराट् प्राजापत्या जगती छन्दः । निषादः स्वरः । यत्ते सोमेत्यस्य भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब फिर गृहस्थों को राजपक्ष में उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

ककुभᳪ रूपं वृषभस्य रोचते बृहच्छुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः सोमः सोमस्य पुरोगाः । यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै त्वा गृह्णामि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा ॥ ४९ ॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्य्य को प्राप्त हुए विद्वन् ! आप (यत्) जिस (वृषभस्य) सब सुखों के वर्षनेवाले आप का (ककुभम्) दिशाओं के समान शुद्ध (बृहत्) बड़ा (रूपम्) सुन्दर स्वरूप (रोचते) प्रकाशमान होता है सो आप (शुक्रस्य) शुद्ध धर्म्म के (पुरोगाः) अग्रगामी वा (सोमस्य) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के (पुरोगाः) अग्रेगन्ता (शुक्रः) शुद्ध (सोमः) सोमगुणसम्पन्न ऐश्वर्य्ययुक्त हूजिये जिस से आपका (अदाभ्यम्) प्रशंसा करने योग्य (नाम) नाम (जागृवि) जाग रहा है (तस्मै) उसी के लिये (त्वा) आप को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं और हे (सोम) उत्तम कामों में प्रेरक ! (तस्मै) उन (सोमाय) श्रेष्ठ कामों में प्रवृत्त हुए (ते) आप के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी प्राप्त हो ॥४९॥

भावार्थः—सभाजन और प्रजाजनों को चाहिये कि जिसकी पुण्य, प्रशंसा, सुन्दररूप, विद्या, न्याय, विनय, शूरता, तेज, अपक्षपात, मित्रता, सब कामों में उत्साह, आरोग्य, बल, पराक्रम, धीरज जितेन्द्रियता वेदादि शास्त्रों में श्रद्धा और प्रजापालन में प्रीति हो उसी को सभा का अधिपति राजा मानें ॥ ४९ ॥

उशिक् त्वमित्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतयो देवताः । स्वराडार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से राजविषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उशिक् त्वं देव सोमाग्नेः प्रियं पाथोऽपीहि वशी त्वं देव सोमेन्द्रस्य प्रियं पाथोऽपीह्यस्मत्सखा त्वं देव सोम विश्वेषां देवानां प्रियं पाथोऽपीहि ॥ ५० ॥

पदार्थः—हे (देव) दिव्यगुणसम्पन्न (सोम) समस्त ऐश्वर्य्ययुक्त राजन् ! आप (उशिक्) अति मनोहर होके (अग्नेः) उत्तम विद्वान् के (प्रियम्) प्रेम उत्पन्न कराने वाले (पाथः) रक्षायोग्य व्यवहार को (अपि) निश्चय से (इहि) प्राप्त करो और जानो । हे (देव) दानशील (सोम) हर एक प्रकार से ऐश्वर्य्य की उन्नति कराने वाले ! आप (वशी) जितेन्द्रिय होकर (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य्य वाले धार्म्मिक जन के (प्रियम्) प्रेम उत्पन्न कराने वाले (पाथः) जानने योग्य कर्म को (अपि) निश्चय से (इहि) जानो । हे (देव) समस्त विद्याओं में प्रकाशमान (सोम) ऐश्वर्य्ययुक्त ! आप (अस्मत्सखा) हम लोग जिन के

मित्र हैं ऐसे आप होकर (विश्वेषाम्) समस्त (देवानाम्) विद्वानों के प्रेम उत्पन्न कराने हारे (पाथः) विज्ञान के आचरण को (अपि) निश्चय से (इहि) प्राप्त हो तथा जानो ॥ ५० ॥

भावार्थः—राजा राजपुरुष सभासद् तथा अन्य सब सज्जनों को उचित है कि पुरुषार्थ, अच्छे २ नियम और मित्रभाव से धार्म्मिक वेद के पारगन्ता विद्वानों के मार्ग को चलें क्योंकि उन के तुल्य आचरण किये विना कोई विद्या धर्म्म सब से एक प्रीतिभाव और ऐश्वर्य्य को नहीं पा सकता है ॥ ५० ॥

इह रतिरित्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतयो गृहस्था देवताः। आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

अब गार्हस्थ्य धर्म्म में विशेष उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा। उपसृजन्धरुणं मात्रे धरुणो मातरं धयन्। रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा ॥ ५१ ॥

पदार्थः—हे गृहस्थो ! तुम लोगों की (इह) इस गृहाश्रम में (रतिः) प्रीति (इह) इस में (धृतिः) सब व्यवहारों की धारणा (इह) इसी में (स्वधृतिः) अपने पदार्थों की धारणा (स्वाहा) तथा तुम्हारी सत्य वाणी और सत्य क्रिया हो तुम (इह) इस गृहाश्रम में (रमध्वम्) रमण करो। हे गृहाश्रमस्थ पुरुष ! तू सन्तानों की माता जो कि तेरी विवाहित स्त्री है उस (मात्रे) पुत्र का मान करने वाली के लिये (धरुणम्) सब प्रकार से धारण पोषण कराने योग्य गर्भ को (उपसृजन्) उत्पन्न कर और वह (धरुणः) उक्त गुण वाला पुत्र (मातरम्) उस अपनी माता का (धयन्) दूध पीवे। वैसे (अस्मासु) हम लोगों के निमित्त (रायः) धन की (पोषम्) समृद्धि को (स्वाहा) सत्यभाव से (दीधरत्) उत्पन्न कीजिये ॥ ५१ ॥

भावार्थः—जब तक राजा आदि सभ्यजन वा प्रजाजन सत्य धैर्य्य वा सत्य से जोड़े हुए पदार्थ वा सत्य व्यवहार में अपना वर्त्ताव न रक्खें तब तक प्रजा और राज्य के सुख नहीं पा सकते और जब तक राजपुरुष तथा प्रजापुरुष पिता और पुत्र के तुल्य परस्पर प्रीति और उपकार नहीं करते तब तक निरन्तर सुख भी प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ५१ ॥

सत्रस्येत्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतिर्देवता। भुरिगार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थों के विषय में विशेष उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सत्रस्यऽऋद्धिरस्यगन्म ज्योतिरमृताऽअभूम। दिवं पृथिव्याऽअध्यारुहामाविदाम देवान्त्स्वर्ज्योतिः ॥ ५२ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! आप (सत्रस्य) प्राप्त हुए राजप्रजाव्यवहाररूप यज्ञ के (ऋद्धिः) समृद्धिरूप (असि) हैं। आप के संग से हम लोग (ज्योतिः) विज्ञान के प्रकाश को (अगन्म) प्राप्त होवें और (अमृताः) मोक्ष पाने के योग्य (अभूम) हों (दिवः) सूर्यादि (पृथिव्याः) पृथिवी आदि लोकों के (अधि) बीच (अरुहाम) पूर्ण वृद्धि को पहुँचें (देवान्) विद्वानों दिव्य २ भागों (ज्योतिः) विज्ञानविषय और (स्वः) अत्यन्त सुख को (अविदाम) प्राप्त होवें ॥ ५२ ॥

भावार्थः—जब तक सब की रक्षा करने वाला धार्मिक राजा वा आप्त विद्वान् न हो तब तक विद्या और मोक्ष के साधनों को निर्विघ्नता से पाने के योग्य कोई भी मनुष्य नहीं होता है और न मोक्षसुख से अधिक कोई सुख है ॥ ५२ ॥

युवमित्यस्य देवा ऋषयः । गृहपतयो देवताः । पूर्वस्यार्ष्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । दूरे चेत्यस्यासुर्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । अस्माकमित्यस्य प्राजापत्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । भूर्भुवरित्यस्य विराट्प्राजापत्या पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तन्तमिद्धतं वज्रेण तन्तमिद्धतम् । दूरे चत्ताय छन्त्सद् गहनं यदिनक्षत् । अस्माकꣳशत्रून् परि शूर विश्वतो दर्म्मा दर्षीष्ट विश्वतः । भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम सुवीरा वीरैः सुपोषाः पोषैः ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हे (पुरोयुधा) युद्धसमय में आगे लड़ने वाले (इन्द्रापर्वता) सूर्य्य और मेघ के समान सेनापति और सेनाजन ! (युवम्) तुम दोनों (यः) जो (नः) हमारी (पृतन्यात्) सेना से लड़ना चाहे (तन्तम्) (इत्) उसी २ को (वज्रेण) शस्त्र और अस्त्रविद्या के बल से (हतम्) मारो और (यत्) जो (अस्माकम्) हमारे शत्रुओं की (गहनम्) दुर्ज्जय सेना हमारी सेना को (इनक्षत्) व्याप्त हो और (यत्) जो २ (छन्त्सत्) बल को बढ़ावे उस २ को (चत्ताय) आनन्द बढ़ाने के लिये (इद्धतम्) अवश्य मारो और (दूरे) दूर पहुंचा दो । हे (शूर) शत्रुओं को सुख से बचाने वाले सभापते ! आप हमारे (शत्रून्) शत्रुओं को (विश्वतः) सब प्रकार से (परिदर्षीष्ट) विदीर्ण कर दीजिये जिस से हम लोग (भूः) इस भूलोक (भुवः) अन्तरिक्ष और (स्वः) सुखकारक अर्थात् दर्शनीय अत्यन्त सुखरूप लोक में (प्रजाभिः) अपने सन्तानों से (सुप्रजाः) प्रशंसित सन्तानों वाले (वीरैः) वीरों से (सुवीराः) बहुत अच्छे २ वीरों वाले और (पोषैः) पुष्टियों से (सुपोषाः) अच्छी २ पुष्टि वाले (विश्वतः) सब ओर से (स्याम) होवें ॥ ५३ ॥

भावार्थः—जब तक सभापति और सेनापति प्रगल्भ हुए सब कामों में अग्रगामी न हों तब तक सेनावीर आनन्द से युद्ध में प्रवृत्त नहीं हो सकते और इस काम के बिना कभी विजय नहीं होता तथा जब तक शत्रुओं को निर्म्मूल करने हारे सभापति आदि नहीं होते तब तक प्रजा का पालन नहीं कर सकते और न प्रजाजन सुखी हो सकते हैं ॥ ५३ ॥

परमेष्ठीत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । परमेष्ठी प्रजापतिर्देवता । साम्न्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी गृहस्थ का कर्म्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

परमेष्ठ्यभिधीतः प्रजापतिर्वाचि व्याहृतायामन्धोऽअच्छेतः । सविता सन्यां विश्वकर्म्मा दीक्षायाम्पूषा सोमक्रयण्याम् ॥ ५४ ॥

पदार्थः—हे गृहस्थो ! तुम ने यदि (व्याहृतायाम्) उच्चारित उपदिष्ट की हुई (वाचि) वेदवाणी में (परमेष्ठी) परमानन्दस्वरूप में स्थित (प्रजापतिः) समस्त प्रजा के स्वामी को (अच्छेतः) अच्छे प्रकार प्राप्त (विश्वकर्म्मा) सब विद्या और कर्म्मों को जानने वाले सर्वथा श्रेष्ठ सभापति को (दीक्षायाम्) सभा के नियमों के धारण में (सोमक्रयण्याम्) ऐश्वर्य ग्रहण करने में (पूषा) सब को पुष्ट करने हारे उत्तम वैद्य को और (सन्याम्) जिस से सनातन सत्य प्राप्त हो उस में (सविता) सब जगत् का उत्पादक (अभिषीतः) सुविचार से धारण किया (अन्धः) उत्तम सुसंस्कृत अन्न का सेवन किया तो सदा सुखी हों ॥ ५४ ॥

भावार्थः—जो ईश्वर वेदविद्या से अपने सांसारिक जीवों और जगत् के गुण कर्म्म स्वभावों को प्रकाशित न करता तो किसी मनुष्य को विद्या और इन का ज्ञान न होता और विद्या वा उक्त पदार्थों के ज्ञान के विना निरन्तर सुख क्यों कर हो सकता है ॥ ५४ ॥

इन्द्रश्चेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्र॑श्च म॒रुत॑श्च क्र॒याyो॒पोत्थि॑तोऽसु॑रः पुण्यमा॑नो मि॒त्रः क्री॒तो विष्णुः शिपिवि॒ष्टऽऊ॒रावास॑न्नो॒ विष्णु॑र्न॒रन्धि॑षः ॥ ५५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो विद्वानों ने (क्रपाय) व्यवहारसिद्धि के लिये (इन्द्रः) बिजुली (मरुतः) पवन (असुरः) मेघ (पण्यमानः) स्तुति के योग्य (मित्रः) सखा (शिपिविष्टः) समस्त पदार्थों में प्रविष्ट (विष्णुः) सर्वशरीरव्याप्त धनंजय वायु और इन में से एक २ पदार्थ (नरंधिषः) मनुष्यादि के आत्माओं में साक्षी (विष्णुः) हिरण्यगर्भ ईश्वर (ऊरौ) ढांपने आदि क्रियाओं में (आसन्नः) संनिकट वा (उपोत्थितः) समीपस्थ प्रकाश के समान और जो (क्रीतः) व्यवहार में वर्त्ता हुआ पदार्थ है इन सब को जानो ॥ ५५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर से प्रकाशित अग्नि आदि पदार्थों की क्रिया-कुशलता से उपयोग लेकर गार्हस्थ्य व्यवहारों को सिद्ध करें ॥ ५५ ॥

प्रोह्यमाण इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा गृहस्था देवताः । आर्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रो॒ह्यमा॑णः॒ सोम॒ऽआग॑तो॒ वरु॑णऽआस॒न्द्यामास॑न्नो॒ऽग्निराग्नी॑ध्र॒ऽइन्द्रो॑ हविर्धा॒नेऽथ॑र्वोपावह्रि॒यमा॑णः ॥ ५६ ॥

पदार्थः—हे गृहस्थो ! तुम को इस ईश्वर की सृष्टि में (आसन्द्याम्) बैठने की एक अच्छी चौकी आदि स्थान पर (आगत) आया हुआ पुरुष जैसे विराजमान हो वैसे (प्रोह्यमाणः) तर्क वितर्क के साथ वादानुवाद से जाना हुआ (सोमः) एश्वर्य्य का समूह (वरुणः) सहायकारी पुरुष के समान जल का समूह (आग्नीध्रे) बहुत इन्धनों में (अग्निः) अग्नि (उपावह्रियमाणः) क्रिया की कुशलता से युक्त किये हुए (अथर्वा) प्रशंसा करने योग्य के समान पदार्थ और (हविर्धाने) ग्रहण करने योग्य पदार्थों में (इन्द्रः) बिजुली निरन्तर युक्त करनी चाहिये ॥ ५६ ॥

भावार्थः—तर्क के विना कोई भी विद्या किसी मनुष्य को नहीं होती और विद्या के विना पदार्थों से उपयोग भी कोई नहीं ले सकता ॥ ५६ ॥

विश्वे देवा इत्यस्य वशिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । भुरिक् साम्नी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब गृहस्थ कर्म्म में कुछ विद्वानों का पक्ष अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वे देवा अ॒ꣳशुषु न्युप्तो विष्णुराप्रीतपाऽआप्याय्यमानो यमः सूयमानो विष्णुः सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः शुक्रः पूतः । शुक्रः क्षीरश्रीर्मन्थी सक्तुश्रीः ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे (विश्वेदेवाः) समस्त विद्वानो ! तुम्हारा जो (अंशुषु) अलग २ संसार के पदार्थों में (न्युप्तः) नित्य स्थापित किया हुआ व्यवहार (आप्रीतपाः) अच्छी प्रीति के साथ (विष्णुः) व्याप्त होने वाली बिजुली (आप्याय्यमानः) अति बढ़े हुए के समान (यमः) सूर्य्य (सूयमानः) उत्पन्न होने हारा (विष्णुः) व्यापक अव्यक्त (संभ्रियमाणः) अच्छे प्रकार पुष्टि किया हुआ (वायुः) प्राण (पूयमानः) पवित्र किया हुआ (शुक्रः) पराक्रम का समूह (पूतः) शुद्ध (शुक्रः) शीघ्र चेष्टा करने हारा और (मंथी) विलोडने वाला ये सब प्रत्येक सेवन किये हुए (क्षीरश्रीः) दुग्धादि पदार्थों को पकाने और (सक्तुश्रीः) प्राप्त हुए पदार्थों का आश्रय करने वाले होते हैं ॥ ५७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को युक्ति और विद्या से सेवन किये हुए सब सृष्टिस्थ पदार्थ शरीर आत्मा और सामाजिक सुख कराने वाले होते हैं ॥ ५७ ॥

विश्वे देवोश्चेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । भुरिगार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वेदेवाश्चमसेषून्नीतोऽसुर्होमायोद्यतो रुद्रो हूयमानो वातोऽभ्यावृतो नृचक्षाः प्रतिख्यातो भक्षो भक्ष्यमाणः पितरो नाराशꣳसाः ॥ ५८ ॥

पदार्थः—जिन विद्वानों ने यज्ञ-विधान से (चमसेषु) मेघों में सुगन्धित आदि वस्तु (उन्नीतः) ऊंचे पहुंचाया (असुः) अपना जीवन (उद्यतः) अच्छे यत्न में लगा रक्खा (रुद्रः) जीव को पवित्र कर (हूयमानः) स्वीकार किया (नृचक्षः) मनुष्यों को प्रसन्न करने वाला (प्रतिख्यातः) जिन्होंने वादानुवाद से चाहा (वातः) बाहर के वायु अर्थात् मैदान के कठिन वायु के सह वायु शुद्ध किये फल (भक्ष्यमाणः) कुछ भोजन करने योग्य पदार्थ (भक्षः) खाइये (नाराशंसाः) प्रशंसाकर मनुष्यों के उपदेशक (विश्वेदेवाः) सब विद्वान् (पितरः) उन सब के उपकारकों को ज्ञानी समझने चाहियें ॥ ५८ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग परोपकार बुद्धि से विद्या का विस्तार करने, सुगन्धि पुष्टि मधुरता और रोगनाशक गुणयुक्त पदार्थों का यथायोग्य मेल अग्नि के बीच में उन का होम कर शुद्ध वायु वर्षा का जल वा ओषधियों का सेवन कर के शरीर को आरोग्य करते हैं वे इस संसार में अत्यन्त प्रशंसा के योग्य होते हैं ॥ ५८ ॥

सन्न इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । आर्षी बृहती छन्दः । निषादः स्वरः । या पत्येते इत्यस्य विराडार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब गृहस्थ के कर्म्म में यज्ञादि व्यवहार का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सन्नः सिन्धुरवभृथायोद्यतः समुद्रोऽभ्यवह्रियमाणः सलिलः प्रप्लुतो ययोरोजसा स्कभिता रजांꣳसि वीर्येभिर्वीरतमा शविष्ठा । या पत्येते अप्रतीता सहोभिर्विष्णूऽअगन्वरुणा पूर्वहूतौ ॥ ५९ ॥

पदार्थः—जिन्होंने (अवभृथाय) यज्ञान्त स्नान और अपने आत्मा के पवित्र करने के लिये (अभ्यवह्रियमाणः) भोगने योग्य (सलिलः) जिस में उत्तम जल है वह व्यवहार (उद्यतः) नियम से सम्पादन किया (सिन्धुः) नदियां (सन्नः) निर्माण कीं (समुद्रः) समुद्र (प्रप्लुतः) अपने उत्तम गुणों से पाया है वे विद्वान् लोग (ययोः) जिन के (ओजसा) बल से (रजांसि) लोक लोकान्तर (स्कभिता) स्थित हैं (या) जो (वीर्येभिः) और पराक्रमों से (वीरतमा) अत्यन्त वीर (शविष्ठा) नित्य बल संपादन करने वाले (सहोभिः) बलों से (अप्रतीता) मूर्खों को जानने अयोग्य (विष्णू) व्याप्त होने हारे (वरुणा) अतिश्रेष्ठ स्वीकार करने योग्य (पूर्वहूतौ) जिस का सत्कार पूर्व उत्तम विद्वानों ने किया हो जो (पत्येते) श्रेष्ठ सज्जनों को प्राप्त होते हैं उन यज्ञकर्म्म भक्ष्य पदार्थ और विद्वानों को (अगन्) प्राप्त होते हैं वे सदा सुखी रहते हैं ॥ ५९ ॥

भावार्थः—यज्ञ आदि व्यवहारों के बिना गृहाश्रम में सुख नहीं होता ॥ ५९ ॥

देवानित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । स्वराट् साम्नी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी यज्ञ विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

देवान् दिवमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु मनुष्यानन्तरिक्षमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु पितॄन् पृथिवीमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु यं कं च लोकमगन्यज्ञस्ततो मे भद्रमभूत् ॥ ६० ॥

पदार्थः—जो (यज्ञः) पूर्वोक्त सब के करने योग्य यज्ञ (दिवम्) विद्या के प्रकाश और (देवान्) दिव्य भोगों को प्राप्त करता है जिस को विद्वान् लोग (अगन्) प्राप्त हों (ततः) उस से (मा) मुझ को (द्रविणम्) विद्यादि गुण (अष्टु) प्राप्त हों जो (यज्ञः) यज्ञ (अन्तरिक्षम्) मेघमण्डल और (मनुष्यान्) मनुष्यों को प्राप्त होता है जिस को भद्र मनुष्य (अगन्) प्राप्त होते हैं (ततः) उस से (मा) मुझ को (द्रविणम्) धनादि पदार्थ (अष्टु) प्राप्त हों जो (यज्ञः) यज्ञ (पृथिवीम्) पृथिवी और (पितॄन्) वसन्त आदि ऋतुओं को प्राप्त होता है । जिस को आप्त लोग (अगन्) प्राप्त होते हैं (ततः) उस से (मा) मुझ को (द्रविणम्) प्रत्येक ऋतु का सुख (अष्टु) प्राप्त हो जो (यज्ञः) (कम्) किसी (च) (लोकम्) लोक को प्राप्त होता है (यम्) जिस को धर्मात्मा लोग (अगन्) प्राप्त होते हैं (ततः) उस से (मे) मेरा (भद्रम्) कल्याण (अभूत्) हो ॥ ६० ॥

भावार्थः—जिस यज्ञ से सब सुख होते हैं उसका अनुष्ठान सब मनुष्यों को क्यों न करना चाहिये ॥ ६० ॥

चतुस्त्रिंशदित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वदेवा देवताः । साम्न्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

इस जगत् की उत्पत्ति में कितने कारण हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

चतुस्त्रिꣳशत्तन्तवो ये वितत्निरे य इमं यज्ञꣳस्वधया ददन्ते । तेषां छिन्नꣳ सम्वेतद्दधामि स्वाहा घर्मो अप्येतु देवान् ॥ ६१ ॥

पदार्थः—(ये) जो (चतुस्त्रिंशत्) आठों वसु ग्यारह रुद्र बारह आदित्य इन्द्र प्रजापति और प्रकृति (तन्तवः) सूत के समान (यज्ञम्) सुख उत्पन्न करने हारे यज्ञ को (वितत्निरे) विस्तार करते हैं अथवा (ये) जो (स्वधया) अन्न आदि उत्तम पदार्थों से (इमम्) इस यज्ञ को (ददन्ते) देते हैं (तेषाम्) उन का जो (छिन्नम्) अलग किया हुआ यज्ञ (एतत्) उस को (स्वाहा) सत्य क्रिया वा सत्य वाणी से (सम्) (दधामि) इकट्ठा करता हूं (उ) और वही (घर्म्मः) यज्ञ (देवान्) विद्वानों को (अपि) निश्चय से (एतु) प्राप्त हो ॥ ६१ ॥

भावार्थः—इस प्रत्यक्ष चराचर जगत् के चौंतीस (३४) तत्व कारण हैं उन के गुण और दोषों को जो जानते है उन्हीं को सुख मिलता है ॥ ६१ ॥

यज्ञस्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर यज्ञ का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

यज्ञस्य दोहो विततः पुरुत्रा सो अष्टधा दिवमन्वाततान । स यज्ञ धुक्ष्व महि मे प्रजायाꣳ रायस्पोषं विश्वमायुरशीय स्वाहा ॥ ६२ ॥

पदार्थः—हे (यज्ञ) संगति करने योग्य विद्वन् ! आप जो (यज्ञस्य) यज्ञ का (पुरुत्रा) बहुत पदार्थों में (विततः) विस्तृत (अष्टधा) आठों दिशाओं से आठ प्रकार का (दोहः) परिपूर्ण सामग्रीसमूह है (सः) वह (दिवम्) सूर्य्य के प्रकाश को (अन्वाततान) ढाप कर फिर फैलने देता है (सः) वह आप सूर्य्य के प्रकाश में यज्ञ करने वाले गृहस्थ तू उस यज्ञ को (धुक्ष्व) परिपूर्ण कर जो (मे) मेरी (प्रजायाम्) प्रजा में (विश्वम्) सब (महि) महान् (रायः) धनादि पदार्थों की (पोषम्) समृद्धि को वा (आयुः) जीवन को वार २ विस्तारता है उस को मैं (स्वाहा) सत्ययुक्त क्रिया से (अशीय) प्राप्त होऊं ॥ ६२ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति को करें और संसार के जीव को अत्यन्त सुख पहुंचावें ॥ ६२ ॥

आपवस्वेत्यस्य कश्यप ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराडार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्य किस के तुल्य यज्ञ का सेवन करें यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ पवस्व हिरण्यवदश्ववत्सोम वीरवत्। वाजं गोमन्तमाभर स्वाहा ॥ ६३ ॥

पदार्थः—हे सोम ऐश्वर्य्य चाहने वाले गृहस्थ ! तू (स्वाहा) सत्य वाणी वा सत्य क्रिया से (हिरण्यवत्) सुवर्ण आदि पदार्थों के तुल्य (अश्ववत्) अश्व आदि उत्तम पशुओं के समान (वीरवत्) प्रशंसित वीरों के तुल्य (गोमन्तम्) उत्तम इन्द्रियों से सम्बन्ध रखने वाले (वाजम्) अन्नादिमय यज्ञ का (आभर) आश्रय रख और उस से संसार को (आ) अच्छे प्रकार (पवस्व) पवित्र कर ॥ ६३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुरुषार्थ से सुवर्ण आदि धन को इकट्ठा कर घोड़े आदि उत्तम पशुओं को रक्खें तदनन्तर वीरों को रक्खें क्योंकि जब तक इस सामग्री को नहीं रखते तब तक गृहाश्रमरूपी यज्ञ परिपूर्ण नहीं कर सकते इसलिये सदा पुरुषार्थ से गृहाश्रम की उन्नति करते रहें ॥ ६३ ॥

इस अध्याय में गृहस्थधर्म सेवन के लिये ब्रह्मचारिणी कन्या को कुमार ब्रह्मचारी का स्वीकार, गृहस्थ धर्म का वर्णन, राजा प्रजा और सभापति आदि का कर्त्तव्य कहा है इसलिये इस अध्यायोक्त अर्थ के साथ पूर्व अध्याय में कहे अर्थ की संगति जाननी चाहिये ॥

॥ इति अष्टमोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥

अथ नवमाऽध्यायारम्भः

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒ताति॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥ १ ॥

य० ३० । ३ ॥

देव सवितरित्यस्य इन्द्राबृहस्पती ऋषी । सविता देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वान् लोग चक्रवर्ती राजा को कैसा २ उपदेश करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

देव॑ सवित॒ः प्रसु॑व य॒ज्ञं प्रसु॑व य॒ज्ञप॑तिं॒ भगा॑य । दि॒व्यो ग॑न्ध॒र्वः के॑त॒पूः केतं॑ नः पुनातु वा॒चस्पति॒र्वाजं॑ नः स्वदतु स्वाहा॑ ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (देव) दिव्यगुणयुक्त (सवितः) संपूर्ण ऐश्वर्य्यवाले राजन् ! आप (भगाय) सब ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) वेदवाणी से (यज्ञम्) सब को सुख देने वाले राजधर्म का (प्र) (सुव) प्रचार और (यज्ञपतिम्) राजधर्म के रक्षक पुरुष को (प्र) (सुव) प्रेरणा कीजिये जिस से (दिव्यः) प्रकाशमान दिव्य गुणों में स्थित (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण और बुद्धि को शुद्ध करने वाला (वाचस्पतिः) पढ़ने पढ़ाने और उपदेश से विद्या का रक्षक सभापति राजपुरुष है वह (नः) हमारी (केतम्) बुद्धि को (पुनातु) शुद्ध करे और हमारे (वाजम्) अन्न को सत्य वाणी से (स्वदतु) अच्छे प्रकार भोगे ॥ १ ॥

भावार्थः—न्याय से प्रजा का पालन और विद्या का दान करना ही राजपुरुषों का यज्ञ करना है ॥ १ ॥

ध्रुवसदं त्वेत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । ध्रुवसदमिति पूर्वस्यार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । अप्सुसदमित्यस्य विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर मनुष्य लोग किस प्रकार के पुरुष को राज्याऽधिकार में स्वीकार करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ध्रु॒व॒सदं॑ त्वा नृ॒षदं॑ मनः॒सद॑मुपया॒मगृ॑हीतो॒ऽसीन्द्रा॑य त्वा॒ जुष्टं॑ गृह्णाम्ये॒ष ते॒ योनि॒रिन्द्रा॑य त्वा॒ जुष्ट॑तमम् । अ॒प्सु॒षदं॑ त्वा घृ॒तसदं॑ व्योम॒सद॑मुपया॒मगृ॑हीतो॒ऽसीन्द्रा॑य त्वा॒ जुष्टं॑ गृह्णाम्ये॒ष ते॒ योनि॒रिन्द्रा॑य त्वा॒ जुष्ट॑तमम् । पृ॒थि॒वि॒सदं॑

त्वाऽन्तरिक्षसदं दिविसदं देवसदं नाकसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे चक्रवर्ति राजन् ! मैं (इन्द्राय) परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा के लिये जो आप (उपयामगृहीतः) योगविद्या के प्रसिद्ध अङ्ग यम के सेवने वाले पुरुषों ने स्वीकार किये (असि) हो उस (ध्रुवसदम्) निश्चल विद्या विनय और योगधर्मों में स्थित (नृषदम्) नायक पुरुषों में अवस्थित (मनःसदम्) विज्ञान में स्थिर (जुष्टम्) प्रीतियुक्त (त्वा) आपका (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं। जिस (ते) आप का (एषः) यह (योनिः) सुखनिमित्त है उस (जुष्टतमम्) अत्यन्त सेवनीय (त्वा) आप का (गृह्णामि) धारण करता हूं। हे राजन् ! मैं (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य धारण के लिये जो आप (उपयामगृहीतः) प्रजा और राजपुरुषों ने स्वीकार किये (असि) हो। उस (अप्सुसदम्) जलों के बीच चलते हुए (घृतसदम्) घी आदि पदार्थों को प्राप्त हुए और (व्योमसदम्) विमानादि यानों से आकाश में चलते हुए (जुष्टम्) सब के प्रिय (त्वा) आपका (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं। हे सब की रक्षा करने हारे सभाध्यक्ष राजन् ! जिस (ते) आप का (एषः) यह (योनिः) सुखदायक घर है उस (जुष्टतमम्) अति प्रसन्न (त्वा) आप को (इन्द्राय) दुष्ट शत्रुओं के मारने के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं। हे सब भूमि में प्रसिद्ध राजन् ! मैं (इन्द्राय) विद्या योग और मोक्षरूप ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये जो आप (उपयामगृहीतः) साधन उपसाधनों से युक्त (असि) हो उस (पृथिविसदम्) पृथिवी में भ्रमण करते हुए (अन्तरिक्षसदम्) आकाश में चलने वाले (दिविसदम्) न्याय के प्रकाश में नियुक्त (देवसदम्) धर्मात्मा और विद्वानों के मध्य में अवस्थित (नाकसदम्) सब दुःखों से रहित परमेश्वर और धर्म्म में स्थिर (जुष्टम्) सेवनीय (त्वा) आपका (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं। हे सब सुख देने और प्रजापालन करने हारे राजपुरुष ! जिस (ते) तेरा (एषः) यह (योनिः) रहने का स्थान है उस (जुष्टतमम्) अत्यन्त प्रिय (त्वा) आप को (इन्द्राय) समग्र सुख देने के लिये (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥ २ ॥

भावार्थः—हे राजप्रजाजनो ! जैसे सर्वव्यापक परमेश्वर सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य भोगने के लिये जगत् रच के सब के लिये सुख देता वैसा ही आचरण तुम लोग भी करो कि जिस से धर्म अर्थ काम और मोक्ष फलों की प्राप्ति सुगम होवे ॥ २ ॥

अपामित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता। अतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर प्रजाजनों को कैसा पुरुष राजा मानना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अपाꣳ रसमुद्वयसꣳ सूर्य्ये सन्तꣳ समाहितम्। अपाꣳ रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! मैं (इन्द्राय) ऐश्वर्य्यप्राप्ति के लिये (वः) तुम्हारे लिये (सूर्य) सूर्य के प्रकाश में (सन्तम्) वर्त्तमान (समाहितम्) सर्व प्रकार चारों ओर धारण किये (उद्वयसम्) उत्कृष्ट जीवन के हेतु (अपाम्) जलों के (रसम्) सार का ग्रहण करता हूं

(यः) जो (अपाम्) जलों के (रसस्य) सार का (रसः) वीर्य धातु है (तम्) उस (उत्तमम्) कल्याणकारक रस का तुम्हारे लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूँ जो आप (उपयामगृहीतः) साधन तथा उपसाधनों से स्वीकार किये गये (असि) हो उस (इन्द्राय) परमेश्वर की प्राप्ति के लिये (जुष्टम्) प्रीतिपूर्वक वर्त्तनेवाले आप का (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं जिस (ते) आप का (एषः) यह (योनिः) घर है उस (जुष्टतमम्) अत्यन्त सेवनीय (त्वा) आप को (इन्द्राय) परम सुख होने के लिये (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ।। ३ ।।

भावार्थः—राजा को चाहिये कि अपने नौकर प्रजापुरुषों को शरीर और आत्मा के बल बढ़ने के लिये ब्रह्मचर्य ओषधिविद्या और योगाभ्यास के सेवन में नियुक्त करे । जिस से सब मनुष्य रोगरहित होकर पुरुषार्थी होवें ।। ३ ।।

ग्रहा इत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । राजधर्मराजादयो देवताः । भुरिक्कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ।।

मनुष्यों को चाहिये कि आप्त विद्वान् की अच्छे प्रकार परीक्षा कर के सङ्ग करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

ग्रहा ऊर्जाहुतयो व्यन्तो विप्राय मतिम् । तेषां विशिप्रियाणां वोऽहमिषमूर्जꣳ समग्रभमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । सम्पृचौ स्थः सं मा भद्रेण पृङ्क्तं विपृचौ स्थो वि मा पाप्मना पृङ्क्तम् ।। ४ ।।

पदार्थः—हे राजप्रजा पुरुष ! जैसे (अहम्) मैं गृहस्थजन (विप्राय) बुद्धिमान् पुरुष के सुख के लिये (मतिम्) बुद्धि को देता हूं वैसे तू भी किया कर (व्यन्तः) जो सब विद्याओं में व्याप्त (ऊर्जाहुतयः) बल और जीवन बढ़ने के लिये दान देने और (ग्रहाः) ग्रहण करनेहारे गृहस्थ लोग हैं जैसे (तेषाम्) उन (विशिप्रियाणाम्) अनेक प्रकार के धर्मयुक्त कर्मों में मुख और नासिका वालों के (मतिम्) बुद्धि (इषम्) अन्न आदि और (ऊर्जम्) पराक्रम को (समग्रभम्) ग्रहण कर चुका हूं वैसे तुम भी ग्रहण करो । हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे तू (उपयामगृहीतः) राज्य और गृहाश्रम की सामग्री से सहित वर्त्तमान (असि) है वैसे मैं भी होऊं । जैसे मैं (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य्य के लिये (जुष्टम्) प्रसन्न (त्वा) आप को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं वैसे तू भी मुझे ग्रहण कर जिस (ते) तेरा (एषः) यह (योनिः) घर है उस (इन्द्राय) पशुओं को नष्ट करने के लिये (जुष्टतमम्) अत्यन्त प्रसन्न (त्वा) तुझे मैं जैसे वह और तुम दोनों युक्त कर्म्म में (संपृचौ) संयुक्त (स्थः) हो वैसे (भद्रेण) सेवने योग्य सुखदायक ऐश्वर्य्य से (मा) मुझ को (संपृङ्क्तम्) संयुक्त करो जैसे तुम (पाप्मना) अधर्मी पुरुष से (विपृचौ) पृथक् (स्थः) हो इस से (मा) मुझ को भी (विपृङ्क्तम्) पृथक् करो ।। ४ ।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो राजा और प्रजा में गृहस्थ लोग बुद्धिमान् सन्तान वा विद्यार्थी के लिये विद्या होने की बुद्धि देते दुष्ट आचरणों से पृथक् रखते कल्याणकारक कर्मों को सेवन कराते और दुष्टसङ्ग छुड़ाके सत्सङ्ग कराते हैं वे ही इस लोक और परलोक के सुख को प्राप्त होते हैं इन से विपरीत नहीं ।। ४ ।।

इन्द्रस्येत्यस्य बृहस्पति ऋषिः । सविता देवता । भुरिगष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब किसलिये सेनापति की प्रार्थना यहां करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इन्द्रस्य वज्रोऽसि वाजसास्त्वयाऽयं वाजꣳ सेत् । वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे । यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्मं साविषत् ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे वीर पुरुष (यस्याम्) जिस में (त्वम्) आप (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य्ययुक्त राजा के (वाजसाः) संग्रामों का विभाग करनेवाले (वज्रः) वज्र के समान शत्रुओं को काटने वाले (असि) हो उस (त्वया) रक्षक आप के साथ (अयम्) यह पुरुष (वाजम्) संग्राम का (सेत्) प्रबन्ध करे जहां (इदम्) प्रत्यक्ष वर्त्तमान (विश्वम्) सब (भुवनम्) जगत् (आविवेश) प्रविष्ट है और जहां (देवः) सब का प्रकाशक (सविता) सब जगत् का उत्पादक परमात्मा (नः) हमारा (धर्म्मं) धारण (साविषत्) करे (तस्याम्) उस में (नाम) प्रसिद्ध (वाजस्य) संग्राम के (प्रसवे) ऐश्वर्य्य में (मातरम्) मान्य देनेहारी (अदितिम्) अखंडित (महीम्) पृथिवी को (वचसा) वेदोक्त न्याय के उपदेशरूप वचन से हम लोग (नु) शीघ्र (करामहे) ग्रहण करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जो यह भूमि प्राणियों के लिये सौभाग्य के उत्पन्न माता के समान रक्षा और सब को धारण करने हारी प्रसिद्ध है उस का विद्या न्याय और धर्म्म के योग से राज्य के लिये तुम लोग सेवन करो ॥ ५ ॥

अप्स्वन्तरित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । अश्वो देवता । भुरिग्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुषों को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिष्वश्वा भवत वाजिनः । देवीरापो यो वऽऊर्मिः प्रतूर्त्तिः ककुन्मान् वाजसास्तेनायं वाजꣳ सेत् ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (देवीः) दिव्यगुणवाली (आपः) अन्तरिक्ष में व्यापक स्त्रीपुरुष लोगो ! तुम (यः) जो (वः) तुम्हारा (समुद्रस्य) सागर के (ककुन्मान्) प्रशस्त चञ्चल गुणों से युक्त (वाजसाः) संग्रामों के सेवने के हेतु (प्रतूर्त्तिः) अतिशीघ्र चलने वाला समुद्र के (ऊर्मिः) आच्छादन करने हारे तरङ्गों के समान पराक्रम और जो (अप्सु) प्राण के (अन्तः) मध्य में (अमृतम्) मरणधर्मरहित कारण और जो (अप्सु) जलों के मध्य अल्पमृत्यु से छुड़ाने वाला (भेषजम्) रोगनिवारक औषध के समान गुण है जिससे (अयम्) यह सेनापति (वाजम्) संग्राम और अन्न का प्रबन्ध करे (तेन) उससे (अपाम्) उक्त प्राणों और जलों की (प्रशस्तिषु) गुण प्रशंसाओं में (वाजिनः) प्रशंसित बल और पराक्रम वाले (अश्वा) कुलीन घोड़ों के समान वेगवाले (भवत) हूजिये ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—स्त्रियों को चाहिये कि समुद्र के समान गम्भीर, जल के समान शान्तस्वभाव, वीरपुत्रों को उत्पन्न करने, नित्य औषधियों को सेवने और

जलादि पदार्थों को ठीक २ जाननेवाली होवें इसी प्रकार जो पुरुष वायु और जल के गुणों के वेत्ता पुरुषों से संयुक्त होते हैं वे रोगरहित होकर विजयकारी होते हैं ॥ ६ ॥

वातो वेत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । सेनापतिर्देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

मनुष्य लोग किस प्रकार क्या करके वेग वाले हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

वातो॑ वा॒ मनो॑ वा ग॒न्ध॒र्वाः स॒प्तवि॑ꣳशतिः । तेऽअग्रेऽश्व॑मयुञ्जँ॒स्तेऽअ॒स्मिन् ज॒वमाद॑धुः ॥ ७ ॥

पदार्थः—जो विद्वान् लोग (वातः) वायु के (वा) समान (मनः) मन के (वा) समतुल्य और जैसे (सप्तविंशतिः) सत्ताईस (गन्धर्वाः) वायु इन्द्रिय और भूतों के धारण करने हारे (अस्मिन्) इस जगत् में (अग्रे) पहिले (अश्वम्) व्यापकता और वेगादि गुणों को (अयुंजन्) संयुक्त करते हैं (ते) वे ही (जवम्) उत्तम वेग को (आदधुः) धारण करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थः—जो एक समष्टि वायु, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय (दश) बारहवां मन, तथा इस के साथ श्रोत्र आदि दश इन्द्रिय और पांच सूक्ष्मभूत ये सब २७ (सत्ताईस) पदार्थ ईश्वर ने इस जगत् में पहिले रचे हैं। जो पुरुष इन के गुण कर्म और स्वभाव को ठीक २ जान और यथायोग्य कार्य्यों में संयुक्त करके अपनी २ ही स्त्री के साथ क्रीड़ा करते हैं वे संपूर्ण ऐश्वर्य्य को संचित कर राज्य के योग्य होते हैं ॥ ७ ॥

वातरंहेत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

उस राजा को विद्वान् लोग क्या-क्या उपदेश करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

वात॑रꣳहा भव वाजिन् यु॒ज्यमा॑न॒ऽइन्द्र॑स्येव॒ दक्षि॑णः श्रि॒यैधि॑ । यु॒ञ्जन्तु॑ त्वा म॒रुतो॑ वि॒श्ववे॑दस॒ऽआ ते॒ त्वष्टा॑ प॒त्सु ज॒वं द॑धातु ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) शास्त्रोक्त क्रियाकुशलता के प्रशस्त बोध से युक्त राजन् ! जिस (त्वा) आप को (विश्ववेदसः) समस्त विद्याओं के जानने हारे (मरुतः) विद्वान् लोग राज्य और शिल्पविद्याओं के कार्य्यों में (युञ्जन्तु) युक्त और (त्वष्टा) वेगादि गुणविद्या का जानने हारा मनुष्य (ते) आप के (पत्सु) पगों में (जवम्) वेग को (आदधातु) अच्छे प्रकार धारण करे। वह आप (वातरंहाः) वायु के समान वेग वाले (भव) हूजिये और (युज्यमानः) सावधान होके (दक्षिणः) प्रशंसित धर्म से चलने के बल से युक्त होके (इन्द्रस्येव) परम ऐश्वर्य्य वाले राजा के समान (श्रिया) शोभायुक्त राज्य संपत्ति वा राणी से सहित (एधि) वृद्धि:को प्राप्त हूजिये ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । राजसम्बन्धी स्त्री पुरुषो ! आप लोग अभिमानरहित और निर्मत्सर अर्थात् दूसरों की उन्नति देखकर प्रसन्न होने वाले होकर विद्वानों के साथ मिल के राजधर्म की रक्षा किया करो तथा विमानादि यानों में बैठ के अपने अभीष्ट देशों में जा जितेन्द्रिय हो और प्रजा को निरन्तर प्रसन्न कर के श्रीमान् हुआ कीजिये ॥ ८ ॥

जव इत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । वीरो देवता । धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह राजा कैसा होवे यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

जवो यस्ते॑ वाजि॒न्निहि॑तो गुहा॒ यः श्ये॒ने परी॑त्तो॒ऽअच॑रच्च॒ वाते॑ । तेन॑ नो वाजि॒न् बल॑वा॒न् बले॑न वाज॒जिच्च॒ भव॒ सम॑ने च पारयि॒ष्णुः । वाजि॑नो वाजजि॒तो वाजं॑ सरि॒ष्यन्तो॑ बृह॒स्पते॑र्भा॒गमव॑जिघ्रत ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) श्रेष्ठ शास्त्रबोध और योगाभ्यास से युक्त सेना वा सभा के स्वामी राजन् ! (ते) आप का (यः) जो (जवः) वेग (गुहा) बुद्धि) में (निहितः) स्थित है (यः) जो (श्येने) पक्षी में जैसा (परीत्तः) सब ओर दिया हुआ (च) और जैसे (वाते) वायु में (अचरत्) विचरता है (तेन) उस से (नः) हम लोगों के (बलेन) सेना वा पराक्रम से (बलवान्) बहुत बल से युक्त (भव) हूजिये । हे (वाजिन्) वेगयुक्त राजपुरुष ! उसी बल से (समने) संग्राम में (पारयिष्णुः) दुःख के पार करने और (वाजजित्) सङ्ग्राम के जीतने वाले हूजिये । हे (वाजिनः) प्रशंसित वेग से युक्त योद्धा लोगो ! तुम (बृहस्पतेः) बड़ों की रक्षा करने हारे सभाध्यक्ष की (भागम्) सेवा को प्राप्त हो के (वाजम्) बोध वा अन्नादि पदार्थों को (सरिष्यन्तः) प्राप्त होते हुए (वाजजितः) सङ्ग्राम के जीतने हारे होओ और सुगन्धियुक्त पदार्थों का (अवजिघ्रत) सेवन करो ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । राजा को चाहिये कि शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को पा और शत्रुओं के जीतने में श्येन पक्षी और वायु के तुल्य शीघ्रकारी हो के अपने सब सभासद् सेना के पुरुष और सब नौकरों को अच्छे शिक्षित बल तथा सुख से युक्त कर धर्मात्माओं की निरन्तर रक्षा करे और सब राजा प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि इस प्रकार के हों और शत्रुओं को जीत के परस्पर प्रसन्न रहें ॥ ९ ॥

देवस्याहमित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । इन्द्राबृहस्पती देवते । विराडुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्य लोगों को उचित है कि विद्वानों का अनुकरण करें मूढ़ों का नहीं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

दे॒वस्या॒हꣳ स॑वि॒तुः स॒वे स॒त्यस॑वसो॒ बृह॒स्पते॑रुत्त॒मं नाक॑ꣳ रुहेयम् । दे॒वस्या॒हꣳ स॑वि॒तुः स॒वे स॒त्यस॑वस॒ऽइन्द्र॑स्योत्त॒मं नाक॑ꣳ रुहेयम् । दे॒वस्या॒हꣳ स॑वि॒तुः स॒वे स॒त्यप्र॑सवसो॒ बृह॒स्पते॑रुत्त॒मं नाक॑मरुहम् । दे॒वस्या॒हꣳ स॑वि॒तुः स॒वे स॒त्यप्र॑सवस॒ऽइन्द्र॑स्योत्त॒मं नाक॑मरुहम् ॥ १० ॥

पदार्थः—हे राजा और प्रजा के पुरुषो । जैसे (अहम्) मैं सभाध्यक्ष राजा (सत्यसवसः) जिस का ऐश्वर्य्य और जगत् का कारण सत्य है उस (देवस्य) सब ओर से प्रकाशमान (बृहस्पतेः) बड़े प्रकृत्यादि पदार्थों के रक्षक (सवितुः) सब जगत् को उत्पन्न करने हारे जगदीश्वर के (सवे) उत्पन्न किये जगत् में (उत्तमम्) सब से उत्तम (नाकम्) सब दुःखों से रहित सच्चिदानन्द स्वरूप को (रुहेयम्) आरूढ़ होऊं । हे राजा के सभासद् लोगो !

जैसे (अहम्) मैं परोपकारी पुरुष (सत्यसवसः) सत्य न्याय से युक्त (देवस्य) सब सुख देने (सवितुः) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करने हारे (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य्य के सहित चक्रवर्ती राजा के (सवे) ऐश्वर्य्य में (उत्तमम्) प्रशंसा के योग्य (नाकम्) दुःखरहित भोग को प्राप्त हो के (रुहेयम्) आरूढ़ होऊं । हे पढ़ने पढ़ाने हारे विद्याप्रिय लोगो ! जैसे (अहम्) मैं विद्या चाहने हारा जन (सत्यप्रसवसः) जिससे अविनाशी प्रकट बोध हो उस (देवस्य) सम्पूर्ण विद्या और शुभ गुण कर्म और स्वभाव के प्रकाश से युक्त (सवितुः) समग्र विद्याबोध के उत्पन्नकर्ता (बृहस्पतेः) उत्तम वेदवाणी की रक्षा करने हारे वेद वेदांगोपांगों के पारदर्शी के (सवे) उत्पन्न किये विज्ञान में (उत्तमम्) सब से उत्तम (नाकम्) सब दुःखों से रहित आनन्द को (अरुहम्) आरूढ़ हुआ हूं । हे विजयप्रिय लोगो ! जैसे (अहम्) मैं योद्धा मनुष्य (सत्यप्रसवसः) जिस से सत्य न्याय विनय और विजयादि उत्पन्न हो उस (देवस्य) धनुर्वेद युद्धविद्या के प्रकाशक (सवितुः) शत्रुओं के विजय में प्रेरक (इन्द्रस्य) दुष्ट शत्रुओं को विदीर्ण करने हारे पुरुष की (सवे) प्रेरणा में (उत्तमम्) विजयनामक उत्तम (नाकम्) सब सुख देने हारे संग्राम को (अरुहम्) आरूढ़ हुआ हूं वैसे आप भी सब लोग आरूढ़ हूजिये ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—सब राजा और प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि परस्पर विरोध को छोड़ ईश्वर चक्रवर्ती राज्य और समग्र विद्याओं का सेवन करके सब उत्तम सुखों को प्राप्त हों और दूसरों को प्राप्त करावें ॥ १० ॥

बृहस्पत इत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । इन्द्राबृहस्पती देवते । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब उपदेश करने और सुनने वालों का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

बृह॑स्पते॒ वाजं॑ जय॒ बृह॒स्पत॑ये॒ वाचं॑ वदत॒ बृह॒स्पतिं॒ वाजं॑ जापयत । इन्द्र॒ वाजं॑ ज॒येन्द्रा॑य॒ वाचं॑ व॒द॒तेन्द्रं॒ वाजं॑ जापयत ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) सम्पूर्ण विद्याओं का प्रचार और उपदेश करने हारे राजपुरुष ! आप (वाजम्) विज्ञान वा संग्राम को (जय) जीतो । हे विद्वानो ! तुम लोग इस (बृहस्पतये) राजपुरुष के लिये (वाचम्) वेदोक्त सुशिक्षा से प्रसिद्ध वाणी को (वदत) पढ़ाओ और उपदेश करो इस (बृहस्पतिम्) राजा वा सर्वोत्तम अध्यापक को (वाजम्) विद्याबोध व युद्ध को (जापयत) बढ़ाओ और जिताओ । हे (इन्द्र) विद्या के ऐश्वर्य्य का प्रकाश वा शत्रुओं को विदीर्ण करने हारे राजपुरुष ! आप (वाजम्) परम ऐश्वर्य्य वा शत्रुओं के विजयरूपी युद्ध को (जय) जीतो । हे युद्धविद्या में कुशल विद्वानो ! तुम लोग इस (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य्य को प्राप्त करने वाले राजपुरुष के लिये (वाजम्) राजधर्म का प्रचार करने हारी वाणी को (वदत) कहो इस (इन्द्रम्) राजपुरुष को (वाजम्) संग्राम को (जापयत) जिताओ ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में श्लेषालङ्कार है—राजा को ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि जिस से वेदविद्या का प्रचार और शत्रुओं का विजय सुगम हो और उपदेशक तथा योद्धा लोग ऐसा प्रयत्न करें कि जिस राज्य में वेदादि शास्त्र पढ़ने पढ़ाने की प्रवृत्ति और अपना राजा विजयरूपी आभूषणों से सुशोभित होवे कि जिस से अधर्म का नाश और धर्म की वृद्धि अच्छे प्रकार से स्थिर होवे ॥ ११ ॥

एषा व इत्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । इन्द्राबृहस्पती देवते । स्वराडतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्यों को अति उचित है कि सब समय में सब प्रकार से सत्य ही बोलें यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

एषा वः सा सत्या संवागंभूद्यया बृहस्पतिं वाजमजीजपताजीजपत बृहस्पतिं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम् एषा वः सा सत्या संवागभूद्ययेन्द्रं वाजमजीजपताजीजपतेन्द्रं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (वनस्पतयः) किरणों के समान न्याय के पालने हारे राजपुरुषो ! तुम लोग (यया) जिस से (बृहस्पतिम्) वेद शास्त्र के पालने हारे विद्वान् को (वाजम्) वेदशास्त्र के बोध को (अजीजपत) बढ़ाओ (बृहस्पतिम्) बड़े राज्य के रक्षक राजपुरुष के संग्राम को (अजीजपत) जिताओ (सा) वह (एषा) पूर्व कही वा आगे जिस को कहेंगे (वः) तुम लोगों की (संवाक्) राजनीति में स्थित अच्छी वाणी (सत्या) सत्यस्वरूप (अभूत्) होवे हे (वनस्पतयः) सूर्य की किरणों के समान न्याय के प्रकाश से प्रजा की रक्षा करने हारे राजपुरुषो ! तुम लोग (यया) जिस से (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य प्राप्त कराने हारे सेनापति को (वाजम्) युद्ध को (अजीजपत) जिताओ (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्ययुक्त पुरुष को (वाजम्) अत्युत्तम लक्ष्मी को प्राप्त कराने हारे उद्योग को (अजीजपत) अच्छे प्रकार प्राप्त करावें (सा) वह (एषा) आगे पीछे जिस का प्रतिपादन किया है (वः) तुम लोगों की (संवाक्) विनय और पुरुषार्थ का अच्छे प्रकार प्रकाश करने वाली वाणी (सत्या) सदा सत्यभाषणादि लक्षणों से युक्त (अभूत्) होवे ॥ १२ ॥

भावार्थः—राजा उस के नौकर और प्रजापुरुषों को उचित है कि अपनी प्रतिज्ञा और वाणी को असत्य होने कभी न दें जितना कहें उतना ठीक ठीक करें जिस की वाणी सब काल में सत्य होती है वही पुरुष राज्याधिकार के योग्य होता है जब तक ऐसा नहीं होता तब तक उन राजा और प्रजा के पुरुषों का विश्वास और वे सुखों को नहीं बढ़ा सकते ॥ १२ ॥

देवस्याहमित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । सविता देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

राजपुरुषों को चाहिये कि धर्म्मात्मा राजपुरुषों का अनुकरण करें अन्य तुच्छ बुद्धियों का नहीं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवस्याहꣳ संवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेर्वाजजितो वाजं जेषम् । वाजिनो वाजजितोऽध्वन स्कभ्नुवन्तो योजना मिमानाः काष्ठां गच्छत ॥१३॥

पदार्थः—हे वीर पुरुषो ! जैसे (अहम्) मैं शरीर और आत्मा के बल से पूर्ण सेनापति (सत्यप्रसवसः) जिस के बनाये जगत् में कारणरूप से पदार्थ नित्य हैं उस (सवितुः) सब ऐश्वर्य्य के देने (देवस्य) सब के प्रकाशक (वाजजितः) विज्ञान आदि से उत्कृष्ट (बृहस्पतेः) उत्तम वेदवाणी के पालने हारे जदीश्वर के (सवे) उत्पन्न किये इस ऐश्वर्य्य में (वाजम्) संग्राम को (जेषम्) जीतूं वैसे तुम लोग भी जीतो । हे (वाजिनः) विज्ञानरूपी वेग से युक्त

(वाजजितः) संग्राम को जीतने हारे ! (योजना) बहुत कोशों से शत्रुओं को (मिमानाः) देख और (अध्वनः) शत्रुओं के मार्गों को रोकते हुए तुम लोग जैसे (काष्ठाम्) दिशाओं में (गच्छत) चलते हो वैसे हम लोग भी चलें ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। योद्धा लोग सेनाध्यक्ष के सहाय और रक्षा से ही शत्रुओं को जीत और उनके मार्गों को रोक सकते हैं और इन अध्यक्षादि राजपुरुषों को चाहिये कि जिस दिशा में शत्रु लोग उपाधि करते हों वहीं जाके उन को वश में करें ॥ १३ ॥

एष स्येत्यस्य दधिक्रावा ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

जब सेना और सेनापति अच्छे शिक्षित होकर परस्पर प्रीति करने वाले होवें तभी विजय प्राप्त होवे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

एष स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धोऽअपिकक्षऽ आसनि। क्रतुं दधिक्राऽअनु सꣳसनिष्यदत्पथामङ्काꣳस्यन्वापनीफणत् स्वाहा ॥ १४ ॥

पदार्थः—जैसे (स्यः) वह (एषः) और यह (वाजी) वेगयुक्त (आसनि) मुख और (ग्रीवायाम्) कण्ठ में (बद्धः) बंधा (क्रतुम्) कर्म अर्थात् गति को (संसनिष्यदत्) अतीव फैलाता हुआ (पथाम्) मार्गों के (अंकांसि) चिह्नों को (अनु) समीप (आपनीफणत्) अच्छे प्रकार चलता हुआ (दधिक्राः) धारण करने हारों को चलाने हारा घोड़ा (क्षिपणिम्) सेना को जाता है वैसे ही (अपिकक्षे) इधर उधर के ठीक ठीक अवयवों में सेनापति अपनी सेना को (स्वाहा) सत्य वाणी से (तुरण्यति) वेगयुक्त करता है ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सेनापति से रक्षा को प्राप्त हुए वीरपुरुष घोड़ों के समान दौड़ते हुए शीघ्र शत्रुओं को मार सकते हैं, जो सेनापति उत्तम कर्म्म करने हारे अच्छे शिक्षित वीर पुरुषों के साथ ही युद्ध करता वह प्रशंसित हुआ विजय को प्राप्त होता है अन्यथा पराजय ही होता है ॥ १४ ॥

उतेत्यस्य दधिक्रावा ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

सेनापति आदि राजपुरुष कैसा पराक्रम करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनुवाति प्रगर्धिनः। श्येनस्येव ध्रजतोऽअङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः स्वाहा ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे राजपुरुषो ! जो (ऊर्जा) पराक्रम और (स्वाहा) सत्यक्रिया के (सह) साथ (अस्य) इस (द्रवतः) रसप्रद वृक्ष का पत्ता और (तुरण्यतः) शीघ्र उड़ने वाले (वेः) पक्षी के (पर्णम्) पंखों के (न) समान (उत) और (प्रगर्धिनः) अत्यन्त इच्छा करने (ध्रजतः) चाहते हुए (श्येनस्येव) बाज पक्षी के समान तथा (तरित्रतः) अति शीघ्र चलते हुए (दधिक्राव्णः) घोड़े के सदृश (अङ्कसम्) अच्छे लक्षणयुक्त मार्ग में (परि) (अनु) (वाति) सब प्रकार अनुकूल चलता है (स्म) वही पुरुष शत्रुओं को जीत सकता है ॥ १५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो वीर पुरुष नीलकण्ठ श्येनपक्षी और घोड़े के समान पराक्रमी होते हैं उन के शत्रु लोग सब ओर से विलाय जाते हैं ॥१५॥

शम्न इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। भुरिक् पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥
कौन पुरुष प्रजा के पालने और शत्रुओं के विनाश करने में समर्थ होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

शन्नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः। जम्भयन्तोऽहिं वृकꣳ रक्षाꣳसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः॥ १६॥

पदार्थः—जो (मितद्रवः) नियम से चलने (स्वर्काः) जिन का अन्न वा सत्कार सुन्दर हो वे योद्धा लोग (अहिम्) मेघ के समान चेष्टा करते और बढ़े हुए (वृकम्) चोर और (रक्षांसि) दूसरों को क्लेश देने हारे डाकुओं के (जम्भयन्तः) हाथ पांव तोड़ते हुए (वाजिनः) श्रेष्ठ युद्धविद्या के जानने वाले वीर पुरुष (नः) हम (देवताता) विद्वान् लोगों के कर्मों तथा (हवेषु) संग्रामों में (सनेमि) सनातन (शम्) सुख को (भवन्तु) प्राप्त होवें (अस्मत्) हमारे लिये (अमीवाः) रोगों के समान वर्त्तमान शत्रुओं को (युयवन्) पृथक् करें॥ १६॥

भावार्थः—श्रेष्ठ प्रजापुरुषों के पालने में तत्पर और रोगों के समान शत्रुओं के नाश करने हारे राजपुरुष ही सब को सुख दे सकते हैं अन्य नहीं॥ १६॥

ते न इत्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥
प्रजाजन अपनी रक्षा के लिये कर देवें और इसीलिये राजपुरुष ग्रहण करें अन्यथा नहीं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ते नोऽअर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः। सहस्रसा मेधसाता सनिष्यवो महो ये धनꣳ समिथेषु जभ्रिरे॥ १७॥

पदार्थः—(ये) जो (अर्वन्तः) ज्ञानवान् (हवनश्रुतः) ग्रहण करने योग्य शास्त्रों को सुनने (वाजिनः) प्रशंसित बुद्धिमान् (मितद्रवः) शास्त्रयुक्त विषय को प्राप्त होने (सहस्रसाः) असंख्य विद्या के विषयों को सेवन और (सनिष्यवः) अपने आत्मा की सुन्दर भक्ति करने हारे राजपुरुष (मेधसाता) समागमों के दान से युक्त (समिथेषु) संग्रामों में (नः) हमारे बड़े (धनम्) ऐश्वर्य्य को (जभ्रिरे) धारण करें वे (विश्वे) सब विद्वान् लोग हमारा (हवम्) पढ़ने पढ़ाने से होने वाले बोध शब्दों और वादी प्रतिवादियों के विवाद को (शृण्वन्तु) सुनें॥ १७॥

भावार्थः—जो ये राजपुरुष हम लोगों से कर लेते हैं वे हमारी निरन्तर रक्षा करें नहीं तो न लें हम भी उन को कर न देवें। इस कारण प्रजा की रक्षा और दुष्टों के साथ युद्ध करने के लिये ही कर देना चाहिये अन्य किसी प्रयोजन के लिये नहीं यह निश्चित है॥१७॥

वाजेवाज इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। निषादः स्वरः॥
अब ये राजा और प्रजा के पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्राऽअमृताऽऋतज्ञाः। अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः॥ १८॥

पदार्थः—हे (ऋतज्ञाः) सत्यविद्या के जानने हारे (अमृताः) अपने २ स्वरूप से नाशरहित जीते ही मुक्तिसुख को प्राप्त (वाजिनः) वेगयुक्त (विप्राः) विद्या और अच्छी शिक्षा से बुद्धि को प्राप्त हुए विद्वान् राजपुरुषो ! तुम लोग (वाजे वाजे) संग्राम २ के बीच (नः) हमारी (अवत) रक्षा करो (अस्य) इस (मध्वः) मधुर रस को (पिबत) पीओ। हमारे धनों से (तृप्ताः) तृप्त होके (मादयध्वम्) आनन्दित होओ और (देवयानैः) जिन में विद्वान् लोग चलते हैं उन (पथिभिः) मार्गों से सदा (यात) चलो ॥ १८ ॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि वेदादि शास्त्रों को पढ़ और सुन्दर शिक्षा से ठीक २ बोध को प्राप्त होकर धर्मात्मा विद्वानों के मार्ग से सदा चलें। अन्य मार्ग से नहीं। तथा शरीर और आत्मा का बल बढ़ाने के लिये वैद्यक शास्त्र से परीक्षा किये और अच्छे प्रकार पकाये हुए अन्न आदि से युक्त रसों का सेवन कर प्रजा की रक्षा से ही आनन्द को प्राप्त होवें और प्रजापुरुषों को निरन्तर प्रसन्न रक्खें ॥ १८ ॥

आ मा वाजस्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। निचृद्धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

मनुष्यों को धर्माचरण से किस-किस पदार्थ की इच्छा करनी चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आ मा वाज॑स्य प्रस॒वो ज॑गम्या॒दे॒मे द्यावा॑पृथि॒वी वि॒श्वरू॑पे। आ मा॑ गन्तां पि॒तरा॑ मा॒तरा॑ चा मा॒ सोमो॑ऽअमृत॒त्वेन॑ गम्यात्। वाजि॑नो वाजजितो॒ वाज॑ꣳ ससृ॒वाꣳसो॒ बृह॒स्पते॑र्भा॒गमव॑जिघ्रत निमृ॒जा॒नाः॥ १९ ॥

पदार्थः—हे पूर्वोक्त विद्वान् लोगो ! जिन आप लोगों के सहाय से (वाजस्य) वेदादि शास्त्रों के अर्थों के बोधों का (प्रसवः) सुन्दर ऐश्वर्य्य (मा) मुझ को (जगम्यात्) शीघ्र प्राप्त होवे (इमे) ये (विश्वरूपे) सब रूप विषयों के सम्बन्धी (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि का राज्य (च) और (अमृतत्वेन) सब रोगों की निवृत्तिकारक गुण के साथ (सोमः) सोमवल्ली आदि ओषधि विज्ञान मुझ को प्राप्त हो और (पितरा मातरा) विद्यायुक्त पिता माता (आगन्ताम्) प्राप्त होवें वे आप (वाजिनः) प्रशंसित बलवान् (वाजजितः) सङ्ग्राम के जीतने वाले (वाजम्) संग्राम को प्राप्त हुए (निमृजानाः) निरन्तर शुद्ध हुए तुम लोग (बृहस्पतेः) बड़ी सेना के स्वामी के (भागम्) सेवने योग्य भाग को (अवजिघ्रत) निरन्तर प्राप्त होओ ॥ १९ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वान् के साथ विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त हो के धर्म का आचरण करते हैं उन को इस लोक और परलोक में परमैश्वर्य्य का साधक राज्य विद्वान् माता पिता और नीरोगता प्राप्त होती है। जो पुरुष विद्वानों का सेवन करते हैं वे शरीर और आत्मा की शुद्धि को प्राप्त हुए सब सुखों को भोगते हैं। इस से विरुद्ध चलने हारे नहीं ॥ १९ ॥

आपय इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। भुरिक्कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त वाणी से मनुष्यों को क्या-क्या प्राप्त होता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आपये स्वाहा स्वापये स्वाहाऽपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाऽहर्पतये स्वाहाह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनंशिनाय स्वाहा विनंशिनऽआन्त्यायनाय स्वाहाऽऽन्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाऽधिपतये स्वाहा ॥ २० ॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! तुम लोग जैसे मुझ को (आपये) संपूर्ण विद्या की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (स्वापये) सुखों की अच्छी प्राप्ति के वास्ते (स्वाहा) धर्मयुक्त क्रिया (क्रतवे) बुद्धि बढ़ने के लिये (स्वाहा) पढ़ाने की प्रवृत्ति कराने हारी क्रिया (वसवे) विद्यानिवास के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी (अहर्पतये) पुरुषार्थपूर्वक गणितविद्या से दिन पालने के लिये कालगति को जनाने हारी वाणी (मुग्धाय) मोहप्राप्ति के निमित्त (अह्ने) दिन होने के लिये (स्वाहा) विज्ञानयुक्त वाणी (वैनंशिनाय) नष्टस्वभावयुक्त कर्मों में रहने हारे (मुग्धाय) मूर्ख के लिये (स्वाहा) विताने वाले वाणी (आन्त्यायनाय) नीच प्राप्ति वाले (विनंशिने) नष्टस्वभावयुक्त पुरुष के लिये (स्वाहा) पदार्थों की जानने हारी वाणी (भुवनस्य पतये) संसार के स्वामी ईश्वर के लिये (स्वाहा) योगविद्या को प्रकट करने हारी बुद्धि और (अधिपतये) सब अधिष्ठाताओं के ऊपर रहने वाले पुरुष के लिये (स्वाहा) सब व्यवहारों को जनाने हारी वाणी (गम्यात्) प्राप्त होवे वैसा प्रयत्न आलस्य छोड़ के किया करो ॥ २० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सब विद्याओं की प्राप्ति आदि प्रयोजनों के लिये विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त वाणी को प्राप्त होवें कि जिस से सब सुख सदा मिलते रहें ॥ २० ॥

आयुर्यज्ञेनेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । यज्ञो देवता । अत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

पुनः मनुष्यों के प्रति ईश्वर उपदेश करता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳬं श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् । प्रजापतेः प्रजाऽअभूम स्वर्देवाऽअगन्मामृताऽअभूम ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम्हारी (आयुः) अवस्था (यज्ञेन) ईश्वर की आज्ञा पालन से निरन्तर (कल्पताम्) समर्थ होवे (प्राणः) जीवन का हेतु बलकारी प्राण (यज्ञेन) धर्मयुक्त विद्याभ्यास से (कल्पताम्) समर्थ होवे (चक्षुः) नेत्र (यज्ञेन) प्रत्यक्ष के विषय शिष्टाचार से (कल्पताम्) समर्थ हो (श्रोत्रम्) कान (यज्ञेन) वेदाभ्यास से (कल्पताम्) समर्थ हो और (पृष्ठम्) पूछना (यज्ञेन) संवाद से (कल्पताम्) समर्थ हो (यज्ञः) यज धातु का अर्थ (यज्ञेन) ब्रह्मचर्यादि के आचरण से (कल्पताम्) समर्थित हो जैसे हम लोग (प्रजापतेः) सब के पालने हारे ईश्वर के समान धर्मात्मा राजा के (प्रजाः) पालने योग्य सन्तानों के सदृश (अभूम) होवें तथा (देवाः) विद्वान् हुए (अमृताः) जीवन मरण से छूटे (स्वः) मोक्ष-सुख को (अगन्म) अच्छे प्रकार प्राप्त होवें ॥ २१ ॥

भावार्थः—मैं ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता हूं कि तुम लोग मेरे तुल्य धर्मयुक्त गुण कर्म और स्वभाव वाले पुरुष ही की प्रजा होओ अन्य किसी मूर्ख क्षुद्राशय पुरुष की प्रजा होना स्वीकार कभी मत करो । जैसे मुझ को न्यायाधीश मान मेरी आज्ञा में वर्त और अपना सब कुछ धर्म के साथ संयुक्त करके इस लोक और परलोक के सुख को नित्य प्राप्त होते रहो, वैसे जो पुरुष धर्मयुक्त न्याय से तुम्हारा निरन्तर पालन करे उसी को सभापति राजा मानो ॥ २१ ॥

अस्मे इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । दिशो देवताः । निचृदत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल मनुष्यों को संसार में कैसे वर्त्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अस्मे वोऽअस्त्विन्द्रियमस्मे नृम्णमुत क्रतुरस्मे वर्चांश्सि सन्तु वः । नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्याऽइयं ते राडयन्तासि यमनो ध्रुवोऽसि धरुणः । कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! मैं ईश्वर (कृष्यै) खेती के लिये (त्वा) तुझे (क्षेमाय) रक्षा के लिये (त्वा) तुझे (रय्यै) संपत्ति के लिये (त्वा) तुझे और (पोषाय) पुष्टि के लिये (त्वा) तुझ को नियुक्त करता हूँ । जो तू (ध्रुवः) दृढ़ (यन्ता) नियमों से चलने हारा (असि) है (धरुणः) धारण करने वाला (यमनः) उद्योगी (असि) है जिस (ते) तेरी (इयम्) यह (राट्) शोभायुक्त है इस (मात्रे) मान्य की हेतु (पृथिव्यै) विस्तारयुक्त भूमि से (नमः) अन्नादि पदार्थ प्राप्त हों इस (मात्रे) मान्य देने हारी (पृथिव्यै) पृथिवी को अर्थात् भूगर्भविद्या को जान के इस से (नमः) अन्न जलादि पदार्थ प्राप्त कर तुम सब लोग परस्पर ऐसे कहो और वर्तो कि जो (अस्मे) हमारे (इन्द्रियम्) मन आदि इन्द्रिय हैं वे (वः) तुम्हारे लिये हों जो (अस्मे) हमारा (नृम्णम्) धन है वह (वः) तुम्हारे लिये हो (उत) और जो (अस्मे) हमारे (क्रतुः) बुद्धि वा कर्म हैं (वः) तुम्हारे हित के लिये हों जो हमारे (वर्चांसि) पढ़ा पढ़ाया और अन्न हैं वे (वः) तुम्हारे लिये (सन्तु) हों, जो यह सब तुम्हारा है वह हमारा भी हो ऐसा आचरण आपस में करो ॥ २२ ॥

भावार्थः—मनुष्यों के प्रति ईश्वर की यह आज्ञा है कि तुम लोग सदैव पुरुषार्थ में प्रवृत्त रहो और आलस्य मत करो और जो पृथिवी से अन्न आदि उत्पन्न हों उन की रक्षा करके यह सब जिस प्रकार परस्पर उपकार के लिये हो वैसा यत्न करो । कभी विरोध मत करो कोई अपना कार्य्य सिद्ध करे उस का तुम भी किया करो ॥ २२ ॥

वाजस्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उन को इस विषय में कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

वाजस्येमं प्रसवः सुषुवेऽग्रे सोमꣳ राजानमोषधीष्वप्सु । ताऽ अस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु वयꣳ राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्वाहा ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जैसे मैं (अग्रे) प्रथम (प्रसवः) ऐश्वर्य्ययुक्त होकर (वाजस्य) वैद्यकशास्त्र बोधसम्बन्धी (इमम्) इस (सोमम्) चन्द्रमा के समान सब दुःखों के नाश करने हारे (राजानम्) विद्या न्याय और विनयों से प्रकाशमान राजा को (सुषुवे) ऐश्वर्य्ययुक्त करता हूं । जैसे उस की रक्षा में (ओषधीषु) पृथिवी पर उत्पन्न होने वाली यव आदि ओषधियों और (अप्सु) जलों के बीच में वर्त्तमान ओषधी हैं (ताः) वे (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (मधुमतीः) प्रशस्त मधुर गुण वाली (भवन्तु) हों । जैसे (स्वाहा) सत्य क्रिया के साथ (पुरोहिताः) सब के हितकारी हम लोग (राष्ट्रे) राज्य में निरन्तर (जागृयाम) आलस्य छोड़ के जागते रहें वैसे तुम भी वर्त्ता करो ॥ २३ ॥

भावार्थः—शिष्ट मनुष्यों को योग्य है कि सब विद्याओं की चतुराई रोगरहित और सुन्दर गुणों से शोभायमान पुरुष को राज्याधिकार देकर उस की रक्षा करने वाला वैद्य ऐसा प्रयत्न करे कि जिस से इस के शरीर बुद्धि और आत्मा में रोग का आवेश न हो। इसी प्रकार राजा और वैद्य दोनों सब मन्त्री आदि भृत्यों और प्रजाजनों को रोगरहित करें। जिस से ये राज्य के सज्जनों के पालने और दुष्टों के ताड़ने में प्रयत्न करते रहें, राजा और प्रजा के पुरुष परस्पर पिता पुत्र के समान सदा वर्त्तें ॥ २३ ॥

वाजस्येमामित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। भुरिग्जगतीछन्दः। निषादः स्वरः॥

राजा किसका आश्रय लेकर किस के साथ क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वाज॑स्ये॒मं प्र॑स॒वः शि॑श्रिये॒ दिव॑मि॒मा च॒ विश्वा॒ भुव॑नानि स॒म्राट्। अदि॑त्सन्तं दापयति प्रजा॒नन्त्स नो॑ र॒यिꣳ सर्व॑वीरं॒ नि य॑च्छतु॒ स्वाहा॑ ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जैसे (वाजस्य) राज्य के मध्य में (प्रसवः) उत्पन्न हुए (सम्राट्) अच्छे प्रकार राजधर्म्म में प्रवर्तमान मैं (इमाम्) इस भूमि को (दिवम्) प्रकाशित और (इमा) इन (विश्वा) सब और (भुवनानि) घरों को (शिश्रिये) अच्छे प्रकार आश्रय करता हूं वैसे तुम भी इस को अच्छे प्रकार शोभित करो और जो (स्वाहा) धर्म्मयुक्त सत्यवाणी से (प्रजानन्) जानता हुआ (अदित्सन्तम्) राज्य-कर देने की इच्छा न करने वाले से (दापयति) दिलाता है (सः) सो (नः) हमारे (सर्ववीरम्) सब वीरों को प्राप्त कराने हारे (रयिम्) धन को (नियच्छतु) ग्रहण करे ॥ २४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्य लोगो ! मूल राज्य के बीच सनातन राजनीति को जान कर जो राज्य की रक्षा करने को समर्थ हो उसी को चक्रवर्ती राजा करो और जो कर देने वालों से कर दिलावे वह मन्त्री होने को योग्य होवे, जो शत्रुओं को बांधने में समर्थ हो उसे सेनापति करो और जो विद्वान् धार्मिक हो उसे न्यायाधीश वा कोषाध्यक्ष करो ॥ २४ ॥

वाजस्य न्वित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। स्वराट्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

फिर राजा कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वाज॑स्य॒ नु प्र॑स॒व आ ब॑भूवे॒मा च॒ विश्वा॒ भुव॑नानि स॒र्वतः॑। सने॑मि॒ राजा॒ परि॑याति वि॒द्वान् प्र॒जां पुष्टिं॑ व॒र्धय॑मानो॒ऽअ॒स्मे स्वाहा॑ ॥ २५ ॥

पदार्थः—जो (वाजस्य) वेदादि शास्त्रों से उत्पन्न बोध को (स्वाहा) सत्यनीति से (प्रसवः) प्राप्त होकर (विद्वान्) सम्पूर्ण विद्या को जानने वाला पुरुष (आ) अच्छे प्रकार (बभूव) होवे (च) और (इमा) इन (विश्वा) सब (भुवनानि) मांडलिक राजनिवास स्थानों और (सनेमि) सनातन नियम धर्मसहित वर्त्तमान (प्रजाम्) पालने योग्य प्रजाओं को (पुष्टिम्) पोषण (नु) शीघ्र (वर्धयमानः) बढ़ाता हुआ (परि) सब ओर से (याति) प्राप्त होता है वह (अस्मे) हम लोगों का राजा होवे ॥ २५ ॥

भावार्थः—ईश्वर सब से उपदेश करता है कि हे मनुष्य लोगो ! तुम जो प्रशंसित गुण कर्म स्वभाव वाला राज्य की रक्षा में समर्थ हो उस को सभाध्यक्ष करके आप्तनीति से चक्रवर्ती राज्य करो ॥ २५ ॥

सोममित्यस्य तापस ऋषिः । सोमाग्न्यादित्यविष्णुसूर्यबृहस्पतयो देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर कैसे राजा का स्वीकार करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सोमꣳ राजानमवसेऽग्निमन्वारभामहे । आदित्यान्विष्णुꣳ सूर्य्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिꣳ स्वाहा ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जैसे हम लोग (स्वाहा) सत्यवाणी से (अवसे) रक्षा आदि के अर्थ (विष्णुम्) व्यापक परमेश्वर (सूर्य्यम्) विद्वानों में सूर्य्यवद्विद्वान् (ब्रह्माणम्) साङ्गोपाङ्ग चार वेदों को पढ़ने वाले (बृहस्पतिम्) बड़ों के रक्षक (अग्निम्) अग्नि के समान शत्रुओं को जलाने वाले (सोमम्) शान्त- गुणसम्पन्न (राजानम्) धर्माचरण से प्रकाशमान राजा और (आदित्यान्) विद्या के लिये जिनने अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य रह कर पूर्ण विद्या पढ़ सूर्यवत् प्रकाशमान विद्वानों के सङ्ग से विद्या पढ़ के गृहाश्रम का (आरभामहे) आरम्भ करें वैसे तुम भी किया करो ॥ २६ ॥

भावार्थः—ईश्वर की आज्ञा है कि सब मनुष्य रक्षा आदि के लिये ब्रह्मचर्य्य व्रतादि से विद्या के पारगन्ता विद्वानों के बीच जिसने अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य व्रत किया हो ऐसे राजा को स्वीकार कर के सच्ची नीति को बढ़ावें ॥ २६ ॥

अर्य्यमणमित्यस्य तापस ऋषिः । अर्य्यमादिमन्त्रोक्ता देवताः । स्वराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर राजा किन को किस में प्रेरणा करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अर्य्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय । वाचं विष्णुꣳ सरस्वतीꣳ सवितारं च वाजिनꣳ स्वाहा ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! आप (स्वाहा) सत्य नीति से (दानाय) विद्यादि दान के लिये (अर्य्यमणम्) पक्षपातरहित न्याय करने (बृहस्पतिम्) सब विद्याओं को पढ़ाने (इन्द्रम्) बड़े ऐश्वर्य्ययुक्त (वाचम्) वेदवाणी (विष्णुम्) सब के अधिष्ठाता (सवितारम्) वेदविद्या तथा सब ऐश्वर्य उत्पन्न करने (वाजिनम्) अच्छे बल वेग से युक्त शूरवीर और (सरस्वतीम्) बहुत प्रकार वेदादि शास्त्र विज्ञानयुक्त पढ़ाने वाली विदुषी स्त्री को अच्छे कर्मों में (चोदय) सदा प्रेरणा किया कीजिये ॥ २७ ॥

भावार्थः—ईश्वर सब से कहता है कि राजा आप धर्मात्मा विद्वान् होकर सब न्याय के करने वाले मनुष्यों को विद्या धर्म्म बढ़ाने के लिये निरन्तर प्रेरणा करे जिससे विद्या धर्म की बढ़ती से अविद्या और अधर्म दूर हों ॥ २७ ॥

अग्न इत्यस्य तापस ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

फिर वह राजा क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्नेऽअच्छा वदेह नः प्रति नः सुमना भव । प्र नो यच्छ सहस्रजित् त्वꣳ हि धनदाऽअसि स्वाहा ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् आप (इह) इस समय में (स्वाहा) सत्य वाणी से (नः) हम को (अच्छ) अच्छे प्रकार (वद) सत्य उपदेश कीजिये (नः) हमारे ऊपर (सुमनाः) मित्रभावयुक्त (भव) हूजिये (हि) जिस से (सहस्रजित्) आप विना सहाय हज़ार को जीतने (धनदाः) ऐश्वर्य्य देने वाले (असि) हैं इस से (नः) हमारे लिये (प्रयच्छ) दीजिये ॥ २८ ॥

भावार्थः—ईश्वर उपदेश करता है कि राजा; प्रजा और सेनाजन मनुष्यों से सदा सत्य प्रिय वचन कहे उन को धन दे उन से धन ले, शरीर और आत्मा का बल बढ़ा और नित्य शत्रुओं को जीतकर धर्म से प्रजा को पाले ॥ २८ ॥

प्र न इत्यस्य तापस ऋषिः । अर्य्यमादिमन्त्रोक्ता देवताः । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

प्रजा और सन्तानों से राजा और माता आदि कैसे वर्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

प्र नो॑ यच्छत्वर्य्यमा प्र पू॒षा बृह॒स्पतिः॑ । प्र वाग्दे॒वी द॑दातु नः॒ स्वाहा॑ ॥ २९ ॥

पदार्थः—जैसे (अर्य्यमा) न्यायाधीश (नः) हमारे लिये उत्तम शिक्षा (प्रयच्छतु) देवे जैसे (पूषा) पोषण करने वाला शरीर और आत्मा की पुष्टि की शिक्षा (प्र) अच्छे प्रकार देवे जैसे (बृहस्पतिः) विद्वान् (प्र) (स्वाहा) अत्युत्तम विद्या देवे वैसे (वाक्) उत्तम विद्या सुशिक्षा सहित वाणीयुक्त (देवी) प्रकाशमान पढ़ाने वाली माता हमारे लिये सत्यविद्यायुक्त वाणी का (प्रददातु) उपदेश सदा किया करे ॥ २९ ॥

भावार्थः—यहां जगदीश्वर उपदेश करता है कि राजा आदि सब पुरुष और माता आदि स्त्री सदा प्रजा और पुत्रादिकों को सत्य २ उपदेश कर विद्या और अच्छी शिक्षा को निरन्तर ग्रहण करावें जिससे प्रजा और पुत्र पुत्री आदि सदा आनन्द में रहें ॥ २९ ॥

देवस्येत्यस्य तापस ऋषिः । सम्राड् देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर कहां कैसे को राजा करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् । सर॑स्वत्यै वा॒चो य॒न्तुर्य॒न्त्रियै॑ दधामि॒ बृह॒स्पते॑ष्ट्वा साम्रा॑ज्येना॒भिषि॑ञ्चाम्यसौ ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे सब अच्छे गुण कर्म्म स्वभावयुक्त विद्वन् ! (असौ) यह मैं (सवितुः) सब जगत के उत्पन्न करने वाले ईश्वर (देवस्य) प्रकाशमान जगदीश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये संसार में (सरस्वत्यै) अच्छे प्रकार शिल्पविद्यायुक्त (वाचः) वेदवाणी के मध्य (अश्विनोः) सूर्य्य चन्द्रमा के समान धारण पोषण गुणयुक्त (हस्ताभ्याम्) हाथों से (त्वा) तुम को (दधामि) धारण करता हूं और (बृहस्पतेः) बड़े विद्वान् के (यंत्रिये) कारीगरी विद्या से सिद्ध किये राज्य में (साम्राज्येन) चक्रवर्ती राजा के गुण से सहित (त्वा) तुझ को (अभि) सब ओर से (सिंचामि) सुगन्धित रसों से मार्जन करता हूं ॥ ३० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि ईश्वर में प्रेमी, बल पराक्रम पुष्टियुक्त चतुर सत्यवादी जितेन्द्रिय धर्मात्मा प्रजापालन में समर्थ विद्वान् को अच्छे प्रकार परीक्षा कर सभा का स्वामी करने के लिये अभिषेक करके राजधर्म की उन्नति अच्छे प्रकार नित्य किया करें ॥ ३० ॥

अग्निरेकेत्यस्य तापस ऋषिः । अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः । अत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

राजा प्रजाओं को और प्रजा राजा को निरन्तर बढ़ाया करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदंजयत् तमुज्जेषमश्विनौ द्व्यक्षरेण द्विपदो मनुष्या-नुदंजयतां तानुज्जेषं विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रींल्लोकानुदंजयत्तानुज्जेषंꣳ सोमश्चतु-रक्षरेण चतुष्पदः पशूनुदंजयत्तानुज्जेषम् ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! (अग्निः) के समान वर्त्तमान आप जैसे (एकाक्षरेण) चितानेहारी एक अक्षर की दैवी गायत्री छन्द से (प्राणम्) शरीर में स्थित वायु के समान प्रजाजनों को (उत्) (जेषम्) उत्तम नीति से (अजयत्) उत्तम करे वैसे (तम्) उस को मैं भी (उत्) (जेषम्) उत्तम करूं । हे राजप्रजाजनो ! (अश्विनौ) सूर्य्य और चन्द्रमा के समान आप जैसे (द्व्यक्षरेण) दो अक्षर की दैवी उष्णिक् छन्द से जिन (द्विपदः) दो पैर वाले (मनुष्यान्) मननशील मनुष्यों को (उज्जयताम्) उत्तम करो वैसे (तान्) उन को मैं भी (उज्जेषम्) उत्तम करूं । हे सर्वप्रधान पुरुष ! (विष्णुः) परमेश्वर के समान न्यायकारी आप जैसे (त्र्यक्षरेण) तीन अक्षर की दैवी अनुष्टुप् छन्द से जिन (त्रीन्) जन्म स्थान और नामवाची (लोकान्) देखने योग्य लोकों को (उदजयत्) उत्तम करते हो वैसे (तान्) उन को मैं भी (उज्जेषम्) उत्तम करूं । हे (सोम) ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले न्यायाधीश ! आप जैसे (पशून्) हिरणादि पशुओं को (उदजयत्) उत्तम करते हो वैसे (तान्) उन को मैं भी (उज्जेषम्) उत्तम करूं ॥ ३१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा सब प्रजाओं को अच्छे प्रकार बढ़ावे तो उस को भी प्रजाजन क्यों न बढ़ावें और जो ऐसा न करे तो उस को प्रजा भी कभी न बढ़ावे ॥ ३१ ॥

पूषेत्यस्य तापस ऋषिः । पूषादयो मन्त्रोक्ता देवताः । कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर राजा और प्रजाजन किन के दृष्टान्तों से क्या २ करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्च दिशऽउदंजयत्ताऽउज्जेषंꣳ सविता षडक्षरेण षड् ऋतूनुदंजयत्तानुज्जेषं मरुतः सप्ताक्षरेण सप्त ग्राम्यान् पशूनुदंजयँस्तानुज्जेषं बृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीमुदंजयत्तामुज्जेषम् ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! (पूषा) चन्द्रमा के समान सब को पुष्ट करने वाले आप जैसे (पञ्चाक्षरेण) पांच अक्षर की दैवी पंक्ति से (पञ्च) पूर्वादि चार और एक ऊपर नीचे को (दिशः) दिशाओं को (उदजयत्) उत्तम कीर्त्ति से भरते हो वैसे (ताः) उनको मैं भी (उज्जेषम्) श्रेष्ठ कीर्त्ति से भर देऊं। हे राजन् ! (सविता) सूर्य्य के समान आप जैसे (षडक्षरेण) छः अक्षरों की दैवी त्रिष्टुप् से जिन (षट्) छः (ऋतून्) वसन्तादि ऋतुओं को (उदजयत्) शुद्ध करते हो वैसे (तान्) उन को मैं भी (उज्जेषम्) शुद्ध करूं। हे सभाजनो ! (मरुतः) वायु के समान आप जसे (सप्ताक्षरेण) सात अक्षरों की दैवी जगती से (सप्त) गाय, घोड़ा, भैंस, ऊंट, बकरी, भेड़ और गधा इन सात (ग्राम्यान्) गांव के (पशून्) पशुओं को (उदजयत्) बढ़ाते हो वैसे (तान्) उनको मैं भी बढ़ाऊं। हे सभेश ! (बृहस्पतिः) समस्त विद्याओं के जानने वाले विद्वान् के समान आप जैसे (अष्टाक्षरेण) आठ अक्षरों की याजुषी अनुष्टुप् से जिस (गायत्रीम्) गान करने वाले की रक्षा करने वाली विद्वान् स्त्री की (उदजयत्) प्रतिष्ठा करते हो वैसे (ताम्) उस की मैं भी (उज्जेषम्) प्रतिष्ठा करूं॥ ३२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजा सब का पोषक, जिस की सब दिशाओं में कीर्त्ति, ऐश्वर्य्ययुक्त, सभा के कामों में चतुर, पशुओं का रक्षक और वेदों का ज्ञाता हो, उसी को राजा और सेना के सब मनुष्य अपना अधिष्ठाता बना कर उन्नति देवें॥ ३२॥

मित्र इत्यस्य तापस ऋषिः। मित्रादयो मन्त्रोक्ता देवताः। कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

राजा के सत्याचार के अनुसार प्रजा और प्रजा के अनुसार राजा करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृत्तꣳ स्तोममुदजयत् तमुज्जेषं वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयत्तामुज्जेषमिन्द्रऽएकादशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयत्तामुज्जेषं विश्वे देवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयँस्तामुज्जेषम्॥ ३३॥

पदार्थः—हे राजन् ! (मित्रः) सब के हितकारी आप जैसे (नवाक्षरेण) नव अक्षर की याजुषी बृहती से जिस (त्रिवृत्तम्) कर्म्म उपासना और ज्ञान के (स्तोमम्) स्तुति के योग को (उदजयत्) उत्तमता से जानते हो वैसे (तम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) अच्छे प्रकार जानूं। हे प्रशंसा के योग्य सभेश ! (वरुणः) सब कार से श्रेष्ठ आप जैसे (दशाक्षरेण) दश अक्षरों की याजुषी पंक्ति से जिस (विराजम्) विराट् छन्द से प्रतिपादित अर्थ को (उदजयत्) प्राप्त हुए हो वैसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) प्राप्त होऊं (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य्य देने वाले आप जैसे (एकादशाक्षरेण) ग्यारह अक्षरों की आसुरी पंक्ति से जिस (त्रिष्टुभम्) त्रिष्टुप् छन्द वाची को (उदजयत्) अच्छे प्रकार जानते हो वैसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) अच्छे प्रकार जानूं। हे सभ्य जनो (विश्वे) सब (देवाः) विद्वानो ! आप जैसे (द्वादशाक्षरेण) बारह अक्षरों की साम्नी गायत्री से जिस (जगतीम्) जगती से कही हुई नीति का (उदजयत्) प्रचार करते हो वैसे (ताम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) प्रचार करूं॥ ३३॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि सब प्राणियों में मित्रता से अच्छे प्रकार शिक्षा कर इन प्रजाजनों को उत्तम गुणयुक्त विद्वान् करें जिस से ये ऐश्वर्य्य के भागी होकर राजभक्त हों ॥३३॥

वसव इत्यस्य तापस ऋषिः। वस्वादयो मंत्रोक्ता देवताः। वसव इत्यस्य निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः। आदित्या इत्यस्य निचृद्धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर भी राजा और प्रजा के धर्म्म कार्य्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वस॑व॒स्त्रयो॑दशाक्षरेण॒ त्रयो॑द॒शꣳ स्तोम॑मु॒द॑जयँ॒स्तमु॒ज्जे॑षꣳ रु॒द्राश्च॒तु॑र्द॑शाक्षरेण॒ च॒तु॒र्द॒शꣳ स्तोम॑मु॒द॑जयँ॒स्तमु॒ज्जे॑षम्। आ॒दि॒त्याः पञ्च॑दशाक्षरेण॒ पञ्च॒द॒शꣳ स्तोम॑मु॒द॑जयँ॒स्तमु॒ज्जे॑षमदि॑ति॒ः षोड॑शाक्षरेण॒ षोड॒शꣳ स्तोम॑मु॒द॑जय॒त्तमु॒ज्जे॑षं प्र॒जाप॑तिः स॒प्तद॑शाक्षरेण॒ स॒प्तद॒शꣳ स्तोम॑मु॒द॑जय॒त्तमु॒ज्जे॑षम् ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे राजादि सभ्य जनो (वसवः) चौबीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य से विद्या पढ़ने वाले विद्वानो ! आप लोग जैसे (त्रयोदशाक्षरेण) तेरह अक्षरों की आसुरी अनुष्टुप् वेदस्थ छन्द से जिस (त्रयोदशम्) दश प्राण जीव महत्तत्त्व और अव्यक्त कारणरूप (स्तोमम्) प्रशंसा के योग्य पदार्थ समूह को (उदजयन्) श्रेष्ठता से जानें वैसे (तम्) उस को मैं भी (उज्जेषम्) उत्तमता से जानूं। हे वल पराक्रम और पुरुषार्थयुक्त (रुद्राः) चवालीस वर्षपर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्य से विद्या पढ़ने हारे विद्वानो ! जैसे आप (चतुर्दशाक्षरेण) चौदह अक्षरों की साम्नी उष्णिक् छन्द से (चतुर्दशम्) दश इन्द्रिय मन बुद्धि चित्त और अहंकाररूप (स्तोमम्) प्रशंसा के योग्य पदार्थविद्या को (उदजयन्) प्रशंसित करें वैसे मैं भी (तम्) उसको (उज्जेषम्) प्रशंसित करूं। हे (आदित्याः) अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य से समस्त विद्याओं को ग्रहण करने हारे पूर्ण विद्या से शरीर और आत्मा के समस्त बल से युक्त सूर्य्य के समान प्रकाशमान विद्वानो ! आप लोग जैसे (पञ्चदशाक्षरेण) पंद्रह अक्षरों की आसुरी गायत्री से (पञ्चदशम्) चार वेद चार उपवेद अर्थात् आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद, (गानविद्या) तथा अर्थवेद (शिल्पशास्त्र) छः अंग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष) मिल के चौदह उन का संख्यापूरक पंद्रहवां क्रिया-कुशलतारूप (स्तोमम्) स्तुति के योग्य को (उदजयन्) अच्छे प्रकार से जानें वैसे मैं भी (तम्) उसको (उज्जेषम्) अच्छे प्रकार जानूं। हे (अदितिः) आत्मरूप से नाशरहित सभाध्यक्ष राजा की विदुषी स्त्री अखण्डित ऐश्वर्य्ययुक्त ! आप जैसे (षोडशाऽक्षरेण) सोलह अक्षर की साम्नी अनुष्टुप् से (षोडशम्) प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान इन सोलह पदार्थों की व्याख्यायुक्त (स्तोमम्) प्रशंसा के योग्य को (उदजयत्) उत्तमता से जानें वैसे मैं भी (तम्) उस को (उज्जेषम्) उत्तमता से जानूं। हे नरेश ! (प्रजापतिः) प्रजा के रक्षक आप जैसे (सप्तदशाक्षरेण) सत्रह अक्षरों की निचृदार्ची छन्द से (सप्तदशम्) चार वर्ण चार आश्रम, सुनना, विचारना, ध्यान करना, अप्राप्त की इच्छा, प्राप्त का रक्षण, रक्षित का बढ़ाना, बढ़े हुए को अच्छे मार्ग सब के उपकार में खर्च करना यह चार प्रकार का पुरुषार्थ और मोक्ष का अनुष्ठानरूप (स्तोमम्) अच्छे प्रकार प्रशंसनीय को उत्तमता से जानें वैसे मैं भी (उज्जेषम्) उत्तमता से जानूं ॥ ३४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्य लोगो ! इन चार मंत्रों से जितना राजा और प्रजा का धर्म कहा उस का अनुष्ठान कर तुम सुखी होओ॥ ३४॥

एष त इत्यस्य वरुण ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृदुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

कैसा मनुष्य चक्रवर्ती राज्य सेवने को योग्य होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एष ते निर्ऋते भागस्तं जुषस्व स्वाहाऽग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरःसद्भ्यः स्वाहा यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा मित्रावरुणनेत्रेभ्यो वा मरुन्नेत्रेभ्यो वा देवेभ्यऽउत्तरासद्भ्यः स्वाहा सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्यऽ उपरिसद्भ्यो दुवस्वद्भ्यः स्वाहा ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे (निर्ऋते) सदैव सत्याचरणयुक्त राजन् ! (ते) आप का जो (एषः) यह (भागः) सेवने योग्य है उस को (अग्निनेत्रेभ्यः) अग्नि के प्रकाश के समान नीतियुक्त (देवेभ्यः) विद्वानों से (स्वाहा) सत्य वाणी (पुरःसद्भ्यः) जो प्रथम सभा वा राज्य में स्थित हो उन (देवेभ्यः) न्यायाधीश विद्वानों से (स्वाहा) धर्मयुक्त क्रिया (यमनेत्रेभ्यः) जिन की वायु के समान सर्वत्र गति (दक्षिणासद्भ्यः) जो दक्षिण दिशा में राजप्रबन्ध के लिये स्थित हों उन (देवेभ्यः) विद्वानों से (स्वाहा) दानक्रिया (विश्वदेवनेत्रेभ्यः) सब विद्वानों के तुल्य नीति के ज्ञानी (पश्चात्सद्भ्यः) जो पश्चिम दिशा में राजकर्मचारी हों उन (देवेभ्यः) दिव्य सुख देने हारे विद्वानों से (स्वाहा) उत्साहकारक वाणी (मित्रावरुणनेत्रेभ्यः) प्राण और अपान के समान वा (मरुन्नेत्रेभ्यः) ऋत्विक् यज्ञ के कर्त्ता (वा) सत्पुरुष के समान न्यायकारक वा (उत्तरासद्भ्यः) जो उत्तर दिशा में न्यायाधीश हों उन (देवेभ्यः) विद्वानों से दूतकर्म की कुशल क्रिया (सोमनेत्रेभ्यः) चन्द्रमा के समान ऐश्वर्य्ययुक्त होकर सब को आनन्ददायक (उपरिसद्भ्यः) विद्या विनय धर्म और ईश्वर की सेवा करने हारे (देवेभ्यः) विद्वानों से (स्वाहा) आप्त पुरुषों की वाणी को प्राप्त हो के तू सदा धर्म का (जुषस्व) सेवन किया कर॥ ३५॥

भावार्थः—हे राजन् सभाध्यक्ष ! जब आप सब ओर से उत्तम विद्वानों से युक्त होकर सब प्रकार की शिक्षा को प्राप्त सभा का करने हारा सेना का रक्षक उत्तम सहाय से सहित होकर सनातन वेदोक्त राजधर्मनीति से प्रजा का पालन कर इस लोक और परलोक में सुख ही को प्राप्त होवे, जो कर्म से विरुद्ध रहेगा तो तुझ को सुख भी न होगा। कोई भी मनुष्य मूर्खों के सहाय से सुख की वृद्धि नहीं कर सकता और न कभी विद्वानों के अनुसार चलने वाला मनुष्य सुख को छोड़ देता है इस से राजा सर्वदा विद्या धर्म और आप्त विद्वानों के सहाय से राज्य की रक्षा किया करे। जिस की सभा वा राज्य में पूर्णविद्यायुक्त धार्मिक मनुष्य सभासद् वा कर्मचारी होते हैं और जिसके सभा वा राज्य में मिथ्यावादी व्यभिचारी अजितेन्द्रिय कठोर वचनों के बोलने वाले अन्यायकारी चोर और डाकू आदि नहीं होते और आप भी इसी प्रकार का धार्मिक हो तो वही पुरुष चक्रवर्त्ती राज्य करने के योग्य होता है इससे विरुद्ध नहीं॥ ३५॥

ये देवा इत्यस्य वरुण ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

मनुष्य लोग सर्वत्र घूमघाम कर विद्या ग्रहण करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

ये देवाऽअग्निनेत्राः पुरःसदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा यमनेत्रा दक्षिणासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा विश्वदेवनेत्राः पश्चात्सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा मित्रावरुणनेत्रा वा मरुन्नेत्रा वोत्तरासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवाः सोमनेत्राऽउपरिसदो दुवस्वन्तस्तेभ्यः स्वाहा ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे सभाध्यक्ष राजन् ! आप (ये) जो (अग्निनेत्राः) बिजुली आदि पदार्थों के समान जानने वाले (पुरःसदः) जो सभा वा देश वा पूर्व की दिशा में स्थित (देवाः) विद्वान् हैं (तेभ्यः) उन से (स्वाहा) सत्यवाणी (ये) जो (यमनेत्राः) अहिंसादि योगाङ्ग रीतियों में निपुण (दक्षिणासदः) दक्षिण दिशा में स्थित (देवाः) योगी और न्यायाधीश हैं (तेभ्यः) उन से (स्वाहा) सत्यक्रिया (ये) जो (पश्चात्सदः) पश्चिम दिशा में (विश्वदेवनेत्राः) सब पृथिवी आदि पदार्थों के ज्ञाता (देवाः) सब विद्या जानने वाले विद्वान् हैं (तेभ्यः) उनसे (स्वाहा) दण्डनीति (ये) जो (उत्तरासदः) प्रश्नोत्तरों का समाधान करने वाले उत्तर दिशा में (वा) नीचे ऊपर स्थित (मित्रावरुणनेत्राः) प्राण उदान के समान सब धर्मों के बताने वाले (वा) अथवा (मरुन्नेत्राः) ब्रह्माण्ड के वायु में नेत्र विज्ञान और (देवाः) सब को सुख देने वाले विद्वान् हैं (तेभ्यः) उन से (स्वाहा) सब के उपकारक विद्या को सेवन करो और (ये) जो (उपरिसदः) ऊंचे आसन वा व्यवहार में स्थित (दुवस्वन्तः) बहुत प्रकार से धर्म के सेवन से युक्त (सोमनेत्राः) सोम आदि औषधियों के जानने तथा (देवाः) आयुर्वेद को जानने हारे हैं उन से (स्वाहा) अमृतरूपी औषधीविद्या का सेवन कीजिये ॥ ३६ ॥

भावार्थः—हे राजा आदि मनुष्यो ! तुम लोग जब धार्मिक सुशील विद्वान् होकर सब दिशाओं में स्थित सब विद्याओं के जानने वाले आप्त विद्वानों की परीक्षा और सत्कार के लिये सब विद्याओं को प्राप्त होंगे तब यह तुम्हारे समीप आके तुम्हारे साथ सङ्ग करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्धि करावें । जो देश देशान्तर तथा द्वीप द्वीपान्तर में विद्या नम्रता अच्छी शिक्षा काम की चतुराई को ग्रहण करते हैं वे ही सब को अच्छे सुख कराने वाले होते हैं ॥ ३६ ॥

अग्ने सहस्वेत्यस्य देववात ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी राजा आदि किस प्रकार वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने सहस्व पृतनाऽअभिमातीरपास्य । दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसि ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सब विद्या जानने वाले विद्वान् राजन् ! (दुष्टरः) दुःख से तरने योग्य (तरन्) शत्रु सेना को अच्छे प्रकार तरते हुए आप (यज्ञवाहसि) जिस में

राजधर्मयुक्त राज्य में (अभिमातीः) अभिमान आनन्दयुक्त (पृतनाः) बल और अच्छी शिक्षायुक्त वीर सेना को (सहस्व) सहो (अरातीः) दुःख देने वाले शत्रुओं को (अपास्य) दूर निकालिये और (वर्चः) विद्या बल और न्याय को (धाः) धारण कीजिये ॥ ३७ ॥

भावार्थः—राजादि सभा सेना के स्वामी लोग अपनी दृढ़ विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त सेना के सहित आप अजय और शत्रुओं को जीतते हुए भूमि पर उत्तम यज्ञ का विस्तार करें ॥ ३७ ॥

देवस्य त्वेत्यस्य देववात ऋषिः । रक्षोघ्नो देवता । स्वराड्ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

प्रजाजन राज्य में कैसे सभाधीश का स्वीकार करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । उपाꣳशोर्वीर्य्येण जुहोमि हतꣳ रक्षः स्वाहा । रक्षसां त्वा वधायावधिष्म रक्षोऽवधिष्मामुमसौ हतः ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! मैं (स्वाहा) सत्य क्रिया से (सवितुः) ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करने वाले (देवस्य) प्रकाशित न्याययुक्त (प्रसवे) ऐश्वर्य्य में (उपांशोः) समीपस्थ सेना से (वीर्य्येण) सामर्थ्य से (अश्विनोः) सूर्य्य चन्द्रमा के समान सेनापति के (बाहुभ्याम्) भुजों से (पूष्णः) पुष्टिकारक वैद्य के (हस्ताभ्याम्) हाथों से (रक्षः) राक्षसों के (वधाय) नाश के अर्थ (त्वा) आप को (जुहोमि) ग्रहण करता हूं । जैसे तूने (रक्षः) दुष्ट को (हतम्) नष्ट किया वैसे हम लोग भी (अवधिष्म) दुष्टों को मारें जैसे (असौ) वह दुष्ट (हतः) नष्ट हो जाय वैसे हम लोग इन सब को (अवधिष्म) नष्ट करें ॥ ३८ ॥

भावार्थः—प्रजाजनों को चाहिये कि अपने बचाव और दुष्टों के निवारणार्थ विद्या और धर्म की प्रवृत्ति के लिये अच्छे स्वभाव विद्या और धर्म के प्रचार करने हारे वीर जितेन्द्रिय सत्यवादी सभा के स्वामी राजा का स्वीकार करें ॥ ३८ ॥

सविता त्वेत्यस्य देववात ऋषिः । रक्षोघ्नो देवता । अतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

सभ्य मनुष्य राजा को किस २ विषय में प्रेरणा करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

सविता त्वा सवानाꣳ सुवतामग्निर्गृहपतीनाꣳ सोमो वनस्पतीनाम् । बृहस्पतिर्वाचऽइन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो मित्रः सत्यो वरुणो धर्मपतीनाम् ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे सभापते राजन् ! जो तू (सवानाम्) ऐश्वर्य्यों के (सविता) सूर्य्य के समान प्रेरक (गृहपतीनाम्) गृहस्थों के उपकारक (अग्निः) पावक के सदृश (वनस्पतीनाम्) पीपल आदि वृक्षों में (सोमः) सोमवल्ली के सदृश (धर्म्मपतीनाम्) धर्म के पालने हारों के मध्य में

(सत्यः) सज्जनों में सज्जन (वरुणः) शुभ गुण कर्मों से श्रेष्ठ (मित्रः) सखा के तुल्य (वाचे) वेदवाणी के लिये (बृहस्पतिः) महाविद्वान् के सदृश (ज्यैष्ठचाय) श्रेष्ठता के लिये (इन्द्रः) परमैश्वर्य्य से युक्त के तुल्य (पशुभ्यः) गौ आदि पशुओं के लिये (रुद्रः) शुद्ध वायु के सदृश है उस (त्वा) तुझ को धर्मात्मा सत्यवादी विद्वान् धर्म से प्रजा की रक्षा में (सुवताम्) प्रेरणा करें ।। ३९ ।।

भावार्थः—हे राजन् ! जो आपको अधर्म से लौटाकर धर्म के अनुष्ठान में प्रेरणा करें उन्हीं का सङ्ग सदा करो औरों का नहीं ।। ३९ ।।

इमं देवा इत्यस्य देववात ऋषिः । यजमानो देवता । भुरिग् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

किस-किस प्रयोजन के लिये कैसे राजा का स्वीकार करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

इमं देवाऽअसपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशऽएष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा ।। ४० ।।

पदार्थः—हे प्रजास्थ (देवाः) विद्वान् लोगो ! तुम जो (एषः) यह (सोमः) चन्द्रमा के समान प्रजा में प्रियरूप (वः) तुम क्षत्रियादि और हम ब्राह्मणादि और जो (अमी) परोक्ष में वर्त्तमान हैं उन सब का राजा है उस (इमम्) इस (अमुष्य) उस उत्तम पुरुष का (पुत्रम्) पुत्र (अमुष्यै) उस विद्यादि गुणों से श्रेष्ठ धर्मात्मा विद्वान् स्त्री के पुत्र को (अस्यै) इस (विशे) प्रजा के लिये इसी पुरुष को (महते) बड़े (ज्यैष्ठ्याय) प्रशंसा के योग्य (महते) बड़े (जानराज्याय) धार्मिक जनों के राज्य करने (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य्ययुक्त (इन्द्रियाय) धन के वास्ते (असपत्नम्) शत्रुरहित (सुवध्वम्) कीजिये ।। ४० ।।

भावार्थः—हे राजा और प्रजा के मनुष्यो ! तुम जो विद्वान् माता और पिता से अच्छे प्रकार सुशिक्षित कुलीन बड़े उत्तम २ गुण कर्म और स्वभावयुक्त जितेन्द्रियादि गुणयुक्त ४८ (अड़तालीस) वर्षपयन्त ब्रह्मचर्य्य से पूर्ण विद्या से सुशील शरीर और आत्मा के पूर्ण बलयुक्त धर्म से प्रजा का पालक प्रेमी विद्वान् हो उस को सभापति राजा मान कर चक्रवर्त्तिराज्य का सेवन करो ।। ४० ।।

इस अध्याय में राजधर्म के वर्णन से इस अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ।।

।। इति नवमोऽध्यायः ।।

॥ ओ३म् ॥

ॐ अथ दशमाऽध्यायारम्भः ॐ

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥ १ ॥

य० ३० । ३ ॥

अपो देवा इत्यस्य वरुण ऋषिः । आपो देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

इस के पश्चात् इस दशवें अध्याय के प्रथम मन्त्र में मनुष्य लोग विद्वानों के अनुकूल चलें इस विषय का उपदेश किया है ॥

अ॒पो दे॒वा मधु॑मतीरगृभ्ण॒न्नूर्ज॑स्वती राज॒स्व॒श्चिता॑नाः । याभि॑र्मि॒त्रावरु॑णा-व॒भ्यषि॑ञ्च॒न् याभि॒रिन्द्र॒मन॑य॒न्नत्यरा॑तीः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (देवाः) चतुर विद्वान् लोग (याभिः) जिन क्रियाओं से (मित्रावरुणौ) प्राण तथा उदान को (अभ्यसिंचन्) सब प्रकार सींचते और जिन क्रियाओं से (इन्द्रम्) बिजुली को प्राप्त और (अरातीः) शत्रुओं को (अनयन्) जीतते हैं उन क्रियाओं से (मधुमतीः) प्रशंसनीय मधुरादि गुणयुक्त (ऊर्जस्वतीः) बल पराक्रम बढ़ाने (चितानाः) चेतनता देने और (राजस्वः) ज्ञान-प्रकाश-युक्त राज्य को प्राप्त कराने हारे (अपः) जल वा प्राणों को (अगृभ्णन्) ग्रहण करो ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के सहाय से जल वा प्राणों की परीक्षा करके उन से उपयोग लेवें । शत्रुओं को निवृत्त करके प्रजा के साथ प्राणों के समान प्रीति से वर्त्तें और इन जल तथा प्राणों से उपकार लेवें ॥ १ ॥

वृष्ण ऊर्मिरित्यस्य वरुण ऋषिः । वृषा देवता । स्वराड् ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

अब विद्वान् लोग कैसे राजा से क्या-क्या मागें यह उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

वृष्ण॑ऽऊ॒र्मिर॑सि राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रं मे॑ देहि॒ स्वाहा॑ वृष्ण॑ऽऊ॒र्मिर॑सि राष्ट्र॒दा राष्ट्र॒म॒मुष्मै॑ देहि वृ॒ष॒से॒नो॑ऽसि राष्ट्र॒दा रा॒ष्ट्रं मे॑ देहि॒ स्वाहा॑ वृ॒ष॒से॒नो॑ऽसि राष्ट्र॒दा राष्ट्र॒म॒मुष्मै॑ देहि ॥ २ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! जिस कारण आप (वृष्णः) सुख के वर्षाकारक ज्ञान के प्राप्त कराने (राष्ट्रदाः) राज्य के देने हारे (असि) हैं इस से (मे) मुझे (स्वाहा) सत्य नीति

से (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये (वृष्णः) सुख की वृष्टि करने वाले राज्य के (ऊर्मिः) जानने और (राष्ट्रदाः) राज्य प्रदान करने हारे (असि) हैं (अमुष्मै) उस राज्य की रक्षा करने वाले को (राष्ट्रम्) न्याय से प्रकाशित राज्य को (देहि) दीजिये (राष्ट्रदाः) राजाओं के कर्मों के देने हारे (वृषसेनः) बलवान् सेना से युक्त (असि) हैं (मे) प्रत्यक्ष वर्त्तमान मेरे लिये (स्वाहा) सुन्दर वाणी से (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये तथा (राष्ट्रदाः) प्रत्यक्ष राज्य को देने वाले (वृषसेनः) आनन्दित पुष्टसेना से युक्त (असि) हैं इस से आप (अमुष्मै) उस परोक्ष पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये ॥ २ ॥

भावार्थः—जो राजपुरुष दुष्ट प्राणियों को जीत प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार कर के अधिकार और शोभा को देता है उस के लिये चक्रवर्त्ती राज्य का अधिकार होना योग्य है ॥ २ ॥

अर्थेत इत्यस्य वरुण ऋषिः । अपां पतिर्देवता । पूर्वस्याभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः । देहीत्यस्य निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

राजा मन्त्री सेना और प्रजा के पुरुष आपस में किस प्रकार वर्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अर्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहार्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहाऽपां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देह्यपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहाऽपां गर्भोऽसि राष्ट्रद राष्ट्रममुष्मै देहि ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो तुम लोग (अर्थेतः) श्रेष्ठ पदार्थों को प्राप्त होते हुए (स्वाहा) सत्य नीति से (राष्ट्रदाः) राज्य सेवने हारे सभासद (स्थ) होवें आप लोग (मे) मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये जो तुम लोग (अर्थेतः) पदार्थों को जानते हुए (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाले (स्थ) हो वे तुम लोग (अमुष्मै) राज्य के रक्षक उस पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जो तुम लोग (स्वाहा) सत्य नीति के साथ (ओजस्वतीः) विद्या बल और पराक्रम से युक्त हुई रानी लोग आप (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारी (स्थ) हैं वे (मे) मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जो आप लोग (ओजस्वतीः) जितेन्द्रिय (राष्ट्रदाः) राज्य की देने वाली (स्थ) हैं वे आप लोग (अमुष्मै) विद्या बल और पराक्रम से युक्त पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जो तुम लोग (स्वाहा) सत्य नीति से (परिवाहिणीः) अपने समान प्यारी (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारी (स्थ) हैं वे आप लोग (मे) मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जो

तुम लोग (परिवाहिणीः) अपने अनुकूल पतियों के साथ प्रसन्न होने वाली (आपः) आत्मा के समान प्रिय (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाली (स्थ) हैं वे आप (अमुष्मै) उस ब्रह्मचारी वीर पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। हे सभाध्यक्ष! जो आप (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (अपाम्) जलाशयों के (पतिः) रक्षक (असि) हैं सो (मे) मुझे (स्वाहा) सत्य नीति के साथ (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये। हे सभापति! जो आप (स्वाहा) सत्य वचनों से (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाले (अपाम्) प्राणों के (पतिः) रक्षक (असि) हैं वे (अमुष्मै) उस प्राणियों के पोषक पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये। हे वीर पुरुष राजन्! जो आप (स्वाहा) सत्य नीति के साथ (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाले (अपाम्) सेनाओं के बीच (गर्भः) गर्भ के समान रक्षित (असि) हैं सो आप (मे) विचारशील मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये। हे राजन्! जो आप (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (अपाम्) प्रजाओं के विषय (गर्भः) स्तुति के योग्य (असि) हैं सो आप (अमुष्मै) उस प्रशंसित पुरुष को (राष्ट्रम्) राज्य को (देहि) दीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो राज्य के अधिकारी पुरुष और उनकी स्त्रियां हों उन को चाहिये कि अपनी उन्नति के लिये दूसरों की उन्नति को सह के सब मनुष्यों को राज्य के योग्य कर और आप भी चक्रवर्ती राज्य का भोग किया करें ऐसा न हो कि ईर्ष्या से दूसरों की हानि कर के अपने राज्य का भङ्ग करें ॥ ३ ॥

सूर्य्यत्वचस इत्यस्य वरुण ऋषिः। सूर्य्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः। पूर्वस्य जगती छन्दः। निषादः स्वरः। सूर्य्यवर्चस इति द्वितीयस्य स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। व्रजक्षित इति तृतीयस्य शविष्ठा इति चतुर्थस्य च स्वराट् विकृतिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः। व्रजक्षितस्थेत्यस्य स्वराट् संकृतिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः। शक्वरीस्थेत्यस्य भुरिगाकृतिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। मधुमतीरित्यस्य भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्यों को कैसा हो के किस २ के लिये क्या २ देना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सूर्य्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्य्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त सूर्य्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्य्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शक्वरी स्थ राष्ट्रदा

राष्ट्रममुष्मै दत्त जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा जनभृतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त। मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्तां महि क्षत्रं क्षत्रियाय वन्वानाऽअनाधृष्टाः सीदत सहौजसो महि क्षत्रं क्षत्रियाय दधतीः ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे राजपुरुषो ! तुम लोग (सूर्य्यत्वचसः) सूर्य के समान अपने न्याय प्रकाश से सब तेज को ढांकने वाले होते हुए (स्वाहा) सत्य न्याय के साथ (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ) हो इसलिये (मे) मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। हे मनुष्यो ! जिस कारण (सूर्यत्वचसः) सूर्य्यप्रकाश के समान विद्या पढ़ने वाले होते हुए तुम लोग (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ) हो इसलिये (अमुष्मै) उस विद्या में सूर्यवत् प्रकाशमान पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। हे विद्वान् मनुष्यो ! (सूर्यवर्चसः) सूर्य के समान तेजधारी होते हुए तुम लोग (स्वाहा) सत्य वाणी से (राष्ट्रदाः) राज्यदाता (स्थ) हो इस कारण (मे) तेजस्वी मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये जिस कारण (सूर्यवर्चसः) सूर्य्य के समान प्रकाशमान होते हुए आप लोग (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ) हो इसलिये (अमुष्मै) उस प्रकाशमान पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जिस कारण (मान्दाः) मनुष्यों को आनन्द देने हारे होते हुए आप लोग (स्वाहा) सत्य वचनों के साथ (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाले (स्थ) हो इसलिये (मे) आनन्द देने हारे मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये जिसलिये आप लोग (मान्दाः) प्राणियों को सुख देने वाले होके (राष्ट्रदाः) राज्यदाता (स्थ) हो इसलिये (अमुष्मै) उस सुखदाता जन को (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जिस कारण आप लोग (व्रजक्षितः) गौ आदि पशुओं के स्थानों को बसाते हुए (स्वाहा) सत्य क्रियाओं के सहित (राष्ट्रदाः) राज्यदाता (स्थ) हैं इसलिये (मे) पशुरक्षक मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जिस कारण आप लोग (व्रजक्षितः) स्थान आदि से पशुओं के रक्षक होते हुए (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ) हैं इस से (अमुष्मै) उस गौ आदि पशुओं के रक्षक पुरुष के लिये राज्य को (दत्त) दीजिये। जिसलिये आप लोग (वाशाः) कामना करते हुए (स्वाहा) सत्य नीति से (राष्ट्रदाः) राज्यदाता (स्थ) हैं इसलिये (मे) इच्छायुक्त मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जिस कारण आप लोग (वाशाः) इच्छायुक्त होते हुए (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाले (स्थ) हैं इसलिये (अमुष्मै) उस इच्छायुक्त पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जिस कारण आप लोग (शविष्ठाः) अत्यन्त बल वाले होते हुए (स्वाहा) सत्य पुरुषार्थ से (राष्ट्रदाः) राज्यदाता (स्थ) हैं इस कारण (मे) बलवान् मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। जिस कारण आप लोग (शविष्ठाः) अति पराक्रमी (राष्ट्रदाः) राज्यदाता (स्थ) हैं इस कारण (अमुष्मै) उस अति पराक्रमी जन के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये। हे राणी लोगो ! जिसलिये आप (शक्वरीः) सामर्थ्य वाली होती हुई (स्वाहा) सत्य पुरुषार्थ से (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारी (स्थ) हैं इसलिये (मे) सामर्थ्यवान् मुझे

(राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिस कारण आप (शक्करीः) सामर्थ्ययुक्त (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाली (स्थ) हैं इस कारण (अमुष्मै) उस सामर्थ्ययुक्त पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिसलिये आप लोग (जनभृतः) श्रेष्ठ मनुष्यों का पोषण करने हारी होती हुई (स्वाहा) सत्य कर्मों के साथ (राष्ट्रदाः) राज्य देने वाली (स्थ) हैं इसलिये (मे) श्रेष्ठगुणयुक्त मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिसलिये आप (जनभृतः) सज्जनों को धारण करने हारे (राष्ट्रदाः) राज्यदाता (स्थ) हैं इसलिये (अमुष्मै) उस सत्यप्रिय पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । हे सभाध्यक्षादि राजपुरुषो ! जिसलिये आप लोग (विश्वभृतः) सब संसार का पोषण करने वाले होते हुए (स्वाहा) सत्य वाणी के साथ (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ) हैं इसलिये (मे) सब के पोषक मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिसलिये आप लोग (विश्वभृतः) विश्व को धारण करने हारे (राष्ट्रदाः) राज्यदाता (स्थ) हैं इसलिये (अमुष्मै) उस धारण करने हारे मनुष्य के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिस कारण आप लोग (आपः) सब विद्या और धर्म विषय में व्याप्ति वाले होते हुए (स्वाहा) सत्य क्रिया से (राष्ट्रदाः) राज्य देने हारे (स्थ) हैं इस कारण (मे) शुभ गुणों में व्याप्त मुझे (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । जिसलिये आप लोग (आपः) सब विद्या और धर्म मार्ग को जानने हारे (स्वराजः) आप से आप ही प्रकाशमान (राष्ट्रदाः) राज्यदाता (स्थ) हैं इसलिये (अमुष्मै) उस धर्मज्ञ पुरुष के लिये (राष्ट्रम्) राज्य को (दत्त) दीजिये । हे सज्जन स्त्री लोगो ! आप को चाहिये कि (क्षत्रियाय) राजपूतों के लिये (महि) बड़े पूजा के योग्य (क्षत्रम्) क्षत्रियों के राज्य को (वन्वानाः) चाहती हुई (सहोजसः) बल पराक्रम के सहित वर्त्तमान (क्षत्रियाय) राजपूतों के लिये (महि) बड़े (क्षत्रम्) राज्य को (दधतीः) धारण करती हुई (अनाधृष्टाः) शत्रुओं के वश में न आने वाली (मधुवतीः) मधुर आदि रस वाली ओषधी (मधुमतीभिः) मधुरादि-गुणयुक्त वसन्त आदि ऋतुओं से सुखों को (पृच्यन्ताम्) सिद्ध किया करें । हे सज्जन पुरुषो ! तुम लोग इस प्रकार की स्त्रियों को (सीदत) प्राप्त होओ ।। ४ ।।

भावार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! जो सूर्य के समान न्याय और विद्या का प्रकाश कर सब को आनन्द देने गौ आदि पशुओं की रक्षा करने शुभ गुणों से शोभायमान बलवान् अपने तुल्य स्त्रियों से विवाह और संसार का पोषण करने वाले स्वाधीन हैं वे ही औरों के लिये राज्य देने और आप सेवन करने को समर्थ होते हैं अन्य नहीं ।। ४ ।।

सोमस्येत्यस्य वरुण ऋषिः । अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः । भुरिग् धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ।।

राजा लोगों को चाहिये कि सत्यवादी धर्मात्मा राजाओं के समान अपने सब काम करें और क्षुद्राशय, लोभी, अन्यायी तथा लंपटी के तुल्य कदापि न हों
इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

सोम॑स्य॒ त्विषि॑रसि॒ तवे॑व मे॒ त्विषि॑र्भूयात् । अ॒ग्नये॒ स्वाहा॒ सोमा॑य॒ स्वाहा॑ सवि॒त्रे स्वाहा॒ सर॑स्वत्यै॒ स्वाहा॑ पू॒ष्णे स्वाहा॒ बृह॒स्पत॑ये॒ स्वाहेन्द्रा॑य॒ स्वाहा॒ घोषा॑य॒ स्वाहा॒ श्लोका॑य॒ स्वाहाऽंशा॑य॒ स्वाहा॒ भगा॑य॒ स्वाहा॑र्य॒म्णे स्वाहा॑ ।। ५ ।।

पदार्थः—हे राजन् ! जैसे आप (सोमस्य) ऐश्वर्य्य के (त्विषिः) प्रकाश करने हारे (असि) हैं वैसा मैं भी होऊं जिससे (तवेव) आप के समान (मे) मेरा (त्विषिः) विद्याओं का प्रकाश होवे, जैसे आप ने (अग्नये) बिजुली आदि के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी और प्रियाचरणयुक्त विद्या (सोमाय) ओषधि जानने के लिये (स्वाहा) वैद्यक की पुरुषार्थयुक्त विद्या (सवित्रे) सूर्य्य को समझने के लिये (स्वाहा) भूगोल विद्या (सरस्वत्यै) वेदों का अर्थ और अच्छी शिक्षा जानने वाली वाणी के लिये (स्वाहा) व्याकरणादि वेदों के अङ्गों का ज्ञान (पूष्णे) प्राण तथा पशुओं की रक्षा के लिये (स्वाहा) योग और व्याकरण की विद्या (बृहस्पतये) बड़े प्रकृति आदि के पति ईश्वर को जानने के लिये (स्वाहा) ब्रह्मविद्या (इन्द्राय) इन्द्रियों के स्वामी जीवात्मा के बोध के लिये (स्वाहा) विचारविद्या (घोषायै) सत्य और प्रियभाषण से युक्त वाणी के लिये (स्वाहा) सत्य उपदेश और व्याख्यान देने की विद्या (श्लोकाय) तत्वज्ञान का साधक शास्त्र श्रेष्ठ काव्य गद्य और पद्य आदि छन्द रचना के लिये (स्वाहा) छन्द और शुभ मूल काव्यशास्त्र आदि की विद्या (अंशाय) परमाणुओं के समझने के लिये (स्वाहा) सूक्ष्म पदार्थों का ज्ञान (भगाय) ऐश्वर्य्य के लिये (स्वाहा) पुरुषार्थज्ञान (अर्य्यम्णे) न्यायाधीश होने के लिये (स्वाहा) राजनीति विद्या को ग्रहण करते हैं वैसे मुझे भी करना अवश्य है ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को ऐसी आशंसा (इच्छा) करनी चाहिये कि जैसे सत्यवादी धर्मात्मा राजा लोगों के गुण कर्म स्वभाव होते हैं वैसे ही हम लोगों के भी होवें ॥ ५ ॥

पवित्रे स्थ इत्यस्य वरुण ऋषिः । आपो देवताः । स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

जैसे कुमार पुरुष ब्रह्मचर्य्य से विद्या ग्रहण करें वैसे कन्या भी पढ़ें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः । अनिभृष्टमसि वाचो बन्धुस्तपोजाः सोमस्य दात्रमसि स्वाहा राजस्वः ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे सभापति राजपुरुष ! जिस लिये आप (वाचः) वेदवाणी के (अनिभृष्टम्) भ्रष्टतारहित आचरण किये (बन्धुः) भाई (असि) हैं (सोमस्य) ओषधियों के काटने वाले (तपोजाः) ब्रह्मचर्य्यादि तप से प्रसिद्ध (असि) हैं आप की आज्ञा से (सवितुः) सब जगत् को उत्पन्न करने हारे ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न हुए जगत् में (वैष्णव्यौ) सब विद्या अच्छी शिक्षा शुभ गुण कर्म और स्वभाव में व्यापनशील और (पवित्रे) शुद्ध आचरणवाली (स्थः) तुम दोनों हो । हे पढ़ाने परीक्षा करने और पढ़ने हारी स्त्री लोगो ! मैं (सवितुः) ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये इस जगत् में (सूर्य्यस्य) सूर्य्य की (रश्मिभिः) किरणों के समान (अच्छिद्रेण) छेदरहित (पवित्रेण) विद्या अच्छी शिक्षा धर्मज्ञान जितेन्द्रियता और ब्रह्मचर्य्य आदि करके पवित्र किये हुए से (वः) तुम लोगों को (उत्पुनामि) अच्छे प्रकार पवित्र करता हूं तुम लोग (स्वाहा) सत्य क्रिया से (राजस्वः) राजाओं में वीरों को उत्पन्न करने वाली हो ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजा आदि पुरुषो! तुम लोग इस जगत् में कन्याओं को पढ़ाने के लिये शुद्धविद्या की परीक्षा करने वाली स्त्री लोगों को नियुक्त करो। जिस से ये कन्या लोग विद्या और शिक्षा को प्राप्त हो के जवान हुई प्रिय वर पुरुषों के साथ स्वयंवर विवाह करके वीर पुरुषों को उत्पन्न करें॥ ६॥

सधमाद इत्यस्य वरुण ऋषिः। वरुणो देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

राजाओं को यह अवश्य चाहिये कि सब प्रजा और अपने कुल के बालकों को ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या और सुशिक्षायुक्त करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सधमादो द्युम्निनीरापऽएताऽअनाधृष्टाऽअपस्यो वसानाः। पस्त्यासु चक्रे वरुणः सधस्थमपाᳬ शिशुर्मातृतमास्वन्तः॥ ७॥

पदार्थः—जो (वरुणः) श्रेष्ठ राजा हो वह (एताः) विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई (सधमादः) एक साथ प्रसन्न होने वाली (द्युम्निनीः) प्रशंसनीय धन कीर्ति से युक्त (अनाधृष्टाः) जो किसी से न दवें (आपः) जल के समान शान्तियुक्त (वसानाः) वस्त्र और आभूषणों से ढकी हुईं (पस्त्यासु) घरों के (अपस्यः) कामों में चतुर विद्वान् स्त्री होवें उन (अपाम्) विद्याओं में व्याप्त स्त्रियों का जो (शिशुः) बालक हो उस को (मातृतमासु) अति मान्य करने हारी धाइयों के (अन्तः) समीप (सधस्थम्) एक समीप के स्थान में शिक्षा के लिये रक्खे॥ ७॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि अपने राज्य में प्रयत्न के साथ सब स्त्रियों को विद्वान् और उन से उत्पन्न हुए बालकों को विद्यायुक्त धाइयों के आधीन करे कि जिस से किसी के बालक विद्या और अच्छी शिक्षा के बिना न रहें और स्त्री भी निर्बल न हो॥ ७॥

क्षत्रस्येत्यस्य वरुण ऋषिः। यजमानो देवता। स्वराट् कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

सब प्रजापुरुषों को योग्य है कि सब प्रकार से योग्य सभापति राजा की निरन्तर सब ओर से रक्षा करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

क्षत्रस्योल्वमसि क्षत्रस्य जराय्वसि क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसीन्द्रस्य वार्त्रघ्नमसि मित्रस्यासि वरुणस्यासि त्वयायं वृत्रं वधेत्। दृवासि रुजासि क्षुमासि। पातैनं प्राञ्चं पातैनं प्रत्यञ्चं पातैनं तिर्यञ्चं दिग्भ्यः पात॥ ८॥

पदार्थः—हे राजन्! जो आप (क्षत्रस्य) अपने राजकुल में (उल्वम्) बलवान् (असि) हैं (क्षत्रस्य) क्षत्रिय पुरुष को (जरायु) वृद्धावस्था देने हारे (असि) हैं (क्षत्रस्य) राज्य के (योनिः) निमित्त (असि) हैं (क्षत्रस्य) राज्य के (नाभिः) प्रवन्धकर्त्ता (असि) हैं (इन्द्रस्य) सूर्य्य के (वार्त्रघ्नम्) मेघ का नाश करने हारे के समान कर्मकर्त्ता (असि) हैं (मित्रस्य) मित्र के मित्र (असि) हैं (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुषों के साथ

श्रेष्ठ (असि) हैं (हवा) शत्रुओं के विदारण करने वाले (असि) हैं (रुजा) शत्रुओं को रोगातुर करने हारे (असि) हैं और (क्षुमा) सत्य का उपदेश करने हारे (असि) हैं जो (अयम्) यह वीर पुरुष (त्वया) आप राजा के साथ (वृत्रम्) मेघ के समान न्याय के छिपाने वाले शत्रु को (ववेत्) मारे (एनम्) इस (प्राञ्चम्) प्रथम प्रबंध करने वाले (एनम्) राजपुरुष की तुम लोग (दिग्भ्यः) सब दिशाओं से (पात) रक्षा करो इस (तिर्य्यंञ्चम्) तिर्छे खड़े हुए (एनम्) राजपुरुष की (पात) रक्षा करो ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो कन्या और पुत्रों में स्त्री और पुरुषों में विद्या बढ़ाने वाला कर्म है वही राज्य का बढ़ाने शत्रुओं का विनाश और धर्म आदि की प्रवृत्ति कराने वाला होता है। इसी कर्म से सब कालों और सब दिशाओं में रक्षा होती है ॥ ८ ॥

आविर्मर्य्या इत्यस्य वरुण ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। भुरिगष्टिश्छन्दः।
मध्यमः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि अपना स्वभाव अच्छा करके आप्त विद्वान् आदि को अवश्य प्राप्त होवें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

आविर्मर्य्याऽआवित्तोऽअग्निर्गृहपतिरावित्तऽइन्द्रो वृद्धश्रवाऽआवित्तौ मित्रावरुणौ धृतव्रतावावित्तः पूषा विश्ववेदाऽआवित्ते द्यावापृथिवी विश्वशम्भुवावावित्तादितिरुरुशर्म्मा ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (मर्य्याः) मनुष्यो ! तुम लोग जो (गृहपतिः) घरों के पालन करने हारे (अग्निः) प्रसिद्ध अग्नि के समान विद्वान् पुरुष को (आविः) प्रकटता से (आवित्तः) प्राप्त वा निश्चय करके जाना (वृद्धश्रवाः) श्रेष्ठता से सब शास्त्रों को सुने हुए (इन्द्रः) शत्रुओं के मारने हारे सेनापति को (आविः) प्रकटता से (आवित्तः) प्राप्त हो वा जाना (धृतव्रतौ) सत्य आदि व्रतों को धारण करने हारे (मित्रावरुणौ) मित्र और श्रेष्ठ जनों को (आविः) प्रकटता से (आवित्तौ) प्राप्त वा जाना (विश्ववेदाः) सब ओषधियों को जानने हारे (पूषा) पोषणकर्त्ता वैद्य को (आविः) प्रसिद्धि से (आवित्तः) प्राप्त हुए (विश्वशम्भुवौ) सब के लिये सुख देने हारे (द्यावापृथिवी) बिजुली और भूमि को (आविः) प्रकटता से (आवित्ते) जाने (उरुशर्म्मा) बहुत सुख देने वाली (अदितिः) विद्वान् माता को प्रसिद्ध (आवित्ता) प्राप्त हुए तो तुम को सब सुख प्राप्त हो जावें ॥ ९ ॥

भावार्थः—जब तक मनुष्य लोग श्रेष्ठ विद्वानों, उत्तम विदुषी माता और प्रसिद्ध पदार्थों के विज्ञान को प्राप्त नहीं होते तब तक सुख की प्राप्ति और दुःखों की निवृत्ति करने को समर्थ नहीं होते ॥ ९ ॥

अवेष्टा इत्यस्य वरुण ऋषिः। यजमानो देवता। विराडार्षी पंक्तिश्छन्दः।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करके किस-किस को प्राप्त हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अवेष्टा दन्दशूकाः प्राचीमारोह गायत्री त्वावतु रथन्तरꣳ साम त्रिवृत् स्तोमो वसन्तऽऋतुर्ब्रह्म द्रविणम् ॥ १० ॥

पदार्थः—हे राजन् ! जो आप (अवेष्टाः) विरोधी का सङ्ग करने वाले (दंदशूकाः) दूसरों को दुःख देने के लिये काट खाने वाले हैं। उन को जीत के (प्राचीम्) पूर्व दिशा में (आरोह) प्रसिद्ध हों उस (त्वा) आप को (गायत्री) पढ़ा हुआ गायत्री छन्द (रथन्तरम्) रथों से जिसके पार हों ऐसा वन (साम) सामवेद (त्रिवृत्) तीन मन वाणी और शरीर के बलों का बोध कराने वाला (स्तोमः) स्तुति के योग्य (वसन्तः) वसन्त (ऋतुः) ऋतु (ब्रह्म) वेद ईश्वर और ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणकुलरूप (द्रविणम्) धन (अवतु) प्राप्त होवे ॥ १० ॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्याओं में प्रसिद्ध होते हैं वे शत्रुओं को जीत के ऐश्वर्य्य को प्राप्त हो सकते हैं ॥ १० ॥

दक्षिणामित्यस्य वरुण ऋषिः । यजमानो देवता । आर्ची पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह सभापति राजा क्या करके क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

दक्षिणामारोह त्रिष्टुप् त्वावतु बृहत्साम पञ्चदश स्तोमो ग्रीष्मऽऋतुः क्षत्रं द्रविणम् ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् राजन् ! जिस (त्वा) आप को (त्रिष्टुप्) इस नाम के छन्द से सिद्ध विज्ञान (बृहत्) बड़ा (साम) सामवेद का भाग (पञ्चदशः) पांच प्राण अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान; पांच इन्द्रिय अर्थात् श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण; पांच भूत अर्थात् जल, भूमि, अग्नि, वायु और आकाश, इन पन्द्रह की पूर्त्ति करने हारा (स्तोमः) स्तुति के योग्य (ग्रीष्मः) (ऋतुः) ग्रीष्म ऋतु (क्षत्रम्) क्षत्रियों के धर्म का रक्षक क्षत्रियकुलरूप और (द्रविणम्) राज्य से प्रकट हुआ धन (अवतु) प्राप्त हो । वह आप (दक्षिणाम्) दक्षिण दिशा में (आरोह) प्रसिद्ध हूजिये और शत्रुओं को जीतिये ॥ ११ ॥

भावार्थः—जो राजा विद्या को प्राप्त हुआ क्षत्रियकुल को बढ़ावे उस का तिरस्कार शत्रुजन कभी न कर सकें ॥ ११ ॥

प्रतीचीमित्यस्य वरुण ऋषिः । यजमानो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

राजपुरुषों को चाहिये कि वैश्य कुल को नित्य बढ़ावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रतीचीमारोह जगती त्वावतु वैरूपꣳ साम सप्तदश स्तोमो वर्षाऽऋतुर्विड् द्रविणम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे राजपुरुष ! जिस (त्वा) आप को (जगती) जगती छन्द में कहा हुआ अर्थ (वैरूपम्) विविध प्रकार के रूपों वाला (साम) सामवेद का अंश (सप्तदश) पांच कर्म इन्द्रिय; पांच शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध विषय पांच महाभूत अर्थात् सूक्ष्म भूत, कार्य्य और कारण इन सत्रह का पूरण करने वाला (स्तोमः) स्तुतियों का समूह (वर्षाः) वर्षा (ऋतुः) ऋतु (द्रविणम्) द्रव्य और (विट्) वैश्यजन (अवतु) प्राप्त हों । सो आप (प्रतीचीम्) पश्चिम दिशा को (आरोह) आरूढ़ और धन को प्राप्त हूजिये ॥ १२ ॥

भावार्थः—जो राजपुरुष राजनीति के साथ वैश्यों की उन्नति करें वे ही लक्ष्मी को प्राप्त होवें ॥ १२ ॥

उदीचीमित्यस्य वरुण ऋषिः । यजमानो देवता । आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर राजा आदि पुरुषों को क्या प्राप्त करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

उदीचीमारोहानुष्टुप् त्वावतु वैराजꣳ सामैकविꣳश स्तोमः शरदृतुः फलं द्रविणम् ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे सभापति राजा ! आप (उदीचीम्) उत्तर की दिशा में (आरोह) प्रसिद्धि को प्राप्त हूजिये । जिस से (अनुष्टुप्) जिस को पढ़ के सब विद्याओं से दूसरों की स्तुति करें वह छन्द (वैराजम्) अनेक प्रकार के अर्थों से शोभायमान (साम) सामवेद का भाग (एकविंशः) सोलह कला, चार पुरुषार्थ के अवयव और एक कर्त्ता इन इक्कीस को पूरण करने हारा (स्तोमः) स्तुति का विषय (शरत्) शरद् (ऋतुः) ऋतु (द्रविणम्) ऐश्वर्य्य और (फलम्) फलरूप सेवाकारक शूद्रकुल (त्वा) आपको (अवतु) प्राप्त होवे ॥ १३ ॥

भावार्थः—जो पुरुष आलस्य को छोड़ सब समय में पुरुषार्थ का अनुष्ठान करते हैं वे अच्छे फलों को भोगते हैं ॥ १३ ॥

ऊर्ध्वामित्यस्य वरुण ऋषिः । यजमानो देवता । भुरिग्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि प्रबल विद्या से अनेक पदार्थों को जानें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऊर्ध्वामारोह पङ्क्तिस्त्वावतु शाक्वररैवते सामनी त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ स्तोमौ हेमन्तशिशिरावृतू वर्चो द्रविणं प्रत्यस्तं नमुचेः शिरः ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! आप जो (ऊर्ध्वाम्) ऊपर की दिशा में (आरोह) प्रसिद्ध होवें वो (त्वा) आपको (पंक्तिः) पंक्ति नाम का पढ़ा हुआ छन्द (शाक्वररैवते) शक्वरी और रेवती छन्द से युक्त (सामनी) सामवेद के पूर्व उत्तर दो अवयव (त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ) तीन काल नव अङ्कों की विद्या और तेंतीस वसु आदि पदार्थ जिन दोनों से व्याख्यान किये गये हैं उनके पूर्ण करने वाले (स्तोमौ) स्तोत्रों के दो भेद (हेमन्तशिशिरौ) (ऋतू) हेमन्त और शिशिर ऋतु (वर्चः) ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या का पढ़ना और (द्रविणम्) ऐश्वर्य्य (अवतु) तृप्त करे और (नमुचेः) दुष्ट चोर का (शिरः) मस्तक (प्रत्यस्तम्) नष्ट भ्रष्ट होवे ॥ १४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य सब ऋतुओं में समय के अनुसार आहार विहार युक्त होके विद्या योगाभ्यास और सत्संगों का अच्छे प्रकार सेवन करते हैं । वे सब ऋतुओं में सुख भोगते हैं और इनको कोई चोर आदि भी पीड़ा नहीं दे सकता ॥ १४ ॥

सोमेत्यस्य वरुणऋषिः । परमात्मा देवता । निचृदार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

राजा और प्रजापुरुषों को उचित है कि ईश्वर के समान न्यायाधीश होकर आपस में एक दूसरे की रक्षा करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सोमस्य त्विषिरसि तवेव मे त्विषिर्भूयात् । मृत्योः पाह्योजोऽसि सहोऽस्यमृतमसि ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे परम आप्त विद्वन् ! जैसे आप (सोमस्य) ऐश्वर्य्य का (त्विषिः) प्रकाश करने हारे (असि) हैं (ओजः) पराक्रमयुक्त (असि) हैं वैसा मैं भी होऊं (तवेव) आपके समान (मे) मेरा (त्विषिः) विद्या प्रकाश से भाग्योदय (भूयात्) हो आप मुझ को (मृत्योः) मृत्यु से (पाहि) बचाइये ॥ १५ ॥

भावार्थः—हे पुरुषो ! जैसे धार्मिक विद्वान् अपने को जो इष्ट है उसी को प्रजा के लिये भी इच्छा करें, जैसे प्रजा के जन राजपुरुषों की रक्षा करें वैसे राजपुरुष भी प्रजाजनों की निरन्तर रक्षा करें ॥ १५ ॥

हिरण्यरूपावित्यस्य वरुण ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । स्वराडार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब विद्वानों को चाहिये कि आप निष्कपट हो और अज्ञानी पुरुषों के लिये सत्य का उपदेश करके उनको बुद्धिमान् विद्वान् बनावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

हिरण्यरूपाऽउषसो विरोकऽउभाविन्द्राऽउदिथः सूर्यश्च । आरोहतं वरुण मित्र गर्त्तं ततश्चक्षाथामदितिं दितिं च । मित्रोऽसि वरुणोऽसि ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे उपदेश करने हारे (मित्र) सब के सुहृद ! जिसलिये आप (मित्रः) सुख देने वाले (असि) हैं तथा हे (वरुण) शत्रुओं को मारने हारे बलवान् सेनापति ! जिसलिए आप (वरुणः) सबसे उत्तम (असि) हैं इसलिए आप दोनों (गर्त्तम्) उपदेश करने वाले के घर पर (आरोहतम्) जाओ (अदितिम्) अविनाशी (च) और (दितिम्) नाशमान पदार्थों का (चक्षाथाम्) उपदेश करो । हे (हिरण्यरूपौ) प्रकाशस्वरूप (उभौ) दोनों (इन्द्रौ) परमैश्वर्य्य करने हारे जैसे (विरोके) विविध प्रकार की रुचि कराने हारे व्यवहार में (सूर्य्यः) सूर्य्य (च) और चन्द्रमा (उषसः) प्रातः और निशा काल के अवयवों को प्रकाशित करते हैं वैसे तुम दोनों जन (उदिथः) विद्याओं का उपदेश करो ॥ १६ ॥

भावार्थः—जिस देश में सूर्य्य चन्द्रमा के समान उपदेश करने हारे व्याख्यानों से सब विद्याओं का प्रकाश करते हैं, वहां सत्याऽसत्य पदार्थों के बोध से सहित होके कोई भी विद्याहीन होकर भ्रम में नहीं पड़ता । जहां यह बात नहीं होती वहां अन्धपरम्परा में फंसे हुए मनुष्य नित्य ही क्लेश पाते हैं ॥ १६ ॥

सोमस्येत्यस्य वरुण ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता । आर्षीपंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

पूर्वोक्त कार्य्यों की प्रवृत्ति के लिये कैसे पुरुष को राज्याऽधिकार देना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सोम॑स्य त्वा द्युम्नेना॒भिषि॑ञ्चाम्य॒ग्नेर्भ्राज॑सा॒ सूर्य॑स्य॒ वर्च॒सेन्द्र॑स्येन्द्रि॒येण॑। क्ष॒त्राणां॑ क्ष॒त्रप॑तिरे॒ध्यति॑ दि॒द्यून् पा॑हि ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे प्रशंसित गुण कर्म और स्वभाव वाले राजा ! जैसे मैं जिस तुझ को (सोमस्य) चन्द्रमा के समान (द्युम्नेन) यशरूप प्रकाश से (अग्नेः) अग्नि के समान (भ्राजसा) तेज से (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के समान (वर्चसा) पढ़ने से और (इन्द्रस्य) बिजुली के समान (इन्द्रियेण) मन आदि इन्द्रियों के सहित (त्वा) आपको (अभिषिञ्चामि) राज्याऽधिकारी करता हूं। वैसे वे आप (क्षत्राणाम्) क्षत्रिय कुल में जो उत्तम हों उन के बीच (क्षत्रपतिः) राज्य के पालने हारे (अत्येधि) अति तत्पर हूजिये और (दिद्यून्) विद्या तथा धर्म का प्रकाश करने हारे व्यवहारों की (पाहि) निरन्तर रक्षा कीजिये ॥ १७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जो शान्ति आदि गुणयुक्त जितेन्द्रिय विद्वान् पुरुष हो उस को राज्य का अधिकार देवें और उस राजा को चाहिये कि राज्याऽधिकार को प्राप्त हो अतिश्रेष्ठ होता हुआ विद्या और धर्म आदि के प्रकाश करने हारे प्रजापुरुषों को निरन्तर बढ़ावे ॥ १७ ॥

इमं देवा इत्यस्य देववात ऋषिः। यजमानो देवता। स्वराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

सत्य के उपदेशक विद्वानों को चाहिये कि बाल्यावस्था से लेके अच्छी शिक्षा से राजाओं की कन्या और पुत्रों को श्रेष्ठ आचारयुक्त करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इ॒मं दे॑वाऽअसप॒त्नꣳ सु॑वध्वं मह॒ते क्ष॒त्राय॑ मह॒ते ज्यैष्ठ्या॑य मह॒ते जान॑राज्या॒येन्द्र॑स्येन्द्रि॒याय॑। इ॒मम॒मुष्य॑ पु॒त्रम॒मुष्यै॑ पु॒त्रम॒स्यै वि॒शऽए॒ष वो॑ऽमी॒ राजा॒ सोमो॒ऽस्माकं॑ ब्राह्म॒णाना॒ꣳ राजा॑ ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे (देवाः) वेद शास्त्रों को जानने हारे सेनापति लोग आप ! जो (एषः) यह उपदेशक वा सेनापति (वः) तुम्हारा और (अस्माकम्) हमारा (ब्राह्मणानाम्) ईश्वर और वेद के सेवक ब्राह्मणों का (राजा) वेद और ईश्वर की उपासना से प्रकाशमान अधिष्ठाता है। जो (अमी) वे धर्मात्मा राजपुरुष हैं उन का (सोमः) शुभ गुणों से प्रसिद्ध (राजा) सर्वत्र विद्या धर्म और अच्छी शिक्षा का करने हारा है उस (इमम्) इस (अमुष्य) श्रेष्ठगुणों से युक्त राजपूत के (पुत्रम्) पुत्र को (अमुष्यै) प्रशंसा करने योग्य राजकन्या के (पुत्रम्) पवित्र गुण कर्म और स्वभाव से माता पिता की रक्षा करने वाले पुत्र और (अस्यै) अच्छी शिक्षा करने योग्य इस वर्त्तमान (विशे) प्रजा के लिये तथा (महते) सत्कार करने योग्य (क्षत्राय) क्षत्रिय कुल के लिये (महते) बड़े (ज्यैष्ठ्याय) विद्या और धर्म विषय में श्रेष्ठ पुरुषों के होने के लिये (महते) श्रेष्ठ (जानराज्याय) माण्डलिक राजाओं के ऊपर बलवान् समर्थ होने के लिये (इन्द्रस्य) सब ऐश्वर्यों से युक्त धनाढ्य के (इन्द्रियाय) धन बढ़ाने के लिये (असपत्नम्) जिस का कोई शत्रु न हो ऐसे पुत्र को (सुवध्वम्) उत्पन्न करो ॥ १८ ॥

भावार्थः—जो उपदेशक और राजपुरुष सब प्रजा की उन्नति किया चाहें तो प्रजा के

मनुष्य राजा और राजपुरुषों की उन्नति करने की इच्छा क्यों न करें। जो राजपुरुष और प्रजापुरुष वेद और ईश्वर की आज्ञा को छोड़ के अपनी इच्छा के अनुकूल प्रवृत्त होवें तो इन की उन्नति का विनाश क्यों न हो ॥ १८ ॥

प्रपर्वतस्येत्यस्य देववात ऋषिः । विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर इस जगत् में राजा और प्रजाजनों को किस प्रकार के यान बनाने चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्र पर्वतस्य वृषभस्य पृष्ठान्नावश्चरन्ति स्वसिचऽइयानाः । ताऽआववृत्रन्नधरागुदक्ताऽअहिं बुध्न्यमनु रीयमाणाः । विष्णोर्विक्रमणमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि विष्णोः क्रान्तमसि ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे राजा के कारीगर पुरुष ! जो तू (स्वसिचः) जिन को अपने लोग जल से सींचते हैं (इयानाः) चलते हुए (उदक्ताः) फिर फिर ऊपर को जावें (अहिं बुध्न्यम्) अन्तरिक्ष में रहने वाले मेघ के (अनुरीयमाणाः) पीछे पीछे चलाने से चलते हुए (नावः) समुद्र के ऊपर नौकाओं के समान चलते हुए विमान (वृषभस्य) वर्षा करने हारे (पर्वतस्य) मेघ के (पृष्ठात्) ऊपर के भाग से (प्रचरन्ति) चलते हैं जिन से तू (विष्णोः) व्यापक ईश्वर के इस जगत में (विक्रमणम्) पराक्रम सहित (असि) है (विष्णोः) व्यापक वायु के बीच (विक्रान्तम्) अनेक प्रकार चलने हारा (असि) है और (विष्णोः) व्यापक बिजुली के बीच (क्रान्तम्) चलने का आधार (असि) है जो (अधराक्) मेघ से नीचे (आववृत्रन्) मेघ के समान विचरते हैं उन विमानादि यानों को तू सिद्ध कर ॥ १९ ॥

भावार्थः—जैसे मेघ वर्ग के भूमि के तले को प्राप्त हो के पुनः आकाश को प्राप्त होता है। वह जल नदियों में जाके पीछे समुद्र को प्राप्त होता है। जो जल के भीतर अर्थात् जिन के ऊपर नीचे जल होता है। वैसे ही सब कारीगर लोगों को चाहिये कि विमानादि यानों और नौकाओं को बना के भूमि जल और आकाश मार्ग से अभीष्ट देशों में यथेष्ट जाना आना करें। जब तक ऐसे यान नहीं बनाते तब तक द्वीप द्वीपान्तरों में कोई भी नहीं जा सकता। जैसे पक्षी अपने शरीररूप संघात को आकाश में उड़ा ले चलते हैं वैसे चतुर कारीगर लोगों को चाहिये कि इस अपने शरीर आदि को यानों के द्वारा आकाश में फिरावें ॥ १९ ॥

प्रजापत इत्यस्य देववात ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । स्वराडतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की उपासना और उसकी आज्ञा पालने से सब कामनाओं को प्राप्त हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्त्वयममुष्य पिताऽसावस्य पिता वयꣳ स्याम पतयो रयीणाꣳ स्वाहा । रुद्र यत्ते क्रिवि परं नाम तस्मिन् हुतमस्यमेष्टमसि स्वाहा ॥ २० ॥

पदार्थः—हे (प्रजापते) प्रजा के स्वामी ईश्वर ! जो (एतानि) जीव प्रकृति आदि वस्तु (विश्वा) सब (रूपाणि) इच्छा रूप आदि गुणों से युक्त हैं (ता) उन के ऊपर आप से (अन्यः) दूसरा कोई (न) नहीं (परिबभूव) जान सकता (ते) आप के सेवन से (यत्कामाः) जिस २ पदार्थ की कामना वाले होते हुए (वयम्) हम लोग (जुहुमः) आपका सेवन करते हैं वह २ पदार्थ आपकी कृपा से (नः) हम लोगों के लिये (अस्तु) प्राप्त होवे । जैसे आप (अमुष्य) उस परोक्ष जगत् के (पिता) रक्षा करने हारे हैं (असौ) सो आप इस प्रत्यक्ष जगत् के रक्षक हैं । वैसे हम लोग (स्वाहा) सत्य वाणी से (रयीणाम्) विद्या और चक्रवर्त्ति राज्य आदि से उत्पन्न हुई लक्ष्मी के (पतयः) रक्षा करने वाले (स्याम) हों । हे (रुद्र) दुष्टों को रुलाने हारे परमेश्वर ! (ते) आप का जो (क्रिवि) दुःखों से छुड़ाने का हेतु (परम्) उत्तम (नाम) नाम है (तस्मिन्) उस में आप (हुतम्) स्वीकार किये (असि) हैं (अमेष्टम्) घर में इष्ट (असि) हैं उन आप को हम लोग (स्वाहा) सत्य वाणी से ग्रहण करते हैं ।। २० ।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो सब जगत् में व्याप्त सब के लिये माता पिता के समान वर्त्तमान दुष्टों को दण्ड देने द्वारा उपासना करने को इष्ट है उसी जगदीश्वर की उपासना करो । इस प्रकार के अनुष्ठान से तुम्हारी सब कामना अवश्य सिद्ध हो जावेंगी ।। २० ।।

इन्द्रस्येत्यस्य देववात ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता । भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।।

फिर विद्वान् पुरुषों को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इन्द्रस्य वज्रोऽसि मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा युनज्मि । अव्यथायै त्वा स्वधायै त्वाऽरिष्टो अर्जुनो मरुतां प्रसवेन जयापाम मनसा समिन्द्रियेण ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! जो आप (अरिष्टः) किसी के मारने में न आने वाले (अर्जुनः) प्रशंसा के योग्य रूप से युक्त (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य्य वाले का (वज्रः) शत्रुओं के लिये वज्र के समान (असि) हैं जिस (त्वा) आप को (अव्यथायै) पीड़ा न होने के लिये (प्रशास्त्रोः) सब को शिक्षा देने वाले (मित्रावरुणयोः) सभा और सेना के स्वामी की (प्रशिषा) शिक्षा से मैं (युनज्मि) समाहित करता हूं (मरुताम्) ऋत्विज लोगों के (प्रसवेन) कहने से (स्वधायै) अपनी चीज को धारण करना रूप राजनीति के लिये जिस (त्वा) आप का योगाभ्यास से चिन्तन करता हूं (मनसा) विचारशील मन (इन्द्रियेण) जीवने सेवे हुए इन्द्रिय से जिस (त्वा) आप को हम लोग (समापाम) सम्यक् प्राप्त होते हैं । सो आप (जय) दुष्टों को जीत के निश्चिन्त उत्कृष्ट हूजिये ।। २१ ।।

भावार्थः—विद्वानों को चाहिये कि राजा और प्रजापुरुषों को धर्म और अर्थ की सिद्धि के लिये सदा शिक्षा देवें । जिससे ये किसी को पीड़ा देने रूप राजनीति से विरुद्ध कर्म न करें । सब प्रकार बलवान् हो के शत्रुओं को जीतें जिस से कभी धन सम्पत्ति की हानि न होवे ।। २१ ।।

मा त इत्यस्य देववात ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

प्रजापुरुषों को राजा के साथ कैसे वर्त्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

मा तऽइन्द्र ते वयं तुराषाडयुक्तासोऽअब्रह्मता विदसाम । तिष्ठा रथमधि यं वज्रहस्ता रश्मीन्देव यमसे स्वश्वान् ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (देव) प्रकाशमान (इन्द्र) सभापति राजन् ! (वज्रहस्त) जिस के हाथों में वज्र के समान शस्त्र हों उस आप के साथ (वयम्) हम राजप्रजापुरुष (ते) आप के सम्बन्ध में (अयुक्तासः) अधर्मकारी (मा) न होवें (ते) आप की (अब्रह्मता) वेद तथा ईश्वर में रहित निष्ठा (मा) न हो और न (विदसाम) नष्ट करें जो (तुराषाट्) शीघ्रकारी शत्रुओं को सहने हारे आप जिन (रश्मीन्) घोड़े के लगाम की रस्सी और (स्वश्वान्) सुन्दर घोड़ों को (यमसे) नियम से रखते हैं और जिस (रथम्) रथ के ऊपर (अधितिष्ठ) बैठें। उन घोड़ों और उस रथ के हम लोग भी अधिष्ठाता होवें ॥ २२ ॥

भावार्थः—राजा और प्रजा के पुरुषों को योग्य है कि राजा के साथ अयोग्य व्यवहार कभी न करें तथा राजा भी इन प्रजाजनों के साथ अन्याय न करे वेद और ईश्वर की आज्ञा का सेवन करते हुए सब लोग एक सवारी एक बिछौने पर बैठें और एकसा व्यवहार करने वाले होवें और कभी आलस्य प्रमाद से ईश्वर और वेदों की निन्दा वा नास्तिकता में न फंसें ॥ २२ ॥

अग्नय इत्यस्य देववात ऋषिः । अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब माता और पुत्र आपस में कैसे संवाद करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्नये गृहपतये स्वाहा सोमाय वनस्पतये स्वाहा मरुतामोजसे स्वाहेन्द्रस्येन्द्रियाय स्वाहा । पृथिवि मातर्मा मा हिंसीर्मोऽअहं त्वाम् ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे प्रजा के मनुष्यो ! जैसे राजा और राजपुरुष हम लोग (गृहपतये) गृहाश्रम के स्वामी (अग्नये) धर्म और विज्ञान से युक्त पुरुष के लिये (स्वाहा) सत्यनीति (सोमाय) सोमलता आदि ओषधि और (वनस्पतये) वनों की रक्षा करने हारे पीपल आदि के लिये (स्वाहा) वैद्यक शास्त्र के बोध से उत्पन्न हुई क्रिया (मरुताम्) प्राणों वा ऋत्विज लोगों के (ओजसे) बल के लिये (स्वाहा) योगाभ्यास और शान्ति की देने हारी वाणी और (इन्द्रस्य) जीव के (इन्द्रियाय) मन इन्द्रिय के लिये (स्वाहा) अच्छी शिक्षा से युक्त उपदेश का आचरण करते हैं वैसे ही तुम लोग भी करो। हे (पृथिवि) भूमि के समान बहुत से शुभ लक्षणों से युक्त (मातः) मान्य करनेहारी जननी ! तू (मा) मुझ को (मा) मत (हिंसीः) बुरी शिक्षा से दुःख दे और (त्वाम्) तुझ को (अहम्) मैं भी (मो) न दुःख देऊं ॥ २३ ॥

भावार्थः—राजा आदि राजपुरुषों को प्रजा के हित प्रजापुरुषों को राजपुरुषों के सुख और सब की उन्नति के लिये परस्पर वर्त्तना चाहिये। माता को योग्य है कि बुरी शिक्षा और मूर्खता रूप अविद्या देकर सन्तानों की बुद्धि नष्ट न करे और सन्तानों को उचित है कि अपनी माता के साथ कभी द्वेष न करें ॥ २३ ॥

हंस इत्यस्य वामदेव ऋषिः । सूर्य्यो देवता । भुरिगार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

मनुष्य लोग ईश्वर की उपासनापूर्वक सब के लिये न्याय और अच्छी शिक्षा करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजाऽऋतजाऽअद्रिजाऽऋतं बृहत् ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोगों को चाहिये कि जो परमेश्वर (हंसः) सब पदार्थों को स्थूल करता (शुचिषत्) पवित्र पदार्थों में स्थित (वसुः) निवास करता और कराता (अन्तरिक्षसत्) अवकाश में रहता (होता) सब पदार्थ देता ग्रहण करता और प्रलय करता (वेदिषत्) पृथिवी में व्यापक (अतिथिः) अभ्यागत के समान सत्कार करने योग्य (दुरोणसत्) घर में स्थित (नृषत्) मनुष्यों के भीतर रहता (वरसत्) उत्तम पदार्थों में वसता (ऋतसत्) सत्यप्रकृति आदि नाम वाले कारण में स्थित (व्योमसत्) पोल में रहता (अब्जाः) जलों को प्रसिद्ध करता (गोजाः) पृथिवी आदि तत्वों को उत्पन्न करता (ऋतजाः) सत्यविद्याओं के पुस्तक वेदों को प्रसिद्ध करता (अद्रिजाः) मेघ पर्वत और वृक्ष आदि को रचता (ऋतम्) सत्यस्वरूप और (बृहत्) सब से बड़ा अनन्त है उसी की उपासना करो ॥ २४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि सर्वत्र व्यापक और पदार्थों की शुद्धि करने हारे ब्रह्म परमात्मा ही की उपासना करें क्योंकि उस की उपासना के बिना किसी को धर्म्म अर्थ काम मोक्ष से होने वाला पूर्ण सुख कभी नहीं हो सकता ॥ २४ ॥

इयदित्यस्य वामदेव ऋषिः । सूर्यो देवता । आर्षी जगती छन्दः । निषाद स्वरः ॥

मनुष्य ईश्वर की उपासना क्यों करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इयदस्यायुरस्यायुर्मयि धेहि युङ्ङसि वर्चोऽसि वर्चो मयि धेह्यूर्गस्यूर्ज्जं मयि धेहि । इन्द्रस्य वां वीर्यकृतो बाहूऽअभ्युपावहरामि ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! आप (इयत्) इतना (आयुः) जीवन (मयि) मुझ में (धेहि) धरिये जिस से आप (युङ्) सब को समाधि कराने वाले (असि) हैं (वर्चः) स्वयं प्रकाशस्वरूप (असि) हैं इस कारण (उर्क्) अत्यन्त बलवान् (असि) हैं इसलिये (ऊर्जम्) बल पराक्रम को (मयि) मेरे में (धेहि) धारण कीजिये । हे राज और प्रजा के पुरुषो ! (वीर्य्यकृतः) बल पराक्रम को बढ़ाने हारे (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य्य और परमात्मा के आश्रय से (वाम्) तुम राजप्रजापुरुषों के (बाहू) बल और पराक्रम को (अभ्युपावहरामि) सब प्रकार तुम्हारे समीप में स्थापन करता हूं ॥ २५ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपने हृदय में ईश्वर की उपासना करते हैं वे सुन्दर जीवन आदि के सुखों को भोगते हैं और कोई भी पुरुष ईश्वर के आश्रय के विना पूर्ण बल और पराक्रम को प्राप्त नहीं हो सकता ॥ २५ ॥

स्योनासीत्यस्य वामदेव ऋषिः । आसन्दी राजपत्नी देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

स्त्रियों का न्याय विद्या उन को शिक्षा स्त्री लोग ही करें और पुरुषों के लिये पुरुष इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

स्योनासि सुषदासि क्षत्रस्य योनिरसि। स्योनामासीद सुषदामासीद क्षत्रस्य योनिमासीद ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे राणी ! जिसलिये आप (स्योना) सुखरूप (असि) हैं (सुषदा) सुन्दर व्यवहार करने वाली (असि) हैं (क्षत्रस्य) राज्य के न्याय के (योनिः) करने वाली (असि) हैं। इसलिये आप (स्योनाम्) सुखकारक अच्छी शिक्षा में (आसीद) तत्पर हूजिये (सुषदाम्) अच्छे सुख देनेहारी विद्या को (आसीद) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिये तथा कराइये और (क्षत्रस्य) क्षत्रिय कुल की (योनिः) राजनीति को (आसीद) सब स्त्रियों को जनाइये ॥ २६ ॥

भावार्थः—राजाओं की स्त्रियों को चाहिये कि सब स्त्रियों के लिये न्याय और अच्छी शिक्षा देवें और स्त्रियों का न्यायादि पुरुष न करें क्योंकि पुरुषों के सामने स्त्री लज्जित और भययुक्त होकर यथावत् बोल वा पढ़ ही नहीं सकती ॥ २६ ॥

निषसादेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः। वरुणो देवता। पिपीलिका मध्या विराड्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

राजा के समान राणी भी राजधर्म का आचरण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे राणी ! जैसे आपका (धृतव्रतः) सत्य का आचरण और ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का धारण करने हारा (सुक्रतुः) सुन्दर बुद्धि वा क्रिया से युक्त (वरुणः) उत्तमपति (साम्राज्याय) चक्रवर्त्ति राज्य होने और उसके काम करने के लिये (पस्त्यासु) न्यायघरों में (आ) निरन्तर (नि) नित्य ही (ससाद) बैठ के न्याय करे वैसे तू भी न्यायकारिणी हो ॥ २७ ॥

भावार्थः—जैसे चक्रवर्त्ती राजा चक्रवर्त्ती राज्य की रक्षा के लिये न्याय की गद्दी पर बैठ के पुरुषों का ठीक-ठीक न्याय करे वैसे ही नित्यप्रति राणी स्त्रियों का न्याय करे। इससे क्या आया कि जैसा नीति विद्या और धर्म से युक्त पति हो वैसी ही स्त्री को भी होना चाहिये ॥ २७ ॥

अभिभूरित्यस्य शुनःशेप ऋषिः। यजमानो देवता। धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह राजा कैसा हो के किसके लिये क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

अभिभूरस्येतास्ते पञ्च दिशः कल्पन्तां ब्रह्मँस्त्वं ब्रह्मासि सवितासि सत्यप्रसवो वरुणोऽसि सत्यौजाऽइन्द्रोसि विशौजा रुद्रोसि सुशेवः। बहुकार श्रेयस्कर भूयस्करेन्द्रस्य वज्रोऽसि तेन मे रध्य ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (बहुकार) बहुत सुखों (श्रेयस्कर) कल्याण और (भूयस्कर) वार-वार अनुष्ठान करने वाले (ब्रह्मन्) आत्मविद्या को प्राप्त हुए जैसे जिस (ते) आपके (एताः) ये (पञ्च) पूर्व आदि चार और ऊपर नीचे एक (दिशः) पांच दिशा सामर्थ्ययुक्त हों वैसे मेरे लिये आपकी पत्नी की कीर्ति से भी (कल्पन्ताम्) सुखयुक्त होवें। जैसे आप (अभिभूः) दुष्टों का तिरस्कार करने वाले (असि) हैं (सविता) ऐश्वर्य के उत्पन्न करने हारे (असि) हैं (सत्यप्रसवः) सत्य की प्रेरणा से सुन्दर सुखयुक्त (रुद्रः) शत्रु और दुष्टों को रुलाने वाले

(असि) हैं (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य के (वज्रः) प्राप्त कराने हारे (असि) हैं वैसे मैं भी होऊं जैसे मैं आप के वास्ते ऋद्धि सिद्धि करूं वैसे (तेन) उस से (मे) मेरे लिये (रध्य) कार्य्य करने का सामर्थ्य कीजिये ॥ २८ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि जैसा पुरुष सब दिशाओं में कीर्तियुक्त वेदों को जानने धनुर्वेद और अर्थवेद की विद्या में प्रवीण सत्य करने और सब को सुख देने वाला धर्मात्मा पुरुष होवे उसकी स्त्री भी वैसे ही होवे उन को राजधर्म में स्थापन करके बहुत सुख और बहुत सी शोभा को प्राप्त हों ॥ २८ ॥

अग्निरित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर राजा और प्रजा के जन किस के समान क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अ॒ग्निः पृ॒थुर्धर्म॑ण॒स्पति॑र्जुषा॒णो अ॒ग्निः पृ॒थुर्धर्म॑ण॒स्पति॒राज्य॑स्य वेतु॒ स्वाहा॑ । स्वाहा॑कृताः॒ सूर्य॑स्य र॒श्मिभि॑र्यतध्वꣳ सजा॒ताना॑म्मध्यमेष्ठ्या॑य ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे राजन् वा राजपत्नि ! जैसे (पृथुः) महापुरुषार्थयुक्त धर्म का (पतिः) रक्षक (जुषाणः) सेवक (अग्निः) बिजुली के समान व्यापक (सजातानाम्) उत्पन्न हुए पदार्थों के रक्षक के साथ वर्त्तमान पदार्थों के (मध्यमेष्ठ्याय) मध्य में स्थित हो के (स्वाहा) सत्य क्रिया से (आज्यस्य) घृत आदि होम के पदार्थों को प्राप्त कराता हुआ (सूर्य्यस्य) सूर्य्य की (रश्मिभिः) किरणों के साथ होम किये पदार्थों को फैला के सुख देता है वैसे (धर्मणः) न्याय के (पतिः) रक्षक (पृथुः) बड़े (जुषाणः) सेवा करने वाला (अग्निः) तेजस्वी आप राज्य को (वेतु) प्राप्त हूजिये । वैसे ही हे (स्वाहाकृताः) सत्य काम करने वाले सभासद् पुरुषो वा स्त्री लोगो ! तुम (यतध्वम्) प्रयत्न किया करो ॥ २९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राज और प्रजा के पुरुषो तथा राणी वा राणी के सभासदो ! तुम लोग सूर्य्य प्रसिद्ध और विद्युत् अग्नि के समान वर्त्त पक्षपात छोड़ एक जन्म में मध्यस्थ हो के न्याय करो । वैसे यह अग्नि सूर्य्य के प्रकाश में और वायु में सुगन्धियुक्त द्रव्यों को प्राप्त करा वायु जल और ओषधियों की शुद्धि द्वारा सब प्राणियों को सुख देता है वैसे ही न्याययुक्त कर्मों के साथ आचरण करने वाले हो के सब प्रजाओं को सुखयुक्त करो ॥ २९ ॥

सवित्रेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । सवित्रादिमन्त्रोक्ता देवताः । स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राजा वा राणी को कैसे गुणों से युक्त होना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सा॒वि॒त्रा प्र॑सवि॒त्रा सर॑स्वत्या वा॒चा त्वष्ट्रा॑ रू॒पैः पू॒ष्णा प॒शुभि॒रिन्द्रे॑णा॒स्मे बृह॒स्पति॑ना॒ ब्रह्म॑णा॒ वरु॑णे॒नौज॑सा॒ऽग्निना॒ तेज॑सा॒ सोमे॑न॒ राज्ञा॒ विष्णु॑ना दश॒म्या दे॒वत॑या॒ प्रसू॑तः॒ प्रस॑र्पामि ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे प्रजा और राजपुरुषो ! जैसे मैं (प्रसवित्रा) प्रेरणा करने वाले वायु (सवित्रा) संपूर्ण चेष्टा उत्पन्न कराने हारे के समान शुभ कर्म (सरस्वत्या) प्रशंसित विज्ञान और क्रिया से युक्त (वाचा) वेदवाणी के समान सत्यभाषण (त्वष्ट्रा) छेदक और प्रतापयुक्त सूर्य के समान न्याय (रूपैः) सुखरूप (पूष्णा) पृथिवी (पशुभिः) गौ आदि पशुओं के समान प्रजा के पालन (इन्द्रेण) बिजुली (अस्मे) हम (बृहस्पतिना) बड़ों के रक्षक चार वेदों के जानने हारे विद्वान् के समान विद्या और सुन्दर शिक्षा के प्रचार (ओजसा) बल (वरुणेन) जल के समुदाय (तेजसा) तीक्ष्ण ज्योति के समान शत्रुओं के चलाने (अग्निना) अग्नि (राज्ञा) प्रकाशमान आनन्द के होने (सोमेन) चन्द्रमा (दशम्या) दशसंख्या को पूर्ण करने वाली (देवतया) प्रकाशमान और (विष्णुना) व्यापक ईश्वर के समान शुभ गुण कर्म और स्वभाव से (प्रसूतः) प्रेरणा किया हुआ मैं (प्रसर्पामि) अच्छे प्रकार चलता हूं । वैसे तुम लोग भी चलो ॥ ३० ॥

भावार्थः—जो मनुष्य सूर्य्यादि गुणों से युक्त पिता के समान रक्षा करने हारा हो वह राजा होने के योग्य है और जो पुत्र के समान वर्त्तमान करे वह प्रजा होने योग्य है ॥ ३० ॥

अश्विभ्यामित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य कैसे हो के क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व । वायुः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्क्सोमो अतिस्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे राजा तथा प्रजापुरुषो ! तुम (अश्विभ्याम्) सूर्य चन्द्रमा के समान अध्यापक और उपदेशक (पच्यस्व) शुद्ध बुद्धि वाले हो (सरस्वत्यै) अच्छी शिक्षायुक्त वाणी के लिये (पच्यस्व) उद्यत हो (सुत्राम्णे) अच्छी रक्षा करने हारे (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये (पच्यस्व) दृढ़ पुरुषार्थ करो (पवित्रेण) शुद्ध धर्म के आचरण से (वायुः) वायु के समान (पूतः) निर्दोष (प्रत्यङ्) पूजा को प्राप्त (सोमः) अच्छे गुणों से युक्त ऐश्वर्य्यवाले (अतिस्रुतः) अत्यन्त ज्ञानवान् (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (युज्यः) योगाभ्याससहित (सखा) मित्र हो ॥ ३१ ॥

भावार्थः—मनुष्य को चाहिये कि सत्यवादी धर्मात्मा आप्त अध्यापक और उपदेशक से अच्छी शिक्षा को प्राप्त हो शुद्ध धर्म के आचरण से अपने आत्मा को पवित्र योग के अङ्गों से ईश्वर की उपासना और संपत्ति होने के लिये प्रयत्न कर के आपस में मित्रभाव से वर्त्तें ॥ ३१ ॥

कुविदङ्गेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता । निचृद्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राजा आदि सभा के पुरुष किस के तुल्य क्या २ करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय । इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमउक्तिं यजन्ति । उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे (अङ्ग) ज्ञानवान् राजन् ! जो (कुवित्) बहुत ऐश्वर्य्य वाले आप (अश्विभ्याम्) विद्या को प्राप्त हुए शिक्षक लोगों के लिये (उपयामगृहीतः) ब्रह्मचर्य के नियमों से स्वीकार किये (असि) हैं उन (सरस्वत्यै) विद्यायुक्त वाणी के लिये (त्वा) आप को और (सुत्राम्णे) अच्छी रक्षा के लिये (त्वा) आपको हम लोग स्वीकार करते हैं । उन के लिये सत्कार के साथ भोजन आदि दीजिये । जैसे (यवमन्तः) बहुत जौ आदि धान्य से युक्त खेती करने हारे लोग (इहेह) इस २ व्यवहार में (यवम्) यवादि अन्न को (अनुपूर्वम्) क्रम से (दान्ति) लुनते [काटते] हैं । भुस से (चित्) भी (यवम्) जवों को (वियूय) पृथक् कर के रक्षा करते हैं वैसे सत्य असत्य को ठीक २ विचार के इन की रक्षा कजिये ।। ३२ ।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे खेती करने वाले लोग परिश्रम के साथ पृथिवी से अनेक फलों को उत्पन्न और रक्षा करके भोगते और असार को फेंकते हैं और जैसे ठीक २ राज्य का भाग राजा को देते हैं वैसे ही राजा आदि पुरुषों को चाहिये कि अत्यन्त परिश्रम से इनकी रक्षा न्याय के आचरण से ऐश्वर्य्य को उत्पन्न कर और सुपात्रों के लिये देते हुए आनन्द को भोगें ।। ३२ ।।

युवमित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गांधारः स्वरः ।।

सभा और सेनापति प्रयत्न से वैश्यों की रक्षा करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

युवꣳसुराममश्विना नमुचावासुरे सचा । विपिपाना शुभस्पतीऽइन्द्रं कर्मस्वावतम् ।। ३३ ।।

पदार्थः—हे (सचा) मिले हुए (विपिपाना) विविध राज्य के रक्षक (शुभः) कल्याणकारक व्यवहार के (पती) पालन करने हारे (अश्विना) सूर्य्य चन्द्रमा के समान सभापति और सेनापति (युवम्) तुम दोनों (नमुची) जो अपने दुष्ट कर्म को न छोड़े (आसुरे) मेघ के व्यवहार में (कर्मसु) खेती आदि कर्मों में वर्त्तमान (सुरामम्) अच्छी तरह जिस में रमण करें ऐसे (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्य वाले धनी की निरन्तर (आवतम्) रक्षा करो ।। ३३ ।।

भावार्थः—दुष्टों से श्रेष्ठों की रक्षा के लिये ही राजा होता है राज्य की रक्षा के विना किसी चेष्टावान् नर की कार्य में निर्विघ्न प्रवृत्ति कभी नहीं हो सकती और न प्रजाजनों के अनुकूल हुए विना राजपुरुषों की स्थिरता होती है । इसलिये वन के सिंहों के समान परस्पर सहायी हो के सब राज और प्रजा के मनुष्य सदा आनन्द में रहें ।। ३३ ।।

पुत्रमिवेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अश्विनौ देवते । भुरिक् पंक्तिश्छन्दः ।। पञ्चमः स्वरः ।।

राजा और प्रजा को पिता पुत्र के समान वर्त्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दꣳसनाभिः । यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ।। ३४ ।।

पदार्थः—हे (मघवन्) विशेष धन के होने से सत्कार के योग्य (इन्द्र) सब सभाओं के मालिक राजन् ! (यत्) जो आप (शचीभिः) अपनी बुद्धियों के बल से (सुरामम्) अच्छा आराम देने हारे रस को (व्यपिब) विविध प्रकार से पीवें उस आप का (सरस्वती) विद्या से अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई वाणी के समान स्त्री (अभिष्णक्) सेवन करे (अश्विना) राजा से आज्ञा को प्राप्त हुए (उभा) तुम दोनों सेनापति और न्यायाधीश (काव्यैः) परम विद्वान् धर्मात्मा लोगों ने किये (दंसनाभिः) कर्मों से (पितरौ) जैसे माता पिता (पुत्रम्) अपने सन्तान की रक्षा करते हैं वैसे सब राज्य की (आवथुः) रक्षा करो ॥ ३४ ॥

भावार्थः—सब अच्छे-अच्छे गुणों से युक्त राजधर्म का सेवने हारा धर्मात्मा अध्यापक और पूर्ण युवा अवस्था को प्राप्त हुआ पुरुष अपने हृदय को प्यारी अपने योग्य अच्छे लक्षणों से युक्त रूप और लावण्य आदि गुणों से शोभायमान विदुषी स्त्री के साथ विवाह करे । जो कि निरन्तर पति के अनुकूल हो और पति भी उस के सम्मति का हो । राजा अपने मंत्री नौकर और स्त्री के सहित प्रजाओं में सत्पुरुषों की रीति पर पिता के समान और प्रजापुरुष पुत्र के समान राजा के साथ वर्त्तें । इस प्रकार आपस में प्रीति के साथ मिल के आनन्दित होवें ॥ ३४ ॥

इस अध्याय में राजा प्रजा के धर्म का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

॥ यह दशवां अध्याय समाप्त हुआ ॥



॥ ओ३म् ॥

* अथैकादशाऽध्यायारम्भः *

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒ता॒नि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥१॥

य० ३० । ३ ॥

युञ्जान इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अब ग्यारहवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है । इसके प्रथम मन्त्र में योगाभ्यास और भूगर्भविद्या का उपदेश किया है ॥

यु॒ञ्जा॒नः प्र॑थ॒मं मन॑स्त॒त्त्वाय॑ सवि॒ता धियः॑ । अ॒ग्नेर्ज्योति॑र्नि॒चाय्य॑ पृथि॒व्याऽअध्याभ॑रत् ॥१॥

पदार्थः—जो (सविता) ऐश्वर्य को चाहने वाला मनुष्य (तत्त्वाय) उन परमेश्वर आदि पदार्थों के ज्ञान होने के लिए (प्रथमम्) पहिले (मनः) विचारस्वरूप अन्तःकरण की वृत्तियों को (युञ्जानः) योगाभ्यास और भूगर्भविद्या में युक्त करता हुआ (अग्नेः) पृथवी आदि में रहने वाली बिजुली के (ज्योतिः) प्रकाश को (निचाय्य) निश्चय करके (पृथिव्याः) भूमि के (अधि) ऊपर (आभरत्) अच्छे प्रकार धारण करे वह योगी और भूगर्भ-विद्या का जानने वाला होवे ॥ १ ॥

भावार्थः—जो पुरुष योगाभ्यास और भूगर्भविद्या किया चाहे वह यम आदि योग के अङ्ग और क्रिया-कौशलों से अपने हृदय के शुद्ध तत्वों को जान बुद्धि को प्राप्त और इन को गुण कर्म तथा स्वभाव से जान के उपयोग लेवे । फिर जो प्रकाशमान सूर्य्यादि पदार्थ हैं उन का भी प्रकाशक ईश्वर है उस को जान और अपने आत्मा में निश्चय करके अपने और दूसरों के सब प्रयोजनों को सिद्ध करें ॥ १ ॥

युक्तेनेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । शंकुमती गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय ही अगले मन्त्र में कहा है ॥

यु॒क्तेन॒ मन॑सा व॒यं दे॒वस्य॑ सवि॒तुः स॒वे । स्व॒र्ग्या॒य॒ शक्त्या॑ ॥२॥

पदार्थः—हे योग और तत्वविद्या को जानने की इच्छा करनेहारे मनुष्यो ! जैसे (वयम्) हम योगी लोग (युक्तेन) योगाभ्यास किये (मनसा) विज्ञान और (शक्त्या) सामर्थ्य से (देवस्य) सब को चिताने तथा (सवितुः) समग्र संसार को उत्पन्न करने हारे ईश्वर के (सवे) जगत् रूप इस ऐश्वर्य में (स्वर्ग्याय) सुख प्राप्ति के लिये प्रकाश की अधिकाई से धारण करें वैसे तुम लोग भी प्रकाश को धारण करो ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो मनुष्य परमेश्वर की इस सृष्टि में समाहित हुए योगाभ्यास और तत्वविद्या को यथाशक्ति सेवन करें उनमें सुन्दर आत्मज्ञान के प्रकाश से युक्त हुए योग और पदार्थविद्या का अभ्यास करें तो अवश्य सिद्धियों को प्राप्त हो जावें ॥ २ ॥

युक्त्वायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। निचृदनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

युक्त्वाय सविता देवान्त्स्वर्य्यतो धिया दिवम्। बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान् ॥ ३ ॥

पदार्थः—जिन को (सविता) योग के पदार्थों के ज्ञान के करनेहारा जन परमात्मा में मन को (युक्त्वाय) युक्त करके (धिया) बुद्धि से (दिवम्) विद्या के प्रकाश को (स्वः) सुख को (यतः) प्राप्त कराने वाले (बृहत्) बड़े (ज्योतिः) विज्ञान को (करिष्यतः) जो करेंगे उन (देवान्) दिव्य गुणों को (प्रसुवाति) उत्पन्न करे (तान्) उनको अन्य भी उत्पादक जन उत्पन्न करें ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो पुरुष योगाभ्यास करते हैं वे अविद्या आदि क्लेशों को हटाने वाले शुद्ध गुणों को प्रकट कर सकते हैं। जो उपदेशक पुरुष से योग और तत्वज्ञान को प्राप्त होके ऐसा अभ्यास करे वह भी इन गुणों को प्राप्त होवे ॥ ३ ॥

युञ्जत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

योगाभ्यास करके मनुष्य क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

युञ्जते मनऽउत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः। वि होत्रा दधे वयुनाविदेकऽइन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ ४ ॥

पदार्थः—जो (होत्राः) दान देने लेने के स्वभाव वाले (विप्राः) बुद्धिमान् पुरुष जिस (बृहतः) बड़े (विपश्चितः) सम्पूर्ण विद्याओं से युक्त आप्त पुरुष के समान वर्तमान (विप्रस्य) सब शास्त्रो के जाननेहारे बुद्धिमान् पुरुष से विद्याओं को प्राप्त हुए विद्वानों से विज्ञानयुक्त जन (सवितुः) सब जगत् को उत्पन्न और (देवस्य) सब के प्रकाशक जगदीश्वर की (मही) बड़ी (परिष्टुतिः) सब प्रकार की स्तुति है उस तत्वज्ञान के विषय में जैसे (मनः) अपने चित्त को (युंजते) समाधान करते और (धियः) अपनी बुद्धियों को युक्त करते हैं वैसे ही (वयुनावित) प्रकृष्टज्ञान वाला (एकः) अन्य के सहाय की अपेक्षा से रहित (इत्) ही मैं (विदधे) विधान करता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो नियम से आहार विहार करने हारे जितेन्द्रिय पुरुष एकांत देश में परमात्मा के साथ अपने आत्मा को युक्त करते हैं वे तत्वज्ञान को प्राप्त होकर नित्य ही सुख भोगते हैं ॥ ४ ॥

युजेवामित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य लोग ईश्वर की प्राप्ति कैसे करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोकऽएतु पथ्येव सूरेः । शृण्वन्तु विश्वेऽअमृतस्य पुत्राऽआ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे योगशास्त्र के ज्ञान की इच्छा करने वाले मनुष्यो ! आप लोग जैसे (श्लोकः) सत्य वाणी से संयुक्त मैं (नमोभिः) सत्कारों से जिस (पूर्व्यम्) पूर्व के योगियों ने प्रत्यक्ष किये (ब्रह्म) सब से बड़े व्यापक ईश्वर को (युजे) अपने आत्मा से युक्त करता हूँ वह ईश्वर (वाम्) तुम योग के अनुष्ठान और उपदेश करने हारे दोनों को (सूरेः) विद्वान् को (पथ्येव) उत्तम गति के अर्थ मार्ग प्राप्त होता है वैसे (व्येतु) विविध प्रकार से प्राप्त होवे । जैसे (विश्वे) सब (पुत्राः) अच्छे सन्तानों के तुल्य आज्ञाकारी मोक्ष को प्राप्त हुए विद्वान् लोग (अमृतस्य) अविनाशी ईश्वर के योग से (दिव्यानि) सुख के प्रकाश में होने वाले (धामानि) स्थानों को (आतस्थुः) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं वैसे मैं भी उनको प्राप्त होऊं ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालंकार है। योगाभ्यास के ज्ञान को चाहने वाले मनुष्यों को चाहिये कि योग में कुशल विद्वानों का सङ्ग करें। उन के सङ्ग से योग की विधि को जान के ब्रह्मज्ञान का अभ्यास करें। जैसे विद्वान् का प्रकाशित किया हुआ मार्ग सब को सुख से प्राप्त होता है वैसे ही योगाभ्यासियों के संग से योगविधि सहज में प्राप्त होती है। कोई भी जीवात्मा इस संग और ब्रह्मज्ञान के बिना पवित्र होकर सब सुखों को प्राप्त नहीं हो सकता इसलिये उस योगविधि के साथ ही सब मनुष्य परब्रह्म की उपासना करें ॥५ ॥

यस्य प्रयाणमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य किस की उपासन करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

यस्य प्रयाणमन्वन्यऽइद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमोजसा । यः पार्थिवानि विममे सऽएतशो रजांसि देवः सविता महित्वना ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे योगी पुरुषो ! तुम को चाहिये कि (यस्य) जिस (देवस्य) सब सुख देने हारे ईश्वर के (महिमानम्) स्तुति विषय को (प्रयाणम्) कि जिस से प्राप्त होवे उस के (अनु) पीछे (अन्ये) जीवादि और (देवाः) विद्वान् लोग (ययुः) प्राप्त होवें (यः) जो

(एतशः) सब जगत् में अपनी व्याप्ति से प्राप्त हुआ (सविता) सब जगत् का रचने हारा (देवः) शुद्धस्वरूप भगवान् (महित्वना) अपनी महिमा और (ओजसा) पराक्रम से (पार्थिवानि) पृथिवी पर प्रसिद्ध (रजांसि) सब लोकों को (विममे) विमान आदि यानों के समान रचता है वह (इत्) ही निरन्तर उपासनीय मानो ॥ ६ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग सब जगत् के बीच २ पोल में अपने अनन्त बल से धारण करने, रचने और सुख देने हारे शुद्ध सर्वशक्तिमान् सब के हृदयों में व्यापक ईश्वर की उपासना करते हैं वे ही सुख पाते हैं अन्य नहीं ॥ ६ ॥

देव सवितरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब किसलिये परमेश्वर की उपासना और प्रार्थना करनी चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

देव॑ सवितः॒ प्रसु॑व य॒ज्ञं प्रसु॑व य॒ज्ञप॑तिं॒ भगा॑य । दि॒व्यो ग॒न्धर्वः॑ केत॒पूः केतं॑ नः पुनातु वा॒चस्पति॒र्वाचं॑ नः स्वदतु ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (देव) सत्य योगविद्या से उपासना के योग्य शुद्ध ज्ञान देने (सवितः) और सब सिद्धियों को उत्पन्न करने हारे परमेश्वर ! आप (नः) हमारे (यज्ञम्) सुखों को प्राप्त कराने हारे व्यवहार को (प्रसुव) उत्पन्न कीजिये तथा (यज्ञपतिम्) इस सुखदायक व्यवहार के रक्षक जन को (प्रसुव) उत्पन्न कीजिये (गन्धर्वः) पृथिवी को धरके (दिव्यः) शुद्ध गुण कर्म और स्वभावों में उत्तम और (केतपूः) विज्ञान से पवित्र करने हारे आप (नः) हमारे (केतम्) विज्ञान को (पुनातु) पवित्र कीजिये और (वाचस्पतिः) सत्य विद्याओं से युक्त वेदवाणी के प्रचार से रक्षा करने वाले आप (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को (स्वदतु) स्वादिष्ट अर्थात् कोमल मधुर कीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थः—जो पुरुष सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त शुद्ध निर्मल ब्रह्म की उपासना और योगविद्या की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करते हैं वे सब ऐश्वर्य को प्राप्त अपने आत्मा को शुद्ध और योगविद्या को सिद्ध कर सकते हैं वे सत्यवादी हो के सब क्रियाओं के फलों को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

इमं न इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इ॒मं नो॑ देव सवितर्य॒ज्ञं प्रण॑य देवा॒व्यꣳ॑ सखि॒विदꣳ॑ सत्रा॒जितं॑ धन॒जितꣳ॑ स्व॒र्जित॑म् । ऋ॒चा स्तोम॒ꣳ सम॑र्धय गाय॒त्रेण॑ रथन्त॒रं बृ॒हद्गा॑यत्रव॑र्त्तनि॒ स्वाहा॑ ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (देव) सत्य कामनाओं को पूर्ण करने और (सवितः) अन्तर्यामिरूप से प्रेरणा करने हारे जगदीश्वर आप (नः) हमारे (इमम्) पीछे कहे और आगे जिसको कहेंगे उस (देव्याम्) दिव्य गुणों की जिस से रक्षा हो (सखिविदम्) मित्रों को जिससे प्राप्त हों (सत्राजितम्) सत्य को जिससे जीतें (धनजितम्) धन की जिससे उन्नति होवे (स्वर्जितम्) सुख को जिस से बढ़ावें और (ऋचा) ऋग्वेद से जिस की (स्तोमम्) स्तुति हो उस (यज्ञम्) विद्या और धर्म का संयोग कराने हारे यज्ञ को (स्वाहा) सत्य क्रिया के साथ (प्रणय) प्राप्त कीजिये (गायत्रेण) गायत्री आदि छन्दों से (गायत्रवर्त्तनि) गायत्री आदि छन्दों की गानविद्या (बृहत्) बड़े (रथन्तरम्) अच्छे २ यानों से जिस के पार हों उस मार्ग को (समर्धय) अच्छे प्रकार बढ़ाइये ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य ईर्ष्या द्वेष आदि दोषों को छोड़ ईश्वर के समान सब जीवों के साथ मित्रभाव रखते हैं वे संपत् को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

देवस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । भुरिगतिशक्वरी छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

मनुष्य भूमि आदि तत्वों से विजुली का ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वेऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्या॑म् पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् । आद॑दे गाय॒त्रेण॒ छन्द॑साङ्गिर॒स्वत्पृ॑थि॒व्याः स॒धस्था॑द॒ग्निं पु॑री॒ष्य॒मङ्गिर॒स्वदाभ॑र॒ त्रैष्टु॑भेन॒ छन्द॑साङ्गिर॒स्वत् ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष ! मैं जिस (त्वा) आप को (देवस्य) सूर्य्य आदि सब जगत् के प्रकाश करने और (सवितुः) सब ऐश्वर्य में (अश्विनोः) प्राण और उदान के (बाहुभ्याम्) बल और आकर्षण से तथा (पूष्णः) पुष्टिकारक विजुली के (हस्ताभ्याम्) धारण और आकर्षण (अङ्गिरस्वत्) अंगारों के समान (आददे) ग्रहण करता हूँ सो आप (गायत्रेण) गायत्री मंत्र से निकले (छन्दसा) आनन्ददायक अर्थ के साथ (पृथिव्याः) पृथिवी के (सधस्थात्) एक स्थान से (अंगिरस्वत्) प्राणों के तुल्य और (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् मंत्र से निकले (छन्दसा) स्वतंत्र अर्थ के साथ (अंगिरस्वत्) चिह्नों के सदृश (पुरीष्यम्) जल को उत्पन्न करने हारे (अग्निम्) बिजुली आदि तीन प्रकार के अग्नि को (आभर) धारण कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालंकार है । मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की सृष्टि के गुणों को जानने हारे विद्वान् की अच्छे प्रकार सेवा करने और पृथिवी आदि पदार्थों में रहने वाले अग्नि को स्वीकार करें ॥ ९ ॥

अभ्रिरसीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग भूमि आदि से सुवर्ण आदि पदार्थों को कैसे प्राप्त होवें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अभ्रि॑रसि॒ नार्य॑सि॒ त्वया॑ व॒यम॒ग्निꣳ श॑केम॒ खनि॑तुꣳ स॒धस्थ॒ आ । जाग॑तेन॒ छन्द॑साङ्गिर॒स्वत् ॥ १० ॥

पदार्थः—हे कारीगर पुरुष ! जो (त्वया) तेरे साथ (सधस्थे) एक स्थान में वर्त्तमान (वयम्) हम लोग जो (अभ्रिः) भूमि खोदने और (नारी) विवाहित उत्तम स्त्री के समान कार्य्यों को सिद्ध करने हारी लोहे आदि की कसी (असि) है जिससे कारीगर लोग भूगर्भविद्या को जान सकें उस को ग्रहण करके (जागतेन) जगती मंत्र से विधान किये (छन्दसा) सुखदायक स्वतन्त्र साधन से (अंगिरस्वत्) प्राणों के तुल्य (अग्निम्) विद्युत् आदि अग्नि को (खनितुम्) खोदने के लिये (आशकेम) सब प्रकार समर्थ हों उस को तू बना ॥ १० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि अच्छे खोदने के साधनों से पृथिवी को खोद और अग्नि के साथ संयुक्त करके सुवर्ण आदि पदार्थों को बनावें परन्तु पहिले भूगर्भ की तत्त्वविद्या को प्राप्त होके ऐसा कर सकते हैं ऐसा निश्चित जानना चाहिये ॥ १० ॥

हस्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । आर्षी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उसी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

हस्त॑ऽआ॒धाय॑ सवि॒ता बिभ्र॑द॒भ्रिꣳ हि॑र॒ण्ययी॑म् । अ॒ग्नेर्ज्योति॑र्नि॒चाय्य॑ पृ॒थि॒व्याऽअध्याभ॑र॒दानु॑ष्टभेन॒ छन्द॑साङ्गिर॒स्वत् ॥ ११ ॥

पदार्थः—(सविता) ऐश्वर्य्य को उत्पन्न करने हारा कारीगर मनुष्य (आनुष्टुभेन) अनुष्टुप् छन्द में कहे हुए (छन्दसा) स्वतन्त्र अर्थ के योग से (हिरण्ययीम्) तेजोमय शुद्ध धातु से बने (अभ्रिम्) खोदने के शस्त्र को (हस्ते) हाथ में लिये हुए (अंगिरस्वत्) प्राण के तुल्य (अग्नेः) विद्युत् आदि अग्नि के (ज्योतिः) तेज को (निचाय्य) निश्चय करके (पृथिव्याः) पृथिवी के (अधि) ऊपर (आभरत्) अच्छे प्रकार धारण करे ॥ ११ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे लोहा और पत्थरों में बिजुली रहती है वैसे ही सब पदार्थों में प्रवेश कर रही है । उस की विद्या को ठीक २ जान और कार्यों में उपयुक्त करके इस पृथिवी पर आग्नेय आदि अस्त्र और विमान आदि यानों को सिद्ध करें ॥ ११ ॥

प्रतूर्त्तमित्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः । वाजी देवता । आस्तारपङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रतू॑र्त्तं वाजि॒न्नाद्र॑व॒ वरि॑ष्ठा॒मनु॑ स॒म्वत॑म् । दि॒वि ते॒ जन्म॑ पर॒मम॒न्तरि॑क्षे॒ तव॒ नाभि॑: पृथि॒व्यामधि॒ योनि॒रित् ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) प्रशंसित ज्ञान से युक्त विद्वान् ! जिस (ते) आप का शिल्पविद्या से (दिवि) सूर्य्य के प्रकाश में (परमम्) उत्तम (जन्म) प्रसिद्ध (तव) आप का (अन्तरिक्षे)

आकाश में (नाभिः) बन्धन और (पृथिव्याम्) इस पृथिवी में (योनिः) निमित्त प्रयोजन है सो आप विमानादि यानों के अधिष्ठाता होकर (वरिष्ठाम्) अत्यन्त उत्तम (सम्वतम्) अच्छे प्रकार विभाग की हुई गति को (प्रतूर्त्तम्) अतिशीघ्र (इत्) ही (अनु) पश्चात् (आ) (द्रव) अच्छे प्रकार चलिये ॥ १२ ॥

भावार्थः—जब मनुष्य लोग विद्या और क्रिया के बीच में परम प्रयत्न के साथ प्रसिध्द हो और विमान आदि यानों को रच के शीघ्र जाना आना करते हैं तब उन को धन की प्राप्ति सुगम होती है ॥ १२ ॥

युञ्जाथामित्यस्य कुश्रिर्ऋषिः । वाजी देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या कहां जोड़ना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

युञ्जाथाᳬं रासभं युवमस्मिन् यामे वृषण्वसू । अग्निं भरन्तमस्मयुम् ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे (वृषण्वसू) सूर्य्य और वायु के समान सुख वर्षाने वा सुख में वसने हारे कारीगर तथा उसके स्वामी लोगो ! (युवम्) तुम दोनों (अस्मिन्) इस (यामे) यान में (रासभम्) जल और अग्नि के वेगगुणरूप अश्व तथा (अस्मयुम्) हम को ले चलने तथा (भरन्तम्) धारण करने हारे (अग्निम्) प्रसिद्ध वा विजुली रूप अग्नि को (युञ्जाथाम्) युक्त करो ॥ १३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य इस विमान आदि यान में यंत्र कला जल और अग्नि के प्रयोग करते हैं वे सुख से दूसरे देशों में जाने को समर्थ होते हैं ॥ १३ ॥

योगेयोग इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

प्रजाजन कैसे पुरुष को राजा मानें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखायऽइन्द्रमूतये ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे (सखायः) परस्पर मित्रता रखने हारे लोगो ! जैसे हम लोग (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (योगेयोगे) जिस-जिस में (वाजेवाजे) हों सङ्ग्राम २ के बीच (तवस्तरम्) अत्यन्त बलवान् (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्ययुक्त पुरुष को राजा (हवामहे) मानते हैं वैसे ही तुम लोग भी मानो ॥ १४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य परस्पर मित्र हो के एक दूसरे की रक्षा के लिये अत्यन्त बलवान् धर्मात्मा पुरुष को राजा मानते हैं वे सब विघ्नों से अलग हो के सुख की उन्नति कर सकते हैं ॥ १४ ॥

प्रतूर्वन्नित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । गणपतिर्देवता । आर्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर राजा क्या करके किस को प्राप्त हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रतूर्वन्नेह्यवक्राम॒न्नश॑स्ती रु॒द्रस्य॒ गाण॑पत्यं मयो॒भूरेहि॑। उ॒र्व॒न्तरि॑क्षं॒ वीहि स्व॒स्तिग॑व्यूति॒रभ॑यानि कृ॒ण्वन् पू॒ष्णा स॒युजा॑ स॒ह ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! (स्वस्तिगव्यूतिः) सुख के साथ जिसका मार्ग है ऐसे आप (सयुजा) एक साथ युक्त करने वाली (पूष्णा) बल पुष्टि से युक्त अपनी सेना के (सह) साथ (अशस्तीः) निन्दित शत्रुओं की सेनाओं को (प्रतूर्वन्) मारते हुए (एहि) प्राप्त हूजिये । शत्रुओं के देशों का (अवक्रमान्) उल्लङ्घन करते हुए (एहि) आइये (मयोभूः) सुख को उत्पन्न करते आप (रुद्रस्य) शत्रुओं को रुलाने हारे अपने सेनापति के (गाणपत्यम्) सेना समूह के स्वामीपन को (एहि) प्राप्त हूजिये और (अभयानि) अपने राज्य में सब प्राणियों को भयरहित (कृण्वन्) करते हुए (अन्तरिक्षम्) (उरु) परिपूर्ण आकाश को (वीहि) विविध प्रकार से प्राप्त हूजिये ।। १५ ।।

भावार्थः—राजा को अति उचित है कि अपनी सेना को सदैव अच्छी शिक्षा हर्ष उत्साह और पोषण से युक्त रक्खे । जब शत्रुओं के साथ युद्ध किया चाहे तब अपने राज्य को उपद्रवरहित कर युक्ति तथा बल से शत्रुओं को मारे और सज्जनों की रक्षा करके सर्वत्र सुन्दर कीर्ति फैलावे ।। १५ ।।

पृथिव्या इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य किस पदार्थ से बिजुली का ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

पृ॒थि॒व्याः स॒धस्था॑द॒ग्निं पु॑री॒ष्य॒मङ्गिर॒स्वदाभ॑रा॒ग्निं पु॑री॒ष्य॒मङ्गिर॒स्वदच्छे॑मो॒ऽग्निं पु॑री॒ष्य॒मङ्गिर॒स्वद्भ॑रिष्यामः ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् ! जैसे हम लोग (पृथिव्याः) भूमि और अन्तरिक्ष के (सधस्थात्) एक स्थान से (अङ्गिरस्वत) प्राणों के समान (पुरीष्यम्) अच्छा सुख देने हारे (अग्निम्) भूमिमण्डल की बिजुली को (अच्छ) उत्तम रीति से (इमः) प्राप्त होने और जैसे (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के समान (पुरीष्यम्) उत्तम सुखदायक (अग्निम्) अन्तरिक्षस्थ बिजुली को (भरिष्य मः) धारण करें वैसे आप भी (अङ्गिरस्वत्) सूर्य्य के समान (पुरीष्यम्) उत्तम सुख देनेवाले (अग्निम्) पृथिवी पर वर्त्तमान अग्नि को (आभर) अच्छे प्रकार धारण कीजिये ।। १६ ।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के समान काम करें मूर्खवत् नहीं और सब काल में उत्साह के साथ अग्नि आदि की पदार्थविद्या का ग्रहण करके सुख बढ़ाते रहें ।। १६ ।।

अन्वग्निरित्यस्य पुरोधा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

विद्वान् लोग किस के समान क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

अन्व॒ग्निरु॒षसा॒मग्र॑मख्य॒दन्वहा॑नि प्रथ॒मो जा॒तवे॑दाः । अनु॒ सूर्य॑स्य पुरु॒त्रा च॑ र॒श्मीननु॒ द्यावा॑पृथि॒वीऽआत॑तन्थ ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! आप जैसे (प्रथमः) (जातवेदाः) उत्पन्न हुए पदार्थों में पहिले ही विद्यमान सूर्य्यलोक और (अग्निः) (उषसाम्) उषःकाल से (अग्रम्) पहिले ही (अहानि) दिनों को (अन्वख्यत्) प्रसिद्ध करता है (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (अग्रम्) पहिले (पुरुत्रा) बहुत (रश्मीन्) किरणों को (अन्वाततन्थ) फैलाता तथा (द्यावापृथिवी) सूर्य्य और पृथिवी लोक को प्रसिद्ध करता है । वैसे विद्या के व्यवहारों की प्रवृत्ति कीजिये ॥ १७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे कारण रूप विद्युत् और कार्य्यरूप प्रसिद्ध अग्नि क्रम से सूर्य्य, उषःकाल और दिनों को उत्पन्न करके पृथिवी आदि पदार्थों को प्रकाशित करते हैं । वैसे ही विद्वानों को चाहिये कि सुन्दर शिक्षा दे ब्रह्मचर्य्य विद्या धर्म्म के अनुष्ठान और अच्छे स्वभाव आदि का सर्वत्र प्रचार करके सब मनुष्यों को ज्ञान और आनन्द से प्रकाशयुक्त करें ॥१७॥

आगत्येत्यस्य मयोभूर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब सभापति राजा किस के समान क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आगत्य॑ वा॒ज्यध्वा॑नꣳ सर्वा॒ मृधो॒ विधू॑नुते । अ॒ग्निꣳ स॒धस्थे॑ मह॒ति चक्षु॑षा॒ निचि॑कीषते ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! आप जैसे (वाजी) वेगवान् घोड़ा (अध्वानम्) अपने मार्ग को (आगत्य) प्राप्त हो के (सर्वाः) सब (मृधः) संग्रामों को (विधूनुते) कंपाता है और जैसे गृहस्थ पुरुष (चक्षुषा) नेत्रों से (महति) सुन्दर (सधस्थे) एक स्थान में (अग्निम्) अग्नि का (निचिकीषते) चयन किया चाहता है । वैसे सब संग्रामों को कंपाइये और घर २ में विद्या का प्रचार कीजिये ॥ १८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । गृहस्थों को चाहिये कि घोड़ों के समान जाना आना कर, शत्रुओं को जीत, आग्नेयादि अस्त्रविद्या को सिद्ध कर अपने बलाऽबल को विचार और राग द्वेष आदि दोषों की शान्ति करके अधर्मी शत्रुओं को जीतें ॥ १८ ॥

आक्रम्येत्यस्य मयोभूर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य जन्म पा और विद्या पढ़ के पश्चात् क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ॒क्रम्य॑ वाजिन् पृथि॒वीम॒ग्निमि॑च्छ रु॒चा त्वम् । भूम्या॑ वृ॒त्वाय॑ नो ब्रूहि॒ यत॒ः खने॑म॒ तं व॒यम् ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) प्रशंसित ज्ञान वाले सभापति विद्वान् राजा ! (त्वम्) आप (रुचा) प्रीति से शत्रुओं को (आक्रम्य) पादाक्रान्त कर (पृथिवीम्) भूमि के राज्य और (अग्निम्) विद्या की (इच्छ) इच्छा कीजिये और (भूम्याः) पृथिवी के बीच (नः) हम लोगों को (वृत्वाय) स्वीकार करके हमारे लिये (ब्रूहि) भूगर्भ और अग्निविद्या का उपदेश कीजिये (यतः) जिस से (वयम्) हम लोग (तम्) उस विद्या में (खनेम) प्रविष्ट होवें ॥ १९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि भूगर्भ और अग्नि विद्या से पृथिवी के पदार्थों को अच्छे प्रकार परीक्षा करके सुवर्ण आदि रत्नो को उत्साह के साथ प्राप्त होवें और जो पृथिवी को खोदने वाले नौकर चाकर हैं उन को इस विद्या का उपदेश करें ॥ १९ ॥

द्यौस्त इत्यस्य मयोभूर्ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता । निचृदार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

मनुष्य क्या करके क्या सिद्ध करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थमात्मान्तरिक्षꣳ समुद्रो योनिः । विख्याय चक्षुषा त्वमभि तिष्ठ पृतन्यतः ॥ २० ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जिस (ते) आप का (द्यौः) प्रकाश के तुल्य विनय (पृष्ठम्) इधर का व्यवहार (पृथिवी) भूमि के समान (सधस्थम्) साथ स्थिति (अन्तरिक्षम्) आकाश के समान अविनाशी धैर्ययुक्त (आत्मा) अपना स्वरूप और (समुद्रः) समुद्र के तुल्य (योनिः) निमित्त है सो (त्वम्) आप (चक्षुषा) विचार के साथ (विख्याय) अपना ऐश्वर्य प्रसिद्ध करके (पृतन्यतः) अपनी सेना को लड़ाने की इच्छा करते हुए मनुष्य के (अभि) सन्मुख (तिष्ठ) स्थित हूजिये ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पुरुष न्याय मार्ग के अनुसार उत्साह स्थान और आत्मा जिसके दृढ़ हों विचार से सिद्ध करने योग्य जिसके प्रयोजन हों उसकी सेना वीर होती है वह निश्चय विजय करने को समर्थ होवे ॥ २० ॥

उत्क्रामेत्यस्य मयोभूर्ऋषिः । द्रविणोदा देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को योग्य है कि इस संसार में परम पुरुषार्थ से ऐश्वर्य उत्पन्न करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

उत्क्राम महते सौभगायास्मादास्थानाद् द्रविणोदा वाजिन् । वयꣳ स्याम सुमतौ पृथिव्याऽअग्निं खनन्तऽउपस्थेऽअस्याः ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) ऐश्वर्य को प्राप्त हुए विद्वान् ! जैसे (द्रविणोदाः) धनदाता (अस्याः) इस (पृथिव्याः) भूमि के (अस्मात्) इस (आस्थानात्) निवास के स्थान से (उपस्थे) समीप में (अग्निम्) अग्नि विद्या का (खनन्तः) खोज करते हुए (वयम्) हम लोग (महते) बड़े (सौभगाय) सुन्दर ऐश्वर्य के लिये (सुमतौ) अच्छी बुद्धि में प्रवृत्त (स्याम) होवें वैसे आप (उत्क्राम) उन्नति को प्राप्त हूजिये ॥ २१ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि इस संसार में ऐश्वर्य पाने के लिये निरन्तर उद्यत रहें और आपस में हिल मिल के पृथिवी आदि पदार्थों से रत्नों को प्राप्त होवें ॥ २१ ॥

उदक्रमीदित्यस्य मयोभूर्ऋषिः । द्रविणोदा देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य इस संसार में किस के समान हो के किस को प्राप्त हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

उदक्रमीद् द्रविणोदा वाज्यर्वाकः सुलोकꣳ सुकृतं पृथिव्याम् । ततः खनेम सुप्रतीकमग्निꣳ स्वो रुहाणाऽअधिनाकमुत्तमम् ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे भूगर्भ विद्या के जानने हारे विद्वन् ! (द्रविणोदाः) धनदाता आप जैसे (वाजी) बल वाला (अर्वा) घोड़ा ऊपर को उछलता है वैसे (पृथिव्याम्) पृथिवी के बीच (अधि) (उदक्रमीत्) सब से अधिक उन्नति को प्राप्त हूजिये (सुकृतम्) धर्माचरण से प्राप्त होने योग्य (सुलोकम्) अच्छा देखने योग्य (उत्तमम्) अति श्रेष्ठ (नाकम्) सब दुःखों से रहित सुख को (अकः) सिद्ध कीजिये (ततः) इसके पश्चात् (स्वः) सुखपूर्वक (रुहाणाः) प्रकट होते हुए हम लोग भी इस पृथिवी पर (सुप्रतीकम्) सुन्दर प्रीति का विषय (अग्निम्) व्यापक बिजुली रूप अग्नि का (खनेम) खोज करें ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे पृथिवी पर घोड़े अच्छी २ चाल चलते हैं वैसे हम तुम सब मिल कर पुरुषार्थी हो पृथिवी आदि की पदार्थविद्या को प्राप्त हों और दुःखों को दूर करके सब से उत्तम सुख को प्राप्त हों ॥ २२ ॥

आत्वेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य व्यापक वायु को किस साधन से जानें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ त्वा जिघर्मि मनसा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा । पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानम् ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे ज्ञान चाहने वाले पुरुष ! जैसे मैं (मनसा) मन तथा (घृतेन) घी के साथ (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकस्थ वस्तुओं में (प्रतिक्षियन्तम्) प्रत्यक्ष निवास और निश्चय-कारक (तिरश्चा) तिरछे चलने रूप (वयसा) जीवन से (पृथुम्) विस्तारयुक्त (बृहन्तम्) बड़े (अन्नैः) जौ आदि अन्नों के साथ (रभसम्) बल वाले (व्यचिष्ठम्) अतिशय करके फेंकने वाले (दृशानम्) देखने योग्य वायु के गुणों को (आजिघर्मि) अच्छे प्रकार प्रकाशित करता हूँ वैसे (त्वाम्) आप को भी इस वायु के गुणों का धारण करता हूँ ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य अग्नि के द्वारा सुगन्धि आदि द्रव्यों को वायु में पहुँचा उस सुगन्ध से रोगों को दूर कर अधिक अवस्था को प्राप्त होवें ॥ २३ ॥

आ विश्वत इत्यस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षीपङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वायु और अग्नि कैसे गुण वाले हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत। मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णोऽअग्निर्नाभिमृशे तन्वा जर्भुराणः ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (न) जैसे (विश्वतः) सब ओर से (अग्निः) बिजुली और प्राण वायु शरीर में व्यापक होके (अभिमृशे) सहने वाले के लिये हितकारी हैं जैसे (तन्वा) शरीर से (जर्भुराणः) शीघ्र हाथ पांव आदि अङ्गों को चलाता हुआ (स्पृहयद्वर्णः) इच्छा वालों ने स्वीकार किये हुए के समान (मर्यश्रीः) मनुष्यों की शोभा के तुल्य वायु के समान वेग वाला होके मैं जिस (प्रत्यञ्चम्) शरीर के वायु को निरन्तर चलाने वाली विद्युत् को (अरक्षसा) राक्षसों की दुष्टता से रहित (मनसा) चित्त से (आजिघर्मि) प्रकाशित करता हूँ वैसे (तत्) उस तेज को (जुषेत) सेवन कर ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! तुम लोग लक्ष्मी प्राप्त कराने हारे अग्नि आदि पदार्थों को जान और उनको कार्यों में संयुक्त करके धनवान् होओ ॥ २४ ॥

परिवाजपतिरित्यस्य सोमक ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर गृहस्थ कैसे होवें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत्। दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जो (वाजपतिः) अन्न आदि की रक्षा करने हारे गृहस्थों के समान (कविः) बहुदर्शी दाता गृहस्थ पुरुष (दाशुषे) दान देने योग्य विद्वान् के लिये (रत्नानि) सुवर्ण आदि उत्तम पदार्थ (दधत्) धारण करते हुए के समान (अग्निः) प्रकाशमान पुरुष (हव्यानि) देने योग्य वस्तुओं को (परि) सब ओर से (अक्रमीत्) प्राप्त होता है उस को तू जान ॥ २५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् पुरुष को चाहिये कि अग्निविद्या के सहाय से पृथिवी के पदार्थों से धन को प्राप्त हो अच्छे मार्ग में खर्च कर और धर्मात्माओं को दान दे के विद्या के प्रचार से सब को सुख पहुँचावे ॥ २५ ॥

परित्वेत्यस्य पायुर्ऋषिः। अग्निर्देवता। अनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

कैसा सेनापति करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रंꣳ सहस्य धीमहि। धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावताम् ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (सहस्य) अपने को बल चाहने वाले (अग्ने) अग्निवत् विद्या से प्रकाशमान विद्वान् पुरुष ! जैसे (वयम्) हम लोग (दिवेदिवे) प्रतिदिन (भंगुरावताम्) खोटे

स्वभाव वालों के (पुरम्) नगर को अग्नि के समान (हन्तारम्) मारने (धृषद्वर्णम्) दृढ़ सुन्दर वर्ण से युक्त (विप्रम्) विद्वान् (त्वा) आप को (परि) सब प्रकार से (धीमहि) धारण करें वैसे तू हम को धारण कर ॥ २६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजा और प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि न्याय से प्रजा की रक्षा करने अग्नि के समान शत्रुओं को मारने और सब काल में सुख देने हारे पुरुष को सेनापति करें ॥ २६ ॥

त्वमग्न इत्यस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर सभाध्यक्ष कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वम॑ग्ने द्युभि॒स्त्वमा॑शुशु॒क्षणि॒स्त्वम॒द्भ्यस्त्वमश्म॑न॒स्परि॑। त्वं वने॑भ्य॒स्त्वमोष॑धीभ्य॒स्त्वं नृ॒णां नृ॑पते जायसे॒ शुचि॑ः ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (नृपते) मनुष्यों के पालने हारे (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान न्यायाधीश राजन् ! (त्वम्) आप (द्युभिः) दिनों के समान प्रकाशमान न्याय आदि गुणों से सूर्य्य के समान (त्वम्) आप (आशुशुक्षणिः) शीघ्र २ दुष्टों को मारने हारे (त्वम्) आप (अद्भ्यः) वायु वा जलों से (त्वम्) आप (अश्मनः) मेघ वा पाषणादि से (त्वम्) आप (वनेभ्यः) जङ्गल वा किरणों से (त्वम्) आप (ओषधीभ्यः) सोमलता आदि ओषधियों से (त्वम्) आप (नृणाम्) मनुष्यों के बीच (शुचिः) पवित्र (परि) सब प्रकार (जायसे) प्रसिद्ध होते हो इस कारण आप का आश्रय लेके हम लोग भी ऐसे ही होवें ॥ २७ ॥

भावार्थः—जो राजा सभासद् वा प्रजा का पुरुष सब पदार्थों से गुण ग्रहण और विद्या तथा क्रिया की कुशलता से उपकार ले सकता धर्म के आचरण से पवित्र तथा शीघ्रकारी होता है वही सब सुखों को प्राप्त हो सकता है, अन्य आलसी पुरुष नहीं ॥ २७ ॥

देवस्य त्वेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक् प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य क्या करके किस पदाथ से बिजुली का ग्रहण करें यह वियष अगले मन्त्र में कहा है ॥

दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् । पृ॒थि॒व्याः स॒धस्था॑द॒ग्निं पु॑री॒ष्यम॑ङ्गि॒र॒स्वत् ख॑नामि । ज्योति॑ष्मन्तं त्वाग्ने सु॒प्रती॑क॒मज॑स्रेण भा॒नुना॒ दीद्य॑तम् । शि॒वं प्र॒जाभ्यो॒ऽहिꣳसन्तं पृथि॒व्याः स॒धस्था॑द॒ग्निं पु॑री॒ष्य॒मङ्गि॒र॒स्वत् ख॑नामः ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) भूगर्भ तथा शिल्पविद्या के जानने हारे विद्वान् ! जैसे मैं (सवितुः) सब जगत् के उत्पन्न करने हारे (देवस्य) प्रकाशमान ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये संसार में (अश्विनोः) आकाश और पृथिवी के (बाहुभ्याम्) आकर्षण तथा धारण रूप बाहुओं के समान और (पूष्णः) प्राण के (हस्ताभ्याम्) बल और पराक्रम के तुल्य (त्वा) आप को आगे करके (पृथिव्याः) भूमि के (सधस्थात्) एक स्थान से (पुरीष्यम्) पूर्ण सुख देनेहारे (ज्योतिष्मन्तम्) बहुत ज्योति वाले (अजस्रेण) निरन्तर (भानुना) दीप्ति से (दीद्यतम्) अत्यन्त प्रकाशमान (पुरीष्यम्) सुन्दर रक्षा करने (अग्निम्) वायु में रहने वाली बिजुली को (अङ्गिरस्वत्) वायु के समान (खनामि) सिद्ध करता हूँ और जैसे (त्वा) आप का आश्रय लेके हम लोग (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष के (सधस्थात्) एक प्रदेश से (अंगिरस्वत्) सूत्रात्मा वायु के समान वर्त्तमान (अहिंसन्तम्) जो कि ताड़ना न करे ऐसे (पुरीष्यम्) पालनेहारे पदार्थों में उत्तम (प्रजाभ्यः) प्रजा के लिये (शिवम्) मङ्गलकारक (अग्निम्) अग्नि को (खनामः) प्रकट करते हैं वैसे सब लोग किया करें ॥ २८ ॥

भावार्थः—जो राज्य और प्रजा के पुरुष सर्वत्र रहने वाले बिजुली रूपी अग्नि को सब पदार्थों से साधन तथा उपसाधनों के द्वारा प्रसिद्ध करके कार्य्यों में प्रयुक्त करते हैं वे कल्याणकारक ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं। कोई भी उत्पन्न हुआ पदार्थ बिजुली की व्याप्ति के बिना खाली नहीं रहता ऐसा तुम सब लोग जानो ॥ २८ ॥

अपां पृष्ठमित्यस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर मनुष्य कैसी बिजुली का ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम् । वर्धमानो महाँ२ऽआ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जिस कारण (अग्नेः) सर्वत्र अभिव्याप्त बिजुली रूप अग्नि के (योनिः) संयोग वियोगों के जानने (महान्) पूजनीय (वर्धमानः) विद्या तथा क्रिया की कुशलता से नित्य बढ़ने वाले आप (असि) हैं। इसलिये (अभितः) सब ओर से (पिन्वमानम्) जल वर्षाते हुए (अपाम्) जलों के (पृष्ठम्) आधारभूत (पुष्करे) अन्तरिक्ष में वर्तमान (दिवः) दीप्ति के (मात्रया) विभाग बढ़े हुए (समुद्रम्) अच्छे प्रकार जिस में ऊपर को जल उठते हैं उस समुद्र (च) और वहां के सब पदार्थों को जान के (वरिम्णा) बहुत्व के साथ (आप्रथस्व) अच्छे प्रकार सुखों को विस्तार करने वाले हूजिये ॥ २९ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग पृथिवी आदि स्थूल पदार्थों में बिजुली जिस प्रकार वर्तमान है वैसे ही जलों में भी है ऐसा समझ और उससे उपकार ले के बड़े-बड़े विस्तारयुक्त सुखों को सिद्ध करो ॥ २९ ॥

शर्म चेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । दम्पती देवते । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अब स्त्री और पुरुष घर में रह के क्या-क्या सिद्ध करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

शर्म॑ च॒ स्थो वर्म॑ च॒ स्थोऽछिद्रे बहुलेऽउभे । व्यच॑स्वती॒ सं व॑साथां भृतम॒ग्निं पुरी॒ष्यम् ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों (शर्म) गृहाश्रम (च) और उस की सामग्री को प्राप्त हुए (स्थः) हो (वर्म) सब ओर उस के सहायकारी पदार्थों को (उभे) दो (बहुले) बहुत अर्थों को ग्रहण करने हारे (व्यचस्वती) सुख की प्राप्ति से युक्त (अच्छिद्रे) निर्दोष बिजुली और अन्तरिक्ष के समान जिस घर में धर्म अर्थ के कार्य्य (स्थः) हैं । उस घर में (भृतम्) पोषण करने हारे (पुरीष्यम्) रक्षा करने में उत्तम (अग्निम्) अग्नि को ग्रहण करके (संवसाथाम्) अच्छे प्रकार आच्छादन करके वसो ॥ ३० ॥

भावार्थः—गृहस्थ लोगों को चाहिये कि ब्रह्मचर्य्य के साथ सत्कार और उपकारपूर्वक क्रिया की कुशलता और विद्या का ग्रहण कर बहुत द्वारों से युक्त सब ऋतुओं में सुखदायक सब ओर की रक्षा और अग्नि आदि साधनों से युक्त घरों को बना के उन में सुखपूर्वक निवास करें ॥ ३० ॥

संवसाथामित्यस्य गृत्समद ऋषिः । जायापती देवते । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी वही उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सं व॑साथाᳬ स्व॒र्विदा॑ स॒मीची॒ऽउर॑सा॒ त्मना॑ । अ॒ग्निम॒न्तर्भ॑रि॒ष्यन्ती॒ ज्योति॑ष्मन्त॒मज॑स्र॒मित् ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों जो (समीची) अच्छे प्रकार पदार्थों को जानने (भरिष्यन्ती) और सब का पालन करने हारे (स्वर्विदा) सुख को प्राप्त होते हुए (ज्योतिष्मन्तम्) अच्छे प्रकार से युक्त (अन्तः) सब पदार्थों के बीच वर्त्तमान (अग्निम्) बिजुली को (इत्) ही (त्मना) (उरसा) अपने अन्तःकरण से (अजस्रम्) निरन्तर (संवसाथाम्) अच्छी तरह आच्छादन करो तो लक्ष्मी को भोग सको ॥ ३१ ॥

भावार्थः—जो गृहस्थ मनुष्य बिजुली को उत्पन्न करके ग्रहण कर सकते हैं वे व्यवहार में दरिद्र कभी नहीं होते ॥ ३१ ॥

पुरीष्य इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वान् पुरुष बिजुली को कैसे उत्पन्न करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

पु॒री॒ष्यो॒ऽसि वि॒श्वभ॑रा॒ऽअथ॑र्वा त्वा प्र॒थ॒मो नि॒र॑मन्थदग्ने । त्वाम॑ग्ने॒ पुष्क॑रा॒दध्यथ॑र्वा॒ निर॑मन्थत । मू॒र्ध्नो विश्व॑स्य वा॒घतः॑ ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) क्रिया की कुशलता को सिद्ध करने हारे विद्वन् ! जो (वाघतः) शास्त्रवित् आप (पुरीष्यः) पशुओं को सुख देने हारे (असि) हैं उस (त्वा) आपका (अथर्वा) रक्षक (प्रथमः) उत्तम (विश्वभराः) सब का पोषक विद्वान् (विश्वस्य) सब संसार के (मूर्द्धनः) ऊपर वर्त्तमान (पुष्करात्) अन्तरिक्ष से (अधि) समीप अग्नि को (निरमन्थत्) नित्य मन्थन करके ग्रहण करता है वह ऐश्वर्य्य को प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

भावार्थः—जो इस जगत् में विद्वान् पुरुष होवें वे अपने अच्छे विचार और पुरुषार्थ से अग्नि आदि की पदार्थविद्या को प्रसिद्ध करके सब मनुष्यों को शिक्षा करें ॥ ३२ ॥

तमुत्वेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्रऽईधेऽअथर्वणः । वृत्रहणं पुरन्दरम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! जैसे (अथर्वणः) रक्षक विद्वान् का (पुत्रः) पवित्र शिष्य (दध्यङ्) सुखदायक अग्नि आदि पदार्थों को प्राप्त हुआ (ऋषिः) वेदार्थ जानने हारा (उ) तर्क वितर्क के साथ संपूर्ण विद्याओं का वेत्ता जिस (वृत्रहणम्) सूर्य्य के समान शत्रुओं को मारने और (पुरन्दरम्) शत्रुओं के नगरों को नष्ट करने वाले आप को (ईधे) तेजस्वी करता है वैसे उन आपको सब वद्वान् लोग विद्या और विनय से उन्नतियुक्त करें ॥ ३३ ॥

भावार्थः—जो पुरुष वा स्त्री साङ्गोपाङ्ग सार्थक वेदों को पढ़ के विद्वान् वा विदुषी होवें वे राजपुत्र और राजकन्याओं को विद्वान् और विदुषी करके उन से धर्मानुकूल राज्य तथा प्रजा का व्यवहार करवावें ॥ ३३ ॥

तमु त्वेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् । धनञ्जयꣳ रणेरणे ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे वीर पुरुष ! जो आप (पाथ्यः) अन्न जल आदि पदार्थों की सिद्धि में कुशल (वृषा) पराक्रमी शूरता आदि युक्त विद्वान् हैं (तम्) पूर्वोक्त पदार्थविद्या जानने (धनञ्जयम्) शत्रुओं से धन जीतने (उ) और (दस्युहन्तमम्) अतिशय करके डाकुओं को मारने वाले (त्वा) आप को वीरों की सेना राजधर्म्म की शिक्षा से (समीधे) प्रदीप्त करें ॥ ३४ ॥

भावार्थः—राजा तथा राजपुरुषों को चाहिये कि आप्त धर्मात्मा विद्वानों से विनय और युद्धविद्या को प्राप्त हो प्रजा की रक्षा के लिये चोरों को मार शत्रुओं को जीत कर परम ऐश्वर्य्य की उन्नति करें ॥ ३४ ॥

सीदेत्यस्य देवश्रवो देववातावृषी । होता देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर विद्वान् का क्या काम है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सीदं होतः स्वऽउं लोके चिंकित्वान्त्सादयां यज्ञꣳ सुकृतस्य योनौं । देवावीर्देवान् हविषां यजास्यग्नें बृहद्यजमाने वयों धाः ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजस्वी विद्वन् ! (होतः) दान देने वाले (चिकित्वान्) विज्ञान से युक्त आप (लोके) देखने योग्य (स्वे) सुख में (सीद) स्थित हूजिये (सुकृतस्य) अच्छे करने योग्य कर्म करने हारे धर्म्मात्मा के (योनौ) कारण में (यज्ञम्) धर्मयुक्त राज्य और प्रजा के व्यवहार को (सादय) प्राप्त कराइये (हविषा) देने लेने योग्य न्याय से (देवान्) विद्वानों वा दिव्य गुणों को (यजासि) सत्कार सेवा संयोग कीजिये (यजमाने) राजा आदि मनुष्यों में (वयः) बड़ी उमर को (धाः) धारण कीजिये ॥ ३५ ॥

भावार्थः—विद्वान् लोगों को चाहिये कि इस जगत् में दो कर्म निरन्तर करें । प्रथम ब्रह्मचर्य्य और जितेन्द्रियता आदि की शिक्षा से शरीर को रोगरहित बल से युक्त और पूर्ण अवस्थावाला करें । दूसरे विद्या और क्रिया की कुशलता के ग्रहण से आत्मा का बल अच्छे प्रकार साधें कि जिस से सब मनुष्य शरीर और आत्मा के बल से युक्त हुए सब काल में आनन्द भोगें ॥ ३५ ॥

नि होतेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों का कर्त्तव्य अगले मन्त्र में कहा है ॥

नि होतां होतृषदंने विदांनस्त्वेषो दींदिवाँꣳ२ऽअंसदत्सुदक्षः । अंदब्धव्रतप्रमतिर्वसिंष्ठः सहस्रम्भरः शुचिंजिह्वोऽअग्निः ॥ ३६ ॥

पदार्थः—जो जन मनुष्यजन्म को पाके (होतृषदने) दानशील विद्वानों के स्थान में (दीदिवान्) धर्मयुक्त व्यवहार का चाहने (त्वेषः) शुभगुणों से प्रकाशमान (विदानः) ज्ञान बढ़ाने की इच्छा रखने (शुचिजिह्वः) सत्यभाषण से पवित्र वाणीयुक्त (सुदक्षः) अच्छे बल वाला (अदब्धव्रतप्रमतिः) रक्षा करने योग्य धर्माचरणरूपी व्रतों से उत्तम बुद्धियुक्त (वसिष्ठः) अत्यन्त वसने (सहस्रम्भरः) असंख्य शुभगुणों को धारण करने वाला (होता) शुभगुणों का ग्राहक पुरुष निरन्तर (न्यसदत्) स्थित होवे तो वह सम्पूर्ण सुख को प्राप्त हो जावे ॥ ३६ ॥

भावार्थः—जब माता पिता अपने पुत्र तथा कन्याओं को अच्छी शिक्षा देके पीछे विद्वान् और विदुषी के समीप बहुत काल तक स्थितिपूर्वक पढ़वावें तब वे कन्या और पुत्र सूर्य्य के समान अपने कुल और देश के प्रकाशक हों ॥ ३६ ॥

संसीदस्वेत्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

इस पठनपाठन विषय में अध्यापक कैसा होवे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सꣳसीदस्व महाँ२ऽअसि शोचस्व देववीतमः । विधूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे (प्रशस्त) प्रशंसा के योग्य (मियेध्य) दुष्टों को पृथक् करने वाले (अग्ने) तेजस्वी विद्वान् ! (देववीतमः) विद्वानों को अत्यन्त इष्ट आप (विधूमम्) निर्मल (दर्शतम्) देखने योग्य (अरुषम्) सुन्दर रूप को (सृज) सिद्ध कीजिये तथा (शोचस्व) पवित्र हूजिये । जिस कारण आप (महान्) बड़े-बड़े गुणों में युक्त विद्वान् (असि) हैं इसलिए पढ़ाने की गद्दी पर (संसीदस्व) अच्छे प्रकार स्थित हूजिये ॥ ३७ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों का अत्यन्त प्रिय अच्छे रूप गुण और लावण्य से युक्त पवित्र बड़ा धर्मात्मा आप्त विद्वान् होवे वही शास्त्रों के पढ़ाने को समर्थ होता है ॥ ३७ ॥

अपो देवीरित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवताः । न्यङ्कुसारिणी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

आगे जल आदि पदार्थों के शोधने से प्रजा में क्या होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अपो देवीरुपसृज मधुमतीरयक्ष्माय प्रजाभ्यः । तासामास्थानादुज्जिहतामोषधयः सुपिप्पलाः ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे श्रेष्ठ वैद्य पुरुष ! आप (मधुमतीः) प्रशंसित मधुर आदि गुणयुक्त (देवीः) पवित्र (अपः) जलों को (उपसृज) उत्पन्न कीजिये जिस से (तासाम्) उन जलों के (आस्थानात्) आश्रय से (सुपिप्पलाः) सुन्दर फलों वाली (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधियों को (प्रजाभ्यः) रक्षा करने योग्य प्राणियों के (अयक्ष्माय) यक्ष्मा आदि रोगों की निवृत्ति के लिये (उज्जिहताम्) प्राप्त हूजिये ॥ ३८ ॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि दो प्रकार के वैद्य रक्खे । एक तो सुगन्ध आदि पदार्थों के होम से वायु वर्षा जल और ओषधियों को शुद्ध करें । दूसरे श्रेष्ठ विद्वान् वैद्य होकर निदान आदि के द्वारा सब प्राणियों को रोगरहित रक्खें । इस कर्म के बिना संसार में सार्वजनिक सुख नहीं हो सकता ॥ ३८ ॥

सं त इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । वायुर्देवता । विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब स्त्री पुरुष का कर्त्तव्यकर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

सं ते वायुर्मातरिश्वा दधातूत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम् । यो देवानां चरसि प्राणथेन कस्मै देव वषडस्तु तुभ्यम् ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे पत्नि राणी ! (उत्तानायाः) बड़े शुभलक्षणों के विस्तार से युक्त (ते) आप का (यत्) जो (विकस्तम्) अनेक प्रकार से शिक्षा को प्राप्त हुआ (हृदयम्) अन्तःकरण हो उस को यज्ञ से युद्ध हुआ (मातरिश्वा) आकाश में चलने वाला (वायुः) पवन (संदधातु) अच्छे प्रकार पुष्ट करे । हे (देव) अच्छे सुख देने हारे पति स्वामी ! (यः) जो विद्वान् आप (प्राणथेन) सुख के हेतु प्राणवायु से (देवानाम्) धर्मात्मा विद्वानों का जिस अनेक प्रकार से शिक्षित हृदय को (चरसि) प्राप्त होते हो उस (कस्मै) सुखस्वरूप (तुभ्यम्) आपके लिये मुझ से (वषट्) क्रिया की कुशलता (अस्तु) प्राप्त होवे ॥ ३९ ॥

भावार्थः—पूर्ण जवान पुरुष जिस ब्रह्मचारिणी कुमारी कन्या के साथ विवाह करे उस के साथ विरुद्ध कभी न करे । जो कन्या पूर्ण युवती स्त्री जिस कुमार ब्रह्मचारी के साथ विवाह करे उसका अनिष्ट कभी मन से भी न विचारे इस प्रकार दोनों परस्पर प्रसन्न हुए प्रीति के साथ घर के कार्य्य संभालें ॥ ३९ ॥

सुजात इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

सुजा॒तो ज्योति॑षा स॒ह शर्म॒ वरू॑थ॒मास॑द॒त्स्व॒ः । वासो॑ऽअग्ने वि॒श्वरू॑प॒ꣳ संव्य॑यस्व विभावसो ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे (विभावसो) प्रकाशसहित धन से युक्त (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी ! (ज्योतिषा) विद्यालय के साथ (सुजातः) अच्छे प्रसिद्ध आप (स्वः) सुखदायक (वरूथम्) श्रेष्ठ (शर्म्म) घर को (आसदत्) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये (विश्वरूपम्) अनेक चित्र विचित्ररूपी (वासः) वस्त्र को (संव्ययस्व) धारण कीजिये ॥ ४० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विवाहित स्त्री पुरुषों को चाहिये कि जैसे सूर्य्य अपने प्रकाश से सब जगत् को प्रकाशित करता है वैसे ही अपने सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से शोभायमान होके घर आदि को सदा पवित्र रक्खें ॥ ४० ॥

उदु तिष्ठेत्यस्य विश्वमना ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी विद्वानों का कृत्य अगले मन्त्र में कहा है ॥

उदु॑ तिष्ठ स्वध्वरावा॑ नो दे॒व्या धि॒या । दृ॒शे च॑ भा॒सा बृ॑ह॒ता सु॑शु॒क्वनि॒राग्ने॑ याहि सुश॒स्तिभि॑ः ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे (स्वध्वर) अच्छे माननीय व्यवहार करने वाले सज्जन विद्वन् गृहस्थ ! आप निरन्तर (उत्तिष्ठ) पुरुषार्थ से उन्नति को प्राप्त हो के अन्य मनुष्यों को प्राप्त सदा किया कीजिये (देव्याः) शुद्ध विद्या और शिक्षा से युक्त (धिया) बुद्धि वा क्रिया से (नः) हम

लोगों की (अव) रक्षा कीजिये । हे (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान ! (सुशुक्वनिः) अच्छे पवित्र पदार्थों के विभाग करने हारे आप (उ) तर्क के साथ (दृशे) देखने को (बृहता) बड़े (भासा) प्रकाशरूप सूर्य्य के तुल्य (सुशस्तिभिः) सुन्दर प्रशंसित गुणों के साथ सब विद्याओं को (याहि) प्राप्त हूजिये और हमारे लिये भी सब विद्याओं को प्राप्त कीजिये ॥ ४१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् लोगों को चाहिये कि शुद्ध विद्या और बुद्धि के दान से सब मनुष्यों की निरन्तर रक्षा करें क्योंकि अच्छी शिक्षा के बिना मनुष्यों के सुख के लिये और कोई भी आश्रय नहीं है। इसलिये सब को उचित है कि आलस्य और कपट आदि कुकर्मों को छोड़ के विद्या के प्रचार के लिये सदा प्रयत्न किया करें ॥ ४१ ॥

ऊर्ध्व इत्यस्य कण्व ऋषिः । अग्निर्देवता । उपरिष्टाद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऊर्ध्वऽऊ षु णऽऊतये तिष्ठा देवो न सविता । ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे अध्यापक विद्वान् ! आप (ऊर्ध्वः) ऊपर आकाश में रहने वाले (देवः) प्रकाशक (सविता) सूर्य्य के (न) समान (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (सुतिष्ठ) अच्छे प्रकार स्थित हूजिये (यत्) जो आप (अञ्जिभिः) प्रकट करने हारे किरणों के सदृश (वाघद्भिः) युद्धविद्या में कुशल बुद्धिमानों के साथ (वाजस्य) विज्ञान के (सनिता) सेवनेहारे हूजिये (उ) उसी को हम लोग (विह्वयामहे) विशेष करके बुलाते हैं ॥ ४२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। अध्यापक और उपदेशक विद्वान् को चाहिये कि जैसे सूर्य्य भूमि और चन्द्रमा आदि लोकों से ऊपर स्थित होके अपनी किरणों से सब जगत् की रक्षा के लिये प्रकाश करता है। वैसे उत्तम गुणों से विद्या और न्याय का प्रकाश करके सब प्रजाओं को सदा सुशोभित करें ॥ ४२ ॥

स जात इत्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पिता पुत्र का व्यवहार अगले मन्त्र में कहा है ॥

स जातो गर्भोऽअसि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृतऽओषधीषु । चित्रः शिशुः परि तमांᳬस्यक्तून् प्र मातृभ्योऽअधि कनिक्रदद् गाः ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् ! जो आप जैसे (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी में (जातः) प्रसिद्ध (चारुः) सुन्दर (ओषधीषु) सोमलतादि ओषधियों में (विभृतः) विशेष करके धारण वा पोषण किया (चित्रः) आश्चर्यरूप (गर्भः) स्वीकार करने योग्य सूर्य्य (मातृभ्यः) मान्य करने हारी माता अर्थात् किरणों से (तमांसि) रात्रियों तथा (अक्तून्) अन्धेरों को

(पर्य्यधिकनिक्रदत्) सब ओर से अधिक करके चलता हुआ (गाः) चलाता है वैसे ही (शिशुः) बालक (गाः) विद्या को प्राप्त होवें ॥ ४३ ॥

भावार्थः—जैसे ब्रह्मचर्य्य आदि अच्छे नियमों से उत्पन्न किया पुत्र विद्या पढ़ के माता पिता को सुख देता है वैसे ही माता पिता को चाहिये कि प्रजा को सुख देवें ॥ ४३ ॥

स्थिरो भवेत्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडानुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब माता पिता अपने सन्तानों को किस प्रकार शिक्षा करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

स्थिरो भव वीड्वङ्गऽआशुर्भव वाज्यर्वन् । पृथुर्भव सुषदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे (अर्वन्) विज्ञानयुक्त पुत्र ! तू विद्याग्रहण के लिये (स्थिरः) दृढ़ (भव) हो (वाजी) नीति को प्राप्त होके (वीड्वङ्गः) दृढ़ अति बलवान् अवयवों से युक्त (आशुः) शीघ्र कर्म करने वाला (भव) हो तू (अग्नेः) अग्निसंबन्धी (सुषदः) सुन्दर व्यवहारों में स्थित और (पुरीषवाहणः) पालन आदि शुभ कर्मों को प्राप्त कराने वाला (पृथुः) सुख का विस्तार करने हारा (भव) हो ॥ ४४ ॥

भावार्थः—हे अच्छे सन्तानो ! तुम को चाहिये कि ब्रह्मचर्य्य सेवन से शरीर का बल और विद्या तथा अच्छी शिक्षा से आत्मा का बल पूर्ण दृढ़ कर स्थिरता से रक्षा करो और आग्नेय आदि अस्त्र विद्या से शत्रुओं का विनाश करो इस प्रकार माता पिता अपने सन्तानों को शिक्षा करें ॥ ४४ ॥

शिव इत्यस्य चित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् पथ्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उन को प्रजा में कैसे वर्त्तना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः । मा द्यावापृथिवीऽ अभि शोचीर्मान्तरिक्षं मा वनस्पतीन् ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे (अङ्गिरः) प्राणों के समान प्रिय सुसन्तान ! तू (मानुषीभ्यः) मनुष्य आदि (प्रजाभ्यः) प्रसिद्ध प्रजाओं के लिये (शिवः) कल्याणकारी मङ्गलमय (भव) हो (द्यावापृथिवी) बिजुली और भूमि के विषय में (मा) मत (अभिशोचीः) अति शोच मत कर (अन्तरिक्षम्) अवकाश के विषय में (मा) मत शोच कर और (वनस्पतीन्) वट आदि वनस्पतियों का शोच मत कर ॥ ४५ ॥

भावार्थः—सुसन्तानों को चाहिये कि प्रजा के प्रति मङ्गलाचारी हो के पृथिवी आदि पदार्थों के विषय में शोकरहित होवें किन्तु इन सब पदार्थों की रक्षा विधान कर उपकार के लिये उत्साह के साथ प्रयत्न करें ॥ ४५ ॥

प्रैतु वाजीत्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । ब्राह्मी बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

प्रैतु वाजी कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वा । भरन्नग्निं पुरीष्युं मा पाद्यायुषः पुरा । वृषाग्निं वृषणं भरन्नपां गर्भंछ समुद्रियम् । अग्नऽआयाहि वीतये ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् उत्तम सन्तान ! तू (कनिक्रदत्) चलते और (नानदत्) शीघ्र शब्द करते हुए (रासभः) देने योग्य (पत्वा) चलने वाले वा (वाजी) घोड़ा के समान (आयुषः) नियत वर्षों की अवस्था से (पुरा) पहिले (मा) न (प्रैतु) मरे (पुरीष्यम्) रक्षा के हेतु पदार्थों में उत्तम (अग्निम्) बिजुली (भरन्) धारण करता हुआ (मापादि) इधर उधर मत भाग जैसे (वृषा) अति बलवान् (अपाम्) जलों के (समुद्रियम्) समुद्र में हुए (गर्भम्) स्वीकार करने योग्य (वृषणम्) वर्षा करने हारे (अग्निम्) सूर्य्य को (भरन्) धारण करता हुआ (वीतये) सुखों की व्याप्ति के लिये (आयाहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ ४६ ॥

भावार्थः—राजा आदि मनुष्यों के योग्य है कि अपने सन्तानों को विषयों की लोलुपता से छुड़ा के ब्रह्मचर्य्य के साथ पूर्ण अवस्था को धारण कर अग्नि आदि पदार्थों के विज्ञान से धर्म्मयुक्त व्यवहार की उन्नति करावें । ४६ ॥

ऋतमित्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को क्या २ आचरण करना और क्या २ छोड़ना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऋतꣳ सत्यमृतꣳ सत्यमग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरामः । ओषधयः प्रतिमोदध्वमग्निमेतꣳ शिवमायन्तमभ्यत्र युष्माः । व्यस्यन् विश्वाऽ अनिराऽअमीवा निषीदन्नोऽअप दुर्मतिं जहि ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे सुसन्तानो ! जैसे हम लोग (ऋतम्) यथार्थ (सत्यम्) नाशरहित (ऋतम्) अव्यभिचारी (सत्यम्) सत्पुरुषों में श्रेष्ठ तथा सत्य मानना बोलना और करना (पुरीष्यम्) रक्षा के साधनों में उत्तम (अग्निम्) बिजुली को (अंगिरस्वत्) वायु के तुल्य (भरामः) धारण करते हैं (एतम्) इस पूर्वोक्त (आयन्तम्) प्राप्त हुए (शिवम्) मंगलकारी (अग्निम्) बिजुली को प्राप्त हो के तुम लोग भी (अभिमोदध्वम्) आनन्दित रहो जो (ओषधयः) जो आदि ओषधि (युष्माः) तुम्हारे (प्रति) लिये प्राप्त होवें उन को हम लोग धारण करते हैं वैसे तुम भी करो । हे वैद्य ! आप (विश्वाः) सब (अनिराः) जो निरन्तर देने योग्य

न हों (अमीवाः) ऐसी रोगों की पीड़ा (व्यस्यन्) अनेक प्रकार से अलग करते और (अत्र) इस आयुर्वेदविद्या में (निषीदन्) स्थित हो के (नः) हम लोगों को (दुर्मतिम्) दुष्ट बुद्धि को (अपजहि) सब प्रकार दूर कीजिये इस प्रकार इस वैद्य की प्रार्थना करो ॥ ४७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को उचित है कि यथार्थ अविनाशी परकारण ब्रह्म दूसरा कारण यथार्थ अविनाशी अव्यक्त जीव सत्यभाषणादि तथा प्रकृति से उत्पन्न हुए अग्नि और औषधि आदि पदार्थों के धारण से शरीर के ज्वर आदि रोगों और आत्मा के अविद्या आदि दोषों को छुडा के मद्य आदि द्रव्यों के त्याग से अच्छी बुद्धि कर और सुख को प्राप्त हो के नित्य आनन्द में रहो और कभी इससे विपरीत आचरण कर सुख को छोड़ के दुःख सागर में मत गिरो ॥ ४७ ॥

ओषधय इत्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

स्त्रियों को क्या २ आचरण करना चाहिये यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

ओषधयः प्रतिगृभ्णीत पुष्पवतीः सुपिप्पलाः । अयं वो गर्भऽ ऋत्वियः प्रत्नꣳ सधस्थमासदत् ॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे स्त्रियो ! तुम लोग जो (ओषधयः) सोमलता आदि औषधि हैं जिन से (अयम्) यह (ऋत्वियः) ठीक ऋतुकाल को प्राप्त हुआ (गर्भः) गर्भ (वः) तुम्हारे (प्रत्नम्) प्राचीन (सधस्थम्) नियत स्थान गर्भाशय को प्राप्त होवे उन (पुष्पावतीः) श्रेष्ठ पुष्पों वाली (सुपिप्पलाः) सुन्दर फलों से युक्त औषधियों को (प्रतिगृभ्णीत) निश्चय करके ग्रहण करो ॥ ४८ ॥

भावार्थः—माता पिता को चाहिये कि अपनी कन्याओं को व्याकरण आदि शास्त्र पढ़ा के वैद्यक शास्त्र पढ़ावें । जिससे ये कन्या लोग रोगों का नाश और गर्भ का स्थापन करने वाली औषधियों को जान और अच्छे सन्तानों को उत्पन्न करके निरन्तर आनन्द भोगें ॥ ४८ ॥

वि पाजसेत्यस्योत्कील ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विवाह के समय स्त्री और पुरुष क्या २ प्रतिज्ञा करें यह अगले मंत्र में कहा है ॥

वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसोऽअमीवाः । सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहꣳ सुहवस्य प्रणीतौ ॥ ४९ ॥

पदार्थः—हे पते ! जो आप (पृथुना) विस्तृत (वि) विविध प्रकार के (पाजसा) बल के साथ (शोशुचानः) शीघ्र शुद्ध सदा वर्तें और (अमीवाः) रोगों के समान प्राणियों को पीड़ा देने हारी (रक्षसः) दुष्ट (द्विषः) शत्रुरूप व्यभिचारिणी स्त्रियों को (बाधस्व) ताड़ना देवें तो मैं (बृहतः) बड़े (सुशर्मणः) अच्छे शोभायमान (सुहवस्य) सुन्दर लेना देना व्यवहार जिस में हो ऐसे (अग्नेः) अग्नि के तुल्य प्रकाशमान आपके (शर्मणि) सुखकारक घर में और (प्रणीतौ) उत्तम धर्मयुक्त नीति में आप की स्त्री (स्याम) होऊं ॥ ४९ ॥

भावार्थः—विवाह के समय में स्त्री पुरुष को चाहिये कि व्यभिचार को छोड़ने की प्रतिज्ञा कर व्यभिचारिणी स्त्री और लम्पट पुरुषों का सङ्ग सर्वथा छोड़ आपस में भी अति विषयासक्ति को छोड़ और ऋतुगामी होके परस्पर प्रीति के साथ पराक्रम वाले संतानों को उत्पन्न करें क्योंकि स्त्री वा पुरुष के लिये अप्रिय, आयु का नाशक, निन्दा के योग्य कर्म व्यभिचार के समान दूसरा कोई भी नहीं है इसलिये इस व्यभिचारी कर्म को सब प्रकार छोड़ और धर्माचरण करने वाला हो के पूर्ण अवस्था के सुख को भोगें ॥ ४९ ॥

आपो हिष्ठेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब विवाह किये स्त्री और पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता नऽऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥ ५० ॥

पदार्थः—हे (आपः) जलों के समान शुभ गुणों में व्याप्त होने वाली श्रेष्ठ स्त्रियो ! जो तुम लोग (मयोभुवः) सुख भोगने वाली (स्थ) हो (ताः) वे तुम (ऊर्जे) बलयुक्त पराक्रम और (महे) बड़े २ (चक्षसे) कहने योग्य (रणाय) संग्राम के लिये (नः) हम लोगों को (हि) निश्चय करके (दधातन) धारण करो ॥ ५० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे स्त्री अपने पतियों को रक्खें वैसे पति भी अपनी २ स्त्रियों को सदा सुख देवें । ये दोनों युद्धकर्म में भी पृथक् २ न बसें अर्थात् ईकट्ठे ही सदा वर्त्ताव रक्खें ॥ ५० ॥

यो व इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी वही उक्त विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥ ५१ ॥

पदार्थः—हे स्त्रियो ! (वः) तुम्हारा और (नः) हमारा (इह) गृहाश्रम में जो (शिवतमः) अत्यन्त सुखकारी (रसः) कर्त्तव्य आनन्द है (तस्य) उस का (मातरः) (उशतीरिव) जैसे कामयमान माता अपने पुत्रों को सेवन करती है वैसे (भाजयत) सेवन करो ॥ ५१ ॥

भावार्थः—स्त्रियों को चाहिये कि जैसे माता पिता अपने पुत्रों का सेवन करते हैं वैसे अपने-अपने पतियों की प्रीति पूर्वक सेवा करें । ऐसे ही अपनी २ स्त्रियों की पति भी सेवा करें । जैसे प्यासे प्राणियों को जल तृप्त करता है वैसे अच्छे स्वभाव के आनन्द से स्त्री पुरुष भी परस्पर प्रसन्न रहें ॥ ५१ ॥

तस्मा इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवताः । गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मंत्र में किया है ॥

तस्मा॒ऽअरं॑ गमाम वो॒ यस्य॒ क्षया॑य॒ जिन्व॑थ। आपो॑ ज॒नय॑था च नः ॥ ५२ ॥

पदार्थः—हे (आपः) जलों के समान शान्त स्वभाव से वर्त्तमान स्त्रियो ! जो तुम लोग (नः) हम लोगों के (क्षयाय) निवासस्थान के लिये (जिन्वथ) तृप्त और (जनयथ) अच्छे सन्तान उत्पन्न करो उन (वः) तुम लोगों को हम लोग (अरम्) सामर्थ्य के साथ (गमाम) प्राप्त होवें । जिस धर्मयुक्त व्यवहार की प्रतिज्ञा करो उसका पालन करने वाली होओ और उसी का पालन करने वाले हम लोग भी होवें ॥ ५२ ॥

भावार्थः—जिस पुरुष की जो स्त्री वा जिस स्त्री का जो पुरुष हो वे आपस में किसी का अनिष्टचिन्तन कदापि न करें ऐसे ही सुख और सन्तानों से शोभायमान हो के धर्म्म से घर के कार्य्य करें ॥ ५२ ॥

मित्र इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । मित्रो देवताः । उपरिष्टाद् बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

मि॒त्रः स॒ᳪसृज्य॑ पृथि॒वीं भूमिं॑ च॒ ज्योति॑षा स॒ह। सु॒जा॑तं जा॒तवे॑दसमय॒क्ष्माय॑ त्वा॒ सᳪसृ॑जामि प्र॒जाभ्यः॑ ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हे पते ! जो आप (मित्रः) सब के मित्र होके (प्रजाभ्यः) पालने योग्य प्रजाओं को (अयक्ष्माय) आरोग्य के लिये (ज्योतिषा) विद्या और न्याय को अच्छी शिक्षा के प्रकाश के (सह) साथ (पृथिवीम्) अन्तरिक्ष (च) और (भूमिम्) पृथिवी के साथ (संसृज्य) सम्बन्ध करके मुझ को सुख देते हो। उस (सुजातम्) अच्छे प्रकार प्रसिद्ध (जातवेदसम्) वेदों के जानने हारे (त्वा) आपको मैं (संसृजामि) प्रसिद्ध करती हूँ ॥ ५३ ॥

भावार्थः—स्त्रीपुरुषों को चाहिये कि श्रेष्ठ गुणवान् विद्वानों के संग से शुद्ध आचार का ग्रहण कर शरीर और आत्मा के आरोग्य को प्राप्त हो वे अच्छे-अच्छे सन्तानों को उत्पन्न करें ॥ ५३ ॥

रुद्रा इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । रुद्रा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः

फिर भी वही विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

रु॒द्राः स॒ᳪसृज्य॑ पृथि॒वीं बृ॒हज्ज्योति॑ः समी॑धिरे । तेषां॑ भा॒नुरज॑स्र॒ऽइच्छु॒क्रो दे॒वेषु॑ रोचते ॥ ५४ ॥

पदार्थः—हे स्त्रीपुरुषो ! (इत्) जैसे (रुद्राः) प्राणवायु के अवयवरूप समानादि वायु (संसृज्य) सूर्य्य को उत्पन्न करके (पृथिवीम्) भूमि को (बृहत्) बड़े (ज्योतिः) प्रकाश के साथ (समीधिरे) प्रकाशित करते हैं (तेषाम्) उन से उत्पन्न हुआ (शुक्रः) कान्तिमान् (भानुः) सूर्य्य (देवेषु) दिव्य पृथिवी आदि में (अजस्रः) निरन्तर (रोचते) प्रकाश करता है वैसे ही विद्यारूपो न्याय सूर्य्य को उत्पन्न कर के प्रजापुरुषों को प्रकाशित और उन से प्रजाओं में दिव्य सुख का प्रचार करो ॥ ५४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे वायु सूर्य्य का, सूर्य्य प्रकाश का, नेत्रों से देखने के व्यवहार का कारण है वैसे ही स्त्री पुरुष आपस के सुख के साधन उपसाधन करने वाले होके सुखों को सिद्ध करें ॥ ५४ ॥

संसृष्टामित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । सिनीवाली देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

स्त्रियों को कैसी दासी रखनी चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सꣳसृष्टां वसुभी रुद्रैर्धीरैः कर्मण्यां मृदम् । हस्ताभ्यां मृद्वीं कृत्वा सिनीवाली कृणोतु ताम् ॥ ५५ ॥

पदार्थः—हे पते ! आप जैसे कारीगर मनुष्य (हस्ताभ्याम्) हाथों से (कर्मण्याम्) क्रिया से सिद्ध की हुई (मृदम्) मट्टी को योग्य करता है वैसे (धीरैः) अच्छा संयम रखने (वसुभिः) जो चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य के सेवन से विद्या को प्राप्त हुए (रुद्रैः) और जिन्होंने चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य के सेवन से विद्या बल को पूर्ण किया हो उन्हों से (संसृष्टाम्) अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई हो उस ब्रह्मचारिणी युवती को (मृद्वीम्) कोमल गुण स्वभाव वाली (कृणोतु) कीजिये और जो स्त्री (सिनीवाली) प्रेमबद्ध कन्याओं को बलवान् करने वाली है (ताम्) उसको अपनी स्त्री करके सुखी कीजिये ॥ ५५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे कुम्हार आदि कारीगर लोग जल मट्टी को कोमल कर उससे घड़े आदि पदार्थ बना के सुख के काम सिद्ध करते हैं वैसे ही विद्वान् माता पिता से शिक्षा को प्राप्त हुई हृदय को प्रिय ब्रह्मचारिणी कन्याओं को पुरुष लोग विवाह के लिये ग्रहण कर के सब काम सिद्ध करें ॥ ५५ ॥

सिनीवालीत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । अदितिर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गांधारः स्वरः ॥

फिर भी पूर्वोक्त विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा । सा तुभ्यमदिते मह्योखां दधातु हस्तयोः ॥ ५६ ॥

पदार्थः—हे (महि) सत्कार के योग्य (अदिते) अखंडित आनन्द भोगने वाली स्त्री ! जो (सिनीवाली) प्रेम से युक्त (सुकपर्दा) अच्छे केशों वाली (सुकुरीरा) सुन्दर श्रेष्ठ कर्मों को सेवने हारी और (स्वौपशा) अच्छे स्वादिष्ट भोजन के पदार्थ बनाने वाली जिस (तुभ्यम्) तेरे (हस्तयोः) हाथों में (उखाम्) दाल आदि रांधने की बटलोई को (दधातु) धारण करे (सा) उस का तू सेवन कर ॥ ५६ ॥

भावार्थः—श्रेष्ठ स्त्रियों को उचित है कि अच्छी शिक्षित चतुर दासियों को रक्खें कि जिससे सब पाक आदि की सेवा ठीक ठीक समय पर होती रहे ॥ ५६ ॥

उखामित्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । अदितिर्देवता । भुरिग्बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

उखां कृणोतु शक्त्या बाहुभ्यामदितिर्धिया । माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निं बिभर्त्तु गर्भऽआ । मखस्य शिरोऽसि ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे गृहस्थ पुरुष ! जिस कारण तू (मखस्य) यज्ञ के (शिरः) उत्तमांग के समान (असि) है इस कारण आप (धिया) बुद्धि वा कर्म से तथा (शक्त्या) पाकविद्या के सामर्थ्य और (बाहुभ्याम्) दोनों बाहुओं से (उखाम्) पकाने की बटलोई को (कृणोतु) सिद्ध कर जो (अदितिः) जननी आपकी स्त्री है (सा) वह (गर्भे) अपनी कोख में (यथा) जैसे माता (उपस्थे) अपनी गोद में (पुत्रम्) पुत्र को सुखपूर्वक बैठावे वैसे (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी वीर्य्य को धारण करे ॥ ५७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालंकार है । कुमार स्त्रीपुरुषों को योग्य है कि ब्रह्मचर्य के साथ विद्या और अच्छी शिक्षा को पूर्ण कर बल बुद्धि और पराक्रमयुक्त संतान उत्पन्न होने के लिये वैद्यकशास्त्र की रीति से बड़ी बड़ी ओषधियों से पाक बना के और विधिपूर्वक गर्भाधान करके पीछे पथ्य से रहें और आपस में मित्रता के साथ वर्त्त के पुत्रों के गर्भाधानादि कर्म्म किया करें ॥ ५७ ॥

वसवस्त्वेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । वसुरुद्रादित्यविश्वेदेवा देवताः ।
पूर्वार्द्धस्योत्तरार्द्धस्य चोत्कृती छन्दसी । षड्जः स्वरः ।

फिर स्त्री पुरुष क्या करके क्या करें यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

वसवस्त्वा कृण्वन्तु गायत्रेण छन्दसाऽङ्गिरस्वद्ध्रुवासि पृथिव्यसि धारया मयि प्रजाᳪ रायस्पोषं गौपत्यᳪ सुवीर्य्यᳪ सजातान्यजमानाय रुद्रास्त्वा कृण्वन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद्ध्रुवास्यन्तरिक्षमसि धारया मयि प्रजाᳪ रायस्पोषं गौपत्यᳪ सुवीर्य्यᳪ सजातान्यजमानायाऽऽदित्यास्त्वा कृण्वन्तु जागतेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद्ध्रुवासि द्यौरसि धारया मयि प्रजाᳪ रायस्पोषं गौपत्यᳪ सुवीर्य्यᳪ

सजातान्यजमानाय विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिर स्वद्ध्रुवासि दिशोऽसि धारया मयि प्रजाᳮ रायस्पोषं गौपत्यᳮ सुवीर्यᳮ सजातान्यजमानाय ॥ ५८ ॥

पदार्थः—हे ब्रह्मचारिणी कुमारी स्त्री ! जो तू (अङ्गिरस्वत्) धनंजय प्राणवायु के समतुल्य (ध्रुवा) निश्चल (असि) है और (पृथिव्यसि) विस्तृत सुख करने हारी है उस (त्वा) तुझ को गायत्रेण वेद में विधान किये (छन्दसा) गायत्री आदि छन्दों से (वसवः) चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य रहने वाले विद्वान् लोग मेरी स्त्री (कृण्वन्तु) करें। हे कुमार ब्रह्मचारी पुरुष ! जो तू (अङ्गिरस्वत्) प्राणवायु के समान निश्चल है और (पृथिवी) पृथिवी के समान क्षमायुक्त (असि) है जिस (त्वा) तुझ को (वसवः) उक्त वसुसंज्ञक विद्वान् लोग (गायत्रेण) वेद में प्रतिपादन किये (छन्दसा) गायत्री आदि छन्दों से मेरा पति (कृण्वन्तु) करें। सो तू (मयि) अपनी प्रिय पत्नी मुझ में (प्रजाम्) सुन्दर संतानों (रायः) धन की (पोषम्) पुष्टि (गौपत्यम्) गौ पृथिवी वा वाणी के स्वामीपन और (सुवीर्य्यम्) सुन्दर पराक्रम को (धारय) स्थापन कर। मैं तू दोनों (सजातान्) एक गर्भाशय से उत्पन्न हुए सब संतानों को (यजमानाय) विद्या देने हारे आचार्य्य को विद्या ग्रहण के लिये समर्पण करें। हे स्त्रि ! जो तू (अंगिरस्वत्) आकाश के समान (ध्रुवा) निश्चल (असि) है और (अन्तरिक्षम्) अविनाशी प्रेमयुक्त (असि) है उस (त्वा) तुझको (रुद्राः) रुद्रसंज्ञक चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य सेवने हारे विद्वान् लोग (त्रैष्टुभेन) वेद में कहे हुए (छन्दसा) त्रिष्टुप्छन्द से मेरी स्त्री (कृण्वन्तु) करें। हे वीर पुरुष ! जो तू आकाश के समान निश्चल है और दृढ़ प्रेम से युक्त है जिस तुझ को चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य करने हारे विद्वान् लोग वेद में प्रतिपादन किये त्रिष्टुप्छन्द से मेरा स्वामी करें। वह तू (मयि) अपनी प्रिय पत्नी मुझ में (प्रजाम्) बल तथा धर्म से युक्त सन्तानों (रायः) राज्यलक्ष्मी की (पोषम्) पुष्टि (गौपत्यम्) पढ़ाने के अधिष्ठातृत्व और (सुवीर्य्यम्) अच्छे पराक्रम को (धारय) धारण कर मैं तू दोनों (सजातान्) एक उदर से उत्पन्न हुए सब सन्तानों को अच्छी शिक्षा देकर वेदविद्या की शिक्षा होने के लिये (यजमानाय) अङ्ग उपाङ्गों के सहित वेद पढ़ाने हारे अध्यापक को देवें। हे विदुषी स्त्री ! जो तू (अंगिरस्वत्) आकाश के समान (ध्रुवा) अचल (असि) है (द्यौः) सूर्य के सदृश प्रकाशमान (असि) है उस (त्वा) तुझ को (आदित्याः) अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य करके पूर्ण विद्या और बल की प्राप्ति से आप्त सत्यवादी धर्मात्मा विद्वान् लोग (जागतेन) वेद में कहे (छन्दसा) जगती छन्द से मेरी पत्नी (कृण्वन्तु) करें। हे विद्वान् पुरुष ! जो तू आकाश के तुल्य दृढ़ और सूर्य के तुल्य तेजस्वी है उस तुझ को अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य सेवने वाले पूर्ण विद्या से युक्त धर्मात्मा विद्वान् लोग वेदोक्त जगती छन्द से मेरा पति करें। वह तू (मयि) अपनी प्रिय भार्य्या मुझ में (प्रजाम्) शुभगुणों से युक्त सन्तानों (रायः) चक्रवर्त्ति राज्यलक्ष्मी को (पोषम्) पुष्टि (गौपत्यम्) सम्पूर्ण विद्या के स्वामीपन और (सुवीर्यम्) सुन्दर पराक्रम को (धारय) धारण कर। मैं तू दोनों (सजातान्) अपने सन्तानों को जन्म से उपदेश करके सब विद्या ग्रहण करने के लिये (यजमानाय) क्रिया-कौशल के सहित सब विद्याओं के पढ़ाने हारे आचार्य को समर्पण करें

हे सुन्दर ऐश्वर्ययुक्त पत्नि ! जो तू (अंगिरस्वत्) सूत्रात्मा प्राणवायु के समान (ध्रुवा) निश्चल (असि) है और (दिशः) सब दिशाओं में कीर्तिवाली (असि) है । उस तुझ को (वैश्वानराः) सब मनुष्यों में शोभायमान (विश्वे) सब (देवाः) उपदेशक विद्वान् लोग (आनुष्टुभेन) वेद में कहे गये (छन्दसा) अनुष्टुप्छन्द से मेरे आधीन (कृण्वन्तु) करें । हे पुरुष ! जो तू सूत्रात्मा वायु के सदृश स्थित है (दिशः) सब दिशाओं में कीर्तिवाला (असि) है जिस (त्वा) तुझ को सब प्रजा में शोभायमान सब विद्वान् लोग मेरे आधीन करें । सो आप (मयि) मुझ में (प्रजाम्) शुभलक्षणयुक्त सन्तानों (रायः) सब ऐश्वर्य्य की (पोषम्) पुष्टि (गौपत्यम्) वाणी की चतुराई और (सुवीर्य्यम्) सुन्दर पराक्रम को (धारय) धारण कर । मैं तू दोनों जने अच्छा उपदेश होने के लिये (सजातान्) अपने सन्तानों को (यजमानाय) सत्य के उपदेशक अध्यापक के समीप समर्पण करें ।। ५८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जब स्त्री पुरुष एक दूसरे की परीक्षा करके आपस में दृढ़ प्रीति वाले होवें । तब वेदोक्त रीति से यज्ञ का विस्तार और वेदोक्त नियमानुसार विवाह करके धर्म से सन्तानों को उत्पन्न करें । जब कन्या पुत्र आठ वर्ष के हों तब माता पिता उनको अच्छी शिक्षा देवें । इस के पीछे ब्रह्मचर्य्य धारण करा के विद्या पढ़ाने के लिये अपने घर से बहुत दूर आप्त विद्वान् पुरुषों और आप्त विदुषी स्त्रियों की पाठशालाओं में भेज देवें । वहां पाठशाला में जितने धन का खर्च करना उचित हो उतना करें क्योंकि सन्तानों को विद्यादान के विना कोई उपकार वा धर्म नहीं बन सकता । इसलिए इस का निरन्तर अनुष्ठान किया करें ।। ५८ ॥

अदित्या इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । अदितिर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

अदि॑त्यै रास्ना॒स्यदि॑तिष्टे॒ बिलं॑ गृभ्णातु । कृ॒त्वाय॒ सा म॒हीमु॒खां मृ॒न्मयीं॒ योनि॑म॒ग्नये॑ । पु॒त्रेभ्यः॒ प्राय॑च्छ॒ददि॑तिः श्र॒पया॒निति॑ ॥ ५९ ॥

पदार्थः—हे पढ़ाने हारी विदुषी स्त्री ! जिस कारण तू (अदित्यै) विद्याप्रकाश के लिये (रास्ना) दानशील (असि) है इसलिए (ते) तुझ से (बिलम्) ब्रह्मचर्य्य को धारण (कृत्वाय) करके (अदितिः) पुत्र और कन्या को (गृभ्णातु) ग्रहण करें सो (सा) तू (अदितिः) माता (मृन्मयीम्) मट्टी की (योनिम्) मिली और पृथक् (महीम्) बड़ी (उखाम्) पकाने की बटलोई को (अग्नेय) अग्लय के निकट (पुत्रेभ्यः) पुत्रों को (प्रायच्छत्) देवे विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त होकर बटलोई में (इति) इस प्रकार (श्रपयान्) अन्नादि पदार्थों को पकाओ ।। ५९ ॥

भावार्थः—लड़के पुरुषों और लड़कियां स्त्रियों की पाठशाला में जा ब्रह्मचर्य्य की विधिपूर्वक सुशीलता से विद्या और भोजन बनाने की क्रिया सीखें और आहार विहार भी अच्छे नियम से सेवें । कभी विषय की कथा न सुनें । मद्य-मांस आलस्य जौर अत्यन्त निद्रा को त्याग के पढ़ाने वाले की सेवा और उस के अनुकूल वर्त्त के अच्छे नियमों को धारण करें ।। ५९ ॥

वसवस्त्वेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । वस्वादयो मंत्रोक्ता देवताः ।
स्वराट् संकृतिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर विद्वान् लोग पढ़ने हारे और उपदेश के योग्य मनुष्यों को कैसे शुद्ध करें यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

वसवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद् रुद्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वदादित्यास्त्वा धूपयन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद् विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वदिन्द्रस्त्वा धूपयतु वरुणस्त्वा धूपयतु विष्णुस्त्वा धूपयतु ॥ ६० ॥

पदार्थः—हे ब्रह्मचारिन् वा ब्रह्मचारिणि ! जो (वसवः) प्रथम विद्वान् लोग (गायत्रेण) वेद के (छन्दसा) गायत्री छन्द से (त्वा) तुझ को (अंगिरस्वत्) प्राणों के तुल्य सुगन्धित अन्नादि पदार्थों के समान (धूपयन्तु) संस्कारयुक्त करें (रुद्राः) मध्यम विद्वान् लोग (त्रैष्टुभेन) वेदोक्त (छन्दसा) त्रिष्टुप्छन्द से (अंगिरस्वत्) विज्ञान के समान (त्वा) तेरा (धूपयन्तु) विद्या और अच्छी शिक्षा से संस्कार करें (आदित्याः) सर्वोत्तम अध्यापक विद्वान् लोग (जागतेन) (छन्दसा) वेदोक्त जगती छन्द से (अंगिरस्वत्) ब्रह्माण्ड के शुद्ध वायु के सदृश (त्वा) तेरा (धूपयन्तु) धर्मयुक्त व्यवहार के ग्रहण से संस्कार करें (वैश्वानराः) सब मनुष्यों में सत्य धर्म और विद्या के प्रकाश करने वाले (विश्वे) सब (देवाः) सत्योपदेष्टा विद्वान् लोग (आनुष्टुभेन) वेदोक्त अनुष्टुप् (छन्दसा) छन्द से (अंगिरस्वत्) बिजुली के समान (त्वा) तेरा (धूपयन्तु) सत्योपदेश से संस्कार करें (इन्द्रः) परम ऐश्वर्ययुक्त राजा (त्वा) तेरा (धूपयन्तु) राजनीति विद्या से संस्कार करे (वरुणः) श्रेष्ठ न्यायाधीश (त्वा) तुझ को (धूपयतु) न्यायक्रिया से संयुक्त करे और (विष्णुः) सब विद्या और योगाङ्गोंका वेत्ता योगीजन (त्वा) तुझ को (धूपयतु) योगविद्या से संस्कारयुक्त करे, तू इन सब की सवा किया कर ॥ ६० ॥

भावार्थः—सब अध्यापक स्त्री और पुरुषों को चाहिये कि सब श्रेष्ठ क्रियाओं से कन्या पुत्रों को विद्या और शिक्षा से युक्त शीघ्र करें। जिससे ये पूर्ण ब्रह्मचर्य्य ही कर के गृहाश्रम आदि का यथोक्त काल में आचरण करें ॥ ६० ॥

अदितिष्ट्वेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । अदित्यादयो लिंगोक्ता देवताः ।
भुरिक्कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः । उखेवरुत्रीत्युत्तरस्य
प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विदषी स्त्रियाँ कन्याओं को उत्तम शिक्षा से धर्मात्मा विद्यायुक्त करके इस लोक और परलोक के सुखों को प्राप्त करावें यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

अदि॑तिष्ट्वा दे॒वी वि॒श्वदे॑व्यावती पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ऽअङ्गिर॒स्वत् खनत्ववट दे॒वानां॑ त्वा॒ पत्नी॑र्दे॒वीर्वि॒श्वदे॑व्यावतीः पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ऽ अङ्गिर॒स्वद्द॑धतूखे । धि॒षणा॑स्त्वा दे॒वीर्वि॒श्वदे॑व्यावतीः पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ऽ अङ्गिरस्वद॒भीन्धताम् उखे॒ वरू॑त्रीष्ट्वा दे॒वीर्वि॒श्वदे॑व्यावतीः पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ऽअङ्गिर॒स्वच्छ्र॑पयन्तूखे॒ ग्नास्त्वा॑ दे॒वीर्वि॒श्वदे॑व्यावतीः पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ऽआङ्गिर॒स्वत्प॑चन्तूखे॒ जन॑यस्त्वाऽछि॑न्नपत्रा दे॒वीर्वि॒श्वदे॑व्यावतीः पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ऽअङ्गिर॒स्वत्प॑चन्तूखे ॥ ६१ ॥

पदार्थः—हे (अवट) बुराई और निन्दारहित बालक (विश्वदेव्यावती) सम्पूर्ण विद्वानों में प्रशस्त ज्ञानवाली (अदितिः) अखंड विद्या पढ़ाने हारी (देवी) विदुषी स्त्री (पृथिव्याः) भूमि के (सधस्थे) एक शुभस्थान में (त्वा) तुझ को (अंगिरस्वत्) अग्नि के समान (खनतु) जैसे भूमि को खोद के कूप जल निष्पन्न करते हैं वैसे विद्यायुक्त करे। हे (उखे) ज्ञानयुक्त कुमारी! (देवनाम्) विद्वानों की (पत्नीः) स्त्री जो (विश्वदेव्यावतीः) सम्पूर्ण विद्वानों में अधिक विद्या-युक्त (देवीः) विदुषी (पृथिव्याः) पृथिवी के (सधस्थे) एक स्थान में (अंगिरस्वत्) प्राण के सदृश (त्वा) तुझ को (दधतु) धारण करें। हे (उखे) विज्ञान की इच्छा करने वाली (विश्वदेव्यावतीः) सब विद्वानों में उत्तम (धिषणाः) प्रशंसित वाणीयुक्त बुद्धिमती (देवीः) विद्यायुक्त स्त्री लोग (पृथिव्याः) पृथिवी के (सधस्थे) एक स्थान में (त्वा) तुझ को (अंगिरस्वत्) प्राण के तुल्य (अभीन्धताम्) प्रदीप्त करें। हे (उखे) अन्न आदि पकाने की बटलोई के समान विद्या को धारण करने हारी कन्ये! (विश्वदेव्यावतीः) उत्तम विदुषी (वरूत्रीः) विद्या-ग्रहण के लिए स्वीकार करने योग्य (देवीः) रूपवती स्त्री लोग (पृथिव्याः) भूमि के (सधस्थे) एक शुद्ध स्थान में (त्वा) तुझ को (अंगिरस्वत्) सूर्य के तुल्य (श्रपयन्तु) शुद्ध तेजस्विनी करें। हे (उखे) ज्ञान चाहने हारी कुमारी! (विश्वदेव्यावतीः) बहुत विद्यावानों में उत्तम (देवीः) शुद्ध विद्या से युक्त (ग्नाः) वेदवाणी को जानने वाली स्त्री लोग (पृथिव्याः) भूमि के एक (सधस्थे) उत्तम स्थान में (त्वा) तुझ को (अंगिरस्वत्) बिजुली के तुल्य (पचन्तु) दृढ़ बलधारिणी करें। हे (उखे) ज्ञान की इच्छा रखने वाली कुमारी! (विश्वदेव्यावतीः) उत्तम विद्या पढ़ी (अच्छिन्नपत्राः) अखण्डित नवीन शुद्ध वस्त्रों को धारने वा यानों में चलने वाली (जनयः) शुभगुणों से प्रसिद्ध (देवीः) दिव्य गुणों की देने हारी स्त्री लोग (पृथिव्याः) पृथिवी के (सधस्थे) उत्तम प्रदेश में (त्वा) तुझ को (अंगिरस्वत्) ओषधियों के रस के समान (पचन्तु) संस्कार-युक्त करें। हे कुमारी कन्ये! तू इन पूर्वोक्त सब स्त्रियों से ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या ग्रहण कर ॥ ६१ ॥

भावार्थः—माता पिता आचार्य्य और अतिथि अर्थात् भ्रमणशील विरक्त पुरुषों को चाहिये कि जैसे रसोइये बटलोई आदि पात्रों में अन्न का संस्कार करके उत्तम सिद्ध करते हैं। वैसे ही बाल्यावस्था से लेके विवाह से पहिले पहिले लड़कों और लड़कियों को उत्तम विद्या और शिक्षा से सम्पन्न करें ॥ ६१ ॥

मित्रस्येत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । मित्रो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

जो जिस पुरुष की स्त्री होवे वह उसके ऐश्वर्य की निरन्तर रक्षा करे
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि । द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥ ६२ ॥

पदार्थः—हे स्त्री तू ! (चर्षणीधृतः) अच्छी शिक्षा से मनुष्यों का धारण करने हारे (मित्रस्य) मित्र (देवस्य) कमनीय अपने पति के (चित्रश्रवस्तमम्) आश्चर्य्यरूप अन्नादि पदार्थ जिससे हों ऐसे (सानसि) सेवन योग्य प्राचीन (द्युम्नम्) धन की (अवः) रक्षा कर ॥ ६२ ॥

भावार्थः—घर पर काम करने में कुशल स्त्री को चाहिए कि घर के भीतर के सब काम अपने आधीन रख के ठीक ठीक बढ़ाया करे ॥ ६२ ॥

देवस्त्वेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । सविता देवता । भुरिग्बृहतीछन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवस्त्वा सवितोद्वपतु सुपाणिः स्वङ्गुरिः सुबाहुरुत शक्त्या । अव्यथमाना पृथिव्यामाशा दिशऽआपृण ॥ ६३ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! (सुबाहुः) अच्छे जिसके भुजा (सुपाणिः) सुन्दर हाथ और (स्वङ्गुरिः) शोभायुक्त जिसकी अंगुली हों ऐसा (सविता) सूर्य के समान ऐश्वर्य्यदाता (देवः) अच्छे गुण कर्म और स्वभावों से युक्त पति (शक्त्या) अपने सामर्थ्य से (पृथिव्याम्) पृथिवी पर स्थित (त्वा) तुझ को (उद्वपतु) वृद्धि के साथ गर्भवती करे । और तू भी अपने सामर्थ्य से (अव्यथमाना) निर्भय हुई पति के सेवन से अपनी (आशाः) इच्छा और कीर्ति से सब (दिशः) दिशाओं को (आपृण) पूरण कर ॥ ६३ ॥

भावार्थः—स्त्री-पुरुषों को चाहिये कि आपस में प्रसन्न एक दूसरे को हृदय से चाहने वाले परस्पर परीक्षा कर अपनी-अपनी इच्छा से स्वयम्वर विवाह कर अत्यन्त विषयासक्ति को त्याग ऋतुकाल में गमन करने वाले होकर अपने सामर्थ्य की हानि कभी न करें । क्योंकि इसीसे जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के शरीर में कोई रोग प्रगट और बल की हानि भी नहीं होती । इसलिये इस का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये ॥ ६३ ॥

उत्थायेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । मित्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः ।
गन्धारः स्वरः ॥

फिर वह कैसी होवे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

उत्थार्य बृहती भवोदु तिष्ठ ध्रुवा त्वम् । मित्रैतां तऽउखां परिदद्राम्यभित्याऽएषा मा भेदि ॥ ६४ ॥

पदार्थः—हे विदुषि कन्ये ! तू (ध्रुवा) मङ्गल कार्य्यों में निश्चित बुद्धि वाली और (बृहती) बड़े पुरुषार्थ से युक्त (भव) हो । विवाह करने के लिये (उत्तिष्ठ) उद्यत हो (उत्थाय) आलस्य छोड़ के उठकर इस पति का स्वीकार कर । हे (मित्र) मित्र (ते) तेरे लिये एताम् इस (उखाम्) प्राप्त होने योग्य कन्या को (अभित्यै) भय रहित होने के लिये (परिददामि) सब प्रकार देता हूँ (उ) इसलिये तू (एषा) इस प्रत्यक्ष प्राप्त हुई स्त्री को (मा भेदि) भिन्न मत कर ॥ ६४ ॥

भावार्थः—कन्या और वर को चाहिये कि अपनी–अपनी प्रसन्नता से कन्या पुरुष की और पुरुष कन्या की आप ही परीक्षा कर के ग्रहण करने की इच्छा करें । जब दोनों का विवाह करने में निश्चय होवे तभी माता पिता और आचार्य आदि इन दोनों का विवाह करें और ये दोनों आपस में भेद वा व्यभिचार कभी न करें । किन्तु अपनी स्त्री के नियम में पुरुष और पतिव्रता स्त्री होकर मिल के चलें ॥ ६४ ॥

वसवस्त्वेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । वस्वादयो लिंगोक्ता देवताः । धृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उन स्त्री पुरुषों के प्रति विद्वान् लोग क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मंत्र में कहा है ॥

वसवस्त्वाछृन्दन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद्रुद्रास्त्वाछृन्दन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वदादित्यास्त्वाछृन्दन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद्विश्वे त्वा देवा वैश्वानराऽआछृन्दन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥ ६५ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि वा पुरुष ! (वसवः) प्रथम विद्वान् लोग (गायत्रेण) श्रेष्ठ विद्याओं का जिस से गान किया जावे उस वेद के विभाग रूप स्तोत्र (छन्दसा) गायत्री छन्द से जिस (त्वा) तुझ को (अंगिरस्वत्) अग्नि के तुल्य (आछृन्दन्तु) प्रकाशमान करें (रुद्राः) मध्यम विद्वान् लोग (त्रैष्टुभेन) कर्म उपासना और ज्ञान जिस से स्थिर हों उस (छन्दसा) वेद के स्तोत्र भाग से (अंगिरस्वत्) प्राण के समान (त्वा) तुझ को (आछृन्दन्तु) प्रज्ज्वलित करें (आदित्याः) उत्तम विद्वान् लोग (जागतेन) जगत् की विद्या प्रकाश करने हारे (छन्दसा) वेद के स्तोत्रभाग से (त्वा) तुझ को (अंगिरस्वत्) सूर्य्य के सदृश तेजधारी (आछृन्दन्तु) शुद्ध करें (वैश्वानराः) सम्पूर्ण मनुष्यों में शोभायमान (देवाः) सत्य उपदेश देने हारे (विश्वे) सब विद्वान् लोग (आनष्टुभेन) विद्या ग्रहण के पश्चात् जिस से दुःखों को छुड़ावे उस (छन्दसा) वेदभाग से (त्वा) तुझ को (अंगिरस्वत्) समस्त औषधियों के रस के समान (आछृन्दन्तु) शुद्ध सम्पादित करें ॥ ६५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है। हे स्त्रीपुरुषो ! तुम दोनों को चाहिये कि जो विद्वान् पुरुष और विदुषी स्त्री लोग तुम को शरीर और आत्मा का बल कराने हारे उपदेश से सुशोभित करें उनकी सेवा और सत्संग निरन्तर करो और अन्य तुच्छ बुद्धि वाले पुरुषों वा स्त्रियों का संग कभी मत करो ॥ ६५ ॥

आकूतिमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्नयादयो मन्त्रोक्ता देवताः ।
विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वे स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आकूतिमग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा मनो मेधामग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा चित्तं विज्ञातमग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा वाचो विधृतिमग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा प्रजापतये मनवे स्वाहाऽग्नये वैश्वानराय स्वाहा ॥ ६६ ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! तुम लोग वेद के गायत्री आदि मन्त्रों से (स्वाहा) सत्यक्रिया से (आकूतिम्) उत्साह देने वाली क्रिया के (प्रयुजम्) प्रेरणा करने हारे (अग्निम्) प्रसिद्ध अग्नि को (स्वाहा) सत्यवाणी से (मनः) इच्छा के साधन को (मेधाम्) बुद्धि और (प्रयुजम्) सम्बन्ध करने हारी (अग्निम्) बिजुली को (स्वाहा) सत्य व्यवहारों से (विज्ञातम्) जाने हुए विषय के (प्रयुजम्) व्यवहारों में प्रयोग किये (अग्नि) के समान प्रकाशित (चित्तम्) चित्त को (स्वाहा) योगक्रिया की रीति से (वाचः) वाणियों को (विधृतिम्) विविध प्रकार की धारणा को (प्रयुजम्) संप्रयोग किये हुए (अग्निम्) योगाभ्यास से उत्पन्न की हुई बिजुली को (प्रजापतये) प्रजा के स्वामी (मनवे) मननशील पुरुष के लिये (स्वाहा) सत्यवाणी को और (अग्नये) विज्ञानस्वरूप (वैश्वानराय) सब मनुष्यों के बीच प्रकाशमान जगदीश्वर के लिये (स्वाहा) धर्मयुक्त क्रिया को युक्त करा के निरन्तर (आछृन्दन्तु) अच्छे प्रकार शुद्ध करो ॥ ६६ ॥

भावार्थः—यहाँ पूर्व मन्त्र से (आछृन्दन्तु) इस पद की अनुवृत्ति आती है। मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ से वेदादि शास्त्रों को पढ़ और उत्साह आदि को बढ़ा कर व्यवहार परमार्थ की क्रियाओं के सम्बन्ध से इस लोक और परलोक के सुखों को प्राप्त हों ॥ ६६ ॥

विश्वो देवस्येत्यस्यात्रेय ऋषिः । सविता देवता । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर गृहस्थों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम्। विश्वो रायऽइषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥ ६७ ॥

पदार्थः—जैसे विद्वान् लोग ग्रहण करते हैं (विश्वः) सब (मर्त्तः) मनुष्य (नेतुः) सब के नायक (देवस्य) सब जगत् के प्रकाशक परमेश्वर के (सख्यम्) मित्रता को (वुरीत)

स्वीकार करें (विश्वः) सब मनुष्य (राये) शोभा वा लक्ष्मी के लिये (इषुध्यति) बाणादि आयुधों को धारण करें (स्वाहा) सत्यवाणी और (द्युम्नम्) प्रकाशयुक्त यश वा अन्न को (वृणीत) ग्रहण करें और जैसे इस से तू (पुष्यसे) पुष्ट होता है वैसे हम लोग भी होवें ॥ ६७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । गृहस्थ मनुष्य को चाहिये कि परमेश्वर के साथ मित्रता कर सत्य व्यवहार से धन को प्राप्त हो के कीर्ति कराने हारे कर्मों को नित्य किया करें ॥ ६७ ॥

मा स्वित्यस्य आत्रेय ऋषिः । अम्बा देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर माता पिता के प्रति पुत्रादि क्या २ कहें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

मा सु भित्था मा सु रिषोऽम्ब धृष्णु वीरयस्व सु । अग्निश्चेदं करिष्यथः ॥ ६८ ॥

पदार्थः—हे (अम्ब) माता ! तू हम को विद्या से (मा) मत (सुभित्थाः) छुड़ावे और (मा) मत (सुरिषः) दुःख दे (धृष्णु) दृढता से (सुवीरयस्व) सुन्दर आरम्भ किये कर्म्म की समाप्ति कर । ऐसे करते हुए तुम माता और पुत्र दोनों (अग्निः) अग्नि के समान (च) (इदम्) करने योग्य इस सब कर्म्म को (करिष्यथः) आचरण करो ॥ ६८ ॥

भावार्थः—माता को चाहिये कि अपने सन्तानों को अच्छी शिक्षा देवे जिससे ये परस्पर प्रीतियुक्त और वीर होवें । और जो करने योग्य हो वही करें न करने योग्य कभी न करें ॥ ६८ ॥

दृंहस्वेत्यस्यात्रेय ऋषिः । अम्बा देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर पति अपनी स्त्री से क्या २ कहे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

दृꣳहस्व देवि पृथिवि स्वस्तयऽआसुरी माया स्वधया कृतासि । जुष्टं देवेभ्यऽइदमस्तु हव्यमरिष्टा त्वमुदिहि यज्ञेऽअस्मिन् ॥ ६९ ॥

पदार्थः—हे (पृथिवि) भूमि के समान विद्या के विस्तार को प्राप्त हुई (देवि) विद्या से युक्त पत्नि ! तू ने (स्वस्तये) सुख के लिये (स्वधया) अन्न वा जल से जो (आसुरी) प्राण-पोषक पुरुषों की (माया) बुद्धि है उस को (कृता) सिद्ध की (असि) है। उस से तू मुझ पति को (दृंहस्व) उन्नति दे (अरिष्टा) हिंसा रहित हुई (अस्मिन्) इस (यज्ञे) संग करने योग्य गृहाश्रम में (उदिहि) प्रकाश को प्राप्त हो जो तू ने (जुष्टम्) सेवन किया (इदम्) यह (हव्यम्) देने लेने योग्य पदार्थ है वह (देवेभ्यः) विद्वानों वा उत्तम गुण होने के लिये (अस्तु) होवे ॥ ६९ ॥

भावार्थः—जो स्त्री पति को प्राप्त हो के घर में वर्त्तती है वह अच्छी बुद्धि से सुख के लिये प्रयत्न करे । सब अन्न आदि खाने पीने के पदार्थ रुचिकारक बनवावे वा बनावे और किसी को दुःख वा किसी के साथ वैरबुद्धि कभी न करे ॥ ६९ ॥

द्रवन्न इत्यस्य सोमाहुतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह स्त्री अपने पति से कैसे-कैसे कहे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

द्रुवन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः । सहसस्पुत्रोऽअद्भुतः ॥ ७० ॥

पदार्थः—हे पते ! (द्रुवन्नः) वृक्षादि ओषधि ही जिन के अन्न हैं ऐसे (सर्पिरासुतिः) घृत आदि पदार्थों को शोधने वाले (प्रत्नः) सनातन (होता) देने लेने हारे (वरेण्यः) स्वीकार करने योग्य (सहसः) बलवान् के (पुत्रः) पुत्र (अद्भुतः) आश्चर्य्य गुण कर्म और स्वभाव से युक्त आप सुख होने के लिये इस गृहाश्रम के बीच शोभायमान हूजिये ॥ ७० ॥

भावार्थः—यहां पूर्व मन्त्र से (स्वस्तये) (अस्मिन्) (यज्ञे) (उदिहि) इन चार पदों की अनुवृत्ति आती है । कन्या को उचित है कि जिस का पिता ब्रह्मचर्य्य से बलवान् हो और जो पुरुषार्थ से बहुत अन्नादि पदार्थों को इकट्ठा कर सके उस शुद्ध स्वभाव से युक्त पुरुष के साथ विवाह करके निरन्तर सुख भोगे ॥ ७० ॥

परस्या इत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर पति अपनी स्त्री को क्या-क्या उपदेश करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

परस्याऽअधि संवतोऽवराँ२ऽअभ्यातर । यत्राहमस्मि ताँ२ऽअव ॥ ७१ ॥

पदार्थः—हे कन्ये ! जिस (परस्याः) उत्तम कन्या तेरा मैं (अधि) स्वामी हुआ चाहता हूँ सो तू (संवतः) संविभाग को प्राप्त हुए (अवरान्) नीच स्वभावों को (अभ्यातर) उल्लङ्घन और (यत्र) जिस कुल में (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ (तान्) उन उत्तम मनुष्यों की (अव) रक्षा कर ॥ ७१ ॥

भावार्थः—कन्या को चाहिये कि अपने से अधिक बल और विद्या वाले वा बराबर के पति को स्वीकार करे किन्तु छोटे वा न्यून विद्या वाले को नहीं । जिस के साथ विवाह करे उसके सम्बन्धी और मित्रों को सब काल में प्रसन्न रक्खे ॥ ७१ ॥

परमस्या इत्यस्य वारुणिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह स्त्री अपने स्वामी से क्या-क्या कहे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

परमस्याः परावतो रोहिदश्वऽइहागहि । पुरीष्यः पुरुप्रियोऽग्ने त्वं तरा मृधः ॥ ७२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) पावक के समान तेजस्विन् विज्ञानयुक्त पते ! (रोहिदश्वः) अग्नि आदि पदार्थों से युक्त वाहनों से युक्त (पुरीष्यः) पालने में श्रेष्ठ (पुरुप्रियः) बहुत मनुष्यों की प्रीति रखने वाले (त्वम्) आप (इह) इस गृहाश्रम में (परावत) दूर देश से (परमस्याः) अति उत्तम गुण रूप और स्वभाव वाली कन्या की कीर्त्ति सुन के (आगहि) आइये और उस के साथ (मृधः) दूसरों के पदार्थों की आकांक्षा करने हारे शत्रुओं का (तर) तिरस्कार कीजिये ॥ ७२ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अपनी कन्या वा पुत्र का समीप देश में विवाह कभी न करें। जितना ही दूर विवाह किया जावे उतना ही अधिक सुख होवे निकट करने में कलह ही होता है ॥ ७२ ॥

यदग्ने इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर स्त्रीपुरुषों के प्रति सम्बन्धी लोग क्या-क्या प्रतिज्ञा करें और करावें यह विषय अलगे मन्त्र में कहा है ॥

यद॑ग्ने॒ कानि॒ कानि॑ चि॒दा ते॒ दारू॑णि द॒ध्मसि॑। सर्वं॒ तद॑स्तु ते घृ॒तं तज्जु॑षस्व यविष्ठ्य ॥ ७३ ॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ्य) अत्यन्त युवावस्था को प्राप्त हुए (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष वा स्त्री ! आप जैसे (कानि कानिचित्) कोई-कोई भी वस्तु (ते) तेरी हैं वे हम लोग (दारुणि) काष्ठ के पात्र में (दध्मसि) धारण करें (यत्) जो कुछ हमारी चीज है (तत्) सो (सर्वम्) सब (ते) तेरी (अस्तु) होवे जो हमारा (घृतम्) घृतादि उत्तम पदार्थ है (तत्) उस को तू (जुषस्व) सेवन कर। जो कुछ तेरा पदार्थ है सो सब हमारा हो, जो तेरा घृतादि पदार्थ है उसको हम ग्रहण करें ॥ ७३ ॥

भावार्थः—ब्रह्मचारी आदि मनुष्य अपने सब पदार्थ सब के उपकार के लिये रक्खें किन्तु ईर्ष्या से आपस में कभी भेद न करें जिस से सब के लिये सब सुखों की वृद्धि होवे और विघ्न न उठें इसी प्रकार स्त्री पुरुष भी परस्पर वर्त्तें ॥ ७३ ॥

यदत्तीत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वर ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

यदत्त्यु॑प॒जिह्वि॑का॒ यद्व॒म्रो॑ऽअति॒सर्प॑ति। सर्वं॒ तद॑स्तु ते घृ॒तं तज्जु॑षस्व यविष्ठ्य ॥ ७४ ॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ्य) अत्यन्त युवावस्था को प्राप्त हुए पते ! आप और (उपजिह्विका) जिस की जिह्वा इन्द्रिय अनुकूल अर्थात् वश में हो ऐसी स्त्री (यत्) जो (अत्ति) भोजन करे (यत्) जो (वम्रः) मुख से बाहर निकाला प्राणवायु (अतिसर्पति) अत्यन्त चलता है (तत्) वह (सर्वम्) सब (ते) तेरा (अस्तु) होवे। जो तेरा (घृतम्) घी आदि उत्तम पदार्थ है (तत्) उस को (जुषस्व) सेवन किया कर ॥ ७४ ॥

भावार्थः—जिस पुरुष से पुरुष वा स्त्री का व्यवहार सिद्ध होता हो उस के अनुकूल स्त्री पुरुष दोनों वर्त्तें। जो स्त्री का पदार्थ है वह पुरुष का और जो पुरुष का है वह स्त्री का भी होवे। इस विषय में कभी द्वेष नहीं करना चाहिये किन्तु आपस में मिलकर आनन्द भोगें ॥ ७४ ॥

अहरहरित्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता। विराट् त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर गृहस्थ लोग आपस में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अहरहरप्रयावं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै। रायस्पोषेण समिषा मदन्तोऽग्ने मा ते प्रतिवेशा रिषाम ॥ ७५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् पुरुष ! (अहरहः) नित्यप्रति (तिष्ठते) वर्त्तमान (अश्वायेव) जैसे घोड़े के लिये घास आदि खाने का पदार्थ आगे धरते हैं वैसे (अस्मै) इस गृहस्थ पुरुष के लिये (अप्रयावम्) अन्याय से पृथक् गृहाश्रम के योग्य (घासम्) भोगने योग्य पदार्थों को (भरन्तः) धारण करते हुए (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि तथा (इषा) अन्नादि से (संमदन्तः) सम्यक् आनन्द को प्राप्त हुए (प्रतिवेशाः) धर्म्मविषयक प्रवेश के निश्चित हम लोग (ते) तेरे ऐश्वर्य को (मारिषाम) कभी नष्ट न करें ॥ ७५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है। गृहस्थ मनुष्यों को चाहिये कि जैसे घोड़े आदि पशुओं के खाने के लिये जो दूध आदि पदार्थों को पशुओं के पालक नित्य इकट्ठे करते हैं वैसे अपने ऐश्वर्य को बढ़ाके सुख देवें और धन के अहंकार से किसी के साथ ईर्ष्या कभी न करें किन्तु दूसरों की वृद्धि वा धन देख के सदा आनन्द मानें ॥ ७५ ॥

नाभेत्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर ये मनुष्य लोग आपस में कैसे संवाद करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नाभा पृथिव्याः समिधानेऽअग्नौ रायस्पोषाय बृहते हवामहे। इरम्मदं बृहदुक्थं यजत्रं जेतारमग्निं पृतनासु सासहिम् ॥ ७६ ॥

पदार्थः—हे गृही लोगों ! जैसे हम लोग (बृहते) बड़े (रायः) लक्ष्मी के (पोषाय) पुष्ट करने हारे पुरुष के लिये (पृथिव्याः) पृथिवी के (नाभा) बीच (समिधाने) अच्छे प्रकार प्रज्वलित हुए (अग्नौ) अग्नि में और (पृतनासु) सेनाओं में (सासहिम्) अत्यन्त सहनशील

(इरम्मदम्) अन्न से आनन्दित होने वाले (वृहदुक्थम्) बड़ी प्रशंसा से युक्त (यजत्रम्) संग्राम करने योग्य (अग्निम्) बिजुली के समान शीघ्रता करने हारे (जेतारम्) विजयशील सेनापति पुरुष को (हवामहे) बुलाते हैं। वैसे तुम लोग भी इसको बुलाओ ॥ ७६ ॥

भावार्थः—पृथिवी का राज्य करते हुए मनुष्यों को चाहिये कि आग्नेय आदि अस्त्रों और तलवार आदि शस्त्रों का संचय कर और पूर्ण बुद्धि तथा शरीरबल से युक्त पुरुष को सेनापति करके निर्भयता के साथ वर्तें ॥ ७६ ॥

**याः सेना इत्यस्य नाभानेदिष्ट ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥**

राजपुरुषों को योग्य है कि अपने प्रयत्न से चोर आदि दुष्टों का बार-बार निवारण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

याः सेनाऽअभीत्वरीराव्याधिनीरुगणाऽउत । ये स्तेना ये च तस्करास्ताँस्तेऽअग्नेऽपिदधाम्यास्ये ॥ ७७ ॥

पदार्थः—हे सेना और सभा के स्वामी ! जसे मैं (याः) जो (अभित्वरीः) सम्मुख होके युद्ध करने हारी (आव्याधिनीः) बहुत रोगों से युक्त वा ताड़ना देने हारी (उगणाः) शस्त्रों को लेके विरोध में उद्यत हुई (सेनाः) सेना हैं उन (उत) और (ये) जो (स्तेनाः) सुरंग लगा के दूसरों के पदार्थों को हरने वाले (च) और (ये) जो (तस्कराः) द्यूत आदि कपट से दूसरों के पदार्थ लेने हारे हैं (तान्) उनको (ते) इस (अग्ने) अग्नि के (आस्ये) जलती हुई लपट में (अपिदधामि) गेरता हूं वैसे तू भी इन को इस में धरा कर ॥ ७७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। धर्मात्मा राजपुरुषों को चाहिये कि जो अपने अनुकूल सेना और प्रजा हों उनका निरन्तर सत्कार करें और जो सेना तथा प्रजा विरोधी हों तथा डाकू चोर खोटे वचन बोलने हारे मिथ्यावादी व्यभिचारी मनुष्य होवें उन को अग्नि से जलाने आदि भयंकर दण्डों से शीघ्र ताड़ना देकर वश में करें ॥ ७७ ॥

**दंष्ट्राभ्यामित्यस्य नाभानेदिष्ट ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगुष्णिक्छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥**

फिर उन दुष्टों को किस-किस प्रकार ताड़ना करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

दंष्ट्राभ्यां मलिम्लून् जम्भ्यैस्तस्कराँ२ऽउत । हनुभ्याᳬं स्तेनान् भगवस्ताँस्त्वं खाद सुखादितान् ॥ ७८ ॥

पदार्थः—हे (भगवः) ऐश्वर्य वाले सभा सेना के स्वामी ! जैसे (त्वम्) आप (जम्भ्यैः) मुख के जीभ आदि अवयवों और (दंष्ट्राभ्याम्) तीक्ष्ण दांतों से जिन (मलिम्लून्) मलीन आचरण वाले सिंह आदि को और (हनुभ्याम्) मसूड़ों से (तस्करान्) चोरों के समान वर्तमान (सुखादितान्) अन्याय से दूसरों के पदार्थों को भोगने और (स्तेनान्) रात में भीति आदि फोड़

तोड़ के पराया माल मारने हारे मनुष्यों को (खाद) जड़ से नष्ट करें वैसे (तान्) उन को हम लोग (उत) भी नष्ट करें ॥ ७८ ॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि जो गौ आदि बड़े उपकार के पशुओं को मारने वाले सिंह आदि वा मनुष्य हों उन तथा जो चोर आदि मनुष्य हैं उन को अनेक प्रकार के बन्धनों से बांध ताड़ना दे नष्ट कर वश में लावें ॥ ७८ ॥

ये जनेष्वित्यस्य नाभानेदिष्ट ऋषिः । सेनापतिर्देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर ये राजपुरुष किस-किस का निवारण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ये जनेषु मलिम्लव स्तेनासस्तस्करा वने । ये कक्षेष्वघायवस्ताँस्ते दधामि जम्भयोः ॥ ७९ ॥

पदार्थः—हे सभापते ! मैं सेनाध्यक्ष (ये) जो (जनेषु) मनुष्यों में (मलिम्लवः) मलीन स्वभाव से आते जाते (स्तेनासः) गुप्त चोर जो (वने) वन में (तस्कराः) प्रसिद्ध चोर लुटेरे और (ये) जो (कक्षेषु) कटरी आदि में (अघायवः) पाप करते हुए जीवन की इच्छा करने वाले हैं (तान्) उन को (ते) आप के (जम्भयोः) फैलाये मुख में ग्रास के समान (दधामि) धरता हूं ॥ ७९ ॥

भावार्थः—सेनापति आदि राजपुरुषों का यही मुख्य कर्त्तव्य है कि जो ग्राम और वनों में प्रसिद्ध चोर तथा लुटेरे आदि पापी पुरुष हैं उन को राजा के आधीन करें ॥ ७९ ॥

यो अस्मभ्यमित्यस्य नाभानेदिष्ट ऋषिः । अध्यापकोपदेशकौ देवते । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

योऽअस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः । निन्दाद्योऽअस्मान् धिप्साच्च सर्वं तं भस्मसा कुरु ॥ ८० ॥

पदार्थः—हे सभा और सेना के स्वामिन् ! आप (यः) जो (जनः) मनुष्य (अस्मभ्यम्) हम धर्मात्माओं के लिये (अरातीयात्) शत्रुता करे (यः) जो (नः) हमारे साथ (द्वेषते) दुष्टता करे (च) और हमारी (निन्दात्) निन्दा करे (यः) जो (अस्मान्) हम को (धिप्सात्) दम्भ दिखावे और हमारे साथ छल करे (तम्) उस (सर्वम्) सब को (भस्मसा) जला के सम्पूर्ण भस्म (कुरु) कीजिये ॥ ८० ॥

भावार्थः—अध्यापक उपदेशक और राजपुरुषों को चाहिये कि पढ़ाने शिक्षा उपदेश और दण्ड से निरन्तर विरोध का विनाश करें ॥ ८० ॥

संशितमित्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः । पुरोहितयजमानौ देवते । निचृदार्षी पंक्तिश्छन्दः ।
पंचमः स्वरः ॥

अब पुरोहित यजमान आदि से किस-किस पदार्थों की इच्छा करें ॥

सꣳशितं मे ब्रह्म सꣳशितं वीर्यं बलम् । सꣳशितं क्षत्रं जिष्णु यस्याहमस्मि पुरोहितः ॥ ८१ ॥

पदार्थः—(अहम्) मैं (यस्य) जिस यजमान पुरुष का (पुरोहितः) प्रथम धारण करने हारा (अस्मि) हूं उसका और (मे) मेरा (संशितम्) प्रशंसा के योग्य (ब्रह्म) वेद का विज्ञान और उस यजमान का (संशितम्) प्रशसा के योग्य (वीर्य्यम्) पराक्रम प्रशंसित (बलम्) बल (सशितम्) और प्रशंसा के योग्य (जिष्णु) जय का स्वभाव वाला (क्षत्रम्) क्षत्रिय-कुल होवे ॥ ८१ ॥

भावार्थः—जो जिसका पुरोहित और जो जिसका यजमान हो वे दोनों आपस में जिस विद्या के योग बल और धर्माचरण से आत्मा की उन्नति और ब्रह्मचर्य जितेन्द्रियता तथा आरोग्यता से शरीर का बल बढ़े वही कर्म निरन्तर किया करें ॥ ८१ ॥

उदेषामित्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः । सभापतिर्यजमानो देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर यजमान पुरोहित के साथ कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

उदेषां बाहूऽअतिरमुद्वर्चोऽअथो बलम् । क्षिणोमि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वाँ२ऽअहम् ॥ ८२ ॥

पदार्थः—(अहम्) मं यजमान वा पुरोहित (ब्रह्मणा) वेद और ईश्वर के ज्ञान देने से (एषाम्) इन पूर्वोक्त चोर आदि दुष्टों के (बाहु) बल और पराक्रम को (उदतिरम्) अच्छे प्रकार उल्लंघन करूँ (वर्चः) तेज तथा (बलम्) सामर्थ्य के और (अमित्रान्) शत्रुओं को (उत्क्षिणोमि) मारता हूं (अथो) इस के पश्चात् (स्वान्) अपने मित्रों के तेज और सामर्थ्य को (उन्नयामि) वृद्धि के साथ प्राप्त करूँ ॥ ८२ ॥

भावार्थः—राजा आदि यजमान तथा पुरोहितों को चाहिये कि पापियों के सब पदार्थों का नाश और धर्मात्माओं के सब पदार्थों की वृद्धि सदैव सब प्रकार से किया करें ॥ ८२ ॥

अन्नपत इत्यस्य नाभानेदिष्ठ ऋषिः । यजमानपुरोहितौ देवते । उपरिष्टाद्बृहती
छन्दः । मध्यम स्वरः ॥

अब मनुष्यों को इस संसार में कैसे कैसे वर्त्तना इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः । प्रप्र दातारं तारिषऽ ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ ८३ ॥

पदार्थः—हे (अन्नपते) ओषधि अन्नों के पालन करने हारे यजमान वा पुरोहित ! आप (नः) हमारे लिये (अनमीवस्य) रोगों के नाश से सुख को बढ़ाने (शुष्मिणः) बहुत बलकारी (अन्नस्य) अन्न को (प्रप्रदेहि) अतिप्रकर्ष के साथ दीजिये और इस अन्न के (दातारम्) देने हारे को (तारिषः) तृप्त कर तथा (नः) हमारे (द्विपदे) दो पग वाले मनुष्यादि तथा (चतुष्पदे) चार पगवाले गौ आदि पशुओं के लिए (ऊर्जम्) पराक्रम को (धेहि) धारण कर ॥ ८३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिए कि सदैव बलकारी आरोग्य अन्न आप सेवें और दूसरों को देवें। मनुष्य तथा पशुओं के सुख और बल बढ़ावें। जिससे ईश्वर की सृष्टिक्रमानुकूल आचरण से सब के सुखों की सदा उन्नति होवे ॥ ८३ ॥

इस अध्याय में गृहस्थ राजा के पुरोहित सभा और सेना के अध्यक्ष और प्रजा के मनुष्यों को करने योग्य कर्म आदि के वर्णन से इस अध्याय में कहे अर्थ को पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह यजुर्वेदभाष्य का ग्यारहवां (११) अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

॥ ओ३म् ॥

* अथ द्वादशाऽध्यायारम्भः *

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥१॥

य० ३० । ३ ॥

दृशान इत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

अब बारहवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है उसके प्रथम मन्त्र में
विद्वानों के गुणों का उपदेश किया है ॥

दृ॒शा॒नो रु॒क्मऽउ॒र्व्या व्य॑द्यौद् दु॒र्मर्ष॒मायुः॑ श्रि॒ये रु॑चा॒नः । अ॒ग्निर॒मृतो॑ऽअ-
भव॒द्वयो॑भि॒र्यदे॑नं॒ द्यौरज॑नयत्सु॒रेताः॑ ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (दृशानः) दिखलाने हारा (द्यौः) स्वयं प्रकाशस्वरूप (अग्निः) सूर्यरूप अग्नि (उर्व्या) अति स्थूल भूमि के साथ सब मूर्त्तिमान् पदार्थों को (व्यद्यौत्) विविध प्रकार से प्रकाशित करता है वैसे जो (श्रिये) (रुचानः) सौभाग्य लक्ष्मी के अर्थ रुचिकर्त्ता (रुक्मः) सुशोभित जन (अभवत्) होता और जो (सुरेताः) उत्तम वीर्ययुक्त (अमृतः) नाशरहित (दुर्मर्षम्) शत्रुओं के दुःख से निवारण के योग्य (आयुः) जीवन को (अजनयत्) प्रकट करता है (वयोभिः) अवस्थाओं के साथ (एनम्) इस विद्वान् पुरुष को प्रकट करता हो उस को तुम सदा निरन्तर सेवन करो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे इस जगत् में सूर्य आदि सब पदार्थ अपने २ दृष्टान्त से परमेश्वर को निश्चय कराते हैं वैसे ही मनुष्य को होना चाहिये ॥ १ ॥

नक्तोषासेत्यस्य कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षीत्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नक्तो॒षासा॒ सम॑नसा॒ विरू॑पे धा॒पये॑ते॒ शिशु॒मेक॑ꣳ समी॒ची । द्यावा॒क्षामा॑
रु॒क्मोऽअ॒न्तर्वि भा॑ति दे॒वाऽअ॒ग्निं धा॑रयन् द्रविणो॒दाः॑ ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिस (अग्निम्) बिजुली को (द्रविणोदाः) बलदाता (देवाः) दिव्य प्राण (धारयन्) धारण करें जो (रुक्मः) रुचिकारक हो के (अन्तः) अन्तःकरण में (विभाति) प्रकाशित होता है जो (समनसा) एक विचार से विदित (विरूपे) अन्धकार और प्रकाश से विरुद्ध युक्त (समीची) सब प्रकार सब को प्राप्त होने वाली (द्यावाक्षामा) प्रकाश और भूमि तथा (नक्तोषासा) रात्रि और दिन जैसे (एकम्) एक (शिशुम्) बालक को दो माता, (धापयेते) दूध पिलाती हैं वैसे उस को तुम लोग जानो ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे जननी माता और धायी बालक को दूध पिलाती हैं वैसे ही दिन और रात्रि सब की रक्षा करती हैं और जो बिजुली के स्वरूप से सर्वत्र व्यापक है इस बात का तुम सब निश्चय करो ॥ २ ॥

विश्वारूपाणीत्यस्य श्यावाश्व ऋषिः। सविता देवता। विराड्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अब अगले मन्त्र में परमेश्वर के कृत्य का उपदेश किया है॥

विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते कविः प्रासावीद् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे। विनाकमख्यत्सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो विराजति॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (वरेण्यः) ग्रहण करने योग्य (कविः) जिस की दृष्टि और बुद्धि सर्वत्र है वा सर्वज्ञ (सविता) सब संसार का उत्पादक जगदीश्वर वा सूर्य्य (उषसः) प्रातःकाल का समय (प्रयाणम्) प्राप्त करने को (अनुविराजति) प्रकाशित होता है (विश्वा) सब (रूपाणि) पदार्थों के स्वरूप (प्रतिमुञ्चते) प्रसिद्ध करता है और (द्विपदे) मनुष्यादि दो पग वाले (चतुष्पदे) तथा गो आदि चार पग वाले प्राणियों के लिये (नाकम्) सब दुःखों से पृथक् (भद्रम्) सेवने योग्य सुख को (व्यख्यत्) प्रकाशित करता और (प्रासावीत्) उन्नति करता है ऐसे उस सूर्य्यलोक को उत्पन्न करने वाले ईश्वर को तुम लोग जानो ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जिस परमेश्वर ने सम्पूर्ण रूपवान् द्रव्यों का प्रकाशक प्राणियों के सुख का हेतु प्रकाशमान सूर्यलोक रचा है उसी की भक्ति सब मनुष्य करें ॥ ३ ॥

सुपर्णोऽसीत्यस्य श्यावाश्व ऋषिः। गरुत्मान् देवता। धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर विद्वानों के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ। स्तोमऽआत्मा छन्दाᳬंस्यङ्गानि यजूᳬंषि नाम। साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः। सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत॥ ४ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जिस से (ते) आपका (त्रिवृत्) तीन कर्म्म उपासना और ज्ञानों से युक्त (शिरः) दुःखों का जिस से नाश हो (गायत्रम्) गायत्री छन्द से कहे विज्ञानरूप अर्थ (चक्षुः) नेत्र (बृहद्रथन्तरे) बड़े २ रथों के सहाय से दुःखों को छुड़ाने वाले (पक्षौ) इधर उधर के अवयव (स्तोमः) स्तुति के योग्य ऋग्वेद (आत्मा) अपना स्वरूप (छन्दांसि) उष्णिक् आदि छन्द (अङ्गानि) कान आदि (यजूंषि) यजुर्वेद के मन्त्र (नाम) नाम (यज्ञायज्ञियम्) ग्रहण करने और छोड़ने योग्य व्यवहारों के योग्य (वामदेव्यम्) वामदेव ऋषि ने जाने वा पढ़ाये (साम) तीसरे सामवेद (ते) आपका (तनूः) शरीर है इससे आप (गरुत्मान्) महात्मा (सुपर्णः) सुन्दर सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त (असि) है। जिस से (धिष्ण्याः) शब्द करने के हेतुओं में साधु (शफा) खुर तथा (पुच्छम्) बढ़ी पूंछ के समान अन्त्य का अवयव है उस के समान जो (गरुत्मान्) प्रशंसित शब्दोच्चारण से युक्त (सुपर्णः) सुन्दर उड़ने वाले (असि) है उस पक्षी के समान आप (दिवम्) सुन्दर विज्ञान को (गच्छ) प्राप्त हूजिये और (स्वः) सुख को (पत) ग्रहण कीजिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सुन्दर शाखा पत्र पुष्प फल और मूलों से युक्त वृक्ष शोभित होते हैं। वैसे ही वेदादि शास्त्रों के पढ़ने और पढ़ाने हारे सुशोभित होते हैं। जैसे पशु पूंछ आदि अवयवों से अपने काम करते और जैसे पक्षी पंखों से आकाश मार्ग से जाते आते आनन्दित होते हैं वैसे मनुष्य विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त हो पुरुषार्थ के साथ सुखों को प्राप्त हों ॥ ४ ॥

विष्णोः क्रम इत्यस्य श्यावाश्व ऋषिः। विष्णुर्देवता। भुरिगुत्कृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर भी अगले मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा गायत्रं छन्दऽआरोह पृथिवीमनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमोऽस्यभिमातिहा त्रैष्टुभं छन्दऽआरोहान्तरिक्षमनु विक्रमस्व। विष्णोः क्रमोऽस्यरातीयतो हन्ता जागतं छन्दऽआरोह दिवमनु विक्रमस्व विष्णो क्रमोऽसि शत्रूयतो हन्ताऽऽनुष्टुभं छन्दऽआरोह दिशोऽनु विक्रमस्व ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष ! जिससे आप (विष्णोः) व्यापक जगदीश्वर के (क्रमः) व्यवहार से शोधक (सपत्नहा) और शत्रुओं के मारने हारे (असि) हो इस से (गायत्रम्) गायत्री मन्त्र से निकले (छन्दः) शुद्ध अर्थ पर (आरोह) आरूढ़ हूजिये (पृथिवीम्) पृथिव्यादि पदार्थों से (अनुविक्रमस्व) अपने अनुकूल व्यवहार साधिये तथा जिस कारण आप (विष्णोः) व्यापक कारण के (क्रम) कार्य्यरूप (अभिमातिहा) अभिमानियों को मारने हारे (असि) हैं इस से आप (त्रैष्टुभम्) तीन प्रकार के सुखों संयुक्त (छन्दः) बलदायक वेदार्थ को (आरोह) ग्रहण और (अन्तरिक्षम्) आकाश को (अनुविक्रमस्व) अनुकूलव्यवहार में युक्त कीजिये जिस से आप (विष्णोः) व्यापनशील बिजुली रूप अग्नि के (क्रमः) जानने हारे

(अरातीयतः) विद्या आदि दान के विरोधी पुरुष के (हन्ता) नाश करने हारे (असि) हैं इस से आप (जागतम्) जगत् को जानने का हेतु (छन्दः) सृष्टिविद्या को बलयुक्त करने हारे विज्ञान को (आरोह) प्राप्त हूजिये और (दिवम्) सूर्य आदि अग्नि को (अनुविक्रमस्व) अनुक्रम से उपयुक्त कीजिये जो आप (विष्णोः) हिरण्यगर्भ वायु के (क्रमः) ज्ञापक तथा (शत्रूयतः) अपने को शत्रु का आचरण करने वाले पुरुषों के (हन्ता) मारने वाले (असि) है सो आप (आनुष्टुभम्) अनुकूलता के साथ सुख सम्बन्ध के हेतु (छन्दः) आनन्दकारक वेद भाग को (आरोह) उपयुक्त कीजिये और (दिशः) पूर्व आदि दिशाओं के (अनुविक्रमस्व) अनुकूल प्रयत्न कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि वेदविद्या से भूगर्भविद्याओं का निश्चय तथा पराक्रम से उनकी उन्नति करके रोग और शत्रुओं का नाश करें ॥ ५ ॥

अक्रन्ददित्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् । सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धोऽअख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो सभापति (सद्यः) एक दिन में (जज्ञानः) प्रसिद्ध हुआ (द्यौः) सूर्य्य प्रकाश रूप (अग्निः) विद्युत् अग्नि के समान (स्तनयन्निव) शब्द करता हुआ शत्रुओं को (अक्रन्दत्) प्राप्त होता है जैसे (क्षामा) पृथिवी (वीरुधः) वृक्षों को फल फूलों से युक्त करती है वैसे प्रजाओं के लिये सुखों को (रेरिहत्) अच्छे बुरे कर्मों का शीघ्र फल देता है जैसे सूर्य (इद्धः) प्रदीप्त और (समञ्जन्) सम्यक् पदार्थों को प्रकाशित करता हुआ (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (व्यख्यत्) प्रसिद्ध करता और (भानुना) अपनी दीप्ति के साथ (अन्तः) सब लोकों के बीच (आभाति) प्रकाशित होता है । वैसे जो सभापति शुभ गुण कर्मों से प्रकाशित हो उसको तुम लोग राजकार्य्यों में संयुक्त करो ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य सब लोकों के बीच में स्थित हुआ सब को प्रकाशित और आकर्षण करता है और जैसे पृथिवी बहुत फलों को देती है । वैसे ही मनुष्य को राज्य के कार्य्यों में अच्छे प्रकार से उपयुक्त करो ॥ ६ ॥

अग्न इत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्ष्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर विद्वानों के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्नेऽभ्यावर्त्तिन्नभि मा निवर्त्तस्वायुषा वर्चसा प्रजया धनेन । सन्या मेधया रय्या पोषेण ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (अभ्यावर्त्तिन्) सन्मुख हो के वर्त्तने वाले (अग्ने) तेजस्वी पुरुषार्थी विद्वान् पुरुष ! आप (आयुषा) बड़े जीवन (वर्चसा) अन्न तथा पढ़ने आदि (प्रजया) सन्तानों (धनेन) धन (सन्या) सब विद्याओं का विभाग करने हारी (मेधया) बुद्धि (रय्या) विद्या की शोभा और (पोषेण) पुष्टि के साथ (अभिनिवर्त्तस्व) निरन्तर वर्त्तमान हूजिये और (मा) मुझ को भी इन उक्त पदार्थों से संयुक्त कीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्य लोग भूगर्भादि विद्या के विना ऐश्वर्य्य को प्राप्त नहीं कर सकते और बुद्धि के विना विद्या भी नहीं हो सकती ॥ ७ ॥

अग्ने अङ्गिर इत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षीत्रिष्टुप् छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर विद्याभ्यास करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्नेऽअङ्गिरः शतं ते सन्त्वावृतः सहस्रं तऽउपावृतः । अधा पोषस्य पोषेण पुनर्नो नष्टमाकृधि पुनर्नो रयिमाकृधि ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) पदार्थविद्या के जानने हारे (अंगिरः) विद्या के रसिक विद्वान् पुरुष ! जिस पुरुषार्थी (ते) आप की अग्नि के समान (शतम्) सैकड़ों (आवृतः) आवृत्ति-रूप क्रिया और (सहस्रम्) हजारह (ते) आपके (उपावृतः) आवृत्तिरूप सुखों के भोग (सन्तु) होवें (अध) इस के पश्चात् आप इन से (पोषस्य) पोषक मनुष्य की (पोषेण) रक्षा से (नष्टम्) परोक्ष भी विज्ञान को (नः) हमारे लिये (पुनः) फिर भी (आकृधि) अच्छे प्रकार कीजिये तथा बिगड़ी हुई (रयिम्) प्रशंसित शोभा को (पुनः) फिर भी (नः) हमारे अर्थ (आकृधि) अच्छे प्रकार कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि विद्याओं में सैकड़ों आवृत्ति और शिल्प विद्याओं में हजारह प्रकार की प्रवृत्ति से विद्याओं का प्रकाश करके सब प्राणियों के लिये लक्ष्मी और सुख उत्पन्न करें ॥ ८ ॥

पुनरूर्जेत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर पढ़ाने हारे का कर्त्तव्य अगले मन्त्र में कहा है ॥

पुनरूर्जा निवर्त्तस्व पुनरग्नऽइषायुषा । पुनर्नः पाह्यꣳहसः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी अध्यापक विद्वान् जन ! आप (नः) हम लोगों को (अंहसः) पापों से (पुनः) वार-वार (निवर्तस्व) बचाइये (पुनः) फिर हम लोगों की (पाहि) रक्षा कीजिये और (पुनः) फिर (इषा) तथा (आयुषा) अन्न से (ऊर्जा) पराक्रमयुक्त कर्मों को प्राप्त कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थः—विद्वान् लोगों को चाहिये कि सब उपदेश के योग्य मनुष्यों को पापों से निरन्तर हटा के शरीर और आत्मा के बल से युक्त करें और आप भी पापों से बच के परम पुरुषार्थी होवें ॥ ९ ॥

सह रय्येत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद् गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सह रय्या निर्वर्त्तस्वग्ने पिन्वस्व धारया । विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥१०॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजस्वी विद्वान् पुरुष ! आप दुष्ट व्यवहारों से (निवर्त्तस्व) पृथक् हूजिये (विश्वप्स्न्या) सब भोगने वाले योग्य पदार्थों को भुगवाने हारी (धारया) सम्पूर्ण विद्याओं के धारण करने का हेतु वाणी तथा (रय्या) धन के (सह) साथ (विश्वतः) सब ओर से (परि) सब प्रकार (पिन्वस्व) सुखों का सेवन कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुषों को चाहिये कि कभी अधर्म्म का आचरण न करें और दूसरों को वैसा उपदेश भी न करें इस प्रकार सब शास्त्र और विद्याओं से विराजमान हुए प्रशंसा के योग्य होवें ॥ १० ॥

आ त्वेत्यस्य ध्रुव ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्ष्यनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर राजा और प्रजा के कर्मों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः । विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत् ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे शुभ गुण और लक्षणों से युक्त सभापति राजन् ! (त्वा) आप को राज्य की रक्षा के लिये मैं (अन्तः) सभा के बीच (आहार्षम्) अच्छे प्रकार ग्रहण करूं । आप सभा में (अभूः) विराजमान हूजिये (अविचाचलिः) सर्वथा निश्चल (ध्रुवः) न्याय से राज्यपालन में निश्चित बुद्धि होकर (तिष्ठ) स्थिर हूजिये (सर्वाः) सम्पूर्ण (विशः) प्रजा (त्वा) आप को (वाञ्छन्तु) चाहना करें (त्वत्) आप के पालने से (राष्ट्रम्) राज्य (माधिभ्रशत्) नष्टभ्रष्ट न होवे ॥ ११ ॥

भावार्थः—उत्तम प्रजाजनों को चाहिये कि सब से उत्तम पुरुष को सभाध्यक्ष राजा मान के उस को उपदेश करें कि आप जितेन्द्रिय हुए सब काल में धार्मिक पुरुषार्थी हूजिये । आप के बुरे आचरणों से राज्य कभी नष्ट न होवे । जिस से सब प्रजापुरुष आप के अनुकूल वर्त्तें ॥ ११ ॥

उदुत्तममित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । वरुणो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमꣳ श्रथाय । अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽअदितये स्याम ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (वरुण) शत्रुओं को बांधने (आदित्य) स्वरूप से अविनाशी सूर्य्य के समान सत्य न्याय का प्रकाशक सभापति विद्वान् ! आप (अस्मत्) हम से (अधमम्) निकृष्ट (मध्यमम्) मध्यस्थ और (उत्तमम्) उत्तम (पाशम्) बन्धन को (उदवविश्रथाय) विविध प्रकार से छुड़ाइये (अथ) इस के पश्चात् (वयम्) हम प्रजा के पुरुष (आदितये) पृथिवी के अखण्डित राज्य के लिये (तव) आप के (व्रते) सत्य न्याय के पालनरूप नियम में (अनागसः) अपराध रहित (स्याम) होवें ॥ १२ ॥

भावार्थः—जैसे ईश्वर के गुण कर्म और स्वभाव के अनुकूल सत्य आचरणों में वर्त्तमान हुए धर्मात्मा मनुष्य पाप के बन्धनों से छूट के सभी सुखी होते हैं वैसे ही उत्तम राजा को प्राप्त हो के प्रजा के पुरुष आनन्दित होते हैं ॥ १२ ॥

अग्रे बृहन्नित्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता भुरिगार्षीपंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्रे॑ बृ॒हन्नु॒षसा॑मू॒र्ध्वोऽअ॑स्थान्निर्ज॑ग॒न्वान् तम॑सो॒ ज्योति॒षागा॑त् । अ॒ग्निर्भा॒नुना॒ रुश॑ता स्वङ्गऽआ जा॒तो विश्वा॒ सद्मा॒न्यप्राः ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! जो आप (अग्रे) पहिले से जैसे सूर्य्य (स्वङ्गः) सुन्दर अवयवों से युक्त (अजातः) प्रकट हुआ (बृहन्) बड़ा (उषसाम्) प्रभातों के (ऊर्ध्वः) ऊपर आकाश में (अस्थात्) स्थिर होता और (रुशता) सुन्दर (भानुना) दीप्ति तथा (ज्योतिषा) प्रकाश से (तमसः) अन्धकार को (निर्जगन्वान्) निरन्तर पृथक् करता हुआ (आगात्) सब लोक लोकान्तरों को प्राप्त होता है (विश्वा) सब (सद्मानि) स्थूल स्थानों को (अप्राः) प्राप्त होता है उसके समान प्रजा के बीच आप हूजिये ॥ १३ ॥

भावार्थः—जो सूर्य्य के समान श्रेष्ठ गुणों से प्रकाशित सत्पुरुषों की शिक्षा से उत्कृष्ट बुरे व्यसनों से अलग सत्य न्याय से प्रकाशित सुन्दर अवयव वाला सर्वत्र प्रसिद्ध सब के सत्कार और जानने योग्य व्यवहारों का ज्ञाता और दूतों के द्वारा सब मनुष्यों के आशय को जानने वाला शुद्ध न्याय से प्रजाओं में प्रवेश करता है वही पुरुष राजा होने के योग्य होता है ॥ १३ ॥

हंस इत्यस्य त्रित ऋषिः । जीवेश्वरौ देवते । स्वराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में परमात्मा और जीव के लक्षण कहे हैं ॥

ह॒ꣳसः शु॑चि॒षद्व॒सुर॑न्तरिक्ष॒सद्धोता॑ वेदि॒षदति॑थिर्दुरोण॒सत् । नृ॒षद्व॑र॒सदृ॑त॒सद्व्यो॑म॒सद॒ब्जा गो॒जाऽऋ॑त॒जाऽअ॑द्रि॒जाऽऋ॒तं बृ॒हत् ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे प्रजा के पुरुषो ! तुम लोग जो (हंसः) दुष्ट कर्मों का नाशक (शुचिषत्) पवित्र व्यवहारों में वर्त्तमान (वसुः) सज्जनों में वसने वा उन को वसाने वाला (अन्तरिक्षसत्) धर्म

के अवकाश में स्थित (होता) सत्य का ग्रहण करने और कराने वाला (वेदिषत्) सब पृथिवी वा यज्ञ के स्थान में स्थित (अतिथिः) पूजनीय वा राज्य की रक्षा के लिये यथोचित समय में भ्रमण करने वाला (दुरोणसत्) ऋतुओं में सुखदायक आकाश में व्याप्त वा घर में रहने वाला (नृषत्) सेना आदि के नायकों का अधिष्ठाता (वरसत्) उत्तम विद्वानों की आज्ञा में स्थित (ऋतसत्) सत्याचरणों में आरूढ (व्योमसत्) आकाश के समान सर्वव्यापक ईश्वर वा जीवस्थित (अब्जाः) प्राणों के प्रकट करने हारा (गोजः) इन्द्रिय वा पशुओं को प्रसिद्ध करने हारा (ऋतजाः) सत्य विज्ञान को उत्पन्न करने हारा (अद्रिजाः) मेघों का वर्षाने वाला विद्वान् (ऋतम्) सत्यस्वरूप (बृहत्) अनन्त ब्रह्म और जीव को जाने उस पुरुष को सभा का स्वामी राजा बना के निरन्तर आनन्द में रहो ॥ १४ ॥

भावार्थः—जो पुरुष ईश्वर के समान प्रजाओं को पालने और सुख देने को समर्थ हो वही राजा होने के योग्य होता है । और ऐसे राजा के विना प्रजाओं को सुख भी नहीं हो सकता ॥१४॥

सीद त्वमित्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

माता का कर्म्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

सीद त्वं मातुरस्याऽउपस्थे विश्वान्यग्ने वयुनानि विद्वान् । मैनां तपसा मार्चिषाऽभिशोचीरन्तरस्याᳬं शुक्रज्योतिर्विभाहि ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्या को चाहने वाले पुरुष ! (त्वम्) आप (अस्याम्) इस माता के विद्यमान होने में (विभाहि) प्रकाशित हो (शुक्रज्योतिः) शुद्ध आचरणों के प्रकाश से युक्त (विद्वान्) विद्यावान् आप पृथिवी के समान आधार (मातुः) इस माता की (उपस्थे) गोद में (सीद) स्थित हूजिये । इस माता से (विश्वानि) सब प्रकार की (वयुनानि) बुद्धियों को प्राप्त हूजिये । इस माता को (अन्तः) अन्तःकरण में (मा) मत (तपसा) सन्ताप से तथा (अर्चिषा) तेज से (मा) मत (अभिशोचीः) शोकयुक्त कीजिये । किन्तु इस माता से शिक्षा को प्राप्त होके प्रकाशित हूजिये ॥ १५ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् माता ने विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त किया माता का सेवक जैसे माता पुत्रों को पालती है वैसे प्रजाओं का पालन करे वह पुरुष राजा के ऐश्वर्य्य से प्रकाशित होवे ॥ १५ ॥

अन्तरग्न इत्यस्य त्रित ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर राजा क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

अन्तरग्ने रुचा त्वमुखायाः सदने स्वे । तस्यास्त्वᳬं हरसा तपञ्जातवेदः शिवो भव ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) वेदों के ज्ञाता (अग्ने) तेजस्वी विद्वान् ! आप जिस (उखायाः) प्राप्त हुई प्रजा के नीचे से अग्नि के समान (स्वे) अपने (सदने) पढ़ने के स्थान में (तपन्) शत्रुओं को संताप कराते हुए (अन्तः) मध्य में (रुचा) प्रीति से वर्त्तो (तस्याः) उस प्रजा के (हरसा) प्रज्वलित तेज से आप शत्रुओं का निवारण करते हुए (शिवः) मङ्गलकारी (भव) हूजिये ॥ १६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सभाध्यक्ष राजा को चाहिये कि न्याय करने की गद्दी पर बैठ के अत्यन्त प्रीति के साथ राज्य के पालनरूप कार्यों को करे वैसे प्रजाओं को चाहिये कि राजा को सुख देती हुई दुष्टों को ताड़ना करें ॥ १६ ॥

शिवो भूत्वेत्यस्य त्रित ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

शिवो भूत्वा मह्यमग्नेऽअथो सीद शिवस्त्वम्। शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहासदः ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान शत्रुओं को जलाने वाले विद्वान् पुरुष ! (त्वम्) आप (मह्यम्) हम प्रजाजनों के लिये (शिवः) मङ्गलाचरण करने हारे (भूत्वा) होकर (इह) इस संसार में (शिवाः) मङ्गलकारी हुए (सर्वाः) सब (दिशः) दिशाओं में रहने हारी प्रजाओं को (शिवाः) मङ्गलाचरण से युक्त (कृत्वा) करके (स्वम्) अपने (योनिम्) राजधर्म के आसन पर (आसदः) बैठिये और (अथो) इसके पश्चात् राजधर्म में (सीद) स्थिर हूजिये ॥ १७ ॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि आप धर्मात्मा होके प्रजा के मनुष्यों को धार्मिक कर और न्याय की गद्दी पर बैठ के निरन्तर न्याय किया करे ॥ १७ ॥

दिवस्परीत्यस्य वत्सप्री ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर राजधर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

दिवस्परि प्रथमं जज्ञेऽअग्निरस्मद्द्वितीयं परि जातवेदाः। तृतीयमप्सु नृमणाऽअजस्रमिन्धानऽएनं जरते स्वाधीः ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे सभापति राजन् ! जो (अग्निः) अग्नि के समान आप (अस्मत्) हम लोगों से (दिवः) बिजुली के (परि) ऊपर (जज्ञे) प्रकट होते हैं उन (एनम्) आप को (प्रथमम्) पहिले जो (जातवेदाः) बुद्धिमानों में प्रसिद्ध उत्पन्न हुए उस आप को (द्वितीयम्) दूसरे जो (नृमणः) मनुष्यों में विचारशील आप (तृतीयम्) तीसरे (अप्सु) प्राण वा जल क्रियाओं में विदित हुए उस आप को (अजस्रम्) निरन्तर (इन्धानः) प्रकाशित करता हुआ विद्वान् (जरते) सब प्रकार स्तुति करता है सो आप (स्वाधीः) सुन्दर ध्यान से युक्त प्रजाओं को प्रकाशित कीजिये ॥ १८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये प्रथम ब्रह्मचर्य्याश्रम के सहित विद्या तथा शिक्षा का ग्रहण दूसरे गृहाश्रम से धन का सञ्चय तीसरे वानप्रस्थ आश्रम से तप का आचरण और चौथे संन्यास लेकर वेदविद्या और धर्म का नित्य प्रकाश करें ॥ १८ ॥

विद्मा त इत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

विद्मा तेऽअग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा । विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सं यतऽआजगन्थ ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! (ते) आप के जो (त्रेधा) तीन प्रकार से (त्रयाणि) तीन कर्म हैं उन को हम लोग (विद्म) जानें । हे स्थानों के स्वामी ! (ते) आप के जो (विभृत) विशेष करके धारण करने योग्य (पुरुत्रा) बहुत (धाम) नाम जन्म और स्थानरूप हैं उन को हम लोग (विद्म) जानें । हे विद्वान् पुरुष ! (ते) आपका (यत्) जो (गुहा) बुद्धि में स्थित गुप्त (परमम्) श्रेष्ठ (नाम) नाम है उस को हम लोग (विद्म) जानें (यतः) जिस कारण आप (आजगन्थ) अच्छे प्रकार प्राप्त होवें (तम्) उस (उत्सम्) कूप के तुल्य तर करने हारे आप को (विद्म) हम लोग जानें ॥ १९ ॥

भावार्थः—प्रजा के पुरुष और राजा को योग्य है कि राजनीति के कामों, सब स्थानों और सब पदार्थों के नामों को जानें । जैसे कुए से जल निकाल खेत आदि को तृप्त करते हैं वैसे ही धनादि पदार्थों से प्रजा राजा को और राजा प्रजाओं को तृप्त करे ।

समुद्र इत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर भी राजा और प्रजा के सम्बन्ध का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

समुद्रे त्वा नृमणाऽअप्स्वन्तर्नृचक्षाऽईधे दिवो अग्नऽऊधन् । तृतीये त्वा रजसि तस्थिवांसमपामुपस्थे महिषाऽअवर्धन् ॥ २० ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! (नृमणाः) नायक पुरुषों को विचारने वाला मैं जिस (त्वा) आप को (समुद्रे) आकाश में अग्नि के समान (ईधे) प्रदीप्त करता हूँ (नृचक्षा) बहुत मनुष्यों का देखने वाला मैं (अप्सु) अन्न वा जलों के (अन्तः) बीच प्रकाशित करता हूँ (दिवः) सूर्य के प्रकाश के (ऊधन्) प्रातःकाल में प्रकाशित करता हूँ (तृतीये) तीसरे (रजसी) लोक में (तस्थिवांसम्) स्थित हुए सूर्य के तुल्य जिस आप को (अपाम्) जलों के (उपस्थे) समीप (महिषः) महात्मा विद्वान् लोग (अवर्धन्) उन्नति को प्राप्त करें सो आप हम लोगों की निरन्तर उन्नति कीजिये ॥ २० ॥

भावार्थः—प्रजा के बीच वर्त्तमान सब श्रेष्ठ पुरुष राजकार्यों को और राजपुरुष प्रजापुरुषों को नित्य बढ़ाते रहें ॥ २० ॥

अक्रन्ददित्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अक्रन्ददग्नि स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद् वीरुधः समञ्जन् । सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धोऽअख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (द्यौः) सूर्यलोक (अग्निः) विद्युत् अग्नि (स्तनयन्निव) शब्द करते हुए के समान (वीरुधः) औषधियों को (समञ्जन्) प्रकट करता हुआ (सद्यः) शीघ्र (हि) ही (अक्रन्दत्) पदार्थों को इधर उधर चलाता (क्षामा) पृथिवी को (रेरहित) कंपाता और यह (जज्ञानः) प्रसिद्ध हुआ (इद्धः) प्रकाशमान होकर (भानुना) किरणों के साथ (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी को (ईम्) सब ओर से (व्यख्यत्) विख्यात करता है और ब्रह्माण्ड के (अन्तः) बीच (आभाति) अच्छे प्रकार शोभायमान होता है वैसे तुम लोग भी होओ ॥ २१ ॥

भावार्थः—ईश्वर ने जिसलिए सूर्यलोक को उत्पन्न किया है इसीलिए वह बिजुली के समान सब लोकों का आकर्षण कर और ओषधि आदि पदार्थों को बढ़ाने का हेतु और सब भूगोलों के बीच जैसे शोभायमान होता है वैसे राजा आदि पुरुषों को भी होना चाहिए । ॥ २१ ॥

श्रीणामित्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

इन राजकार्यों में कैसे पुरुष को राजा बनावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः । वसुः सूनुः सहसाऽअप्सु राजा विभात्यग्रेऽउषसामिधानः ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिए कि जो पुरुष (उषसाम्) प्रभात समय के (अग्रे) आरम्भ में (इधानः) प्रदीप्यमान सूर्य के समान (श्रीणाम्) सब उत्तम लक्ष्मियों के मध्य (उदारः) परीक्षित पदार्थों का देने (रयीणाम्) धनों का (धरुणः) धारण करने (मनीषाणाम्) बुद्धियों का (प्रार्पणः) प्राप्त कराने और (सोमगोपाः) ओषधियों वा ऐश्वर्यों की रक्षा करने (सहसः) ब्रह्मचर्य किये जितेन्द्रिय बलवान् पिता का (सूनुः) पुत्र (वसुः) ब्रह्मचर्याश्रम करता हुआ (अप्सु) प्राणों में (राजा) प्रकाशयुक्त होकर (विभांति) शुभ गुणों का प्रकाश करता हो उस को सब का अध्यक्ष करो ॥ २२ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को उचित है कि सुपात्रों को दान देने धन का व्यर्थ खर्च न करने सब को विद्या बुद्धि देने जिसने ब्रह्मचर्याश्रम सेवन किया हो अपने इन्द्रिय जिसके वश में हों

योग के यम आदि आठ अङ्गों के सेवन से प्रकाशमान सूर्य के समान अच्छे गुण कर्म्म और स्वभावों से सुशोभित और पिता के समान अच्छे प्रजाओं का पालन करने हारा पुरुष हो उसको राज्य करने के लिये स्थापित करें ॥ २२ ॥

विश्वस्येत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्चीत्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

विश्व॑स्य के॒तुर्भुव॑नस्य॒ गर्भ॒ऽआ रोद॑सीऽअपृणा॒ज्जाय॑मानः । वी॒डुं चि॒दद्रि॑मभिनत् परा॒यन् जना॒ यद॒ग्निमय॑जन्त॒ पञ्च॑ ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (यत्) जो विद्वान् (विश्वस्य) सब (भुवनस्य) लोकों का (केतुः) पिता के समान रक्षक प्रकाशने हारा (गर्भः) उन के मध्य में रहने (जायमानः) उत्पन्न होने वाला (परायन्) शत्रुओं को प्राप्त होता हुआ (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी को (अपृणात्) पूरण कर्त्ता हो (वीडुम्) अत्यन्त बलवान् (अद्रिम्) मेघ को (अभिनत्) छिन्न भिन्न करे (पञ्च) पांच (जनाः) प्राण (अग्निम्) बिजुली को (अयजन्त) संयुक्त करते हैं (चित्) इसी प्रकार जो विद्या आदि शुभ गुणों का प्रकाश करे उस को न्यायाधीश राजा मानो ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे ब्रह्माण्ड के बीच सूर्यलोक अपनी आकर्षण शक्ति से सब को धारण करता और मेघ को काटने वाला तथा प्राणों से प्रसिद्ध हुए के समान सब विद्याओं को जताने और जैसे माता गर्भ की रक्षा करे वैसे प्रजा का पालने हारा विद्वान् पुरुष हो उस को राज्याधिकार देना चाहिये ॥ २३ ॥

उशिगित्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

उ॒शिक् पा॑व॒को अ॑र॒तिः सु॑मे॒धा मर्त्ये॑ष्व॒ग्निर॒मृतो॒ नि धा॑यि । इय॑र्ति धू॒मम॑रु॒षम्भरि॑भ्र॒दुच्छु॒क्रेण॑ शो॒चिषा॒ द्यामिन॑क्षन् ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग ईश्वर ने (मर्त्येषु) मनुष्यों में जो (उशिक्) मानने योग्य (पावकः) पवित्र करने हारा (अरतिः) ज्ञान वाला (सुमेधाः) अच्छी बुद्धि से युक्त (अमृतः) मरणधर्मरहित (अग्निः) आकाररूप ज्ञान का प्रकाश (निधायि) स्थापित किया है जो (शुक्रेण) शीघ्रकारी (शोचिषा) प्रकाश से (द्याम्) सूर्यलोक को (इनक्षन्) व्याप्त होता हुआ (धूमम्) धुएं (अरुषम्) रूप को (भरिभ्रत्) अत्यन्त धारण वा पुष्ट करता हुआ (उदियर्त्ति) प्राप्त होता है उसी ईश्वर की उपासना करो वा उस अग्नि से उपकार लेओ ॥ २४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि कार्य्य कारण के अनुसार ईश्वर के रचे हुए सब पदार्थों को ठीक २ जान के अपनी बुद्धि बढ़ावें ॥ २४ ॥

दृशान इत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या २ जानना चहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

दृशानो रुक्मऽउर्व्या व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः । अग्निरमृतोऽअभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत्सुरेताः ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (यत्) जिस कारण (दृशानः) दिखाने हारा (रुक्मः) रुचि का हेतु (श्रिये) शोभा का (रुचानः) प्रकाशक (दुर्मर्षम्) सब दुःखों से रहित (आयुः) जीवन करता हुआ (अमृतः) नाशरहित (अग्निः) तेजस्वरूप (उर्व्या) पृथिवी के साथ (व्यद्यौत्) प्रकाशित होता है (वयोभिः) व्यापक गुणों के साथ (अभवत्) उत्पन्न होता और जो (द्यौः) प्रकाशक (सुरेताः) सुन्दर पराक्रम वाला जगदीश्वर (यत्) जिस के लिये (एनम्) इस अग्नि को (अजनयत्) उत्पन्न करता है उस ईश्वर आयु और विद्युत् रूप अग्नि को जानो ॥ २५ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य गुण कर्म और स्वभावों के सहित जगत् रचने वाले अनादि ईश्वर और जगत् के कारण को ठीक २ जान के उपासना करते और उपयोग लेते हैं वे चिरंजीव होकर लक्ष्मी को प्राप्त होते हैं ॥ २५ ॥

यस्त इत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर विद्वान् लोग कैसे रसोइया का स्वीकार करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

यस्तेऽअद्य कृणवद्भद्रशोचेऽपूपं देव घृतवन्तमग्ने । प्र तं नय प्रतरं वस्योऽअच्छाभि सुम्नं देवभक्तं यविष्ठ ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (भद्रशोचे) सेवने योग्य दीप्ति से युक्त (यविष्ठ) तरुण अवस्था वाले (देव) दिव्य भोगों के दाता (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! (यः) जो (ते) आपका (घृतवन्तम्) बहुत घृत आदि पदार्थों से संयुक्त (अभि) सब प्रकार से (सुम्नम्) सुखरूप (देवभक्तम्) विद्वानों के सेवने योग्य (अपूपम्) भोजन के योग्य पदार्थों वाला (वस्यः) अत्यन्त भोग्य (अच्छ) अच्छे २ पदार्थों को (कृणवत्) बनावे (तम्) उस (प्रतरम्) पाक बनाने हारे पुरुष को आप (अद्य) आज (प्रणय) प्राप्त हूजिये ॥ २६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों से अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुए अति उत्तम व्यञ्जन और शष्कुली आदि तथा शाक आदि स्वाद से युक्त रुचिकारक पदार्थों को बनाने वाले पाचक पुरुष का ग्रहण करें ॥ २६ ॥

आ तमित्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ।

आ तं भज सौश्रवसेष्वग्नऽउक्थऽउक्थऽआभज शस्यमाने । प्रियः सूर्य्ये प्रियोऽअग्ना भवात्युज्जातेन भिनददुज्जनित्वैः ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! आप जो (सौश्रवसेषु) सुन्दर धन वालों में वर्त्तमान हो (तम्) उस को (आभज) सेवन कीजिये जो (शस्यमाने) स्तुति के योग्य (उक्थे उक्थे) अत्यन्त कहने योग्य व्यवहार में (प्रियः) प्रीति रक्खे (सूर्य्ये) स्तुतिकारक पुरुषों में हुए व्यवहार (अग्ना) और अग्निविद्या में (प्रियः) सेवने योग्य (जातेन) उत्पन्न हुए और (जनित्वैः) उत्पन्न होने वालों के साथ (उद्भवाति) उत्पन्न होवे और शत्रुओं को (उद्भिनदत्) उच्छिन्न भिन्न करे (तम्) उस को आप (आभज) सेवन कीजिये ॥ २७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो पाक करने में साधु सब का हितकारी अन्न और व्यंजनों को अच्छे प्रकार बनावे उसको अवश्य ग्रहण करें ॥ २७ ॥

त्वामग्न इत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य लोग विद्या को किस प्रकार बढ़ावें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

त्वामग्ने यजमानाऽअनु द्यून् विश्वा वसु दधिरे वार्य्याणि । त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो विवव्रुः ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! जिस (त्वम्) आप का आश्रय लेकर (उशिजः) बुद्धिमान् (यजमानाः) संगतिकारक लोग (त्वया) आप के (सह) साथ (विश्वा) सब (वार्याणि) ग्रहण करने योग्य (अनुद्यून्) दिनों में (वसु) द्रव्यों को (दधिरे) धारण करें (द्रविणम्) धन की (इच्छमानाः) इच्छा करते हुए (गोमन्तम्) सुन्दर किरणों के रूप से युक्त (व्रजम्) मेघ वा गोस्थान को (विवव्रुः) विविध प्रकार से ग्रहण करें वैसे हम लोग भी होवें ॥ २८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि प्रयत्नशील विद्वानों के संग से पुरुषार्थ के साथ विद्या और सुख को नित्यप्रति बढ़ाते जावें ॥ २८ ॥

अस्तावीत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उन विद्वानों के संग से क्या होता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अस्ताव्यग्निर्नराᳬ सुशेवो वैश्वानरऽऋषिभिः सोमगोपाः । अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे (देवाः) शत्रुओं को जीतने की इच्छा वाले विद्वानो ! जिन (ऋषिभिः) ऋषि तुम लोगों ने (नराम्) नायक विद्वानों में (सुवेशः) सुन्दर सुखयुक्त (वैश्वानरः) सब मनुष्यों के आधार (अग्निः) परमेश्वर की (अस्तावि) स्तुति की है जो तुम लोग (अस्मे) हमारे लिये (सुवीरम्) जिससे सुन्दर वीर पुरुष हों उस (रयिम्) राज्यलक्ष्मी को (धत्त) धारण करो उस के आश्रित (सोमगोपाः) ऐश्वर्य के रक्षक हम लोग (अद्वेषे) द्वेष करने के अयोग्य प्रीति के विषय में (द्यावापृथिवी) प्रकाशरूप राजनीति और पृथिवी के राज्य का (हुवेम) ग्रहण करें ॥ २९ ॥

भावार्थः—जो सच्चिदानन्दस्वरूप ईश्वर के सेवक धर्मात्मा विद्वान् लोग हैं वे परोपकारी होने से आप्त यथार्थवक्ता होते हैं ऐसे पुरुषों के सत्संग के विना स्थिर विद्या और राज्य को कोई भी नहीं कर सकता ॥ २९ ॥

समिधाग्निमित्यस्य विरूपाक्ष ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्य किन का सेवन करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे ग्रहस्थो ! तुम लोग जैसे (समिधा) अच्छे प्रकार इन्धनों से (अग्निम्) अग्नि को प्रकाशित करते हैं वैसे उपदेश करनेवाले विद्वान् पुरुष की (दुवस्यत) सेवा करो और जैसे सुसंस्कृत अन्न तथा (घृतैः) घी आदि पदार्थों से अग्नि में होम करके जगदुपकार करते हैं वैसे (अतिथिम्) जिस के आने जाने के समय का नियम न हो उस उपदेशक पुरुष को (बोधयत) स्वागत उत्साहादि से चैतन्य करो और (अस्मिन्) इस जगत् में (हव्या) देने योग्य पदार्थों को (आजुहोतन) अच्छे प्रकार दिया करो ॥ ३० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सत्पुरुषों ही की सेवा और सुपात्रों को दान दिया करें जैसे अग्नि में घी आदि पदार्थों का हवन करके संसार का उपकार करते हैं वैसे ही विद्वानों में उत्तम पदार्थों का दान करके जगत् में विद्या और अच्छी शिक्षा को बढ़ा के विश्व को सुखी करें ॥ ३० ॥

उदुत्वेत्यस्य तापस ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

विद्वानों को चाहिये कि अपने तुल्य अन्य मनुष्यों को विद्वान् करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

उदु॑ त्वा॒ विश्वे॑ दे॒वाऽअग्ने॒ भर॑न्तु चित्ति॑भिः । स नो॑ भव शि॒वस्त्वꣳ सु॒प्रती॑को वि॒भाव॑सुः ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् ! जिस (त्वा) आपको (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (चित्तिभिः) अच्छे विज्ञानों के साथ अग्नि के समान (उदुभरन्तु) पुष्ट करें (सः) सो (विभावसुः) जिन से विविध प्रकार की शोभा वा विद्या प्रकाशित हो (सुप्रतीकः) सुन्दर लक्षण से युक्त (त्वम्) आप (नः) हम लोगों के लिये (शिवः) मङ्गलमय वचनों के उपदेशक (भव) हूजिये ॥ ३१ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य जैसे विद्वानों से विद्या का सञ्चय करता है वह वैसे ही दूसरों के लिये विद्या का प्रचार करे ॥ ३१ ॥

प्रेदग्न इत्यस्य तापस ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर राजा क्या करके किस को प्राप्त होवे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रेद॑ग्ने॒ ज्योति॑ष्मान् याहि शि॒वेभि॑र॒र्चिभि॒ष्ट्वम् । बृ॒हद्भि॑र्भा॒नुभि॒र्भास॒न् । मा हिꣳसीस्त॒न्वा॒ प्र॒जाः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्या प्रकाश करने हारे विद्वन् ! (त्वम्) तू जैसे (ज्योतिष्मान्) सूर्य्यज्योतिषियों से युक्त (शिवेभिः) मङ्गलकारी (अर्चिभिः) सत्कार के साधन (बृहद्भिः) बड़े २ (भानुभिः) प्रकाशगुणों से (इत्) ही (भासन्) प्रकाशमान है वैसे (प्रयाहि) सुखों को प्राप्त हूजिये और (तन्वा) शरीर से (प्रजाः) पालने योग्य प्राणियों को (मा) मत (हिंसीः) मारिये ॥ ३२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्रमें वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे सेनापति आदि राजपुरुषों के सहित राजन् ! आप अपने शरीर से किसी अनपराधी प्राणी को न मार के विद्या और न्याय के प्रकाश से प्रजाओं का पालन करके जीते हुए संसार के सुख को और शरीर छूटने के पश्चात् मुक्ति के सुख को प्राप्त हूजिये ॥ ३२ ॥

अक्रन्ददित्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राज्य का प्रबन्ध कैसे करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अक्र॑न्दद॒ग्निस्त॒नय॑न्निव॒ द्यौः क्षामा॒ रेरि॑ह॒द् वी॒रुधः॑ सम॒ञ्जन् । स॒द्यो ज॑ज्ञा॒नो वि हीमि॒द्धोऽअख्य॒दा रोद॑सी भा॒नुना॑ भात्य॒न्तः ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे प्रजा के लोगो ! तुम लोगों को चाहिये कि जैसे (द्यौः) सूर्य प्रकाशकर्त्ता है वैसे विद्या और न्याय का प्रकाश करने और (अग्निः) पावक के तुल्य शत्रुओं का नष्ट करने हारा

विद्वान् (स्तनयन्निव) बिजुली के समान (अक्रदत्) गर्जता और (वीरुधः) वन के वृक्षों की (समञ्जन्) अच्छे प्रकार रक्षा करता हुआ (क्षामा) पृथिवी पर (रेरिहत्) युद्ध करे (जज्ञानः) राजनीति से प्रसिद्ध हुआ (इद्धः) शुभ लक्षणों से प्रकाशित (सद्यः) शीघ्र (व्यख्यत्) धर्मयुक्त उपदेश करे तथा (भानुना) पुरुषार्थ के प्रकाश से (हि) ही (रोदसी) अग्नि और भूमि को (अन्तः) राजधर्म में स्थिर करता हुआ (आभाति) अच्छे प्रकार प्रकाश करता है वह पुरुष राजा होने के योग्य है ऐसा निश्चित जानो ॥ ३३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। वन के वृक्षों की रक्षा के बिना बहुत वर्षा और रोगों की न्यूनता नहीं होती और बिजुली के तुल्य दूर के समाचारों से शत्रुओं को मारने और विद्या तथा न्याय के प्रकाश के बिना अच्छा स्थिर राज्य ही नहीं हो सकता ॥ ३३ ॥

प्रप्रायमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षीत्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर कैसे पुरुष को राजव्यवहार में नियुक्त करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रप्रायम॒ग्निर्भ॑र॒तस्य॑ शृण्वे॒ वि यत्सूर्यो॒ न रोच॑ते बृ॒हद्भाः। अ॒भि यः पू॒रुं पृत॑नासु त॒स्थौ दी॒दाय॒ दैव्यो॒ऽअति॑थिः शि॒वो नः॑ ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे राजा और प्रजा के पुरुषो ! तुम लोगों को चाहिये कि (यत्) जो (अयम्) यह (अग्नि) सेनापति (सूर्य्यः) सूर्य्य के (न) समान (बृहद्भाः) अत्यन्त प्रकाश से युक्त (प्रप्र) अति प्रकर्ष के साथ (रोचते) प्रकाशित होता है (यः) जो (नः) हमारी (पृतनासु) सेनाओं में (पूरुम्) पूर्ण बलयुक्त सेनाध्यक्ष के निकट (अभितस्थौ) सब प्रकार स्थित होवे (दैव्यः) विद्वानों का प्रिय (अतिथि) नित्य भ्रमण करने हारा अतिथि (शिवः) मङ्गलदाता विद्वान् पुरुष (दीदाय) विद्या और धर्म को प्रकाशित करे जिस को मैं (भरतस्य) सेवने योग्य राज्य का रक्षक (शृण्वे) सुनता हूँ। उस को सेना का अधिपति करो ॥ ३४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्य को चाहिये कि जिस पुण्यकीर्ति पुरुष का शत्रुओं में विजय और विद्याप्रचार सुना जावे उस कुलीन पुरुष का सेना को युद्ध कराने हारा अधिकारी करें ॥ ३४ ॥

आप इत्यस्य वशिष्ठ ऋषिः। आपो देवताः। आर्षीत्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब सब मनुष्यों को स्वयम्वर विवाह करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आपो॑ दे॒वीः प्रति॑गृभ्णीत॒ भस्मै॒तत्स्यो॒ने कृ॑णुध्वꣳ सुर॒भाऽउ॑ लो॒के। तस्मै॑ नमन्तां॒ जन॑यः सु॒पत्नी॑र्मा॒तेव॑ पु॒त्रं बि॑भृता॒प्स्वे॒नत् ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो ! जो (आपः) पवित्र जलों के तुल्य सम्पूर्ण शुभगुण और विद्याओं में व्याप्त बुद्धि (देवीः) सुन्दर रूप और स्वभाव वाली कन्या (सुरभौ) ऐश्वर्य के प्रकाश से युक्त (लोके) देखने योग्य लोकों में अपने पतियों को प्रसन्न करें उन को (प्रतिगृभ्णीत) स्वीकार करो तथा उन को सुखयुक्त (कृणुध्वम्) करो जो (एतत्) यह (भस्म) प्रकाशक तेज है (तस्मै) उस के लिये जो (सुपत्नीः) सुन्दर (जनयः) विद्या और अच्छी शिक्षा से प्रसिद्ध हुई स्त्री नमती है उन के प्रति आप लोग भी (नमन्ताम्) नम्र हूजिये (उ) और तुम स्त्री पुरुष दोनों मिल के (पुत्रम्) पुत्र को (मातवे) माता के तुल्य (अप्सु) प्राणों में (एनत्) इस पुत्र को (बिभृत) धारण करो ।। ३५ ।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि परस्पर प्रसन्नता के साथ स्वयंवर विवाह धर्म के अनुसार पुत्रों को उत्पन्न और उन को विद्वान् करके गृहाश्रम के ऐश्वर्य की उन्नति करें ।। ३५ ।।

अप्स्वग्न इत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब जीव किस-किस प्रकार पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे । गर्भे सन् जायसे पुनः ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य विद्वान् जीव ! जो तू (सधिः) सहनशील (अप्सु) जलों में (ओषधिः) सोमलता आदि ओषधियों को (अनुरुध्यसे) प्राप्त होता है (सः) गर्भ में (सन्) स्थित होकर (पुनः) फिर-फिर जन्म मरण (तव) तेरे हैं ऐसा जान ।। ३६ ।।

भावार्थः—जो जीव शरीर को छोड़ते हैं वे वायु और ओषधि आदि पदार्थों में भ्रमण करते-करते गर्भाशय को प्राप्त होके नियत समय पर शरीर धारण कर के प्रकट होते हैं ।। ३६ ।।

गर्भो असीत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्ष्युष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर जीव कहां-कहां जाता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

गर्भोऽअस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् । गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भोऽअपामसि ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) दूसरे शरीर को प्राप्त होने वाले जीव ! जिस से तू अग्नि के समान जो (ओषधीनाम्) सोमलता आदि वा यवादि ओषधियों के (गर्भः) दोषों के मध्य (गर्भः) गर्भ (वनस्पतीनाम्) पीपल आदि वनस्पतियों के बीच (गर्भः) शोधक (विश्वस्य) सब (भूतस्य) उत्पन्न हुए संसार के मध्य (गर्भः) ग्रहण करने हारा और जो (अपाम्) प्राण वा जलों का (गर्भः) गर्भरूप भीतर रहने हारा (असि) है इसलिये तू अज अर्थात् स्वयं जन्मरहित (असि) है ।। ३७ ।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! तुम लोगों को चाहिये कि जो बिजुली के समान सब के अन्तर्गत जीव जन्म लेने वाले हैं उन को जानो ॥ ३७ ॥

प्रसद्येत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

मरण समय में शरीर का क्या होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने। सꣳसृज्य मातृभिष्ट्वं ज्योतिष्मान् पुनरासदः ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) प्रकाशमान पुरुष सूर्य्य के समान (ज्योतिष्मान्) प्रशंसित प्रकाश से युक्त जीव! तू (भस्मना) शरीर दाह के पीछे (पृथिवीम्) पृथिवी (च) अग्नि आदि और (अपः) जलों के बीच (योनिम्) देह दाह के कारण को (प्रसद्य) प्राप्त हो और (मातृभिः) माताओं के उदर में वास करके (पुनः) फिर (आसदः) शरीर को प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे जीवो! तुम लोग जब शरीर को छोड़ो तब यह शरीर राख रूप करके पृथिवी आदि के पांच भूतों के साथ युक्त करो। तुम और तुम्हारे आत्मा माता के शरीर में गर्भाशय में पहुँच फिर शरीर धारण किये हुए विद्यमान होते हो ॥ ३८ ॥

पुनरासद्येत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अब माता पिता और पुत्र आपस में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

पुनरासद्य सदनमपश्च पृथिवीमग्ने। शेषे मातुर्यथोपस्थेऽन्तरस्याꣳ शिवतमः ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) इच्छा आदि गुणों से प्रकाशित जन! जिस कारण तू (पुनः) फिर-फिर (आसद्य) प्राप्त हो के (अस्याम्) इस माता के (अन्तः) गर्भाशय में (शिवतमः) मङ्गलकारी हो के (यथा) जैसे बालक (मातुः) माता की (उपस्थे) गोद में (शेषे) सोता है वैसे ही माता की सेवा में मंगलकारी हो ॥ ३९ ॥

भावार्थः—पुत्रों को चाहिये कि जैसे माता अपने पुत्रों को सुख देती है वैसे ही अनुकूल सेवा से अपनी माताओं को निरन्तर आनन्दित करें और माता पिता के साथ विरोध कभी न करें और माता पिता को भी चाहिये कि अपने पुत्रों को अधर्म और कुशिक्षा से युक्त कभी न करें ॥ ३९ ॥

पुनरूर्जेत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षीगायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर पुत्रों को माता पिता के विषय में परस्पर योग्य वर्त्तमान करना चाहिये
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

पुन॑रू॒र्जा निव॑र्त्तस्व॒ पुन॑रग्नऽइ॒षायु॑षा । पुन॑र्नः पा॒ह्यꣳह॑सः ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजस्विन् माता पिता ! आप (इषायुषा) अन्न और जीवन के साथ (नः) हम लोगों को बढ़ाइये (पुनः) बारंबार (अंहसः) दुष्ट आचरणों से (पाहि) रक्षा कीजिये । हे पुत्र ! तू (ऊर्जा) पराक्रम के साथ पापों से (निवर्त्तस्व) अलग हूजिये और (पुनः) फिर हम लोगों को भी पापों से पृथक् रखिये ॥ ४० ॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् माता पिता अपने सन्तानों को विद्या और अच्छी शिक्षा से दुष्टाचारों से पृथक् रक्खें वैसे ही सन्तानों को भी चाहिये कि इन माता पिताओं को बुरे व्यवहारों से निरन्तर बचावें । क्योंकि इस प्रकार किये विना सब मनुष्य धर्मात्मा नहीं हो सकते ॥ ४० ॥

सह रय्येत्यस्य वत्सप्री ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

विद्वानों को कैसे वर्त्तना चाहिये यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

स॒ह र॒य्या निव॑र्त्त॒स्वाग्ने॒ पिन्व॑स्व॒ धार॑या । वि॒श्वप्स्न्या॑ वि॒श्वत॒स्परि॑ ॥४१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! आप (विश्वप्स्न्या) सब पदार्थों के भोगने का साधन (धारया) अच्छी संस्कृत वाणी के (सह) साथ (विश्वतस्परि) सब संसार के बीच (नि) निरन्तर (वर्त्तस्व) वर्त्तमान हूजिये और हम लोगों का (पिन्वस्व) सेवन कीजिये ॥ ४१ ॥

भावार्थः—विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि इस जगत् में अच्छी बुद्धि और पुरुषार्थ के साथ श्रीमान् होकर अन्य मनुष्यों को भी धन्यवाद करें ॥ ४१ ॥

बोधा म इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य लोग आपस में कैसे पढ़ें और पढावें इस विषय का उपदेश
अगले मन्त्र में कहा है ॥

बोधा॑ मेऽअ॒स्य वच॑सो यविष्ठ॒ मꣳहि॑ष्ठस्य॒ प्रभृ॑तस्य स्वधावः । पीय॑ति त्वो॒ऽअनु॑ त्वो गृणाति व॒न्दारु॑ष्टे त॒न्वं॑ वन्देऽग्ने ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ) अत्यन्त ज्वान (स्वधावः) प्रशंसित बहुत अन्नों वाले (अग्ने) उपदेश के योग्य श्रोता जन ! तू (मे) मेरे (प्रभृतस्य) अच्छे प्रकार से धारण वा पोषण करने

वाले (महिष्ठस्य) अत्यन्त कहने योग्य बड़े तेरी जो (त्वः) यह निन्दक पुरुष (पीयति) निन्दा करे (त्वः) कोई (अनु) परोक्ष में (गृणाति) स्तुति करे उस (ते) आप के (तन्वम्) शरीर को (वन्दारुः) अभिवादनशील मैं स्तुति करता हूँ ॥ ४२ ॥

भावार्थः—जब कोई किसी को पढ़ावे वा उपदेश करे तब पढ़ने वाला ध्यान देकर पढ़े वा सुने । जब सत्य वा मिथ्या का निश्चय हो जावे तब सत्य ग्रहण और असत्य का त्याग कर देवे । ऐसे करने में कोई निन्दा और कोई स्तुति करे तो कभी न छोड़े और मिथ्या का ग्रहण कभी न करे । यही मनुष्यों के लिये विशेष गुण है ॥ ४२ ॥

स बोधीत्यस्य सोमाहुतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्चीपंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्य लोग क्या करके किस को प्राप्त हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

स बो॑धि सू॒रिर्म॒घवा॒ वसु॑पते॒ वसु॑दावन् । यु॒यो॒ध्य॒स्मद् द्वेषा॑ꣳसि वि॒श्वक॑र्मणे॒ स्वाहा॑ ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे (वसुपते) धनों के पालक (वसुदावन्) सुपुत्रों के लिये धन देने वाले ! जो (मघवा) प्रशंसित विद्या से युक्त (सूरिः) बुद्धिमान् आप सत्य को (बोधि) जानें (सः) सो आप (विश्वकर्म्मणे) सम्पूर्ण शुभ कर्मों के अनुष्ठान के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी का उपदेश करते हुए आप (अस्मत्) हम से (द्वेषांसि) द्वेषयुक्त कर्मों को (वियुयोधि) पृथक् कीजिये ॥ ४३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य्य के साथ जितेन्द्रिय हो द्वेष को छोड़ धर्मानुसार उपदेश कर और सुन के प्रयत्न करते हैं वे ही धर्मात्मा विद्वान् लोग सम्पूर्ण सत्य असत्य के जानने और उपदेश करने के योग्य होते हैं और अन्य हठ अभिमानयुक्त क्षुद्र पुरुष नहीं ॥ ४३ ॥

पुनस्त्वेत्यस्य सोमाहुतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसे मनुष्यों के संकल्प सिद्ध होते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

पुन॑स्त्वाऽऽदि॒त्या रु॒द्रा वस॑वः॒ समि॑न्धतां॒ पुन॑र्ब्र॒ह्माणो॑ वसुनीथ य॒ज्ञैः । घृ॒तेन॒ त्वं त॒न्वं॑ वर्धयस्व स॒त्याः स॑न्तु॒ यज॑मानस्य॒ कामाः॑ ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे (वसुनीथ) वेदादि शास्त्रों के बोधरूप और सुवर्णादि धन प्राप्त कराने वाले ! आप (यज्ञैः) पढ़ने पढ़ाने आदि क्रियारूप यज्ञों और (घृतेन) अच्छे संस्कार किये हुए घी आदि वा जल से (तन्वम्) शरीर को नित्य (वर्धयस्व) बढ़ाइये (पुनः) पढ़ने पढ़ाने के पीछे (त्वा) आप को (आदित्याः) पूर्ण विद्या के बल से युक्त (रुद्राः) मध्यस्थ विद्वान् और (वसवः) प्रथम विद्वान् लोग (ब्रह्माणः) चार वेदों को पढ़ के ब्रह्मा की पदवी को प्राप्त हुए विद्वान् (समिन्धताम्) सम्यक् प्रकाशित करें । इस प्रकार के अनुष्ठान से (यजमानस्य) यज्ञ सत्संग और विद्वानों का सत्कार करने वाले पुरुष की (कामाः) कामना (सत्याः) सत्य (सन्तु) होवें ॥ ४४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्रयत्न के साथ सब विद्याओं को पढ़ और पढ़ा के बारंबार सत्संग करते हैं कुपथ्य और विषय के त्याग से शरीर तथा आत्मा के रोग को हटा के नित्य पुरुषार्थ का अनुष्ठान करते हैं उन्हीं के संकल्प सत्य होते हैं दूसरों के नहीं ॥ ४४ ॥

अपेतेत्यस्य सोमाहुतिर्ऋषिः । पितरो देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

सन्तान और पिता माता परस्पर किन २ कर्मों का आचरण करें
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अपे॑त॒ वी॑त॒ वि च॑ सर्प॒तातो॒ येऽत्र॒ स्थ पु॑रा॒णा ये च॒ नूत॑नाः ।
अदा॑द्य॒मोऽव॒सानं॑ पृथि॒व्याऽअक्र॑न्नि॒मं पि॒तरो॑ लो॒कम॒स्मै ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! (ये) जो (अत्र) इस समय (पृथिव्याः) भूमि के बीच वर्त्तमान (पुराणाः) प्रथम विद्या पढ़ चुके (च) और (ये) जो (नूतनाः) वर्त्तमान समय में विद्याभ्यास करने हारे (पितरः) पिता पढ़ने उपदेश करने और परीक्षा करने वाले (स्थ) होवें (ते) वे (अस्मै) इस सत्यसंकल्पी मनुष्य के लिये (इमम्) इस (लोकम्) वैदिक ज्ञान सिद्ध लोक को (अक्रन्) सिद्ध करें जिन तुम लोगों को (यमः) प्राप्त हुआ परीक्षक पुरुष (अवसानम्) अवकाश वा अधिकार को (अदात्) देवे वे तुम लोग (अतः) इस अधर्म से (अपेत) पृथक् रहो और धर्म्म को (वीत) विशेष कर प्राप्त होओ (अत्र) और इसी में (विसर्पत) विशेषता से गमन करो ॥ ४५ ॥

भावार्थः—माता पिता और आचार्य्य का यही परम धर्म है जो सन्तानों के लिये विद्या और अच्छी शिक्षा का प्राप्त कराना । जो अधर्म से पृथक् और धर्म्म से युक्त परोपकार में प्रीति रखने वाले वृद्ध और ज्वान विद्वान् लोग हैं वे निरन्तर सत्य उपदेश से अविद्या का निवारण और विद्या की प्रवृत्ति कर के कृतकृत्य होवें ॥ ४५ ॥

संज्ञानमित्यस्य सोमाहुतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पढ़ने पढ़ाने वाले क्या करके सुखी हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

सं॒ज्ञान॑मसि काम॒धर॑णं॒ मयि॑ ते काम॒धर॑णं भूयात । अ॒ग्नेर्भस्मा॑स्य॒ग्नेः पुरी॑षमसि॒ चित॑ स्थ परि॒चित॑ऽऊ॒र्ध्वचितः॑ श्रयध्वम् ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! आप जिस (संज्ञानम्) पूरे विज्ञान को प्राप्त (असि) हुए हो जो आप (अग्नेः) अग्नि से हुई (भस्म) राख के समान दोषों को भस्म करता (असि) हो (अग्नेः) बिजुली के जिस (पुरीषम्) पूर्ण बल को प्राप्त हुए (असि) हो उस विज्ञान भस्म और बल को मेरे लिये भी दीजिये जिस (ते) आप का जो (कामधरणम्) सङ्कल्पों का आधार अन्तःकरण है वह (कामधरणम्) कामना का आधार (मयि) मुझ में (भूयात्) होवे । जैसे

तुम लोग विद्या आदि शुभगुणों से (चितः) इकट्ठे हुए (परिचितः) सब पदार्थों को सब ओर से इकट्ठे करके हारे (ऊर्ध्वचितः) उत्कृष्ट गुणों के सचयकर्त्ता पुरुषार्थ को (श्रयध्वम्) सेवन करो वैसे हम लोग भी करें ॥ ४६ ॥

भावार्थः—जिज्ञासु मनुष्यों को चाहिये कि सदैव विद्वानों से विद्या की इच्छा कर प्रश्न किया करें कि जितना तुम लोगों में पदार्थों का विज्ञान है उतना सब तुम लोग हम लोगों में धारण करो और जितनी हस्तक्रिया आप जानते हैं उतनी सब हम लोगों को दिखाइये ॥ ४६ ॥

अयं स इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को उत्तम आचरणों के अनुसार वर्त्तना चाहिये
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अयꣳ सोऽअग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः । सहस्रियं वाजमत्यं न सप्तिꣳ ससवान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेदः ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) विज्ञान को प्राप्त हुए विद्वान् ! जैसे (ससवान्) दान देते (सन्) हुए आप (स्तूयसे) प्रशसा के योग्य हो (अयम्) यह (अग्निः) अग्नि और (इन्द्रः) सूर्य्य (यस्मिन्) जिस में (सोमम्) सब ओषधियों के रस को धारण करता ह जिस (सुतम्) सिद्ध हुए पदार्थ को (जठरे) पेट में मैं (दधे) धारण करता हूँ (सः) वह मैं (वावशानः) शीघ्र कामना करता हुआ (सहस्रियम्) साथ वर्त्तमान अपनी स्त्री को धारण करता हूं आप के साथ (वाजम्) अन्न आदि पदार्थों को (अत्यम्) व्याप्त होने योग्य के (न) समान (साप्तम्) घोड़े को (दधे) धारण करता हूँ वैसा ही तू भी हो ॥ ४७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार और उपमालङ्कार है । जैसे बिजुली और सूर्य, सब रसों का ग्रहण कर जगत् को रसयुक्त करते हैं वा जैसे पति के साथ स्त्री और स्त्री के साथ पति आनन्द भोगते हैं वैसे मैं इस सब का धारण करता हूं जैसे श्रेष्ठ गुणों से युक्त आप प्रशंसा के योग्य हो वैसे मैं भी प्रशंसा के योग्य होऊं ॥ ४७ ॥

अग्ने यत्त इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अध्यापक लोगों को निष्कपट से सब विद्यार्थीजन पढ़ाने चाहियें
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र । येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे (यजत्र) सगम करने योग्य (अग्ने) विद्वन् ! (यत्) जिस (ते) आप का अग्नि के समान (दिवि) द्योतनशील आत्मा में (वर्चः) विज्ञान का प्रकाश (यत्) जो (पृथिव्याम्) पृथिवी (ओषधीषु) यवादि ओषधियों और (अप्सु) प्राणों वा जलों में (वर्चः) तेज है (येन) जिससे (नृचक्षाः) मनुष्यों को दिखाने वाला (भानुः) सूर्य (अर्णवः) बहुत जलों को वर्षाने हारा (त्वेषः) प्रकाश है (येन) जिससे (अन्तरिक्षम्) आकाश को (उरु) बहुत (आ, ततन्थ) विस्तारयुक्त करते हो (सः) सो आप वह सब हम लोगो में धारण कीजिये ।। ४८ ।।

भावार्थः—यहां वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। इस जगत् में जिस को सृष्टि के पदार्थों का विज्ञान जैसा होवे वैसा ही शीघ्र दूसरों को बतावे जो कदाचित् दूसरों को न बतावे तो वह नष्ट हुआ किसी को प्राप्त नहीं हो सके ।। ४८ ।।

अग्ने दिव इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

अग्ने॑ दि॒वोऽअर्ण॒मच्छा॑ जिगा॒स्यच्छा॑ दे॒वाँ२ऽऊ॑चिषे॒ धिष्ण्या॒ ये । या रो॑च॒ने प॒रस्ता॒त् सूर्य॑स्य॒ याश्चा॒वस्ता॑दुप॒तिष्ठ॑न्त॒ऽआपः॑ ॥ ४९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् ! जो आप (दिवः) प्रकाश से (अर्णम्) विज्ञान को (याः) जो (आपः) प्राण वा जल (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (रोचने) प्रकाश में (परस्तात्) पर है (च) और (याः) जो (अवस्तात्) नीचे (उपतिष्ठन्ते) समीप में स्थिति है उन को (अच्छ) सम्यक् (जिगासि) स्तुति करते हो (ये) जो (धिष्ण्याः) बोलने वाले हैं उन (देवान्) दिव्यगुण विद्यार्थियों वा विद्वानों के प्रति विज्ञान को (अच्छ) अच्छे प्रकार (ऊचिषे) कहते हो सो आप हमारे लिये उपदेश कीजिये ।। ४९ ।।

भावार्थः—जो अच्छे विचार से बिजुली और सूर्य के किरणों में ऊपर नीचे रहने वाले जलो और वायुओं के बोध को प्राप्त होते हैं वे दूसरो को निरन्तर उपदेश करें ।। ४९ ।।

पुरीष्यास इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को द्वेषादिक छोड़ के आनन्द में रहना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

पु॒री॒ष्या॒सो॒ऽअ॒ग्नयः॑ प्राव॒णेभिः॑ स॒जोष॑सः । जु॒षन्तां॑ य॒ज्ञम॒द्रुहो॑ऽन॒मी॒वाऽइषो॑ म॒हीः ॥ ५० ॥

पदार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि (प्रावणेभिः) विज्ञानों के साथ वर्त्तमान हुए (अनमीवाः) रोगरहित (अद्रुहः) द्रोह से पृथक् (सजोषसः) एक प्रकार की सेवा और प्रीति

वाले (पुरीष्यासः) पूर्ण गुणक्रियाओं में निपुण (अग्नयः) अग्नि के समान वर्त्तमान तेजस्वी विद्वान् लोग (यज्ञम्) विद्याविज्ञान दान और ग्रहणरूप यज्ञ और (महीः) बड़ी २ (इषः) इच्छाओं को (जुषन्ताम्) सेवन करें ॥ ५० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे बिजुली अनुकूल हुई समान भाव से सब पदार्थों का सेवन करती है वैसे ही रोग द्रोहादि दोषों से रहित आपस में प्रीति वाले हो के विद्वान् लोग विज्ञान बढ़ाने वाले यज्ञ को विस्तृत करके बड़े बड़े सुखों को निरन्तर भोगें ॥ ५० ॥

इडामग्न इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्य गर्भाधानादि संस्कारों से बालकों का संस्कार करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इडा॑मग्ने पुरु॒दꣳस॑ꣳस॒निं गोः श॑श्वत्त॒मꣳ हव॑मानाय साध। स्यान्नः॑ सू॒नुस्तन॑यो वि॒जावाऽग्ने॒ सा ते॑ सुम॒तिर्भूत्व॒स्मे ॥ ५१ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् ! (ते) आपकी (सा) वह (सुमतिः) सुन्दर बुद्धि (अस्मे) हम लोगों के लिये (भूतु) होवे जिससे आपका (नः) और हमारा जो (विजावा) विविध प्रकार के ऐश्वर्यों का उत्पादक (सूनुः) उत्पन्न होने वाला (तनयः) पुत्र (स्यात्) होवे उस बुद्धि से उस (हवमानाय) विद्या ग्रहण करते हए के लिये (इडाम्) स्तुति के योग्य वाणी को (गोः) वाणी के सम्बन्धी (शश्वत्तमम्) अनादि रूप अत्यन्त वेदज्ञान को और (पुरुदंसम्) बहुत कर्म जिससे सिद्ध हों ऐसे (सनिम्) ऋग्वेदादि वेदविभाग को (साध) सिद्ध कीजिये और हे अध्यापक हम लोग भी सिद्ध करें ॥ ५१ ॥

भावार्थः—माता पिता और आचार्य्य को चाहिये कि सावधानी से गर्भाधान आदि संस्कारों की रीति के अनुकूल अच्छे सन्तान उत्पन्न करके उन में वेद ईश्वर और विद्यायुक्त बुद्धि उत्पन्न करें क्योंकि ऐसा अन्यधर्म अपत्य सुख का हितकारी कोई नहीं है ऐसा निश्चय रखना चाहिये ॥ ५१ ॥

अयं त इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अब माता पिता और पुत्रादिकों को परस्पर क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अ॒यं ते॒ योनि॑र्ऋ॒त्वियो॒ यतो॑ जा॒तोऽअरो॑चथाः। तं जा॒नन्न॑ग्न॒ऽआ रो॒हाथा॑ नो वर्धया र॒यिम् ॥ ५२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान शुद्ध अन्तःकरण वाले विद्वान् पुरुष ! जो (ते) आपका (ऋत्वियः) ऋतुकाल में प्राप्त हुआ (अयम्) यह प्रत्यक्ष (योनिः) दुःखों का नाशक और सुखदायक व्यवहार है (यतः) जिस से (जातः) उत्पन्न हुए आप (अरोचथाः) प्रकाशित होवें (तम्) उस को (जानन्) जानते हुए आप (आरोह) शुभगुणों पर आरूढ हूजिये (अथ) इस के पश्चात् (नः) हम लोगों के लिये (रयिम्) प्रशंसित लक्ष्मी को (वर्धय) बढ़ाइये ॥ ५२ ॥

भावार्थः—हे माता पिता और आचार्य्य ! तुम लोग पुत्र और कन्याओं को धर्मानुकूल सेवन किये ब्रह्मचर्य से श्रेष्ठविद्या को प्रसिद्ध कर उपदेश करो । हे सन्तानो ! तुम लोग सत्यविद्या और सदाचार के साथ हम को अच्छी सेवा और धन से निरन्तर सुखयुक्त करो ॥ ५२ ॥

चिदसीत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कन्याओं को क्या करके क्या करना चाहिये यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

चिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद । परिचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हे कन्ये ! जो तू (चित्) चिताई (असि) हुई (तया) उस (देवतया) दिव्यगुण प्राप्त कराने हारी विद्वान् स्त्री के साथ (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के तुल्य (ध्रुवा) निश्चल (सीद) स्थिर हो । हे ब्रह्मचारिणि ! जो तू (परिचित) विविध विद्या को प्राप्त हुई (असि) है सो तू (तया) उस (देवतया) धर्मानुष्ठान से युक्त दिव्यसुखदायक क्रिया के साथ (अंगिरस्वत्) ईश्वर के समान (ध्रुवा) अचल (सीद) अवस्थित हो ॥ ५३ ॥

भावार्थः—सब माता पिता और पढ़ानेहारी विद्वान् स्त्रियों को चाहिये कि कन्याओं को सम्यक् बुद्धिमती करें । हे कन्या लोगो ! तुम जो पूर्ण अखंडित ब्रह्मचर्य से सम्पूर्ण विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त युवती होकर अपने तुल्य वरों के साथ स्वयंवर विवाह करके गृहाश्रम का सेवन करो तो सब सुखों को प्राप्त हो और सन्तान भी अच्छे होवें ॥ ५३ ॥

लोकं पृणेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम् । इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनावसीषदन् ॥ ५४ ॥

पदार्थः—हे कन्ये ! जिस (त्वा) तुझ को (योनौ) बन्ध के छेदक मोक्ष प्राप्ति के हेतु (अस्मिन्) इस विद्या के बोध में (इन्द्राग्नी) माता पिता तथा (बृहस्पतिः) बड़ी २ वेदवाणियों

की रक्षा करने वाली अध्यापिका स्त्री (असीषदन्) प्राप्त करावें उस में (त्वम्) तू (ध्रुवा) दृढ़ निश्चय के साथ (सीद) स्थित हो (अथो) इस के अनन्तर (छिद्रम्) छिद्र को (पृण) पूर्ण कर और (लोकम्) देखने योग्य प्राणियों को (पृण) तृप्त कर ॥ ५४ ॥

भावार्थः—माता पिता और आचार्यों को चाहिये कि इस प्रकार की धर्म्मयुक्त विद्या और शिक्षा करें कि जिस को ग्रहण कर कन्या लोग चिन्तारहित हो सब बुरे व्यसनों को त्याग और समावर्तन संस्कार के पश्चात् विवाह करके पुरुषार्थ के साथ आनन्द में रहें ॥ ५४ ॥

ता अस्येत्यस्य प्रियमेधा ऋषिः । आपो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

ताऽअस्य सूददोहसः सोमंꣳ श्रीणन्ति पृश्नयः । जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ॥ ५५ ॥

पदार्थः—जो (देवानाम्) दिव्य विद्वान् पतियों की (सूददोहसः) सुन्दर रसोइया और गौ आदि के दुहने वाले सेवकों वाली (पृश्नयः) कोमल शरीर सूक्ष्म अङ्गयुक्त स्त्री दूसरे (जन्मन्) विद्यारूप जन्म में विदुषी हो के (दिवः) दिव्य (अस्य) इस गृहाश्रम के (सोमम्) उत्तम ओषधियों के रस से युक्त भोजन (श्रीणन्ति) पकाती हैं (ताः) वे ब्रह्मचारिणी (आरोचने) अच्छी रुचिकारक व्यवहार में (त्रिषु) तीनों अर्थात् गत आगामी और वर्त्तमान कालविभागों में सुख देने वाली होती तथा (विशः) उत्तम सन्तानों को भी प्राप्त होती हैं ॥ ५५ ॥

भावार्थः—जब अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुए युवा विद्वानों की अपने सदृश रूप और गुण से युक्त स्त्री होवें तो गृहाश्रम में सर्वदा सुख और अच्छे सन्तान उत्पन्न होवें । इस प्रकार किये विना संसार का सुख और शरीर छूटने के पश्चात् मोक्ष कभी प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ५५ ॥

इन्द्रं विश्वेत्यस्य सुतजेतृमधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कुमार और कुमारियों को इस प्रकार करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः । रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम् ॥ ५६ ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! जैसे (विश्वाः) सब (गिरः) वेदविद्या से संस्कार की हुई वाणी (समुद्रव्यचसम्) समुद्र की व्याप्ति के समान व्याप्ति जिसमें हो उन (वाजानाम्) संग्रामों और (रथीनाम्) प्रशंसित रथों वाले वीर पुरुषों में (रथीतमम्) अत्यन्त प्रशंसित रथवाले

(सत्पतिम्) सत्य ईश्वर वेद धर्म वा श्रेष्ठ पुरुषों के रक्षक (पतिम्) सब ऐश्वर्य के स्वामी को (अवीवृधन्) बढ़ावें और (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को बढ़ावें वैसे सब प्राणियों को बढ़ाओ ।। ५६ ।।

भावार्थः—जो कुमार और कुमारी दीर्घ ब्रह्मचर्य सेवन से साङ्गोपाङ्ग वेदों को पढ़ और अपनी-अपनी प्रसन्नता से स्वयंवर विवाह करके ऐश्वर्य के लिये प्रयत्न करें। धर्मयुक्त व्यवहार से व्यभिचार को छोड़ के सुन्दर सन्तानों को उत्पन्न करके परोपकार करने में प्रयत्न करें वे इस संसार और परलोक में सुख भोगें। और इन से विरुद्ध जनों को नहीं हो सकता ।। ५६ ।।

समितमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ।।

पश्चात् विवाह करके कैसे वर्त्तें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।।

समितꣳसं कल्पेथाꣳ संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ । इषमूर्जमभि संवसानौ ।। ५७ ।।

पदार्थः—हे विवाहित स्त्रीपुरुषो ! तुम (संप्रियौ) आपस में सम्यक् प्रीति वाले (रोचिष्णू) विषयासक्ति से पृथक् प्रकाशमान (सुमनस्यमानौ) मित्र विद्वान् पुरुषों के वर्त्तमान (संवसानौ) सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से युक्त हुए (इषम्) इच्छा को (समितम्) इकट्ठे प्राप्त होओ और (ऊर्जम्) पराक्रम को (अभि) सन्मुख (संकल्पेथाम्) एक अभिप्राय में समर्पित करो ।। ५७ ।।

भावार्थः—जो स्त्रीपुरुष सर्वथा विरोध को छोड़ के एक दूसरे की प्रीति में तत्पर विद्या के विचार से युक्त तथा अच्छे-अच्छे वस्त्र और आभूषण धारण करने वाले हो के प्रयत्न करें तो घर में कल्याण और आरोग्य बढ़े। और जो परस्पर विरोधी हों तो दुःखसागर में अवश्य डूबें ।। ५७ ।।

सं वामित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगुपरिष्टाद् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।।

अध्यापक और उपदेशक लोगों को चाहिये कि जितना सामर्थ्य हो उतना ही वेदों को पढ़ावें और उपदेश करें यह विषय अगले मंत्र में कहा है ।।

सं वां मनाꣳसि सं व्रता समु चित्तान्याकरम् । अग्ने पुरीष्याधिपा भव त्वं नऽइषमूर्जं यजमानाय धेहि ।। ५८ ।।

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! जैसे मैं आचार्य (वाम्) तुम दोनों के (संमनांसि) एक धर्म्म में तथा संकल्प विकल्प आदि अन्तःकरण की वृत्तियों को (संव्रता) सत्यभाषणादि (उ) और (सम्, चित्तानि) सम्यक् जाने हुए कर्मों में (आ) अच्छे प्रकार (अकरम्) करूं ।

वैसे तुम दोनों मेरी प्रीति के अनुकूल विचारो। हे (पुरीष्य) रक्षा के योग्य व्यवहारों में हुए (अग्ने) उपदेशक आचार्य वा राजन्! (त्वम्) आप (नः) हमारे (अधिपाः) अधिक रक्षा करने हारे (भव) हूजिये (यजमानाय) धर्मानुकूल सत्सग के स्वभाव वाले पुरुष वा ऐसी स्त्री के लिये (इषम्) अन्न आदि उत्तम पदार्थ और (ऊर्जम्) शरीर तथा आत्मा के बल को (धेहि) धारण कीजिये ॥ ५८ ॥

भावार्थः—उपदेशक मनुष्यों को चाहिये कि जितना सामर्थ्य हो उतना सब मनुष्यों का एक धर्म्म एक कर्म्म एक प्रकार की चित्तवृत्ति और बराबर सुख दुःख जैसे हों वैसे ही शिक्षा करें। सब स्त्री पुरुषों को योग्य है कि आप्त विद्वान् ही को उपदेशक और अध्यापक मान के सेवन करें और उपदेशक वा अध्यापक इन के ऐश्वर्य्य और पराक्रम को बढ़ावें। और सब मनुष्यों के एक धर्म आदि के विना आत्माओं में मित्रता नहीं होती और मित्रता के विना निरन्तर सुख भी नहीं हो सकता ॥ ५८ ।

अग्ने त्वमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

किन को पढ़ाने और उपदेश के लिये नियुक्त करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्ने त्वं पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिमाँ२ऽअसि। शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहासदः ॥ ५९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) उपदेशक विद्वन्! जिस से (त्वम्) आप (इह) इस संसार में (पुरीष्यः) एक मत के पालने में तत्पर (रयिमान्) विद्या विज्ञान और धन से युक्त और (पुष्टिमान्) प्रशंसित शरीर और आत्मा के बल से सहित (असि) हैं इसलिये (सर्वाः) सब (दिशः) उपदेश के योग्य प्रजा (शिवाः) कल्याणरूपी उपदेश से युक्त (कृत्वा) करके (स्वम्) अपने (योनिम्) सुखदायक दुःखनाशक उपदेश के घर को (आसदः) प्राप्त हूजिये ॥ ५९ ॥

भावार्थः—राजा और प्रजाजनों को चाहिये कि जो जितेन्द्रिय धर्मात्मा परोपकार में प्रीति रखने वाले विद्वान् होवें उनको प्रजा में धर्मोपदेश के लिये नियुक्त करें और उपदेशकों को चाहिये कि प्रयत्न के साथ सब को अच्छी शिक्षा से एकधर्म में निरन्तर विरोध को छोड़ के सुखी करें ॥ ५९ ॥

भवतन्न इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। दम्पती देवता। आर्षी पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः ॥

फिर सब को चाहिये कि विद्या देने के लिये आप्त विद्वानों की प्रार्थना करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥ ६० ॥

पदार्थः—हे विवाह किये हुए स्त्रीपुरुषो ! तुम दोनो (नः) हम लोगों के लिये (समनसौ) एक से विचार और (सचेतसौ) एक से बोध वाले (अरेपसौ) अपराधरहित (भवतम्) हूजिये (यज्ञम्) प्राप्त होने योग्य धर्म को (मा) मत (हिंसिष्टम्) बिगाड़ो और (यज्ञपतिम्) उपदेश से धर्म के रक्षक पुरुष को (मता) मत मारो (अद्य) आज (नः) हमारे लिये (जातवेदसौ) सम्पूर्ण विज्ञान को प्राप्त हुए (शिवौ) मङ्गलकारी (भवतम्) हूजिये ॥ ६० ॥

भावार्थः—स्त्री पुरुष जनों को चाहिये कि सत्य उपदेश और पढ़ाने के लिये सब विद्याओं से युक्त प्रगल्भ निष्कपट धर्मात्मा सत्यप्रिय पुरुषों को नित्य प्रार्थना और उनकी सेवा करें। और विद्वान् लोग सब के लिये ऐसा उपदेश करें कि जिस से सब धर्माचरण करने वाले हो जावें ॥ ६० ॥

मातेवेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । पत्नी देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

माता किस के तुल्य सन्तानों को पालती है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्यमग्निꣳ स्वे योनावभारुखा । तां विश्वैर्देवैर्ऋतुभिः संविदानः प्रजापतिर्विश्वकर्म्मा वि मुञ्चतु ॥ ६१ ॥

पदार्थः—जो (उखा) जानने योग्य (पृथिवी) भूमि के समान वर्त्तमान विद्वान् स्त्री (स्वे) अपने (योनौ) गर्भाशय में (पुरीष्यम्) पुष्टिकारक गुणों में हुए (अग्निम्) बिजुली के तुल्य अच्छे प्रकाश से युक्त गर्भरूप (पुत्रम्) पुत्र को (मातेव) माता के समान (अभाः) पुष्ट वा धारण करती है (ताम्) उस को (संविदानः) सम्यक् बोध करता हुआ (विश्वकर्मा) सब उत्तम कर्म करने वाला (प्रजापतिः) परमेश्वर विश्वेः सब (देवैः) दिव्य गुणों और (ऋतुभिः) वसन्त आदि ऋतुओं के साथ निरन्तर दुःख से (विमुञ्चितु) छुड़ावे ॥ ६१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे माता संन्तानों को उत्पन्न कर पालती है वैसे ही पृथिवी कारणरूप बिजुली को प्रसिद्ध करके रक्षा करती है। जैसे परमेश्वर ठीक-ठीक पृथिवी आदि के गुणों को जानता और नियत समय पर मरे हुओं और पृथिवी आदि को धारण कर अपनी-अपनी नियत परिधि से चला के प्रलय समय में सब को भिन्न करता है वैसे ही विद्वानों को चाहिये कि अपनी बुद्धि के अनुसार इन सब पदार्थों को जान के कार्य्यसिद्धि के लिये प्रयत्न करें ॥ ६१ ॥

असुन्वन्तमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । निर्ऋतिर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

स्त्री लोग कैसे पतियों की इच्छा न करें यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

अ॒सु॑न्वन्त॒मय॑जमानमिच्छ स्ते॒नस्ये॒त्यामन्वि॑हि॒ तस्क॑रस्य । अ॒न्यम॒स्मदि॑च्छ
सा त॑ऽइ॒त्या नमो॑ देवि॒ निर्ऋते॒ तुभ्य॑मस्तु ॥ ६२ ॥

पदार्थः—हे (निर्ऋते) पृथिवी के तुल्य वर्त्तमान (देवि) विद्वान् स्त्री ! तू (अस्मत्) हम से भिन्न (स्तेनस्य) अप्रसिद्ध चोर और (तस्करस्य) प्रसिद्ध चोर के सम्बन्धी को छोड़ के (अन्यम्) भिन्न की (इच्छ) इच्छा कर और (असुन्वन्तम्) अभिषव आदि क्रियाओं के अनुष्ठान से रहित (अयजमानम्) दानधर्म से रहित पुरुष की (इच्छ) इच्छा कर और तू जिस (इत्याम्) प्राप्त होने योग्य क्रिया को (अन्विहि) ढूंढे (सा) तेरी हो तथा उस (तुभ्यम्) तेरे लिये (नमः) अन्न वा सत्कार (अस्तु) होवे ॥ ६२ ॥

भावार्थः—हे स्त्रियो ! तुम लोगों को चाहिये कि पुरुषार्थरहित चोरों के सम्बन्धी पुरुषों को अपने पति करने की इच्छा न करो। आप्त पुरुषों की नीति के तुल्य नीति वाले पुरुषों को ग्रहण करो। जैसे पृथिवी अनेक उत्तम फलों के दान से मनुष्यों को संयुक्त करती है वैसी होओ। ऐसे गुणों वाली तुम को हम नमस्कार करते हैं। जैसे हम लोग आलसी चोरों के साथ न वर्त्तें वैसे तुम लोग भी मत वर्त्तो ॥ ६२ ॥

नमः सु त इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । निर्ऋतिर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर ये स्त्री कैसी हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

नमः॒ सु ते॑ निर्ऋते तिग्मतेजोऽय॒स्मयं॒ वि चृ॑ता ब॒न्धमे॒तम् । य॒मेन॒ त्वं य॒म्या
सं॑विदा॒नोत्त॒मे नाके॒ऽअधि॑ रोहयैनम् ॥ ६३ ॥

पदार्थः—हे (निर्ऋते) निरन्तर सत्य आचरणों से युक्त स्त्री ! जिस (ते) तेरे (तिग्मतेजः) तीव्र तेजों वाले (अयस्मयम्) सुवर्णादि और (नमः) अन्नादि पदार्थ हैं सो (त्वम्) तू (एतम्) इस (बन्धम्) बांधने के हेतु अज्ञान का (सुविचृत) अच्छे प्रकार (यमेन) न्यायाधीश तथा (यम्या) न्याय करने हारी स्त्री के साथ (संविदाना) सम्यक् बुद्धियुक्त होकर (एनम्) इस अपने पति को (उत्तमे) उत्तम (नाके) आनन्द भोगने में (अधिरोहय) आरूढ़ कर ॥ ६३ ॥

भावार्थः—हे स्त्रियो ! तुम को चाहिये कि जैसे यह पृथिवी अग्नि तथा सुवर्ण अन्नादि पदार्थों से सम्बन्ध रखती है वैसे तुम भी होओ। जैसे तुम्हारे पति न्यायाधीश होकर अपराधी और अपराधरहित मनुष्यों का सत्य न्याय से विचार कर के अपराधियों को दण्ड देते और अपराधरहितों का सत्कार करते हैं तुम लोगों के लिये अत्यन्त आनन्द देते हैं वैसे तुम लोग भी होओ ॥ ६३ ॥

यस्यास्त इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । निर्ऋतिर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

किस प्रयोजन के लिये स्त्री पुरुष संयुक्त होवें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

यस्यास्ते घोरऽआसन् जुहोम्येषां बन्धानामवसर्जनाय । यां त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्ऋतिं त्वाहं परि वेद विश्वतः ॥ ६४ ॥

पदार्थः—हे (घोरे) दुष्टों को भय करने हारी स्त्री ! (यस्याः) जिस सुन्दर नियम युक्त (ते) तेरे (आसन्) मुख में (एषाम्) इन (बन्धानाम्) दुःख देते हुए रोकने वालों के (अव, सर्जनाय) त्याग के लिये अमृतरूप अन्नादि पदार्थों को (जुहोमि) देता हूँ जो (जनः) मनुष्य (भूमिरिति) पृथिवी के समान (याम्) जिस (त्वा) तुझ को (प्रमन्दते) आनन्दित करता है उस तुझ को (अहम्) मैं (विश्वतः) सब ओर से (निर्ऋतिम्) पृथिवी के समान (त्वा) (परि) सब प्रकार से (वेद) जानूं। सो तू भी इस प्रकार मुझ को जान ।। ६४ ।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे पति अपने आनन्द के लिये स्त्रियों का ग्रहण करते हैं । वैसे ही स्त्री भी पतियों का ग्रहण करें । इस गृहाश्रम में पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत पति सुख का कोश होता है । खेतरूप स्त्री और बीजरूप पुरुष जो इन शुद्ध बलवान् दोनों के समागम से उत्तम विविध प्रकार के सन्तान हों तो सर्वदा कल्याण ही बढ़ता रहता है ऐसा जानना चहिये ।। ६४ ।।

यं ते देवीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । यजमानो देवता । आर्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

विवाह समय में कैसी २ प्रतिज्ञा करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यं ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध पाशं ग्रीवास्वविचृत्यम् । तं ते विष्याम्यायुषो न मध्यादथैतं पितुमद्धि प्रसूतः । नमो भूत्यै येदं चकार ॥ ६५ ॥

पदार्थः—स्त्री कहे कि हे पते ! (निर्ऋतिः) पृथिवी के समान मैं (ते) तेरे (ग्रीवासु) कण्ठों में (अविचृत्यम्) न छोड़ने योग्य (यम्) जिस (पाशम्) धर्मयुक्त बन्धन को (आबबन्ध) अच्छे प्रकार बांधती हूं (तम्) उस को (ते) तेरे लिये भी प्रवेश करती हूं (आयुषः) अवस्था के साधन अन्न के (न) समान (वि, स्यामि) प्रविष्ट होती हूं (अथ) इस के पश्चात् (मध्यात्) मैं तू दोनों में से कोई भी नियम से विरुद्ध न चले जैसे मैं (एतम्) इस (पितुम्) अन्नादि पदार्थ को भोगती हूं वैसे (प्रसूतः) उत्पन्न हुआ तू इस अन्नादि को (अद्धि) भोग । हे स्त्री ! (या) जो (देवी) दिव्य गुण वाली तू (इदम्) इस पतिव्रतरूप धर्म से संस्कार किये हुए प्रत्यक्ष नियम को (चकार) करे उस (भूत्यै) ऐश्वर्य्य करने हारी तेरे लिये (नमः) अन्नादि पदार्थ को देता हूं ।। ६५ ।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । विवाह समय में जिन व्यभिचार के त्याग आदि नियमों को करें उन से विरुद्ध कभी न चलें क्योंकि पुरुष जब विवाहसमय में स्त्री का हाथ ग्रहण करता है तभी पुरुष का जितना पदार्थ है वह सब स्त्री का और जितना स्त्री का है वह सब पुरुष का समझा जाता है । जो पुरुष अपनी विवाहित स्त्री को छोड़ अन्य स्त्री के निकट जावे वा स्त्री दूसरे पुरुष की इच्छा करे तो वे दोनों चोर के समान पापी होते हैं इसलिये स्त्री की सम्मति के

विना पुरुष और पुरुष की आज्ञा के बिना स्त्री कुछ भी काम न करें यही स्त्री पुरुष में परस्पर प्रीति बढ़ाने वाला काम है कि जो व्यभिचार को सब समय में त्याग दें ॥ ६५ ॥

निवेशन इत्यस्य विश्वावसुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसे स्त्री पुरुष गृहाश्रम करने के योग्य होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

निवेऽशनः सङ्गमनो वसूनां विश्वा रूपाऽभिचष्टे शचीभिः । देवऽइव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे पथीनाम् ॥ ६६ ॥

पदार्थः—जो (सत्यधर्मा) सत्य धर्म से युक्त (सविता) सब जगत् के रचने वाले (देव इव) ईश्वर के समान (निवेशनः) स्त्री का साथी (सङ्गमनः) शीघ्रगति से युक्त (शचीभिः) बुद्धि वा कर्मों से (वसूनाम्) पृथिवी आदि पदार्थों के (विश्वा) सब (रूपा) रूपों को (अभिचष्टे) देखता है (इन्द्रः) सूर्य्य के (न) समान (समरे) युद्ध में (पथीनाम्) चलते हुए मनुष्यों के सम्मुख (तस्थौ) स्थित होवे वही गृहाश्रम के योग्य होता है ॥ ६६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं । मनुष्यों को योग्य है कि जैसे ईश्वर ने सब के उपकार के लिये कारण से कार्यरूप अनेक पदार्थ रच उपयुक्त करे हैं । जैसे सूर्य मेघ के साथ युद्ध करके जगत् का उपकार करता है वैसे रचनाक्रम के विज्ञान सुन्दर क्रिया से पृथिवी आदि पदार्थों से अनेक व्यवहार सिद्ध कर प्रजा को सुख देवें ॥ ६६ ॥

सीरा इत्यस्य विश्वावसुर्ऋषिः । कृषीवलाः कवयो देवताः । गायत्रीच्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब खेती करने की विद्या अगले मंत्र में कही है ॥

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक् । धीरा देवेषु सुम्नया ॥ ६७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (धीराः) ध्यानशील (कवयः) बुद्धिमान् लोग (सीराः) हलों और (युगा) जुआ आदि को (युञ्जन्ति) युक्त करते और (सुम्नया)सुख के साथ (देवेषु) विद्वानों में (पृथक्) अलग (वितन्वते) विस्तारयुक्त करते वैसे सब लोग इस खेती कर्म का सेवन करें ॥ ६७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों की शिक्षा से कृषिकर्म की उन्नति करें । जैसे योगी नाड़ियों में परमेश्वर को समाधियोग से प्राप्त होते हैं । वैसे ही कृषिकर्म द्वारा सुखों को प्राप्त होवें ॥ ६७ ॥

युनक्तेत्यस्य विश्वावसुर्ऋषिः । कृषीवलाः कवयो वा देवताः । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम् । गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीयऽइत्सृण्यः पक्वमेयात् ॥ ६८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (इह) इस पृथिवी वा बुद्धि में साधनों को (वितनुध्वम्) विवध प्रकार से विस्तारयुक्त करो (सीरा) खेती के साधन हल आदि वा नाड़ियां और (युगा) जुआओं को (युनक्त) युक्त करो (कृते) हल आदि से जोते वा योग के अङ्गों से शुद्ध किये अन्तःकरण (योनौ) खेत में (बीजम्) यव आदि वा सिद्धि के मूल को (वपत) बोया करो (गिरा) खेती विषयक कर्मों की उपयोगी सुशिक्षित वाणी (च) और अच्छे विचार से (सभराः) एक प्रकार के धारण और पोषण में युक्त (श्रुष्टिः) शीघ्र हूजिये जो (सृण्यः) खेतों में उत्पन्न हुए यव आदि अन्न जाति के पदार्थ हैं उन में जो (नेदीयः) अत्यन्त समीप (पक्वम्) पका हुआ (असत्) होवे वह (इत्) ही (नः) हम लोगों को (आ) (इयात्) प्राप्त होवे ॥ ६८ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को उचित है कि विद्वानों से योगाभ्यास और खेती करने हारों से कृषि कर्म की शिक्षा को प्राप्त हो और अनेक साधनों को बना के खेती और योगाभ्यास करो । इस से जो-जो अन्नादि पका हो उस-उस का ग्रहण कर भोजन करो और दूसरों को कराओ ॥ ६८ ॥

शुनमित्यस्य कुमारहारित ऋषिः । कृषीवला देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

शुनꣳसु फाला वि कृषन्तु भूमिꣳ शुनं कीनाशाऽअभि यन्तु वाहैः । शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पलाऽओषधीः कर्त्तनास्मे ॥ ६९ ॥

पदार्थः—जो (कीनाशाः) परिश्रम से क्लेशभोक्ता खेती करने हारे हैं वे (फालाः) जिन से पृथिवी को जोतें उन फालों से (वाहैः) बैल आदि के साथ वर्त्तमान हल आदि से (भूमिम्) पृथिवी को (विकृषन्तु) जोतें और (शुनम्) सुख को (अभियन्तु) प्रप्त होवें (हविषा) शुद्ध किये घी आदि से शुद्ध (तोशमाना) सन्तोषकारक (शुनासीरा) वायु और सूर्य्य के समान खेता के साधन (अस्मे) हमारे लिये (सुपिप्पलाः) सुन्दर फलों से युक्त (ओषधीः) जौ आदि (कर्त्तन) करें और उन ओषधियों से (सु) सुन्दर (शुनम्) सुख भोगें ॥ ६९ ॥

भावार्थः—जो चतुर खेती करने हारे गौ और बैल आदि की रक्षा करके विचार के साथ खेती करते हैं वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं । इन खेतों में विष्ठा आदि मलीन पदार्थ नहीं डालने चाहियें किन्तु बीज सुगन्धि आदि से युक्त करके ही बोवें कि जिस से अन्न भी रोगरहित उत्पन्न होकर मनुष्यादि की वृद्धि को बढ़ावे ॥ ६९ ॥

घृतेनेत्यस्य कुमारहारित ऋषिः । कृषीवला देवताः । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

घृतेन सीता मधुना समंज्यतां विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः । ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमानास्मान्त्सीते पयसाभ्या ववृत्स्व ॥ ७० ॥

पदार्थः—(विश्वैः) सब (देवैः) अन्नादि पदार्थों की इच्छा करने वाले विद्वान् (मरुद्भिः) मनुष्यों की (अनुमता) आज्ञा से प्राप्त हुआ (पयसा) जल वा दुग्ध से (ऊर्जस्वतीः) पराक्रम सम्बन्धी (पिन्वमाना) सींचा वा सेवन किया हुआ (सीता) पटेला (घृतेन) घी तथा (मधुना) सहत वा शक्कर आदि से (समज्यताम्) संयुक्त करो (सीते) पटेला (अस्मान्) हम लोगों को घी आदि पदार्थों से संयुक्त करेगा इस हेतु से (पयसा) जल से (अभ्याववृत्स्व) बार २ वर्त्ताओ ॥ ७० ॥

भावार्थः—सब विद्वानों को चाहिये कि किसान लोग विद्या के अनुकूल घी मीठा और जल आदि से संस्कार कर स्वीकार की हुई खेत की पृथिवी को अन्न को सिद्ध करने वाली करें। जैसे बीज सुगन्धि आदि युक्त करके बोते हैं वैसे इस पृथिवी को भी संस्कारयुक्त करें ॥ ७० ॥

लाङ्गलमित्यस्य कुमारहारित ऋषिः । कृषीवला देवताः । विराट् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

लाङ्गलं पवीरवत्सुशेवंꣳ सोमपित्सरु । तदुद्वपति गामविं प्रफर्व्यं च पीवरीं प्रस्थावद्रथवाहनम् ॥ ७१ ॥

पदार्थः—हे किसानो ! तुम लोग जो (सोमपित्सरु) जौ आदि ओषधियों के रक्षकों को टेढ़ा चलावें (पवीरवत्) प्रशंसित फाल से युक्त (सुशेवम्) सुन्दर सुखदायक (लाङ्गलम्) फाले के पीछे जो दृढ़ता के लिये काष्ठ लगाया जाता है वह (च) और (प्रफर्व्यम्) चलाने योग्य (प्रस्थावत्) प्रशंसित प्रस्थान वाला (रथवाहनम्) रथ के चलने का साधन है जिस से (अविम्) रक्षा आदि के हेतु (पीवरीम्) सब पदार्थों को भुगाने का हेतु स्थूल (गाम्) पृथिवी को (उद्वपति) उखाड़ते हैं (तत्) उस को तुम सिद्ध करो ॥ ७१ ॥

भावार्थः—किसान लोगों को उचित है कि मोटी मट्टी अन्न आदि की उत्पत्ति से रक्षा करने हारी पृथिवी की अच्छे प्रकार परीक्षा करके हल आदि साधनों से जोत एकसार कर सुन्दर संस्कार किये बीज के उत्तम धान्य उत्पन्न करके भोगें ॥ ७१ ॥

कामित्यस्य कुमारहारित ऋषिः । मित्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः । आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

पकानेहारी स्त्री अच्छे यत्न से सुन्दर अन्न और व्यंजनों को बनावे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

कामं॑ कामदुघे धुक्ष्व मि॒त्राय॒ वरु॑णाय च । इन्द्रा॑या॒श्विभ्यां॑ पू॒ष्णे प्र॒जाभ्य॒ऽओष॑धीभ्यः ॥ ७२ ॥

पदार्थः—हे (कामदुघे) इच्छा को पूर्ण करने हारी रसोइया स्त्री ! तू पृथिवी के समान सुन्दर संस्कार किये अन्नों से (मित्राय) मित्र (वरुणाय) उत्तम विद्वान् (च) अतिथि अभ्यागत (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य्य से युक्त (अश्विभ्याम्) प्राण अपान (पूष्णे) पुष्टिकारक जन (प्रजाभ्यः) सन्तानों और (ओषधीभ्यः) सोमलता आदि ओषधियों से (कामम्) इच्छा को (धुक्ष्व) पूर्ण कर ॥ ७२ ॥

भावार्थः—जो स्त्री वा पुरुष भोजन बनावे उस को चाहिये कि पकाने की विद्या सीख प्रिय पदार्थ पका और उनका भोजन करा के सब को रोगरहित रक्खें ॥ ७२ ॥

विमुच्यध्वमित्यस्य कुमारहारित ऋषिः । अघ्न्या देवताः । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्यों को गौ आदि पशुओं को बढ़ा उन से दूध घी आदि की वृद्धि कर आनन्द में रहना चहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

विमु॑च्यध्वमघ्न्या देवयाना॒ अग॑न्म॒ तम॑सस्पा॒रम॒स्य । ज्योति॑रापाम ॥ ७३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे तुम लोग (अघ्न्याः) रक्षा के योग्य (देवयानाः) दिव्य भोगों की प्राप्ति के हेतु गौओं को प्राप्त हो सुन्दर संस्कार किये अन्नों का भोजन करके रोगों से (विमुच्यध्वम्) पृथक् रहते हो । वैसे हम लोग भी बचें । जैसे तुम लोग (तमसः) रात्रि के (पारम्) पार को प्राप्त होते हो वैसे हम भी (अगन्म) प्राप्त होवें । जैसे तुम लोग (अस्य) इस सूर्य्य के (ज्योतिः) प्रकाश को व्याप्त होते हो वैसे हम भी (आपाम) व्याप्त होवें ॥ ७३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि गौ आदि पशुओं को कभी न मारें न मरवावें तथा न किसी को मारने दें । जैसे सूर्य के उदय से रात्रि निवृत्ति होती है वैसे वैद्यकशास्त्र की रीति से पथ्य अन्नादि पदार्थों का सेवन कर रोगों से बचो ॥ ७३ ॥

सजूरब्द इत्यस्य कुमारहारित ऋषिः । अश्विनौ देवते । आर्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

मनुष्यों को किस प्रकार परस्पर सुखी होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

स॒जूरब्दो॒ऽअय॑वोभिः स॒जूरु॒षाऽअरु॑णीभिः । स॒जोष॑साव॒श्विना॒ दꣳसो॑भिः स॒जूः सूर॒ऽएत॑शेन स॒जूर्वै॑श्वान॒रऽइड॑या घृ॒तेन॒ स्वाहा॑ ॥७४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! हम सब लोग स्त्री पुरुष जैसे (अयवोभिः) एकरस क्षणादि काल के अवयवों से (सजूः) संयुक्त (अब्दः) वर्ष (अरुणीभिः) लाल कान्तियों के (सजूः) साथ वर्त्तमान (उषाः) प्रभात समय (दंसोभिः) कर्मों से (सजोषसौ) एकसा वर्त्ताव वाले (अश्विना) प्राण और अपान के समान स्त्री पुरुष वा (एतशेन) चलते घोड़े के समान व्याप्तिशील वेगवाले किरणनिमित्त पवन के (सजूः) साथ वर्त्तमान (सूरः) सूर्य (इडया) अन्न आदि का निमित्तरूप पृथिवी वा (घृतेन) जल से (स्वाहा) सत्य वाणी के (सजूः) साथ (वैश्वानरः) बिजुलीरूप अग्नि वर्त्तमान है वैसे ही प्रीति से वर्त्तें ॥ ७४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों में जितनी परस्पर मित्रता हो उतना ही सुख और जितना विरोध उतना ही दुःख होता है। उस से सब लोग स्त्री पुरुष परस्पर उपकार करने के साथ ही सदा वर्त्तें ॥ ७४ ॥

या ओषधीरित्यस्य भिषगृषिः । वैद्यो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को अवश्य ओषधि सेवन कर रोगों से बचना चाहिये
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा । मनै नु बभ्रूणामहꣳ शतं धामानि सप्त च ॥ ७५ ॥

पदार्थः—(अहम्) मैं (याः) जो (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधी (देवेभ्यः) पृथिवी आदि से (त्रियुगम्) तीन वर्ष (पुरा) पहिले (पूर्वाः) पूर्ण सुख दान में उत्तम (जाताः) प्रसिद्ध हुई जो (बभ्रूणाम्) धारण करने हारे रोगियों के (शतम्) सौ (च) और (सप्त) सात (धामानि) जन्म वा नाड़ियों के मर्मों में व्याप्त होती हैं उनको (नु) शीघ्र (मनै) जानूं ॥ ७५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि जो पृथिवी और जल में औषधि उत्पन्न होती हैं उन तीन वर्ष के पीछे ठीक-ठीक पकी हुई को ग्रहण कर वैद्यकशास्त्र के अनुकूल विधान से सेवन करें। सेवन की हुई वे ओषधि शरीर के सब अंशों में व्याप्त हो के शरीर के रोगों को छुड़ा सुखों को शीघ्र करती हैं ॥ ७५ ॥

शतं व इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य क्या करके किस को सिद्ध करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

शतं वोऽअम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः । अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मेऽअगदं कृत ॥ ७६ ॥

पदार्थः—हे (शतक्रत्वः) सैकड़ों प्रकार की बुद्धि वा क्रियाओं से युक्त मनुष्यो ! (यूयम्) तुम लोग जिन के (शतम्) सैकड़ों (उत) वा (सहस्रम्) हजारहों (रुहः)

नाड़ियों के अङ्कुर हैं उन ओषधियों से (मे) मेरे (इमम्) इस शरीर को (अगदम्) नीरोग (कृत) करो (अध) इसके पश्चात् (वः) आप अपने शरीरों को भी रोगरहित करो जो (वः) तुम्हारे असंख्य (धामानि) मर्म्म स्थान हैं उनको प्राप्त होओ। हे (अम्ब) माता ! तू भी ऐसा आचरण कर ॥ ७६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सब से पहिले ओषधियों का सेवन, पथ्य का आचरण और नियमपूर्वक व्यवहार करके शरीर को रोगरहित करें क्योंकि इसके बिना धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्षों का अनुष्ठान करने को कोई भी समर्थ नहीं हो सकता ॥ ७६ ॥

ओषधीरित्यस्य भिषगृषिः। वैद्या देवताः। निचृदनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

कैसी ओषधियों का सेवन करना चाहिये वह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः। अश्वाऽइव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्ण्वः॥ ७७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (अश्वा इव) घोड़ों के समान (सजित्वरीः) शरीरों के साथ संयुक्त रोगों को जीतने वाले (वीरुधः) सोमलता आदि (पारयिष्णवः) दुःखों से पार करने के योग्य (पुष्पवतीः) प्रशंसित पुरुषों से युक्त (प्रसूवरीः) सुख देने हारी (ओषधीः) ओषधियों को प्राप्त होकर (प्रतिमोदध्वम्) नित्य आनन्द भोगो ॥ ७७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे घोड़ों पर चढ़े वीर पुरुष शत्रुओं को जीत विजय को प्राप्त हो के आनन्द करते हैं वैसे श्रेष्ठ ओषधियों के सेवन और पथ्याहार करने हारे जितेन्द्रिय मनुष्य रोगों से छूट आरोग्य को प्राप्त हो के नित्य आनन्द भोगते हैं ॥ ७७ ॥

ओषधीरितीत्यस्य भिषगृषिः। चिकित्सुर्देवता। अनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर पिता और पुत्र आपस में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे सनेयमश्वं गां वासऽआत्मानं तव पूरुष॥ ७८॥

पदार्थः—हे (ओषधीः) ओषधियों के (इति) समान सुखदायक (देवीः) सुन्दर विदुषी स्त्री (मातरः) माता ! मैं पुत्र (वः) तुम को (तत्) श्रेष्ठ पथ्यरूप कर्म्म (उपब्रुवे) समीपस्थित होकर उपदेश करूं। हे (पुरुष) पुरुषार्थी श्रेष्ठ सन्तानों ! मैं माता (तव) तेरे (अश्वम्) घोड़े आदि (गाम्) गौ आदि वा पृथिवी आदि (वासः) वस्त्र आदि वा घर और (आत्मानम्) जीव को निरन्तर (सनेयम्) सेवन करूं ॥ ७८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे जो आदि ओषधि सेवन की हुई शरीरों को पुष्ट करती हैं वैसे ही माता विद्या, अच्छी शिक्षा और उपदेश से सन्तानों को पुष्ट करें। जो माता का धन है वह भाग सन्तान का और जो सन्तान का है वह माता का ऐसे सब परस्पर प्रीति से वर्त्त कर निरन्तर सुख को बढ़ावें ॥ ७८ ॥

अश्वत्थ इत्यस्य भिषगृषिः। वैद्या देवताः। अनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग नित्य कैसा विचार करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता। गोभाजऽइत् किलासथ यत् सनवथ पूरुषम् ॥ ७९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! ओषधियों के समान (यत्) जिस कारण (वः) तुम्हारा (अश्वत्थे) कल रहे वा न रहे ऐसे शरीर में (निषदनम्) निवास है। और (वः) तुम्हारा (पर्णे) कमल के पत्ते पर जल के समान चलायमान संसार में ईश्वर ने (वसतिः) निवास (कृता) किया है इस से (गोभाजः) पृथिवी को सेवन करते हुए (किल) ही (पूरुषम्) अन्न आदि से पूर्ण देह वाले पुरुष को (सनवथ) ओषधि देकर सेवन करो और सुख को प्राप्त होते हुए (इत्) इस संसार में (असथ) रहो ॥ ७९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को ऐसा विचारना चाहिये कि हमारे शरीर अनित्य और स्थिति चलायमान है इससे शरीर को रोगों से बचा कर धर्म्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का अनुष्ठान शीघ्र करके अनित्य साधनों से नित्य मोक्ष के सुख को प्राप्त होवें। जैसे ओषधि और तृण आदि फल फूल पत्ते स्कन्ध और शाखा आदि से शोभित होते हैं वैसे ही रोगरहित शरीरों से शोभायमान हों ॥ ७९ ॥

यत्रौषधीरित्यस्य भिषगृषिः। ओषधयो देवताः। अनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

वार २ श्रेष्ठ वैद्यों का सेवन करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव। विप्रः सऽउच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः ॥ ८० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! तुम लोग (यत्र) जिन स्थलों में (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधी होती हों उन को जैसे (राजानः) राजधर्म से युक्त वीरपुरुष (समिताविव) युद्ध में शत्रुओं को प्राप्त होते हैं वैसे (समग्मत) प्राप्त हो जो (रक्षोहा) दुष्ट रोगों का नाशक (अमीवचातनः) रोगों को निवृत्ति करने वाला (विप्र) बुद्धिमान् (भिषक्) वैद्य हो (सः) वह तुम्हारे प्रति (उच्यते) ओषधियों के गुणों का उपदेश करे और ओषधियों का तथा उस वैद्य का सेवन करो ॥ ८० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सेनापति से शिक्षा को प्राप्त हुए राजा के वीर पुरुष अत्यन्त पुरुषार्थ से देशान्तर में जा शत्रुओं को जीत के राज्य को प्राप्त होते हैं वैसे श्रेष्ठ वैद्य से शिक्षा को प्राप्त हुए तुम लोग ओषधियों की विद्या को प्राप्त हो। जिस शुद्ध देश में ओषधि हों वहां उन को जान के उपयोग में लाओ और दूसरों के लिये भी बताओ ॥ ८० ॥

अश्वावतीमित्यस्य भिषगृषिः। वैद्यो देवता। अनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

मनुष्यों को नित्य पुरुषार्थ बढ़ाना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्वावतींᳬं सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम्। आविंत्सि सर्वाऽओषधीरस्माऽअरिष्टतांतये॥ ८१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे मैं (अरिष्टतातये) दुःखदायक रोगों के छुड़ाने के लिये (अश्वावतीम्) प्रशंसित शुभगुणों से युक्त (सोमावतीम्) बहुत रस से सहित (उदोजसम्) अति पराक्रम बढाने हारी (ऊर्जयन्तीम्) वल देती हुई श्रेष्ठ ओषधियों को (आ) सब प्रकार (अवित्सि) जानूं कि जिस से (सर्वाः) सब (ओषधीः) ओषधि (अस्मै) इस मेरे लिये सुख देवें। इसलिये तुम लोग भी प्रयत्न करो॥ ८१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि रोगों का निदान चिकित्सा ओषधि और पथ्य के सेवन से निवारण करें तथा ओषधियों के गुणों का यथावत् उपयोग लेवें कि जिससे रोगों की निवृत्ति होकर पुरुषार्थ की वृद्धि होवे॥ ८१॥

उच्छुष्मा इत्यस्य भिषगृषिः। ओषधयो देवताः। विराडनुष्टुप्छन्दः। गांधारः स्वरः॥

ओषधियों का क्या निमित्त है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते। धनंᳬं सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष॥ ८२॥

पदार्थः—हे (पूरुष) पुरुष शरीर में सोने वाले वा देहधारी! (धनम्) ऐश्वर्य्य बढ़ाने वाले को (सनिष्यन्तीनाम्) सेवन करती हुई (ओषधीनाम्) सोमलता वा जौ आदि ओषधियों के सम्बन्ध से जैसे (शुष्माः) प्रशंसित बल करने हारी (गावः) गौ वा किरण (गोष्ठादिव) अपने स्थान से बछड़ों वा पृथिवी को और ओषधियों का तत्त्व (तव) तेरी (आत्मानम्) आत्मा को (उदीरते) प्राप्त होता है उन सब की तू सेवा कर॥ ८२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे रक्षा की हुई गौ अपने दूध आदि से अपने बच्चों और मनुष्य आदि को पुष्ट करके बलवान् करती है। वैसे ही ओषधियां

तुम्हारे आत्मा और शरीर को पुष्ट कर पराक्रमी करती हैं जो कोई न खावे तो क्रम से बल और बुद्धि की हानि हो जावे। इसलिये ओषधि ही बल बुद्धि का निमित्त है ॥ ८२ ॥

इष्कृतिरित्यस्य भिषगृषिः। वैद्या देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अच्छे प्रकार सेवन की हुई ओषधि क्या करती हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इष्कृतिर्नाम वो माताथो यूयथं स्थ निष्कृतीः। सीराः पतत्रिणीं स्थन यदामयति निष्कृथ ॥ ८३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यूयम्) तुम लोग जो (वः) तुम्हारी (इष्कृतिः) कार्य्यसिद्धि करने हारी (माता) माता के समान ओषधि (नाम) प्रसिद्ध है उस की सेवा के तुल्य सेवन की हुई ओषधियों को जानने वाले (स्थ) होओ (पतत्रिणीः) चलने वाली (सीराः) नदियों के समान (निष्कृतीः) प्रत्युपकारों को सिद्ध करने वाले (स्थन) होओ (अथो) इस के अनन्तर (यत्) जो क्रिया वा ओषधी अथवा वैद्य (आमयति) रोग बढ़ावे उस को (निष्कृथ) छोड़ो ॥ ८३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे माता पिता तुम्हारी सेवा करते हैं वैसे तुम भी उनकी सेवा करो। जो २ काम रोगकारी हो उस २ को छोड़ो। इस प्रकार सेवन की हुई ओषधि माता के समान प्राणियों को पुष्ट करती हैं ॥ ८३ ॥

अति विश्वा इत्यस्य भिषगृषिः। वैद्या देवताः। विराडनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

कैसे रोग निवृत्त होते हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अति विश्वाः परिष्ठा स्तेनऽइव व्रजमक्रमुः। ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किं च तन्वो रपः ॥ ८४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो (परिष्ठाः) सब ओर से स्थित (विश्वाः) सब (ओषधीः) सोमलता और जो आदि ओषधी (व्रजम्) जैसे गोशाला को (स्तेन इव) भित्ति फोड़ के चोर जावे वैसे पृथिवी फोड़ के (अत्यक्रमुः) निकलती हैं (यत्) जो (किञ्च) कुछ (तन्वः) शरीर का (रपः) पापों के फल के समान रोगरूप दुःख है उस सब को (प्राचुच्यवुः) नष्ट करती हैं उन ओषधियों को युक्ति से सेवन करो ॥ ८४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे गौओं के स्वामी से धमकाया हुआ चोर भित्ति को फांद के भागता है वैसे ही श्रेष्ठ ओषधियों से ताड़ना किये रोग नष्ट हो के भाग जाते हैं ॥ ८४ ॥

यदिमा इत्यस्य भिषगृषिः। वैद्यो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यदि॒मा वा॒जय॑न्न॒हमोष॑धी॒र्हस्त॑ऽआद॒धे । आ॒त्मा यक्ष्म॑स्य नश्यति पु॒रा जी॑व॒गृभो॑ यथा ॥ ८५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यथा) जिस प्रकार (पुरा) पूर्व (वाजयन्) प्राप्त करता हुआ (अहम्) मैं (यत्) जो (इमाः) इन (ओषधीः) ओषधियों को (हस्ते) हाथ में (आदधे) धारण करता हूं जिन से (जीवगृभः) जीव के ग्राहक व्याधि और (यक्ष्मस्य) क्षयी राजरोग का (आत्मा) मूलतत्व (नश्यति) नष्ट हो जाता है । उन ओषधियों को श्रेष्ठ युक्तियों से उपयोग में लाओ ॥ ८५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि सुन्दर हस्तक्रिया से ओषधियों को साधन कर ठीक २ क्रम से उपयोग में ला और क्षयी आदि बड़े रोगों को निवृत्त करके नित्य आनन्द के लिये प्रयत्न करें ॥ ८५ ॥

यस्यौषधीरित्यस्य भिषगृषिः । वैद्यो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

ठीक २ सेवन की हुई ओषधि रोगों को कैसे न नष्ट करे
यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

यस्यौ॑षधीः प्र॒सर्प॒थाङ्ग॑मङ्गं॒ परु॑ष्परुः । ततो॒ यक्ष्मं॒ विबा॑धध्व॒ऽउ॒ग्रो म॑ध्यम॒शीरि॑व ॥ ८६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (यस्य) जिसके (अङ्गमङ्गम्) सब अवयवों और (परुष्परु) मर्म २ के प्रति वर्त्तमान है उसके उस (उग्रः) तीव्र (यक्ष्मम्) क्षयी रोग को (मध्यमशीरिव) बीच के मर्मस्थानों को काटते हुए के समान (विबाधध्वे) विशेष कर निवृत्त कर (ततः) उसके पश्चात् (ओषधीः) ओषधियों को (प्रसर्पथ) प्राप्त होओ ॥ ८६ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य लोग शास्त्र के अनुसार ओषधियों का सेवन करें तो सब अवयवों से रोगों को निकाल के सुखी रहते हैं ॥ ८६ ॥

साकमित्यस्य भिषगृषिः । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसे २ रोगों को नष्ट करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

सा॒कं य॑क्ष्म॒ प्र प॑त॒ चाषे॑ण किकिदी॒विना॑ । सा॒कं वात॑स्य॒ ध्राज्या॑ सा॒कं न॑श्य नि॒हाक॑या ॥ ८७ ॥

पदार्थः—हे वैद्य विद्वान् पुरुष ! (किकिदीविना) ज्ञान बढ़ाने हारे (चाषेण) आहार से (साकम्) ओषधियुक्त पदार्थों के साथ (यक्ष्म) राजरोग (प्रपत) हट जाता है जैसे उस (वातस्य) वायु की (ध्राज्या) गति के (साकम्) साथ (नश्य) नष्ट हो और (निहाकया) निरन्तर छोड़ने योग्य पीड़ा के (साकम्) साथ दूर हो वैसा प्रयत्न कर ॥ ८७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि ओषधियों का सेवन योगाभ्यास और व्यायाम के सेवन से रोगों को नष्ट कर सुख से वर्त्तें ॥ ८७ ॥

अन्या व इत्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । विराडनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

युक्ति से मिलाई हुई ओषधियां रोगों को नष्ट करती हैं
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अन्या वोऽअन्यामवत्वन्यान्यस्याऽउपावत । ताः सर्वाः संविदानाऽइदं मे प्रावता वचः ॥ ८८ ॥

पदार्थः—हे स्त्रियो ! (संविदानाः) आपस में संवाद करती हुई तुम लोग (मे) मेरे (इदम्) इस (वचः) वचन को (प्रावत) पालन करो (ताः) उन (सर्वाः) ओषधियों की (अन्याः) दूसरी (अन्यस्याः) दूसरी की रक्षा के समान (उपावत) समीप से रक्षा करो जैसे (अन्या) एक (अन्याम्) दूसरी की रक्षा करती है वैसे (वः) तुम लोगों को पढ़ाने हारी स्त्री (अवतु) तुम्हारी रक्षा करे ॥ ८८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे श्रेष्ठ नियम वाली स्त्री एक दूसरे की रक्षा करती है वैसे ही अनुकूलता से मिलाई हुई ओषधी सब रोगों से रक्षा करती हैं । हे स्त्रियो ! तुम लोग ओषधिविद्या के लिये परस्पर संवाद करो ॥ ८८ ॥

या इत्यस्य भिषगृषिः । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

रोगों के निवृत्त होने के लिये ही ओषधि ईश्वर ने रची हैं
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

याः फलिनीर्याऽअफलाऽअपुष्पा याश्च पुष्पिणीः । बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ८९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (याः) जो (फलिनीः) बहुत फलों से युक्त (याः) जो (अफलाः) फलों से रहित (याः) जो (अपुष्पाः) फूलों से रहित (च) और जो (पुष्पिणीः) बहुत फूलों वाली (बृहस्पतिप्रसूताः) वेदवाणी के स्वामी ईश्वर ने उत्पन्न की हुई ओषधि (नः) हमको (अंहसः) दुःखदायी रोग से जैसे (मुञ्चन्तु) छुड़ावें (ताः) वे तुम लोगों को भी वैसे रोगों से छुड़ावें ॥ ८९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि जो ईश्वर ने सब प्राणियों की अधिक अवस्था और रोगों की निवृत्ति के लिये ओषधी रची हैं उनसे वैद्यकशास्त्र में कही हुई रीतियों से सब रोगों को निवृत्त कर और पापों से अलग रह कर धर्म में नित्य प्रवृत्त रहें ॥ ८९ ॥

मुञ्चन्तु मेत्यस्य भिषगृषिः । वैद्या देवताः । भुरिगुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

कौन-कौन ओषधि किस-किस से छुड़ाती है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत । अथो यमस्य पड्वीशात्सर्वस्माद् देवकिल्बिषात् ॥ ९० ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! आप जैसे वे महौषधि रोगों से पृथक् करती हैं (शपथ्यात्) शपथसम्बन्धी कर्म (अथो) और (वरुण्यात्) श्रेष्ठों में हुए अपराध से (अथो) इसके पश्चात् (यमस्य) न्यायाधीश के (पड्वीशात्) न्याय के विरुद्ध आचरण से (उत) और (सर्वस्मात्) सब (देवकिल्विषात्) विद्वानों के विषय अपराध से (मा) मुझको (मुञ्चन्तु) पृथक् रक्खें वैसे तुम लोगों को भी पृथक् रक्खें ॥ ९० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि प्रमादकारक पदार्थों को छोड़ के अन्य पदार्थों का भोजन करें और कभी सौगन्द, श्रेष्ठों का अपराध, न्याय से विरोध और मूर्खों के समान ईर्ष्या न करें ॥ ९० ॥

अवपतन्तीरित्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्या देवताः । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अध्यापक लोग सब को उत्तम ओषधी जनावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अवपतन्तीरवदन्दिवऽओषधयस्परि । यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥ ९१ ॥

पदार्थः—हम लोग जो (दिवः) प्रकाश से (अवपतन्तीः) नीचे को आती हुई (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधि हैं जिनका विद्वान् लोग (पर्य्यवदन्) सब ओर से उपदेश करते हैं। जिनसे (यम्) जिस (जीवम्) प्राणधारण को (अश्नवामहै) प्राप्त होवे (सः) वह (पूरुषः) पुरुष (न) कभी न (रिष्याति) रोगों से नष्ट होवे ॥ ९१ ॥

भावार्थः—विद्वान् लोग सब मनुष्यों के लिए दिव्य ओषधिविद्या को देवें जिससे सब लोग पूरी अवस्था को प्राप्त होवें। इन ओषधियों को कोई भी कभी नष्ट न करे ॥ ९१ ॥

या ओषधीरित्यस्य वरुण ऋषिः । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

स्त्री लोग अवश्य ओषधिविद्या ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

याऽओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः । तासामसि त्वमुत्तमारं कामाय शं हृदे ॥ ९२ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! जिससे (त्वम्) तू (याः) जो (शतविचक्षणाः) असंख्यात शुभगुणों से युक्त (बह्वीः) बहुत (सोमराज्ञीः) सोम जिन में राजा अर्थात् सर्वोत्तम (ओषधीः) ओषधी हैं (तासाम्) उन के विषय में (उत्तमा) उत्तम विद्वान् (असि) है इस से (शम्) कल्याण-

कारिणी (हृदे) हृदय के लिये (अरम्) समर्थ (कामाय) इच्छासिद्धि के लिये योग्य होती है हमारे लिये उन का उपदेश कर ॥ ९२ ॥

भावार्थः—स्त्रियों को चाहिये कि ओषधिविद्या का ग्रहण अवश्य करें क्योंकि इसके विना पूर्णकामना सुखप्राप्ति और रोगों की निवृत्ति कभी नहीं हो सकती ॥ ९२ ॥

या इत्यस्य वरुण ऋषिः । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसे सन्तानों को उत्पन्न करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

याऽओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु । बृहस्पतिप्रसूताऽअस्यै संदत्त वीर्य्यम् ॥ ९३ ॥

पदार्थः—हे विवाहित पुरुष ! (याः) जो (सोमराज्ञीः) सोम जिन में उत्तम है वे (बृहस्पतिप्रसूताः) बड़े कारण के रक्षक ईश्वर की रचना से उत्पन्न हुई (ओषधीः) ओषधियां (पृथिवीम्) (अनु) भूमि के ऊपर (विष्ठिताः) विशेषकर स्थित हैं उन से (अस्यै) इस स्त्री के लिये (वीर्य्यम्) बीज का दान दे । हे विद्वानो ! आप इन ओषधियों का विज्ञान सब मनुष्यों के लिये (संदत्त) अच्छे प्रकार दिया कीजिये ॥ ९३ ॥

भावार्थः—स्त्री पुरुषों को उचित है कि बड़ी-बड़ी ओषधियों का सेवन करके सुन्दर नियमों के साथ गर्भ धारण करें और ओषधियों का विज्ञान विद्वानों से सीखें ॥ ९३ ॥

याश्चेदमित्यस्य वरुण ऋषिः । भिषजो देवताः । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धार ः स्वरः ॥

शुद्ध देशों से ओषधियों का ग्रहण करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः । सर्वाः संगत्य वीरुधोऽस्यै संदत्त वीर्य्यम् ॥ ९४ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! आप लोग (याः) जो (च) विदित हुई और जिनको (उपश्रृण्वन्ति) सुनते हैं (याः) जो (च) समीप हों और जो (दूरम्) दूर देश में (परागताः) प्राप्त हो सकती हैं उन (सर्वाः) सब (वीरुधः) वृक्ष आदि ओषधियों को (संगत्य) निकट प्राप्त कर (इदम्) इस (वीर्य्यम्) शरीर के पराक्रम को वैद्य मनुष्य लोग जैसे सिद्ध करते हैं वैसे उन ओषधियों का विज्ञान (अस्यै) इस कन्या को (संदत्त) सम्यक् प्रकार से दीजिये ॥ ९४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग, जो ओषधियां दूर वा समीप में रोगों को हरने और बल करने हारी सुनी जाती हैं उनको उपकार में ला के रोगरहित होओ ॥ ९४ ॥

मा व इत्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्या देवताः । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कोई भी मनुष्य ओषधियों की हानि न करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

मा वो रिषत् खनिता यस्मै चाहं खनामि वः । द्विपाच्चतुष्पादस्माकꣳ सर्वमस्त्वनातुरम् ॥ ९५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (अहम्) मैं (यस्मै) जिस प्रयोजन के लिये ओषधि को (खनामि) उपाड़ता वा खोदता हूँ वह (खनिता) खोदी हुई (वः) तुम को (मा) न (रिषत्) दुःख देवे जिस से (वः) तुम्हारे और (अस्माकम्) हमारे (द्विपात्) दो पग वाले मनुष्य आदि तथा (चतुष्पात्) गौ आदि (सर्वम्) सब प्रजा उस ओषधि से (अनातुरम्) रोगों के दुःखों से रहित (अस्तु) होवे ॥ ९५ ॥

भावार्थः—जो पुरुष जिन ओषधियों को खोदे वह उनकी जड़ न मेटे जितना प्रयोजन हो उतनी लेकर नित्य रोगों को हटाता रहे, ओषधियों की परम्परा को बढ़ाता रहे कि जिस से सब प्राणी रोगों के दुःखों से बच के सुखी होवें ॥ ९५ ॥

ओषधय इत्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्या देवताः । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

क्या करने से ओषधियों का विज्ञान बढ़े यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ओषधयः समवदन्त सोमेन सह राज्ञा । यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तꣳ राजन् पारयामसि ॥ ९६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जो (सोमेन) (राज्ञा) सर्वोत्तम सोमलता के (सह) साथ वर्त्तमान (ओषधयः) ओषधी हैं उन के विज्ञान के लिये आप लोग (समवदन्त) आपस में संवाद करो । हे वैद्य (राजन्) राजपुरुष ! हम लोग (ब्राह्मणः) वेदों और उपवेदों का वेत्ता पुरुष (यस्मै) जिस रोगी के लिये इन ओषधियों का ग्रहण (कृणोति) करता है (तम्) उस रोगी को रोगसागर से उन ओषधियों से (पारयामसि) पार पहुंचाते हैं ॥ ९६ ॥

भावार्थः—वैद्य लोगों को योग्य है कि आपस में प्रश्नोत्तरपूर्वक निरन्तर ओषधियों के ठीक-ठीक ज्ञान से रोगों से रोगी पुरुषों को पार कर निरन्तर सुखी करें । और जो इन में उत्तम विद्वान् हो वह सब मनुष्यों को वैद्यकशास्त्र पढ़ावे ॥ ९६ ॥

नाशयित्रीत्यस्य वरुण ऋषिः । भिषग्वरा देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

जितने रोग हैं उतनी ओषधी हैं उन का सेवन करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नाशयित्री बलासस्यार्शसऽउपचितामसि । अथो शतस्य यक्ष्माणां पाकारोरसि नाशनी ॥ ९७ ॥

पदार्थः—हे वैद्य लोगो ! जो (वलासस्य) प्रवृद्ध हुए कफ की (अर्शसः) गुदेन्द्रिय की व्याधि वा (उपचिताम्) अन्य बढ़े हुए रोगों की (नाशयित्री) नाश करने हारी (असि) ओषधि हैं (अथो) और जो (शतस्य) असंख्यात (यक्ष्माणम्) राजरोगों अर्थात् भगन्दरादि और (पाकारोः) मुखरोगों और मर्मों का छेदन करने हारे शूल की (नाशनी) निवारण करने हारी (असि) है उस ओषधी को तुम लोग जानो ॥ ९७ ॥

भावार्थः— मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिये कि जितने रोग हैं उतनी ही उनकी नाश करने हारी ओषधी भी हैं, इन ओषधियों को नहीं जानने हारे पुरुष रोगों से पीड़ित होते हैं। जो रोगों की ओषधी जानें तो उन रोगों की निवृत्ति करके निरन्तर सुखी होवें ॥ ९७ ॥

त्वां गन्धर्वा इत्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्या देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कौन-कौन ओषधी का खनन करता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वां गन्धर्वाऽअखनँस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः । त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत ॥ ९८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जिस ओषधी से रोगी (यक्ष्मात्) क्षयरोग से (अमुच्यत) छूट जाय और जिस ओषधी को उपयुक्त करो (त्वाम्) उसको (गन्धर्वाः) गानविद्या में कुशल पुरुष (अखनन्) ग्रहण करें (त्वाम्) उस को (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य से युक्त मनुष्य (त्वाम्) उस को (बृहस्पतिः) वेदज्ञ जन और (त्वाम्) उस को (सोमः) सुन्दर गुणों से युक्त (विद्वान्) सब शास्त्रों का वेत्ता (राजा) प्रकाशमान राजा (त्वाम्) उस ओषधी को खोदे ॥ ९८ ॥

भावार्थः—जो कोई ओषधी जड़ों से, कोई शाखा आदि से, कोई पुष्पों, कोई फलों और कोई सब अवयवों करके रोगों से बचाती हैं। उन ओषधियों का सेवन मनुष्यों को यथावत् करना चाहिये ॥ ९८ ॥

सहस्वेत्यस्य वरुण ऋषिः । ओषधिर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को क्या करके क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सहस्व मेऽअरातीः सहस्व पृतनायतः । सहस्व सर्वं पाप्मानꣳ सहमानास्योषधे ॥ ९९ ॥

पदार्थः—(ओषधे) ओषधी के सदृश ओषधीविद्या की जानने हारी स्त्री ! जैसे ओषधी (सहमाना) बल का निमित्त (असि) है (मे) मेरे रोगों का निवारण करके बल बढ़ाती है वैसे (अरातीः) शत्रुओं को (सहस्व) सहन कर अपने (पृतनायतः) सेनायुद्ध की इच्छा करते हुओं को (सहस्व) सहन कर और (सर्वम्) सब (पाप्मानम्) रोगादि को (सहस्व) सहन कर ॥ ९९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि ओषधियों के सेवन से बल बढ़ा और प्रजा के तथा अपने शत्रुओं और पापी जनों को वश में करके सब प्राणियों को सुखी करें ॥ ९९ ॥

दीर्घायुस्त इत्यस्य वरुण ऋषिः । वैद्या देवताः । विराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

मनुष्य कैसे हो के दूसरों को कैसे करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

दीर्घायुस्तऽओषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम् । अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा वि रोहतात् ॥ १०० ॥

पदार्थः—हे (ओषधे) ओषधि के तुल्य ओषधियों के गुण दोष जानने हारे पुरुष ! जिस से (ते) तेरी जिस ओषधि का (खनिता) सेवन करने हारा (अहम्) मैं (यस्मै) जिस प्रयोजन के लिये (च) और जिस पुरुष के लिये (खनामि) खोदूं उस से तू (दीर्घायुः) अधिक अवस्था वाला हो (अथो) और (दीर्घायुः) बड़ी अवस्था वाला (भूत्वा) होकर (त्वम्) तू जो (शतवल्शा) बहुत अंकुरों से युक्त ओषधि है (त्वा) उस को सेवन करके सुखी हो और (वि, रोहतात्) प्रसिद्ध हो ॥ १०० ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग ओषधियों के सेवन से अधिक अवस्था वाले होओ और धर्म का आचरण करने हारे होकर सब मनुष्यों को ओषधियों के सेवन से दीर्घ अवस्था वाले करो ॥ १०० ॥

त्वमुत्तमासीत्यस्य वरुण ऋषिः । भिषजो देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह ओषधी किस प्रकार की है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षाऽउपस्तयः । उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं योऽअस्माँ२ऽअभिदासति ॥ १०१ ॥

पदार्थः—हे वैद्यजन ! (यः) जो (अस्मान्) हमको (अभिदासति) अभीष्ट सुख देता है (सः) वह (त्वम्) तू (अस्माकम्) हमारा (उपस्तिः) संगी (अस्तु) हो जो (उत्तमा) उत्तम (ओषधे) ओषधी (असि) है (तव) जिसके (वृक्षाः) वट आदि वृक्ष (उपस्तयः) समीप इकट्ठे होने वाले हैं उस ओषधी से हमारे लिये सुख दे ॥ १०१ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विरोधी वैद्य की ओषधी कभी न ग्रहण करें किन्तु जो वैद्यकशास्त्रज्ञ जिसका कोई शत्रु न हो धर्मात्मा सब का मित्र सर्वोपकारी है उससे ओषधिविद्या ग्रहण करें ॥ १०१ ॥

मा मेत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । को देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब किसलिये ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

मा मा हिꣳसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवꣳ सत्यधर्मा व्यानट् ।
यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १०२ ॥

पदार्थः—(यः) जो (सत्यधर्मा) सत्यधर्म वाला जगदीश्वर (पृथिव्याः) पृथिवी का (जनिता) उत्पन्न करने वाला (वा) अथवा (यः) जो (दिवम्) सूर्य आदि जगत् को (च) और (पृथिवी) तथा (अपः) जल और वायु को (व्यानट्) उत्पन्न करके व्याप्त होता है (चन्द्राः) और जो चन्द्रमा आदि लोकों को (जजान) उत्पन्न करता है। जिस (कस्मै) सुखस्वरूप सुख करने हारे (देवाय) दिव्य सुखों के दाता विज्ञानस्वरूप ईश्वर का (हविषा) ग्रहण करने योग्य भक्तियोग से हम लोग (विधेम) सेवन करें। वह जगदीश्वर (मा) मुझ को (मा) नहीं (हिंसीत्) कुसंग से ताड़ित न होने देवे ॥ १०२ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सत्यधर्म की प्राप्ति और ओषधि आदि के विज्ञान के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करें ॥ १०२ ॥

अभ्यावर्त्तस्वेत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

पृथिवी के पदार्थों का विज्ञान कैसे करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अभ्यावर्त्तस्व पृथिवि यज्ञेन पयसा सह । वपां तेऽअग्निरिषितोऽ
अरोहत् ॥ १०३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! तू जो (पृथिवि) भूमि (यज्ञेन) संगम के योग्य (पयसा) जल के (सह) साथ वर्त्तती है उसको (अभ्यावर्तस्व) दोनों ओर से शीघ्र वर्त्ताव कीजिये जो (ते) आप के (वपाम्) बोने को (इषितः) प्रेरणा किया (अग्निः) अग्नि (अरोहत्) उत्पन्न करता है वह अग्नि गुण कर्म और स्वभाव के साथ सब को जानना चाहिये ॥ १०३ ॥

भावार्थः—जो पृथिवी सब का आधार उत्तम रत्नादि पदार्थों की दाता जीवन का हेतु बिजुली से युक्त है उस का विज्ञान भूगर्भविद्या से सब मनुष्यों को करना चाहिये ॥ १०३ ॥

अग्ने यत्त इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिग् गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

किसलिये अग्निविद्या का खोज करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने यत्ते शुक्रं यच्चन्द्रं यत्पूतं यच्च यज्ञियम् । तद्देवेभ्यो भरामसि ॥ १०४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् पुरुष ! (यत्) जो अग्नि का (शुक्रम्) शीघ्रकारी (यत्) जो (चन्द्रम्) सुवर्ण के समान आनन्द देने हारा (यत्) जो (पूतम्) पवित्र (च) और

(यत्) जो (यज्ञियम्) यज्ञानुष्ठान के योग्य स्वरूप है (तत्) वह (ते) आप के और (देवेभ्यः) दिव्यगुण होने के लिये (भरामसि) हम लोग धारण करें ॥ १०४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि श्रेष्ठ गुण और कर्मों की सिद्धि के लिये बिजुली आदि अग्निविद्या को विचारें ॥ १०४ ॥

इषमूर्जमित्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । विद्वान् देवता । विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ठीक ठीक आहार विहार करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इषमूर्जमहमितऽआदमृतस्य योनिं महिषस्य धाराम् । आ मा गोषु विशत्वा तनूषु जहामि सेदिमनिराममीवाम् ॥ १०५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (अहम्) मैं (इतः) इस पूर्वोक्त विद्युत्स्वरूप से (आदम्) भोगने योग्य (इषम्) अन्न (ऊर्जम्) पराक्रम (महिषस्य) बड़े (ऋतस्य) सत्य के (योनिम्) कारण (धाराम्) धारण करने वाली वाणी को प्राप्त होऊं जैसे अन्न और पराक्रम (मा) मुझ को (आविशतु) प्राप्त हो जिस से मेरे (गोषु) इन्द्रियों और (तनूषु) शरीर में प्रविष्ट हुई (सेदिम्) दुःख का हेतु (अनिराम्) जिस में अन्न का भोजन भी न कर सकें ऐसी (अमीवाम्) रोगों से उत्पन्न हुई पीड़ा को (आ, जहामि) छोड़ता हूं वैसे तुम लोग भी करो ॥ १०५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अग्नि का जो वीर्य्य आदि से युक्त स्वरूप है उस को प्रदीप्त करने से रोगों का नाश करें । इन्द्रिय और शरीर को स्वस्थ रोगरहित करके कार्य्य कारण की जानने हारी विद्यायुक्त वाणी को प्राप्त होवें और युक्ति से आहार विहार भी करें ॥ १०५ ॥

अग्ने तवेत्यस्य पावकाग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्तेऽअर्चयो विभावसो । बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे ॥ १०६ ॥

पदार्थः—हे (बृहद्भानो) अग्नि के समान अत्यन्त विद्याप्रकाश से युक्त (विभावसो) विविध प्रकार की कान्ति में वसने हारे (कवे) अत्यन्त बुद्धिमान् (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वान् पुरुष ! जिस से आप (शवसा) बल के साथ (दाशुषे) दान के योग्य विद्यार्थी के लिये (उक्थ्यम्) कहने योग्य (वाजम्) विज्ञान को (दधासि) धारण करते हो इस से (तव) आप का अग्नि के समान (महि) अति पूजने योग्य (श्रवः) सुनने योग्य शब्द (वयः) यौवन और (अर्चयः) दीप्ति (भ्राजन्ते) प्रकाशित होती है ॥ १०६ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि के समान गुणी और आप्तों के तुल्य श्रेष्ठ कीर्त्तियों से प्रकाशित होते हैं वे परोपकार के लिये दूसरों को विद्या विनय और धर्म का निरन्तर उपदेश करें ॥ १०६ ॥

पावकवर्चेत्यस्य पावकाग्निर्ऋषिः । विद्वान् देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

माता पिता सन्तानों के प्रति क्या क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

पावकवर्चाः शुक्रवर्चाऽअनूनवर्चाऽउदियर्षि भानुना । पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसीऽउभे ॥ १०७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! जैसे (पुत्रः) पुत्र ब्रह्मचर्यादि आश्रमों में (विचरन्) विचरता हुआ विद्या को प्राप्त होता और (भानुना) प्रकाश से (पावकवर्चाः; शुक्रवर्चाः) बिजुली और सूर्य के प्रकाश के समान न्याय करने और (अनूनवर्चाः) पूर्ण विद्याऽभ्यास करने हारा और जैसे (उभे) दोनों (रोदसी) आकाश और पृथिवी परस्पर सम्बन्ध करते हैं जैसे (इयर्षि) विद्या को प्राप्त होता राज्य का (पृणक्षि) संबन्ध करता और (मातरा) माता पिता की (उपावसि) रक्षा करता है इससे तू धर्मात्मा है ॥ १०७ ॥

भावार्थः—माता पिताओं को यह अति उचित है कि सन्तानों को उत्पन्न कर बाल्यावस्था में आप शिक्षा दे ब्रह्मचर्य्य करा आचार्य के कुल में भेज के विद्यायुक्त करें । सन्तानों को चाहिये कि विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त हो और पुरुषार्थ से ऐश्वर्य्य को बढ़ा के अभिमान और मत्सरतारहित प्रीति से माता पिता की मन वाणी और कर्म्म से यथावत् सेवा करें ॥ १०७ ॥

ऊर्जो नपादित्यस्य पावकाग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

माता पिता और पुत्र कैसे हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः । त्वेऽइषः संदधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥ १०८ ॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) बुद्धि और धन से युक्त पुत्र ! जिस (त्वे) तुझ में (भूरिवर्पसः) बहुत प्रशंसा के योग्य रूपों से युक्त (चित्रोतयः) आश्चर्य के तुल्य रक्षा आदि कर्म्म करने वाली (वामजाताः) प्रशंसा के योग्य कुलों वा कर्मों में प्रसिद्ध विद्याप्रिय अध्यापक माता आदि विद्वान् स्त्रियें (इषः) अन्नों को (संदधुः) धरें भोजन करावें सो तू (सुशस्तिभिः) उत्तमप्रशंसायुक्त क्रियाओं के साथ (धीतिभिः) अङ्गुलियों से बुलाया हुआ (ऊर्जः) (नपात्) धर्म के अनुकूल पराक्रमयुक्त सब के हित को धारण सदा किये हुए (मन्दस्व) आनन्द में रह ॥ १०८ ॥

भावार्थः—जिन कुमार और कुमारियों की माता विद्याप्रिय विद्वान् हों वे ही निरन्तर सुख को प्राप्त होते हैं और जिन माता पिताओं के सन्तान विद्या अच्छी शिक्षा और ब्रह्मचर्य्य

सेवन से शरीर और आत्मा के बल से युक्त धर्म का आचरण करने वाले है वे ही सदा सुखी हों ॥ १०८ ॥

इरज्यन्नित्यस्य पावकाग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचदार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्य कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायोऽअमर्त्य । स दर्शतस्य वपुषो विराजसि पृणक्षि सानसिं क्रतुम् ॥ १०९ ॥

पदार्थः—हे (अमर्त्य) नाश और संसारी मनुष्यों के स्वभाव से रहित (अग्ने) अग्नि के समान पुरुषार्थी ! जो (इरज्यन्) ऐश्वर्य्य का सञ्चय करते हुए आप (दर्शतस्य) देखने योग्य (वपुषः) रूप का (सानसिम्) सनातन (क्रतुम्) बुद्धि का (पृणक्षि) सम्बन्ध करते हो और उसी बुद्धि में विशेष करके (विराजसि) शोभित होते हो (सः) सो आप (अस्मे) हम लोगों के लिये (जन्तुभिः) मनुष्यादि प्राणियों से (रायः) धनों का (प्रथयस्व) विस्तार कीजिये ॥ १०९ ॥

भावार्थः—जो पुरुष मनुष्यों के लिये सनातन वेदविद्या को देता और सुन्दर आचार में विराजमान हो वही ऐश्वर्य्य को प्राप्त हो के दूसरों के लिये प्राप्त करा सकता है ॥ १०९ ॥

इष्कर्त्तारमित्यस्य पावकाग्निर्ऋषिः । विद्वान् देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

कौन पुरुष परोपकारी होता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

इष्कर्त्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तꣳ राधसो महः । रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिꣳ रयिम् ॥ ११० ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! जो आप (अध्वरस्य) बढ़ाने योग्य यज्ञ के (इष्कर्त्तारम्) सिद्ध करने वाले (प्रचेतसम्) उत्तम बुद्धिमान् (वामस्य) प्रशंसित (महः) बड़े (राधसः) धन के (रातिम्) देने और (क्षयन्तम्) निवास करने वाले पुरुष और (सुभगाम्) सुन्दर ऐश्वर्य्य की देने हारी (महीम्) पृथिवी तथा (इषम्) अन्न आदि को और (सानसिम्) प्राचीन (रयिम्) धन को (दधासि) धारण करते हो इस से हम लोगों को सत्कार करने योग्य हो ॥ ११० ॥

भावार्थः—जो मनुष्य जैसे अपने लिये सुख की इच्छा करे वैसे ही दूसरों के लिये भी करे वही आप्त सत्कार के योग्य होवे ॥ ११० ॥

ऋतावानमित्यस्य पावकाग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को किन का अनुहार करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निꣳ सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः । श्रुत्कर्णꣳ सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥ १११ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! जैसे (जनाः) विद्या और विज्ञान से प्रसिद्ध मनुष्य (गिरा) वाणी से (सुम्नाय) सुख के लिये (दैव्यम्) विद्वानों में कुशल (श्रुत्कर्णम्) बहुश्रुत (विश्वदर्शतम्) सब देखने हारे (सप्रथस्तमम्) अत्यन्तविद्या के विस्तार के साथ वर्त्तमान (ऋतावानम्) बहुत सत्याचरण से युक्त (महिषम्) बड़े (अग्निम्) विद्वान् को (मानुषा) मनुष्यों के (युगा) वर्ष वा सत्ययुग आदि (पुरः) प्रथम (दधिरे) धारण करते हुए वैसे विद्वान् को और इन वर्षों को तू भी धारण कर यह (त्वा) तुझे सिखाता हूं ॥ १११ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सत्पुरुष हो चुके हों उन्हीं का अनुकरण मनुष्य लोग करें अन्य अधर्मियों का नहीं ॥ १११ ॥

आप्यायस्वेत्यस्य गोतम ऋषिः । सोमो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

राजपुरुष क्या करके कैसे हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य सङ्गथे ॥ ११२ ॥

पदार्थः—हे (सोम) चन्द्रमा के समान कान्तियुक्त राजपुरुष ! जैसे सोमगुणयुक्त विद्वान् के संग से (ते) तेरे लिये (वृष्ण्यम्) वीर्य्य पराक्रम वाले पुरुष के कर्म को (विश्वतः) सब ओर से (समेतु) संगत हो उस से आप (आप्यायस्व) बढ़िये (वाजस्य) विज्ञान और वेग से संग्राम के जानने हारे (संगथे) युद्ध में विजय करने वाले (भव) हूजिये ॥ ११२ ॥

भावार्थः—राजपुरुषों को नित्य पराक्रम बढ़ा के शत्रुओं से विजय को प्राप्त हाना चाहिये ॥ ११२ ॥

सं त इत्यस्य गोतम ऋषिः । सोमो देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

शरीर और आत्मा के बल से युक्त पुरुष किस को प्राप्त होते हैं
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सं ते पयाꣳसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः । आप्यायमानोऽअमृताय सोम दिवि श्रवाꣳस्युत्तमानि धिष्व ॥ ११३ ॥

पदार्थः—हे (सोम) शान्तियुक्त पुरुष ! जिस (ते) तुम्हारे लिये (पयांसि) जल वा दुग्ध (संयन्तु) प्राप्त होवें (अभिमातिषाहः) अभिमानयुक्त शत्रुओं को सहने वाले (वाजाः) धनुर्वेद के विज्ञान (सम्) प्राप्त होवें (उ) और (वृष्ण्यानि) पराक्रम (सम्) प्राप्त होवें

सो (आप्यायमानः) अच्छे प्रकार बढ़ते हुए आप (दिवि) प्रकाशस्वरूप ईश्वर में (अमृताय) मोक्ष के लिये (उत्तमानि, श्रवांसि) उत्तम श्रवणों को (धिष्व) धारण कीजिये ।। ११३ ।।

भावार्थः—जो मनुष्य शरीर और आत्मा के बल को नित्य बढ़ाते हैं वे योगाभ्यास से परमेश्वर में मोक्ष के आनन्द को प्राप्त होते हैं ।। ११३ ।।

आप्यायस्वेत्यस्य गोतम ऋषिः । सोमो देवता । आर्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ।।

संसार में कौन वृद्धि को प्राप्त होता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

आप्यायस्व मदिन्तम् सोम् विश्वेभिरꣳशुभिः । भवा नः सुप्रथस्तमः सखा वृधे ।। ११४ ।।

पदार्थः—हे (मदिन्तम) अत्यन्त आनन्दी (सोम) ऐश्वर्य्य वाले पुरुष ! आप (अंशुभिः) किरणों से सूर्य्य के समान (विश्वेभिः) सब साधनों से (आप्यायस्व) वृद्धि को प्राप्त हूजिये (सप्रथस्तमः) अत्यन्तविस्तारयुक्त सुख करने हारे (सखा) मित्र हुए (नः) हमारे (वृधे) बढ़ाने के लिये (भव) तत्पर हूजिये ।।११४ ।।

भावार्थः—इस संसार में सब का हित करने हारा पुरुष सब प्रकार से वृद्धि को प्राप्त होता है, ईर्ष्या करने वाला नहीं ।। ११४ ।।

आ त इत्यस्य वत्सार ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।।

मनुष्य लोग किस को वश में करके आनन्द को प्राप्त होवें
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् । अग्ने त्वाङ्कामया गिरा ।। ११५ ।।

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष ! (त्वाङ्कामया) तुझको कामना करने के हेतु (गिरा) वाणी से जिस (ते) तेरा (मनः) चित्त जैसे (परमात्) अच्छे (सधस्थात्) एक से स्थान से (चित्) भी (वत्सः) बछड़ा गौ को प्राप्त होवे वैसे (आ, यमत्) स्थिर होता है सो तू मुक्ति को क्यों न प्राप्त होवे ।। ११५ ।।

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि मन और वाणी को सदैव अपने वश में रक्खें ।। ११५ ।।

तुभ्यं ता इत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।।

अब राजा क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

तुभ्यं ताऽअङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् । अग्ने कामाय येमिरे ॥ ११६ ॥

पदार्थः—हे (अङ्गिरस्तम) अतिशय करके सार के ग्राहक (अग्ने) प्रकाशमान राजन् ! जो (विश्वाः) सब (सुक्षितयः) श्रेष्ठ मनुष्यों वाली प्रजा (पृथक्) अलग (कामाय) इच्छा के साधक (तुभ्यम्) तुम्हारे लिये (येमिरे) प्राप्त होवे (ताः) उन प्रजाओं की आप निरन्तर रक्षा कीजिये ॥ ११६ ॥

भावार्थः—जहां प्रजा के लोग धर्मात्मा राजा को प्राप्त हो के अपनी-अपनी इच्छा पूरी करते हैं वहाँ राजा की वृद्धि क्यों न होवे ॥ ११६ ॥

अग्निरित्यस्य प्रजापति ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्य लोग कैसे होकर क्या २ करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य । सम्राडेको विराजति ॥ ११७ ॥

पदार्थः—जो मनुष्य (सम्राट्) सम्यक् प्रकाशक (एकः) एक ही असहाय परमेश्वर के सदृश (कामः) स्वीकार के योग्य (अग्निः) अग्नि के समान वर्त्तमान सभापति (भूतस्य) हो चुके और (भव्यस्य) आने वाले समय के (प्रियेषु) इष्ट (धामसु) जन्म स्थान और नामों में (विराजति) प्रकाशित होवे वही राज्य का अधिकारी होने योग्य है ॥ ११७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य परमात्मा के गुण कर्म और स्वभावों के अनुकूल अपने कर्म और स्वभाव करते हैं वे ही चक्रवर्ती राज्य भोगने के योग्य होते हैं ॥ ११७ ॥

इस अध्याय में स्त्री, पुरुष, राजा, प्रजा, खेती और पठन पाठन आदि कर्म का वर्णन है इससे इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति समझनी चाहिये ॥

॥ यह बारहवां अध्याय समाप्त हुआ ॥



॥ ओ३म् ॥

॥ अथ त्रयोदशाऽध्यायारम्भः ॥

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒ता॒नि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥१॥

य० ३० । ३ ॥

तत्र मयि गृह्णामीत्याद्यस्य वत्सार ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब तेरहवें अध्याय का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को पहिली अवस्था में क्या-क्या करना चाहिये यह विषय कहा है ॥

मयि॑ गृह्णा॒म्यग्रे॑ अ॒ग्निꣳ रा॒यस्पोषा॑य सुप्रजा॒स्त्वाय॑ सु॒वीर्य्या॑य । मामु॑ दे॒वता॑ः सचन्ताम् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे कुमार वा कुमारियो ! जैसे मैं (अग्रे) पहिले (मयि) मुझ में (रायः) विज्ञान आदि धन के (पोषाय) पुष्टि (सुप्रजास्त्वाय) सुन्दर प्रजा होने के लिये और (सुवीर्य्याय) रोगरहित सुन्दर पराक्रम होने के अर्थ (अग्निम्) उत्तम विद्वान् को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ जिस से (माम्) मुझ को (उ) ही (देवताः) उत्तम विद्वान् वा उत्तम गुण (सचन्ताम्) मिलें वैसे तुम लोग भी करो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को यह उचित है कि ब्रह्मचर्य्य-युक्त कुमारावस्था में वेदादि शास्त्रों के पढ़ने से पदार्थविद्या उत्तम कर्म और ईश्वर की उपासना तथा ब्रह्मज्ञान को स्वीकार करें । जिस से श्रेष्ठ गुण और आप्त विद्वानों को प्राप्त होके उत्तम धन सन्तानों और पराक्रम को प्राप्त होवें ॥ १ ॥

अपां पृष्ठमित्यस्य वत्सार ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब परमेश्वर की उपासना का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अ॒पां पृ॒ष्ठम॑सि॒ योनि॑र॒ग्नेः स॑मु॒द्रम॒भित॒ः पिन्व॑मानम् । वर्ध॑मानो म॒हाँ२ऽआ च॒ पुष्क॑रे दि॒वो मात्र॑या वरि॒म्णा प्र॑थस्व ॥ २ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष ! जो तू (अभितः) सब ओर से (अपाम्) सर्वत्र व्यापक परमेश्वर आकाश दिशा बिजुली और प्राणों वा जलों के (पृष्ठम्) अधिकरण (समुद्रम्) आकाश

के समान सागर (पिन्वमानम्) सींचते हुए समुद्र को (अग्नेः) बिजुली आदि अग्नि के (योनिः) कारण (दिवः) प्रकाशित पदार्थों का (मात्रया) निर्माण करने हारी बुद्धि से (पुष्करे) हृदयरूप अन्तरिक्ष में (वर्धमानः) उन्नति को प्राप्त हुए (च) और (महान्) सब श्रेष्ठ वा सब के पूज्य (असि) हो सो आप हमारे लिये (वरिम्णा) व्यापकशक्ति से (आ, प्रथस्व) प्रसिद्ध हूजिये ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जिस सत्, चित् और आनन्दस्वरूप, सब जगत् का रचने हारा, सर्वत्र व्यापक, सबसे उत्तम और सर्वशक्तिमान् ब्रह्म की उपासना से सम्पूर्ण विद्यादि अनन्त गुण प्राप्त होते हैं उसका सेवन क्यों न करना चाहिये ॥ २ ॥

ब्रह्मजज्ञानमित्यस्य वत्सार ऋषिः । आदित्यो देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को किस स्वरूप वाला ब्रह्म उपासना के योग्य है
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेनऽआवः । स बुध्न्याऽउपमाऽअस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥ ३ ॥

पदार्थः—जो (पुरस्तात्) सृष्टि की आदि में (जज्ञानम्) सब का उत्पादक और ज्ञाता (प्रथमम्) विस्तारयुक्त और विस्तारकर्ता (ब्रह्म) सब से बड़ा जो (सुरुचः) सुन्दर प्रकाशयुक्त और सुन्दर रुचि का विषय (वेनः) ग्रहण के योग्य जिस (अस्य) इस के (बुध्न्याः) जल-सम्बन्धी आकाश में वर्त्तमान सूर्य्य, चन्द्रमा, पृथिवी और नक्षत्र आदि (विष्ठाः) विविध स्थलों में स्थित (उपमाः) ईश्वर ज्ञान के दृष्टान्त लोक हैं उन सब को (सः) वह (आवः) अपनी व्याप्ति स आच्छादन करता है वह ईश्वर (विसीमतः) मर्य्यादा से (सतः) विद्यमान देखने योग्य (च) और (असतः) अव्यक्त (च) और कारण के (योनिम्) आकाशरूप स्थान को (विवः) ग्रहण करता है उसी ब्रह्म की उपासना सब लोगों को नित्य अवश्य करनी चाहिये ॥ ३ ॥

भावार्थः—जिस ब्रह्म के जानने के लिये प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध सब लोक दृष्टान्त हैं जो सर्वत्र व्याप्त हुआ सब का आवरण और सभा का प्रकाश करता है और सुन्दर नियम के साथ अपनी-अपनी कक्षा में सब लोकों को रखता है वही अन्तर्य्यामी परमात्मा सब मनुष्यों के निरन्तर उपासना के योग्य है इस से अन्य कोई पदार्थ सेवने योग्य नहीं ॥ ३ ॥

हिरण्यगर्भ इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग जो इस (भूतस्य) उत्पन्न हुए संसार का (जातः) रचने और (पतिः) पालन करने हारा (एकः) सहाय की अपेक्षा से रहित (हिरण्यगर्भः) सूर्यादि तेजोमय पदार्थों का आधार (अग्रे) जगत् रचने के पहिले (समवर्त्तत) वर्त्तमान (आसीत्) था (सः) वह (इमाम्) इस संसार को रचके (उत) और (पृथिवीम्) प्रकाशरहित और (द्याम्) प्रकाशसहित सूर्यादि लोकों को (दाधार) धारण करता हुआ उस (कस्मै) सुखरूप प्रजा पालने वाले (देवाय) प्रकाशमान परमात्मा की (हविषा) आत्मादि सामग्री से (विधेम) सेवा में तत्पर हों । वैसे तुम लोग भी इस परमात्मा का सेवन करो ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को योग्य है कि इस प्रसिद्ध सृष्टि के रचने से प्रथम परमेश्वर ही विद्यमान था जीव गाढ़ निद्रा सुषुप्ति में लीन और जगत् का कारण अत्यन्त सूक्ष्मावस्था में आकाश के समान एकरस स्थिर था जिसने सब जगत् को रचके धारण किया और अन्त्य-समय में प्रलय करता है उसी परमात्मा को उपासना के योग्य मानो ॥ ४ ॥

द्रप्स इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । ईश्वरो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः । समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं जिस के (सप्त) पांच प्राण मन और आत्मा ये सात (होत्राः) अनुग्रहण करने हारे (यः) जो (इमाम्) इस (पृथिवीम्) पृथिवी (द्याम्) प्रकाश (च) और (योनिम्) कारण के अनुकूल जो (पूर्वः) सम्पूर्ण स्वरूप (द्रप्सः) आनन्द और उत्साह को (अनु) अनुकूलता से (चस्कन्द) प्राप्त होता है उस (योनिम्) स्थान के (अनु) अनुसार (संचरन्तम्) संचारी (समानम्) एक प्रकार के (द्रप्सम्) सर्वत्र अभिव्याप्त आनन्द को मैं (अनुजुहोमि) अनुकूल ग्रहण करता हूँ वैसे तुम लोग भी ग्रहण करो ॥ ५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को चाहिये कि जिस जगदीश्वर के आनन्द और स्वरूप का सर्वत्र लाभ होता है उस की प्राप्ति के लिये योगाभ्यास करो ॥ ५ ॥

नमोऽस्त्वित्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिर्देवता च । भुरिगुष्णिक् छन्दः ॥
ऋषभः स्वरः ॥

मनुष्यों को संसार में कैसे वर्त्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु । येऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ६ ॥

पदार्थः—जो (के) कोई इस जगत् में लोक लोकान्तर और प्राणी हैं (तेभ्यः) उन (सर्पेभ्यः) लोकों के जीवों के लिये (नमः) अन्न (अस्तु) हो (ये) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (ये) जो (दिवि) प्रकाशमान सूर्य्य आदि लोकों में (च) और (ये) जो (पृथिवीम्) भूमि के (अनु) ऊपर चलते हैं उन (सर्पेभ्यः) प्राणियों के लिये (नमः) अन्न प्राप्त होवे ॥ ६ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जितने लोक दीख पड़ते हैं और जो नहीं दीख पड़ते हैं वे सब अपनी-अपनी कक्षा में नियम से स्थिर हुए आकाश मार्ग में घूमते उन सबों में जो प्राणी चलते हैं उन के लिये अन्न भी ईश्वर ने रचा है कि जिस से इन सब का जीवन होता है इस बात को तुम लोग जानो ॥ ६ ॥

या इषव इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । स एव देवता च । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसा होना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

याऽइषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीँ१ऽरनु । ये वावटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (याः) जो (यातुधानानाम्) पराये पदार्थों को प्राप्त हो के धारण करने वाले जनों की (इषवः) गति हैं (वा) अथवा (ये) जो (वनस्पतीन्) वट आदि वनस्पतियों के (अनु) आश्रित रहते हैं और (ये) जो (वा) अथवा (अवटेषु) गुप्तमार्गों में (शेरते) सोते हैं (तेभ्यः) उन (सर्पेभ्यः) चञ्चल दुष्ट प्राणियों के लिये (नमः) वज्र चलाओ ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो मार्गों और वनों में उचक्के दुष्ट प्राणी एकान्त में दिन के समय सोते हैं उन डाकुओं और सर्पों को शस्त्र, ओषधि आदि से निवारण करें ॥ ७ ॥

ये वामीत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । सूर्य्यो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कंटक और दुष्ट प्राणी कैसे हटाने चाहिये
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्य्यस्य रश्मिषु । येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (ये) जो (अमी) वे परोक्ष में रहने वाले (दिवः) बिजुली के (रोचने) प्रकाश में (वा) अथवा (ये) जो (सूर्य्यस्य) सूर्य्य की (रश्मिषु) किरणों में (वा) अथवा (येषाम्) जिनका (अप्सु) जलों में (सदः) स्थान (कृतम्) बना है (तेभ्यः) उन (सर्पेभ्य) दुष्ट प्राणियों को (नमः) वज्र से मारो ॥ ८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो जलों में आकाश में दुष्ट प्राणी वा सर्प रहते हैं उन को शस्त्रों से निवृत्त करें ।। ८ ।।

कृणुष्वेत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ।।

राजपुरुषों को शत्रु कैसे बांधने चाहियें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ२ऽइभेन । तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ।। ९ ।।

पदार्थः—हे सेनापते ! आप (पाजः) बल को (कृणुष्व) कीजिये (प्रसितिम्) जाल के (न) समान (पृथ्वीम्) भूमि को (याहि) प्राप्त हूजिये जिससे आप (अस्ता) फेंकने वाले (असि) हैं इस से (इभेन) हाथी के साथ (अमवान्) बहुत दूतों वाले (राजेव) राजा के समान (तपिष्ठैः) अत्यन्त दुःखदायी शस्त्रों से (प्रसितिम्) फांसी को सिद्ध कर (रक्षसः) शत्रुओं को (द्रूणानः) मारते हुए (तृष्वीम्) शीघ्र (अनु) सन्मुख होकर (विध्य) ताड़ना कीजिये ।। ९ ।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । सेनापति को चाहिये कि राजा के समान पूर्ण वल से युक्त हो अनेक फांसियों से शत्रुओं को बांध उनको बाण आदि अस्त्रों से ताड़ना दे और बन्दीगृह में बन्द करके श्रेष्ठ पुरुषों को पाले ।। ९ ।।

तव भ्रमास इत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ।।

फिर वह सेनापति क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

तव भ्रमासऽआशुया पतन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः । तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसन्दितो विसृज विष्वगुल्काः ।। १० ।।

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी सेनापते ! (शोशुचानः) अत्यन्त पवित्र आचरण करने हारे आप जो (तव) आप के (भ्रमासः) भ्रमणशील वीर पुरुष जैसे (विष्वक्) सब ओर से (आशुया) शीघ्र चलने हारी (उल्काः) बिजुली की गतियां वैसे (पतन्ति) श्येनपक्षी के समान शत्रुओं के दल में तथा शत्रुओं में गिरते हैं उनको (धृषता)दृढ़ सेना से (अनु) अनुकूल (स्पृश) प्राप्त हूजिये और (असन्दितः) अखण्डित हुए (जुह्वा) घी के हवन का साधन लपट अग्नि के (तपूंषि) तेज के समान शत्रुओं के ऊपर सब ओर से बिजुली को (विसृज) छोड़िये और (पतङ्गान्) घोड़ों को सुन्दर शिक्षायुक्त कीजिये ।। १० ।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सेनापति और सेना के भृत्यों को चाहिये कि आपस में प्रीति के साथ बल बढ़ा वीर पुरुषों को हर्ष दे और सम्यक् युद्ध करा के

अग्नि आदि अस्त्रों और भुशुंडी आदि शस्त्रों से शत्रुओं के ऊपर बिजुली की वृष्टि करें जिस से शीघ्र विजय हो ॥ १० ॥

प्रतिस्पश इत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

प्रति स्पशो विसृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशोऽअस्या अदब्धः । यो नो दूरेऽअघशंसो योऽअन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरादधर्षीत् ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान शत्रुओं के जलाने वाले पुरुष ! (ते) आप का और (नः) हमारा (यः) जो (व्यथिः) व्यथा देने हारा (अघशंसः) पाप करने में प्रवृत्त चोर शत्रुजन (दूरे) दूर तथा (यः) जो (अन्ति) निकट है जैसे वह हम लोगों को (माकिः) नहीं (आ, दधर्षीत्) दुःख देवे उस शत्रु के (प्रति) प्रति आप (तूर्णितमः) शीघ्र दण्डदाता होके (स्पशः) बन्धनों को (विसृज) रचिये और (अस्याः) इस वर्त्तमान (विशः) प्रजा के (पायुः) रक्षक (अदब्धः) हिंसारहित (भव) हूजिये ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो समीप वा दूर रहने वाले प्रजाओं के दुःखदायी डाकू हैं उनको राजा आदि पुरुष साम, दाम, दण्ड और भेद से शीघ्र वश में लाके दया और न्याय से धर्मयुक्त प्रजाओं की निरन्तर रक्षा करें ॥ ११ ॥

उदग्न इत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्व न्यमित्राँ २ऽओषतात्तिग्महेते । यो नोऽअरातिंसमिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजधारी सभा के स्वामी ! आप राजधर्म के बीच (उत्तिष्ठ) उन्नति को प्राप्त हूजिये धर्मात्मा पुरुषों के (प्रति) लिये (आतनुष्व) सुखों का विस्तार कीजिये । हे (तिग्महेते) तीव्र दण्ड देने वाले राजपुरुष ! (अमित्रान्) धर्म के द्वेषी शत्रुओं को (न्योषतात्) निरन्तर जलाइये । हे (समिधान्) सम्यक् तेजधारी जन ! (यः) जो (नः) हमारे (अरातिम्) शत्रु को उत्साही (चक्रे) करता है (तम्) उसको (नीचा) नीची दशा में करके (शुष्कम्) सूखे (अतसम्) काष्ठ के (न) समान (धक्षि) जलाइये ॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । राजा आदि सभ्यजनों को चाहिये कि धर्म और विनय में समाहित होके जल के समान मित्रों को शीतल करें । अग्नि के समान शत्रुओं को जलावें । जो उदासीन होकर हमारे शत्रुओं को बढ़ावे उसको दृढ़ बन्धनों से बांध के निष्कण्टक राज्य करें ॥ १२ ॥

ऊर्ध्वो भवेत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यतिजगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर वह राजा किस प्रकार का हो इस का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने । अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून् । अग्नेष्ट्वा तेजसा सादयामि ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजस्विन् विद्वान् पुरुष ! जिसलिये आप (ऊर्ध्वः) उत्तम (भव) हूजिये धर्म के (प्रति) अनुकूल होके (विध्य) दुष्ट शत्रुओं को ताड़ना दीजिये (अस्मत्) हमारे (स्थिरा) निश्चल (दैव्यानि) विद्वानों के रचे पदार्थों को (आविः) प्रकट (कृणुष्व) कीजिये सुखों को (तनुहि) विस्तारिये (यातुजूनाम्) परपदार्थों को प्राप्त होने और वेग वाले शत्रुजनों के (जामिम्) भोजन के और (अजामिम्) अन्य व्यवहार के स्थान को (अव) अच्छे प्रकार विस्तारपूर्वक नष्ट कीजिये और (शत्रून्) शत्रुओं को (प्रमृणीहि) बल के साथ मारिये इसलिये मैं (त्वा) आपको (अग्नेः) अग्नि के (तेजसा) प्रकाश के (अधि) सम्मुख (सादयामि) स्थापन करता हूँ ॥ १३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि राज्य के ऐश्वर्य्य को पाके उत्तम गुण, कर्म और स्वभावों से युक्त होवे, प्रजाओं और दरिद्रों को निरन्तर सुख देवें । दुष्ट अधर्माचारी मनुष्यों को निरन्तर शिक्षा करें और सबसे उत्तम पुरुष को सभापति मानें ॥ १३ ॥

अग्निर्मूर्द्धेत्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह राजपुरुष कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम् । अपाꣳरेताꣳसि जिन्वति । इन्द्रस्य त्वौजसा सादयामि ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! जैसे (अयम्) यह (अग्निः) सूर्य्य (दिवः) प्रकाशयुक्त आकाश के बीच और (पृथिव्याः) भूमि का (मूर्द्धा) सब प्राणियों के शिर के समान उत्तम (ककुत्) सब से बड़ा (पतिः) सब पदार्थों का रक्षक (अपाम्) जलों के (वीर्याणि) सारों से प्राणियों को (जिन्वति) तृप्त करता है वैसे आप भी हूजिये । मैं (त्वा) आप को (इन्द्रस्य) सूर्य्य के (ओजसा) पराक्रम के साथ राज्य के लिये (सादयामि) स्थापना करता हूँ ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो मनुष्य सूर्य्य के समान गुण कर्म्म और स्वभाव वाला न्याय से प्रजा के पालन में तत्पर धर्मात्मा विद्वान् हो उस को राज्याधिकारी सब लोग मानें ॥ १४ ॥

भुवो यज्ञस्येत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षीत्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर;वह कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

भुवो॑ य॒ज्ञस्य॒ रज॑सश्च ने॒ता यत्रा॑ नि॒युद्भिः॒ सच॑से शि॒वाभिः॑ । दि॒वि मू॒र्द्धानं॑ दधिषे स्व॒र्षां जि॒ह्वाम॑ग्ने चकृषे हव्य॒वाह॑म् ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! (यत्र) जिस राज्य में आप जैसे (नियुद्भिः) वेग आदि गुणों के साथ वायु (रजसः) लोकों वा ऐश्वर्य्य का (नेता) चलाने हारा (दिवि) न्याय के प्रकाश में (मूर्द्धानम्) शिर को धारण करता है वैसे (यत्र) जहां (शिवाभिः) कल्याणकारक नीतियों के साथ (भुवः) अपनी पृथिवी के (यज्ञस्य) राजधर्म्म के पालन करने हारे हो के (सचसे) संयुक्त होता अच्छे पुरुषों से राज्य को (दधिषे) धारण और (हव्यवाहम्) देने योग्य विद्वानों की प्राप्ति का हेतु (स्वर्षाम्) सुखों का सेवन कराने हारी (जिह्वाम्) अच्छे विषयों की ग्राहक वाणी को (चकृषे) करते हो वहाँ सब सुख बढते हैं यह निश्चित जानिये ॥ १५ ॥

भावार्थः—जिस राज्य में राजा आदि सब राजपुरुष मंगलाचरण करने हारे धर्मात्मा हो के धर्मानुकूल प्रजाओं का पालन करें वहां विद्या और अच्छी शिक्षा से होने वाले सुख क्यों न बढ़ें ॥ १५ ॥

ध्रुवासीत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडार्ष्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह राजपत्नी कैसी होवे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ध्रु॒वासि॑ ध॒रुणास्तृ॑ता वि॒श्वक॑र्मणा । मा त्वा॑ समु॒द्रऽउद्व॑धी॒न्मा सु॑प॒र्णोऽव्य॑थमाना पृथि॒वीं दृ॑ꣳह ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे राजा की स्त्री ! जिस कारण (विश्वकर्मणा) सब धर्मयुक्त काम करने वाले अपने पति के साथ वर्त्तती हुई (आस्तृता) वस्त्र आभूषण और श्रेष्ठ गुणों से ढपी हुई (ध्रुवा) निश्चल (असि) है सो तू (धरुणा) विद्या और धर्म की धारणा करने हारी (अव्यथमाना) पीड़ा से रहित हुई (पृथिवीम्) अपनी राज्यभूमि को (दृंह) अच्छे प्रकार बढा (त्वा) तुझ को (समुद्रः) जार लोगों का व्यवहार (मा) मत (वधीत्) सतावे और (सुपर्णः) सुन्दर रक्षा किये अवयवों से युक्त तेरा पति(मा) नहीं मार ॥ १६ ॥

भावार्थः—जैसी राजनीति विद्या को राजा पढ़ा हो वैसी ही उसकी राणी भी पढ़ी होनी चाहिये सदैव दोनों परस्पर पतिव्रता स्त्रीव्रत हो के न्याय से पालन करें । व्यभिचार और काम की व्यथा से रहित होकर धर्मानुकूल पुत्रों को उत्पन्न करके स्त्रियों का स्त्री राणी और पुरुषों का पुरुष राजा न्याय करे ॥ १६ ॥

प्रजापतिष्ट्वेत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर राजा अपनी राणी को कैसे वर्त्तावे यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रजापतिष्ट्वा सादयत्वपां पृष्ठे समुद्रस्येमन् । व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं प्रथस्व पृथिव्यसि ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे विदुषि स्त्री ! जैसे (प्रजापतिः) प्रजा का स्वामी (समुद्रस्य) समुद्र के (अपाम्) जलों के (एमन्) प्राप्त होने के (पृष्ठे) ऊपर नौका के समान (व्यचस्वतीम्) बहुत विद्या की प्राप्ति और सत्कार से युक्त (प्रथस्वतीम्) प्रशंसित कीर्ति वाली (त्वा) तुझ को (सादयतु) स्थापन करे । जिस कारण तू (पृथिवी) भूमि के समान सुख देने वाली (असि) है इसलिये स्त्रियों के न्याय करने में (प्रथस्व) प्रसिद्ध हो वैसे तेरा पति पुरुषों का न्याय करे ॥ १७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । राजपुरुष आदि को चाहिये कि आप जिस-जिस राजकार्य में प्रवृत्त हों उस-उस कार्य में अपनी-अपनी स्त्रियों को भी स्थापन करें जो जो राजपुरुष जिन-जिन पुरुषों का न्याय करे उस-उस की स्त्री स्त्रियों का न्याय किया करें ॥ १७ ॥

भूरसीत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः । अग्निर्देवता । प्रस्तारपङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह राणी कैसी हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री । पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह पृथिवीं मा हिꣳसीः ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे राणी ! जिससे तू (भूः) भूमि के समान (असि) है इस कारण (पृथिवीम्) पृथिवी को (यच्छ) निरन्तर ग्रहण कर जिसलिये तू (विश्वधायाः) सब गृहाश्रम के और राजसम्बन्धी व्यवहारों और (विश्वस्य) सब (भुवनस्य) राज्य को (धर्त्री) धारण करने हारी (भूमिः) पृथिवी के समान (असि) है इसलिये (पृथिवीम्) पृथिवी को (दृꣳह) बढ़ा और जिस कारण तू (अदितिः) अखण्ड ऐश्वर्य्य वाले आकाश के समान क्षोभरहित (असि) है इसलिये (पृथिवीम्) भूमि को (मा) मत (हिंसीः) बिगाड़ ॥ १८ ॥

भावार्थः—जो राजकुल की स्त्री पृथिवी आदि के समान धीरज आदि गुणों से युक्त हो तो वे ही राज्य करने के योग्य होती हैं ॥ १८ ॥

विश्वस्मा इत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगतिजगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर वे स्त्री पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय । अग्निष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! जो (अग्निः) विज्ञानयुक्त तेरा पति (मह्या) बड़ी (स्वस्त्या) सुख प्राप्त कराने हारी त्रिया और (छर्दिषा) प्रकाशयुक्त (शन्तमेन) अत्यन्तसुखदायक कर्म के साथ (विश्वस्मै) सम्पूर्ण (प्राणाय) जीवन के हेतु प्राण (अपानाय) दुःखों की निवृत्ति (व्यानाय) अनेक प्रकार के उत्तम व्यवहारों की सिद्ध (उदानाय) उत्तम बल (प्रतिष्ठायै) सत्कार और (चरित्राय) धर्म का आचरण करने के लिये जिस (त्वा) तेरी (अभिपातु) सन्मुख होकर रक्षा करे सो तू (तया) उस (देवतया) दिव्यस्वरूप पति के साथ (अङ्गिरस्वत्) जैसे कार्य्य कारण का सम्बन्ध है वैसे (ध्रुवा) निश्चल हो के (सीद) प्रतिष्ठायुक्त हो ॥ १९ ॥

भावार्थः—पुरुषों को योग्य है कि अपनी अपनी स्त्रियों के सत्कार से सुख और व्यभिचार से रहित होके प्रीतिपूर्वक आचरण और उनकी रक्षा आदि निरन्तर करें और इसी प्रकार स्त्री लोग भी रहें। अपनी स्त्री को छोड़ अन्य स्त्री की इच्छा न पुरुष और न अपने पति को छोड़ दूसरे पुरुष का संग स्त्री करे। ऐसे ही आपस में प्रीतिपूर्वक ही दोनों सदा वर्त्तें ॥ १९ ॥

काण्डात्काण्डादित्यस्याऽग्निर्ऋषिः। पत्नी देवता। अनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह स्त्री कैसी हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

काण्डा॑त्काण्डात्प्र॒रोह॑न्ती॒ परु॑षः परुष॒स्परि॑। ए॒वा नो॑ दूर्वे॒ प्रत॑नु स॒हस्रे॑ण श॒तेन॑ च ॥ २० ॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! तू जैसे (सहस्रेण) असंख्यात (च) और (शतेन) बहुत प्रकार के साथ (काण्डात्काण्डात्) सब अवयवों और (परुषः परुषः) गांठ गांठ से (परि) सब ओर से (प्ररोहन्ती) अत्यन्त बढ़ती हुई (दूर्वे) दूर्वा घास होती है वैसे (एव) ही (नः) हम को पुत्र पौत्र और ऐश्वर्य से (प्रतनु) विस्तृत कर ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे दूर्वा ओषधि रोगों का नाश और सुखों को बढ़ाने हारी सुन्दर विस्तारयुक्त होती हुई बढ़ती है। वैसे ही विद्वान् स्त्री को चाहिये कि बहुत प्रकार से अपने कुल को बढ़ावे ॥ २० ॥

या शतेनेत्यस्याग्निर्ऋषिः। पत्नी देवता। निचृदनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह कैसी हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

या श॒तेन॑ प्रत॒नोषि॑ स॒हस्रे॑ण वि॒रोह॑सि। तस्या॑स्ते देवीष्टके वि॒धेम॑ ह॒विषा॑ व॒यम् ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे (इष्टके) ईंट के समान दृढ़ अवयवों से युक्त शुभ गुणों से शोभायमान (देवि) प्रकाशयुक्त स्त्री ! जैसे ईंट सैकड़ों संख्या में मकान आदि का विस्तार और हजारह से बहुत बढ़ा देती है वैसे (या) जो तू हम लोगों को (शतेन) सैकड़ों पुत्र पौत्रादि सम्पत्ति से

(प्रतनोषि) विस्तारयुक्त करती और (सहस्रेण) हजारह प्रकार के पदार्थों से (विरोहसि) विविध प्रकार बढाती है (तस्याः) उस (ते) तेरी (हविषा) देने योग्य पदार्थों से (वयम्) हम लोग (विधेम) सेवा करें ॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे सैकड़ों प्रकार से हजारह ईंटें घर रूप बन के सब प्राणियों को सुख देती हैं वैसे जो श्रेष्ठ स्त्री लोग पुत्र पौत्र ऐश्वर्य्य और भृत्य आदि से सब को आनन्द देवें उनका पुरुष लोग निरन्तर सत्कार करें क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष और स्त्रियों के संग के बिना शुभ गुणों से युक्त सन्तान कभी नहीं हो सकते और ऐसे सन्तानों के बिना माता पिता को सुख कब मिल सकता है ॥ २१ ॥

यास्त इत्यस्येन्द्राग्नी ऋषी। अग्निर्देवता। भुरिगनुष्टुप्छन्दः।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह स्त्री कैसी होवे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

यास्तेऽअग्ने सूर्य्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः। ताभिर्नोऽअद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजधारिणी पढ़ाने हारी विदुषी स्त्री ! (याः) जो (ते) तेरी रुचि है (ताभिः) उन (सर्वाभिः) सब रुचियों से युक्त (नः) हम को जैसे (रुचः) दीप्तियां (सूर्य्ये) सूर्य्य में (रश्मिभिः) किरणों से (दिवम्) प्रकाश को (आतन्वन्ति) अच्छे प्रकार विस्तारयुक्त करती हैं वैसे तू भी अच्छे प्रकार विस्तृत सुखयुक्त कर और (अद्य) आज (रुचे) रुचि कराने हारे (जनाय) प्रसिद्ध मनुष्य के लिये (नः) हम लोगों को प्रीतियुक्त (कृधि) कर ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे ब्रह्माण्ड में सूर्य्य की दीप्ति सब वस्तुओं को प्रकाशित कर रुचियुक्त करती हैं वैसे ही विदुषी श्रेष्ठ पतिव्रता स्त्रियां घर के सब कार्य्यों का प्रकाश करती हैं। जिस कुल में स्त्री और पुरुष आपस में प्रीतियुक्त हों वहां सब विषयों में कल्याण ही होता है ॥ २२ ॥

या वो देवा इत्यस्येन्द्राग्नी ऋषी। बृहस्पतिर्देवता। अनुष्टुप्छन्दः।
गान्धारः स्वरः ॥

अब स्त्री पुरुषों को विज्ञान की सिद्धि कैसे करनी चाहिये
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

या वो देवाः सूर्य्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः। इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृहस्पते ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे (देवाः) विद्वानो ! तुम सब लोग (याः) जो (वः) तुम्हारी (सूर्य्ये) सूर्य्य में (रुचः) रुचि और (याः) जो (गोषु) गौओं और (अश्वेषु) घोड़ों आदि में (रुचः)

प्रीतियों के समान प्रीति है (ताभिः) उन (सर्वाभिः) सब रुचियों से (नः) हमारे बीच (रुचम्) कामना (इन्द्राग्नी) बिजुली और सूर्य्यवत् अध्यापक और उपदेशक जैसे धारण करें वैसे (धत्त) धारण करो। हे (बृहस्पते) पक्षपात छोड़ के परीक्षा कराने हारे पूर्णविद्यायुक्त आप (नः) हमारी परीक्षा कीजिये ॥ २३ ॥

भावार्थः—जब तक मनुष्य लोगों की विद्वानों के संग ईश्वर उसकी रचना में रुचि और परीक्षा नहीं होती तब तक विज्ञान कभी नहीं बढ़ सकता ॥ २३ ॥

विराड्ज्योतिरित्यस्येन्द्राग्नी ऋषी। प्रजापतिर्देवता। निचृद्बृहतीछन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

स्त्री पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

वि॒राड् ज्योति॑रधारयत् स्व॒राड् ज्योति॑रधारयत्। प्र॒जाप॑तिष्ट्वा सादयतु पृ॒ष्ठे पृ॑थि॒व्या ज्योति॑ष्मतीम्। विश्व॑स्मै प्रा॒णाया॑पा॒नाय॑ व्या॒नाय॒ विश्वं॒ ज्योति॑र्यच्छ। अ॒ग्निष्टेऽधि॑पति॒स्तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वा सी॑द ॥ २४ ॥

पदार्थः—जो (विराट्) अनेक प्रकार की विद्याओं में प्रकाशमान स्त्री (ज्योतिः) विद्या की उन्नति को (अधारयत्) धारण करे करावे जो (स्वराट्) सब धर्म्मयुक्त व्यवहारों में शुद्धाचारी पुरुष (ज्योतिः) बिजुली आदि के प्रकाश को (अधारयत्) धारण करे करावे वे दोनों स्त्री पुरुष, सम्पूर्ण सुखों को प्राप्त होवें। हे स्त्रि ! जो (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी विज्ञानयुक्त (ते) तेरा (अधिपतिः) स्वामी है (तया) उस (देवतया) सुन्दर देवस्वरूप पति के साथ तू (अङ्गिरस्वत्) सूत्रात्मा वायु के समान (ध्रुवा) दृढ़ता से (सीद) हो। हे पुरुष ! जो अग्नि के समान तेजधारिणी तेरी रक्षा को करने हारी स्त्री है उस देवी के साथ तू प्राणों के समान प्रीतिपूर्वक निश्चय करके स्थित हो। हे स्त्रि ! (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक तेरा पति (पृथिव्याः) भूमि के (पृष्ठे) ऊपर (विश्वस्मै) सब (प्राणाय) सुख की चेष्टा के हेतु (अपानाय) दुःख हटाने के साधन (व्यानाय) सब सुन्दर गुण कर्म्म और स्वभावों के प्रचार के हेतु प्राणविद्या के लिये जिस (ज्योतिष्मतीम्) प्रशंसित विद्या के ज्ञान से युक्त (त्वा) तुझ को (सादयतु) उत्तम अधिकार पर स्थापित करे सो तू (विश्वम्) समग्र (ज्योतिः) विज्ञान को (यच्छ) ग्रहण कर और इस विज्ञान की प्राप्ति के लिये अपने पति को स्थिर कर ॥ २४ ॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष सत्संग और विद्या के अभ्यास से विद्युत् आदि पदार्थविद्या और प्रीति को नित्य बढ़ाते हैं वे इस संसार में सुख भोगते हैं। पति स्त्री का और स्त्री पति का सदा सत्कार करे इस प्रकार आपस में प्रीतिपूर्वक मिल के ही सुख भोगें ॥ २४ ॥

मधुश्चेत्यस्येन्द्राग्नी ऋषी। ऋतवो देवताः। पूर्वस्य भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

ये अग्नय इत्युत्तरस्य भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यम स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में वसन्त ऋतु का वर्णन किया है ॥

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतूऽअग्नेरन्तः श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽओषधयः कल्पन्ताम॒ग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । येऽअग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवीऽइमे वासन्तिकावृतूऽअभि कल्पमाना ऽइन्द्रमिव देवाऽअभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ २५ ॥

पदार्थः—जैसे (मम) मेरे (ज्यैष्ठचाय) ज्येष्ठ महीने में हुए व्यवहार वा मेरी श्रेष्ठता के लिये जो (अग्नेः) गरमी के निमित्त अग्नि से उत्पन्न होने वाले जिन के (अन्तःश्लेषः) भीतर बहुत प्रकार के वायु का सम्बन्ध (असि) होता है वे (मधुः) मधुरसुगन्धयुक्त चैत्र (च) और (माधवः) मधुर आदि गुण का निमित्त वैशाख (च) इन के सम्बन्धी पदार्थयुक्त (वासंतिकौ) वसन्त महीनों में हुए (ऋतु) सब को सुखप्राप्ति के साधन ऋतु सुख के लिये (कल्पेताम्) समर्थ होवे जिन चैत्र और वैशाख महीनों के आश्रय से (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (आपः) जल भी भोग में (कल्पन्ताम्) आनन्ददायक हों (पृथक्) भिन्न भिन्न (ओषधयः) जौ आदि वा सोमलता आदि ओषधि और (अग्नयः) बिजुली आदि अग्नि भी (कल्पन्ताम्) कार्य्यसाधक हों । हे (सव्रताः) निरन्तर वर्त्तमान सत्यभाषणादि व्रतों से युक्त (समनसः) विज्ञान वाले (देवाः) विद्वान् (ये) जो लोग (वासन्तिकौ) (ऋतू) वसन्तऋतु में हुए चैत्र वैशाख और पूर्वक्त से (अन्तरा) बीच में हुए (अग्नयः) अग्नि हैं उन को (अभिकल्पमानाः) सन्मुख होकर कार्य में युक्त करते हुए आप लोग (इन्द्रमिव) जैसे उत्तम ऐश्वर्य्य प्राप्त हों वैसे (अभिसंविशन्तु) सब ओर से प्रवेश करो जैसे (इमे) ये (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि (तया) उस (देवतया) परमपूज्य परमेश्वर रूप देवता के सामर्थ्य के साथ (अङ्गिरस्वत्) प्राण के समान (ध्रुवे) दृढ़ता से वर्त्तते हैं वैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष सदा संयुक्त (सीदतम्) स्थिर रहो ॥ २५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को चाहिये कि जिस वसन्त ऋतु में फल फूल उत्पन्न होता है और जिस में तीव्र प्रकाश रूखी पृथिवी जल मध्यम ओषधियाँ फल और फूलों से युक्त और अग्नि की ज्वाला भिन्न-भिन्न होती हैं उसको युक्तिपूर्वक सेवन कर पुरुषार्थ से सब सुखों को प्राप्त होओ जैसे विद्वान् लोग अत्यन्त प्रयत्न के साथ सब ऋतुओं में सुख के लिये सम्पत्ति को बढ़ाते हैं वसा तुम भी प्रयत्न करो ॥ २५ ॥

अषाढासीत्यस्य सविता ऋषिः । क्षत्रपतिर्देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह कैसी हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अषाढासि सहमाना सहस्वारातीः सहस्व पृतनायतः । सहस्रवीर्यासि सा मा जिन्व ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे पत्नी ! जो तू (अषाढा) शत्रु के असहने योग्य (असि) है तू (सहमाना) पति आदि का सहन करती हुई अपने के उपदेश का (सहस्व) सहन कर जो तू (सहस्रवीर्य्या) असंख्यात प्रकार पराक्रमों से युक्त (असि) है (सा) सो तू (पृतनायतः) अपने आप सेना से युद्ध की इच्छा करते हुए (अरातीः) शत्रुओं को (सहस्व) सहन कर और जैसे मैं तुझ को प्रसन्न रखता हूँ वैसे (मा) मुझ पति को (जिन्व) तृप्त किया कर ॥ २६ ॥

भावार्थः—जो बहुत काल तक ब्रह्मचर्य्याश्रम से सेवन की हुई अत्यन्त बलवान् जितेन्द्रिय वसन्त आदि ऋतुओं के पृथक्-पृथक् काम जानने, पति के अपराध क्षमा और शत्रुओं का निवारण करने वाली उत्तम पराक्रम से युक्त स्त्री अपने स्वामी पति को तृप्त करती है उसी को पति भी नित्य आनन्दित करता ही है ॥ २६ ॥

मधुवाता इत्यस्य गोतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

आगे के मन्त्र में वसन्त ऋतु के अन्य गुणों का वर्णन किया है ॥

मधु॒वाता॑ऽऋताय॒ते मधु॑ क्षरन्ति॒ सिन्ध॑वः । माध्वी॑र्नः स॒न्त्वोष॑धीः ॥२७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे वसन्त ऋतु में (नः) हम लोगों के (वातः) वायु (मधु) मधुरता के साथ (ऋतायते) जल के समान चलते हैं (सिन्धवः) नदियां वा समुद्र (मधु) कोमलतापूर्वक (क्षरन्ति) वर्षते हैं और (ओषधीः) ओषधियां (माध्वीः) मधुर रस के गुणों से युक्त (सन्तु) होवें वैसा प्रयत्न हम किया करें ॥ २७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब वसन्तु ऋतु आता है तब पुष्प आदि के सुगन्धों से युक्त वायु आदि पदार्थ होते हैं उस ऋतु में घूमना डोलना पथ्य होता है ऐसा निश्चित जानना चाहिये ॥ २७ ॥

मधुनक्तमित्यस्य गोतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

मधु॒नक्त॑मु॒तोषसो॒ मधु॑म॒त्पार्थि॑व॒ꣳ रजः॑ । मधु॒ द्यौर॑स्तु नः पि॒ता ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे वसन्त ऋतु में (नक्तम्) रात्रि (मधु) कोमलता से युक्त (उत) और (उषसः) प्रातःकाल से लेकर दिन मधुर (पार्थिवम्) पृथिवी का (रजः) द्वयणुक वा त्रसरेणु आदि (मधुमत्) मधुर गुणों से युक्त और (द्यौः) प्रकाश भी (मधु) मधुरतायुक्त (पिता) रक्षा करने हारे के समान समय (नः) हमारे लिये (अस्तु) होवे वैसे युक्ति से उस वसन्त ऋतु का सेवन तुम भी किया करो ॥ २८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब वसन्त ऋतु आता है तब पक्षी भी कोमल मधुर मधुर शब्द बोलते और अन्य सब प्राणी आनन्दित होते हैं ॥ २८ ॥

मधुमानित्यस्य गोतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

अब वसन्त ऋतु में मनुष्यों को कैसा आचरण करना चाहिये
इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ऽअस्तु सूर्य्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! जैसे वसन्त ऋतु में (नः) हमारे लिये (वनस्पतिः) पीपल आदि वनस्पति (मधुमान्) प्रशंसित कोमल गुणों वाले और (सूर्य्यः) सूर्य्य भी (मधुमान्) प्रशंसित कोमलतायुक्त (अस्तु) होवे और (नः) हमारे लिये (गावः) गौओं के समान (माध्वीः) कोमल गुणों वाली किरणें (भवन्तु) हों वैसा ही उपदेश करो ॥ २९ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग वसन्त ऋतु को प्राप्त होकर जिस प्रकार के पदार्थों के होम से वनस्पति आदि कोमल गुणयुक्त हों ऐसे यज्ञ का अनुष्ठान करो और इस प्रकार वसन्त ऋतु के सुख को सब जने तुम लोग प्राप्त होओ ॥ २९ ॥

अपामित्यस्य गोतम ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आर्षीपङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अपां गम्भन्त्सीद मा त्वा सूर्य्योऽभिताप्सीन्माग्निर्वैश्वानरः । अच्छिन्नपत्राः प्रजाऽअनुवीक्षस्वानु त्वा दिव्या वृष्टिः सचताम् ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! तू वसन्त ऋतु में (अपाम्) जलों के (गम्भन्) आधारकर्त्ता मेघ में (सीद) स्थिर हो जिस से (सूर्य्यः) सूर्य्य (त्वा) तुझ को (मा) न (अभिताप्सीत्) तपावे (वैश्वानरः) सब मनुष्यों में प्रकाशमान (अग्निः) अग्नि बिजुली (त्वा) तुझ को (मा) न (अभिताप्सीत्) तप्त करे (अच्छिन्नपत्राः) सुन्दर पूर्ण अवयवों वाली (प्रजाः) प्रजा (अनु त्वा) तेरे अनुकूल और (दिव्या) शुद्ध गुणों से युक्त (वृष्टि) वर्षा (सचताम्) प्राप्त होवे वैसे (अनुवीक्षस्व) अनुकूलता से विशेष करके विचार कर ॥ ३० ॥

भावार्थः—मनुष्य वसन्त और ग्रीष्म ऋतु के जलाशयस्थ शीतल स्थान का सेवन करें जिस से गर्मी से दुःखित न हों और जिस यज्ञ से वर्षा भी ठीक-ठीक हो और प्रजा आनन्दित हो उसका सेवन करो ॥३० ॥

त्रीन्त्समुद्रानित्यस्य गोतम ऋषिः । वरुणो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को उस वसन्त में सुखप्राप्ति के लिये क्या करना चाहिये
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्रीन्त्स॑मु॒द्रान्त्सम॑सृपत् स्व॒र्गान॒पां पति॑र्वृष॒भऽइष्ट॑कानाम् । पुरी॑षं॒ वसा॑नः सुकृ॒तस्य॑ लो॒के तत्र॑ गच्छ॒ यत्र॒ पूर्वे॒ परे॑ताः ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! जैसे (अपाम्) प्राणों का (पतिः) रक्षक (वृषभः) वर्षा का हेतु (पुरीषम्) पूर्ण सुखकारक जल को (वसानः) धारण करता हुआ सूर्य्य (इष्टकानाम्) कामनाओं की प्राप्ति के हेतु पदार्थों के आधाररूप (त्रीन्) ऊपर नीचे और मध्य में रहने वाले तीन प्रकार के (समुद्रान्) सब पदार्थों के स्थान भूत भविष्यत् और वर्त्तमान (स्वर्गान्) सुख प्राप्त कराने हारे लोकों को (समसृपत्) प्राप्त होता है वैसे आप भी प्राप्त हूजिये (यत्र) जिस धर्मयुक्त वसन्त के मार्ग में (सुकृतस्य) सुन्दर धर्म करने हारे पुरुष के (लोके) देखने योग्य स्थान वा मार्ग में (पूर्वे) प्राचीन लोग (परेताः) सुख को प्राप्त हुए (तत्र) उसी वसन्त के सेवनरूप मार्ग में आप भी (गच्छ) चलिये ॥ ३१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि धर्मात्माओं के मार्ग से चलते हुए शारीर, वाचिक और मानस तीनों प्रकार के सुखों को प्राप्त होवें और जिस में कामना पूरी हो वैसा प्रयत्न करें। जैसे वसन्त आदि ऋतु अपने क्रम से वर्त्तते हुए अपने-अपने चिह्न प्राप्त करते हैं वैसे ऋतुओं के अनुकूल व्यवहार के आनन्द को प्राप्त होवें ॥ ३१ ॥

मही द्यौरित्यस्य गोतम ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ देवते । निचृद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

माता पिता अपने सन्तानों को कैसी शिक्षा करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

म॒ही द्यौः पृ॑थि॒वी च॑ नऽइ॒मं य॒ज्ञं मि॑मिक्षताम् । पि॒पृ॒तां नो॒ भरी॑मभिः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे माता पिता ! जैसे (मही) बड़ा (द्यौः) सूर्य्यलोक (च) और (पृथिवी) भूमि सब संसार को सींचते और पालन करते हैं वैसे तुम दोनों (नः) हमारे (इमम्) इस (यज्ञम्) सेवने योग्य विद्याग्रहणरूप व्यवहार को (मिमिक्षताम्) सेचन अर्थात् पूर्ण होने की इच्छा करो और (भरीमभिः) धारण पोषण आदि कर्मों से (नः) हमारा (पिपृताम्) पालन करो ॥ ३२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वसन्त ऋतु में पृथिवी और सूर्य्य सब संसार का धारण प्रकाश और पालन करते हैं वैसे माता पिता को चाहिये कि अपने सन्तानों के लिये वसन्तादि ऋतुओं में अन्न विद्यादान और अच्छी शिक्षा करके पूर्ण विद्वान् पुरुषार्थी करें ॥ ३२ ॥

विष्णोः कर्माणीत्यस्य गोतम ऋषिः । विष्णुर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

विद्वानों के तुल्य अन्य मनुष्यों को आचरण करना चाहिये
इसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा
॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य्य की इच्छा करने हारे जीव का (युज्यः) उपासना करने योग्य (सखा) मित्र के समान वर्त्तमान है (यतः) जिस के प्रताप से यह जीव (विष्णोः) व्यापक ईश्वर के (कर्माणि) जगत् की रचना पालन प्रलय करने और न्याय आदि कर्मों और (व्रतानि) सत्यभाषणादि नियमों को (पस्पशे) स्पर्श करता है इसलिये इस परमात्मा के इन कर्मों और व्रतों को तुम लोग भी (पश्यत) देखो धारण करो ॥ ३३ ॥

भावार्थः—जैसे परमेश्वर का मित्र उपासक धर्मात्मा विद्वान् पुरुष परमात्मा के गुण कर्म और स्वभावों के अनुसार सृष्टि के क्रमों के अनुकूल आचरण करे और जाने वैसे ही अन्य मनुष्य करें और जानें ॥ ३३ ॥

ध्रुवासीत्यस्य गोतम ऋषिः। जातवेदा देवताः। भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः।
धैवतः स्वरः ॥

विद्वान् पुरुषों के समान विदुषी स्त्रियां भी उपदेश करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

ध्रुवासि धरुणेतो जज्ञे प्रथममेभ्यो योनिभ्योऽअधि जातवेदाः। स गायत्र्या त्रिष्टुभाऽनुष्टुभा च देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! जैसे तू (धरुणा) शुभगुणों का धारण करने हारी (ध्रुवा) स्थिर (असि) है जैसे (एभ्यः) इन (योनिभ्यः) कारणो से (सः) वह (जातवेदाः) प्रसिद्ध पदार्थों में विद्यमान वायु (प्रथमम्) पहिले (अधिजज्ञे) अधिकता से प्रकट होता है वैसे (इतः) इस कर्म के अनुष्ठान से सर्वोपरि प्रसिद्ध हूजिये जैसे तेरा पति (गायत्र्या) गायत्री (त्रिष्टुभा) त्रिष्टुप् (च) और (अनुष्टुभा) अनुष्टुप् मन्त्र से सिद्ध हुई विद्या से (प्रजानन्) बुद्धिमान् होकर (देवेभ्यः) अच्छे गुण वा विद्वानों से (हव्यम्) देने लेने योग्य विज्ञान (वहतु) प्राप्त होवे वैसे इस विद्या से बुद्धिमती हो के आप स्त्री लोगों से ब्रह्मचारिणी कन्या विज्ञान को प्राप्त होवें ॥ ३४ ॥

भावार्थः—मनुष्य जगत् में ईश्वर की सृष्टि के कामों के निमित्तों को जान विद्वान् होकर जैसे पुरुषों को शास्त्रों का उपदेश करते हैं वैसे ही स्त्रियों को भी चाहिये कि इन सृष्टिक्रम के निमित्तों को जान के स्त्रियों को वेदार्थसारोपदेशों को करें ॥ ३४ ॥

इषे राय इत्यस्य गोतम ऋषिः। जातवेदा देवताः। निचृद्बृहती छन्दः।
मध्यमः स्वरः ॥

अब स्त्री पुरुष विवाह करके कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इषे राये रमस्व सहसे द्युम्नऽऊर्जेऽअपत्याय । सम्राडसि स्वराडसि सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावताम् ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे पुरुष ! जो तू (सम्राट्) विद्यादि शुभगुणों से स्वयं प्रकाशमान (असि) है। हे स्त्रि ! जो तू (स्वराट्) अपने आप विज्ञान सत्याचार से शोभायमान (असि) है सो तुम दोनों (इषे) विज्ञान (राये) धन (सहसे) बल (द्युम्ने) यश और अन्न (ऊर्जे) पराक्रम और (अपत्याय) सन्तानों की प्राप्ति के लिये (रमस्व) यत्न करो तथा (उत्सौ) कूपोदक के समान कोमलता को प्राप्त होकर (सारस्वतौ) वेदवाणी के उपदेश में कुशल होके तुम दोनों स्त्री पुरुष इन स्वशरीर और अन्नादि पदार्थों की (प्रावताम्) रक्षा आदि करो यह (त्वा) तुम को उपदेश देता हूँ ॥ ३५ ॥

भावार्थः—विवाह करके स्त्री पुरुष दोनों आपस में प्रीति के साथ विद्वान् होकर पुरुषार्थ से धनवान् श्रेष्ठगुणों से युक्त होके एक दूसरे की रक्षा करते हुए धर्म्मानुकूलता से वर्त्त के सन्तानों को उत्पन्न कर इस ससार में नित्य क्रीड़ा करें ॥ ३५ ॥

अग्ने युक्ष्वेत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब शत्रुओं को कैसे जीतना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्ति मन्यवे ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे (देव) श्रेष्ठविद्या वाले (अग्ने) तेजस्वी विद्वन् ! (ये) जो (तव) आपके (साधवः) अभीष्ट साधने वाले (अश्वासः) शिक्षित घोड़े (मन्यवे) शत्रुओं के ऊपर क्रोध के लिये (अरम्) सामर्थ्य के साथ (वहन्ति) रथ आदि यानों को पहुँचाते हैं उन को (हि) निश्चय कर के (युक्ष्य) संयुक्त कीजिये ॥ ३६ ॥

भावार्थः—राजादि मनुष्यों को चाहिये कि वसन्त ऋतु में पहिले घोड़ों को शिक्षा दे और रथियों को रथों पर नियुक्त कर के शत्रुओं के जीतने के लिये यात्रा करें ॥ ३६ ॥

युक्ष्वा हीत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब राजपुरुषों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

युक्ष्वा हि देवहूतमाँ२ऽअश्वाँ२ऽअग्ने रथीरिव । नि होता पूर्व्यः सदः ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! (पूर्व्यः) पूर्व विद्वानों से शिक्षा को प्राप्त (होता) दानशील आप (देवहूतमान्) विद्वानों से स्पर्द्धा वा शिक्षा किये (अश्वान्) घोड़ों को (रथीरिव) शत्रुओं के साथ बहुत रथादि सेना अंगयुक्त योद्धा के समान (युक्ष्व) युक्त कीजिये (हि) निश्चय करके न्यायासन पर (निषदः) निरन्तर स्थित हूजिये ॥ ३७ ॥

भावार्थः—सेनापति आदि राजपुरुषों को चाहिये कि बड़े सेना के अङ्गयुक्त रथ वाले के समान घोड़े आदि सेना के अवयवों को कार्यों में संयुक्त करें और सभापति आदि को चाहिये कि न्यायासन पर बैठ कर धर्मयुक्त न्याय किया करें ॥ ३७ ॥

सम्यक् स्रवन्तीत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसे होके वाणी धारण करनी चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सम्यक स्रवन्ति सरितो न धेनाऽअन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः । घृतस्य धाराऽअभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्येऽअग्नेः ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (अग्नेः) बिजुली के (मध्ये) बीच में वर्त्तमान (हिरण्ययः) तेजो भाग के समान तेजस्वी कीर्त्ति चाहने और विद्या की इच्छा रखने वाला मैं जो (घृतस्य) जल की (वेतसः) वेग वाली (धाराः) प्रवाहरूप (सरितः) नदियों के (न) समान (अन्तः) भीतर (हृदा) अन्तःकरण के (मनसा) विज्ञानरूप वाले चित्त से (पूयमानाः) पवित्र हुई (धेनाः) वाणी (सम्यक्) अच्छे प्रकार (स्रवन्ति) चलती हैं उन को (अभिचाकशीमि) सन्मुख होकर सब के लिये शीघ्र प्रकाशित करता हूं वैसे तुम लोग भी इन वाणियों को प्राप्त होओ ॥ ३८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि जैसे अधिक वा कम चलती शुद्ध हुई नदियां समुद्र को प्राप्त होकर स्थिर होती हैं वैसे ही विद्या शिक्षा और धर्म से पवित्र हुई निश्चल वाणी को प्राप्त होकर अन्यों को प्राप्त करावें ॥ ३८ ॥

ऋचे त्वेत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्बृहती छन्दः मध्यमः स्वरः ॥

विद्वानों से अन्य मनुष्यों को भी ज्ञान लेना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

ऋचे त्वा रुचे त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा । अभूदिदं विश्वस्य भुवनस्य वाजिनमग्नेर्वैश्वानरस्य च ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! जिस तुझ को (विश्वस्य) समस्त (भुवनस्य) संसार के सब पदार्थों (च) और (वैश्वानरस्य) संपूर्ण मनुष्यों में शोभायमान (अग्ने) बिजुलीरूप (वाजिनम्) ज्ञानी लोगों का अवयवरूप (इदम्) यह विज्ञान (अभूत्) प्रसिद्ध हुआ है उस (ऋचे) स्तुति के लिये (त्वा) तुझ को (रुचे) प्रीति के वास्ते (त्वा) तुझ को (भासे) विज्ञान की प्राप्ति के अर्थ (त्वा) तुझ को और (ज्योतिषे) न्याय के प्रकाश के लिये भी (त्वा) तुझ को हम लोग आश्रय करते हैं ॥ ३९ ॥

भावार्थः— जिस मनुष्य को जगत् के पदार्थों का यथार्थ बोध होवे उसी के सेवन से सब मनुष्य पदार्थविद्या को प्राप्त होवें ॥ ३९ ॥

अग्निर्ज्योतिषेत्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्निर्ज्योतिषा ज्योतिष्मान् रुक्मो वर्चसा वर्चस्वान् । सहस्रदाऽअसि सहस्राय त्वा ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! जो आप (ज्योतिषा) विद्या के प्रकाश से (अग्निः) अग्नि के तुल्य (ज्योतिष्मान्) प्रशंसित प्रकाशयुक्त (वर्चसा) अपने तेज से (वर्चस्वान्) ज्ञान देने वाले और (रुक्मः) जैसे सुवर्ण सुख देवे वैसे असंख्य सुख के देने वाले (असि) हैं उन (त्वा) आप को (सहस्राय) अतुल विज्ञान की प्राप्ति के लिये हम लोग सत्कार करें ॥ ४० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जो अग्नि और सूर्य्य के समान विद्या से प्रकाशमान विद्वान् पुरुष हों उन से विद्या पढ़ के पूर्ण विद्या के ग्राहक होवें ॥ ४० ॥

आदित्यं गर्भमित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वे विद्वान् स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

आदित्यं गर्भं पयसा समङ्ग्धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम् । परिवृङ्ग्धि हरसा माभि मंस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! आप जैसे बिजुली (पयसा) जल से (सहस्रस्य) असंख्य पदार्थों की (प्रतिमाम्) परिमाण करने हारे सूर्य के समान निश्चय करने हारी बुद्धि और (विश्वरूपम्) सब रूप विषय को दिखाने हारे (गर्भम्) स्तुति के योग्य (आदित्यम्) सूर्य्य को धारण करती है वैसे अन्तःकरण को (समङ्ग्धि) अच्छे प्रकार शोधिये (हरसा) प्रज्वलित तेज से रोगों को (परि) सब ओर से (वृङ्ग्धि) हटाइये और (चीयमानः) वृद्धि को प्राप्त हो के (शतायुषम्) सौ वर्ष की अवस्था वाले सन्तान को (कृणुहि) कीजिये और कभी (मा) मत (अभिमंस्थाः) अभिमान कीजिये ॥ ४१ ॥

भावार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! तुम लोग सुगन्धित पदार्थों के होम से सूर्य्य के प्रकाश जल और वायु को शुद्ध कर और रोग रहित होकर सौ वर्ष जीने वाले संतानों को उत्पन्न करो, जैसे विद्युत् अग्नि से बनाये हुए सूर्य्य से रूप वाले पदार्थों का दर्शन और परिमाण होता है वैसे विद्या वाले सन्तान सुख दिखाने हारे होते हैं इस से कभी अभिमानी होके विषयासक्ति से विद्या और आयु का विनाश मत किया करो ॥ ४१ ॥

वातस्य जूतिमित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर विद्वान् पुरुष को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

वातस्य जूतिं वरुणस्य नाभिमश्वं जज्ञानꣳ सरिरस्य मध्ये । शिशुं नदीनाꣳ हरिमद्रिबुध्नमग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजस्विन् विद्वान् ! आप (परमे व्योमन्) सर्वव्याप्त उत्तम आकाश में (वातस्य) वायु के (मध्ये) मध्य में (जूतिम्) वेगरूप (अश्वम्) अश्व को (सरिरस्य) जलमय (वरुणस्य) उत्तम समुद्र के (नाभिम्) बन्धन को और (नदीनाम्) नदियों के प्रभाव से (जज्ञानम्) प्रकट हुए (शिशुम्) बालक के तुल्य वर्त्तमान (हरिम्) नील वर्णयुक्त (अद्रिबुध्नम्) सूक्ष्म मेघ को (मा) मत (हिंसीः) नष्ट कीजिये ॥ ४२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि प्रमाद को छोड़ के आकाश में वर्त्तमान वायु के वेग और वर्षा के प्रबन्धरूप मेघ का विनाश न करके अपनी अपनी अवस्था को बढ़ावें ॥ ४२ ॥

अजस्रमित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ।

फिर वह विद्वान् क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अजस्रमिन्दुमरुषं भुरण्युमग्निमीडे पूर्वचित्तिं नमोभिः । स पर्वभिर्ऋतुशः कल्पमानो गां मा हिꣳसीरदितिं विराजम् ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! जैसे मैं (पर्वभिः) पूर्ण साधन युक्त (नमोभिः) अन्नों के साथ वर्त्तमान (इन्दुम्) जलरूप (अरुषम्) घोड़े के सदृश (भुरण्युम्) पोषण करने वाली (पूर्वचितिम्) प्रथम निर्मित (अग्निम्) बिजुली को (अजस्रम्) निरन्तर (ईडे) अधिकता से खोजता हूं उस को (ऋतुशः) प्रति ऋतु में (कल्पमानः) समर्थ होके करता हुआ (अदितिम्) अखण्डित (विराजम्) विविध प्रकार के पदार्थों से शोभायमान (गाम्) पृथिवी को नष्ट नहीं करता हूं वैसे ही (सः) सो आप इस अग्नि और इस पृथिवी को (मा) मत (हिंसीः) नष्ट कीजिये ॥ ४६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि ऋतुओं के अनुकूल क्रिया से अग्नि जल और अन्न का सेवन करके राज्य और पृथिवी की सदैव रक्षा करें जिस से सब सुख प्राप्त होवें ॥ ४३ ॥

वरूत्रीमित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर उस विद्वान् को क्या नहीं करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

वरूत्रीं त्वष्टुर्वरुणस्य नाभिमविं जज्ञानाᳪरजसः परस्मात् । महीᳪ साहस्रीमसुरस्य मायामग्ने मा हिᳪसीः परमे व्योमन् ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! आप (त्वष्टुः) छेदनकर्त्ता सूर्य्य के (वरूत्रीम्) ग्रहण करने योग्य (वरुणस्य) जल की (नाभिम्) रोकने हारी (परस्मात्) श्रेष्ठ (रजसः) लोक से (जज्ञानाम्) उत्पन्न हुई (असुरस्य) मेघ की (मायाम्) जताने वाली बिजुली को और (साहस्रीम्) असंख्य भूगोलयुक्त बहुत फल देने हारी (अविम्) रक्षा आदि का निमित्त (परमे) सब से उत्तम (व्योमन्) आकाश के समान व्याप्त जगदीश्वर में वर्त्तमान (महीम्) विस्तारयुक्त पृथिवी को (मा) मत (हिंसीः) नष्ट कीजिये ॥ ४४ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि जो यह पृथिवी उत्तम कारण से उत्पन्न हुई सूर्य्य जिसका आकर्षणकर्त्ता जल का आधार मेघ का निमित्त असख्य सुख देनेहारी परमेश्वर ने रची है उसको गुण कर्म और स्वभाव से जानके सुख के लिये उपयुक्त करें ॥ ४४ ॥

यो अग्निरित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर इस विद्वान् को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

योऽअग्निरग्नेरध्यजायत शोकात्पृथिव्याऽउत वा दिवस्परि । येन प्रजा विश्वकर्मा जजान तमग्ने हेडः परि ते वृणक्तु ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् जन ! (यः) जो (पृथिव्याः) पृथिवी के (शोकात्) सुखाने हारे अग्नि (उत वा) अथवा (दिवः) सूर्य्य से (अग्नेः) बिजुलीरूप अग्नि से (अग्निः) प्रत्यक्ष अग्नि (अध्यजायत) उत्पन्न होता है (येन) जिस से (विश्वकर्म्मा) सब कर्मों का आधार ईश्वर (प्रजाः) प्रजाओं को (परि) सब ओर से (जजान) रचता है (तम्) उस अग्नि को (ते) तेरा (हेडः) क्रोध (परिवृणक्तु) सब प्रकार से छेदन करे ॥ ४५ ॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! तुम लोग जो अग्नि पृथिवी को फोड़ के और जो सूर्य्य के प्रकाश से बिजुली निकलती है उस विघ्नकारी अग्नि से सब प्राणियों को रक्षित रक्खो और जिस अग्नि से ईश्वर सब की रक्षा करता है उस अग्नि की विद्या जानो ॥ ४५ ॥

चित्रं देवानामित्यस्य विरूप ऋषिः । सूर्यो देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आ प्रा द्यावा पृथिवीऽअन्तरिक्षᳪ सूर्य्यऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग जो जगदीश्वर (देवानाम्) पृथिवी आदि दिव्य पदार्थों के बीच (चित्रम्) आश्चर्य्यरूप (अनीकम्) सेना के समान किरणों से युक्त (मित्रस्य) प्राण (वरुणस्य) उदान और (अग्नेः) प्रसिद्ध अग्नि के (चक्षुः) दिखाने वाले (सूर्य्यः) सूर्य्य के

समान (उदगात्) उदय को प्राप्त हो रहा है उस के समान (जगतः) चेतन (च) और (तस्थुषः) जड़ जगत् का (आत्मा) अन्तर्य्यामी हो के (द्यावापृथिवी) प्रकाश अप्रकाशरूप जगत् और (अन्तरिक्षम्) आकाश को (आ) अच्छे प्रकार (अप्राः) व्याप्त हो रहा है उसी जगत् के रचने पालन करने और संहार प्रलय करने हारे व्यापक ब्रह्म की निरन्तर उपासना किया करो ॥ ४६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यह जगत् ऐसा नहीं कि जिस का कर्त्ता अधिष्ठाता वा ईश्वर कोई न होवे, जो ईश्वर सब का अन्तर्य्यामी सब जीवों के पाप पुण्यों के फलों की व्यवस्था करने हारा और अनन्त ज्ञान का प्रकाश करने हारा है उसी की उपासना से धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष के फलों को सब मनुष्य प्राप्त होवें ॥ ४६ ॥

इमं मेत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। विराड् ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इमं मा हिंꣳसीर्द्विपादं पशुꣳ सहस्राक्षो मेधाय चीयमानः। मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद। मयुं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) मनुष्य के जन्म को प्राप्त हुए (मेधाय) सुख की प्राप्ति के लिये (चीयमानः) बढ़े हुए (सहस्राक्षः) हज़ारह प्रकार की दृष्टि वाले राजन्! तू (इमम्) इस (द्विपादम्) दो पग वाले मनुष्यादि और (मेधम्) पवित्रकारक फलप्रद (मयुम्) जंगली (पशुम्) गवादि पशु जीव को (मा) मत (हिंसीः) मारा कर उस (पशुम्) पशु की (जुषस्व) सेवा कर (तेन) उस पशु से (चिन्वानः) बढ़ता हुआ तू (तन्वः) शरीर में (निषीद) निरन्तर स्थिर हो यह (ते) तेरे से (शुक्) शोक (मयुम्) शस्यादिनाशक जंगली पशु को (ऋच्छतु) प्राप्त होवे (ते) तेरे (यम्) जिस शत्रु से हम लोग (द्विष्मः) द्वेष करें (तम्) उस को (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥ ४७ ॥

भावार्थः—कोई भी मनुष्य सब के उपकार करने हारे पशुओं को कभी न मारे किन्तु इन की अच्छे प्रकार रक्षा कर और इन से उपकार लेके सब मनुष्यों को आनन्द देवे। जिन जंगली पशुओं से ग्राम के पशु खेती और मनुष्यों की हानि हो उनको राजपुरुष मारें और बन्धन करें ॥ ४७ ॥

इमं मेत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

फिर यह मनुष्य क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इमं मा हिंꣳसीरेकशफं पशुं कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु । गौरमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद । गौरं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! तू (वाजिनेषु) संग्राम के कामों में (इमम्) इस (एकशफम्) एकखुरयुक्त (कनिक्रदम्) शीघ्र विकल व्यथा को प्राप्त हुए (वाजिनम्) वेगवाले (पशुम्) देखने योग्य घोड़े आदि पशु को (मा) (हिंसीः) मत मार। मैं ईश्वर (ते) तेरे लिये (यम्) जिस (आरण्यम्) जङ्गली (गौरम्) गौरपशु की (दिशामि) शिक्षा करता हूँ (तेन) उस के रक्षण से (चिन्वानः) वृद्धि को प्राप्त हुआ (तन्वः) शरीर में (निषीद) निरन्तर स्थिर हो (ते) तेरे से (गौरम्) श्वेत वर्ण वाले पशु के प्रति (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे और (यम्) जिस शत्रु को हम लोग (द्विष्मः) द्वेष करें (तम्) उस को (ते) तुझ से (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥ ४८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि एक खुर वाले घोड़े आदि पशुओं और उपकारक वन के पशुओं को भी कभी न मारें जिन के मारने से जगत् की हानि और न मारने से सब का उपकार होता है उन का सदैव पालन पोषण करें और जो हानिकारक पशु हों उनको मारें ॥ ४८ ॥

इमꣳ साहस्रमित्यस्य विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । कृतिश्छन्दः ।
निषादः स्वरः ।

फिर मनुष्यों को कौन पशु न मारने और कौन मारने चाहिये
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इमꣳ साहस्रꣳ शतधारमुत्सं व्यच्यमानꣳ सरिरस्य मध्ये । घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् । गवयमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद । गवयं ते शुगृच्छतु । यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) दया को प्राप्त हुए परोपकारक राजन् ! तू (जनाय) मनुष्यादि प्राणी के लिये (इमम्) इस (साहस्रम्) असंख्य सुखों का साधन (शतधारम्) असंख्य दूध की धाराओं के निमित्त (व्यच्यमानम्) अनेक प्रकार से पालन के योग्य (उत्सम्) कुए के समान रक्षा करने हारे वीर्य्यसेचक बैल और (घृतम्) घी को (दुहानाम्) पूर्ण करती हुई (अदितिम्) नहीं मारने योग्य गौ को (मा हिंसीः) मत मार और (ते) तेरे राज्य में जिस (आरण्यम्) वन में रहने वाले (गवयम्) गौ के समान नीलगाय से खेती की हानि होती हो तो उस को (अनुदिशामि) उपदेश करता हूँ (तेन) उस के मारने से सुरक्षित अन्न से (परमे) उत्कृष्ट (व्योमन्) सर्वत्र व्यापक परमात्मा और (सरिरस्य) विस्तृत व्यापक आकाश के (मध्ये) मध्य में (चिन्वानः) वृद्धि को

प्राप्त हुआ तू (तन्वः) शरीर मध्य में (निषीद) निवास कर (ते) तेरा (शुक्) शोक (तम्) उस (गवयम्) रोझ को (ऋच्छतु) प्राप्त होवे और (यम्) जिस (ते) तेरे शत्रु का (द्विष्मः) हम लोग द्वेष करें उस को भी (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥ ४९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजपुरुषो ! तुम लोगों को चाहिये कि जिन बैल आदि पशुओं के प्रभाव से खेती आदि काम, जिन गौ आदि से दूध घी आदि उत्तम पदार्थ होते हैं कि जिन के दूध आदि से प्रजा की रक्षा होती है उन को कभी मत मारो और जो जन इन उपकारक पशुओं को मारें उनको राजादि न्यायाधीश अत्यन्त दण्ड देवें और जो जंगल में रहने वाले नीलगाय आदि प्रजा की हानि करें वे मारने योग्य हैं ॥ ४९ ॥

इममूर्णायुमित्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। कृतिश्छन्दः।
निषादः स्वरः ॥

फिर किन पशुओं को न मारना और किन को मारना चाहिये
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इममूर्णायुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदाम्। त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रमग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन्। उष्ट्रमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद। उष्ट्रं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ५० ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्या को प्राप्त हुए राजन् ! तू (वरुणस्य) प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ सुख के (नाभिम्) संयोग करने हारे (इमम्) इस (द्विपदाम्) दो पगवाले मनुष्य पक्षी आदि (चतुष्पदाम्) चार पगवाले (पशूनाम्) गाय आदि पशुओं की (त्वचम्) चमड़े से ढांकने वाले और (त्वष्टुः) सुखप्रकाशक ईश्वर की (प्रजानाम्) प्रजाओं के (प्रथमम्) आदि (जनित्रम्) उत्पत्ति के निमित्त (परमे) उत्तम (व्योमन्) आकाश में वर्त्तमान (ऊर्णायुम्) भेड़ आदि को (मा हिंसीः) मत मार (ते) तेरे लिये मैं ईश्वर (यम्) जिस (आरण्यम्) बनैले (उष्ट्रम्) हिंसक ऊंट को (अनुदिशामि) बतलाता हूँ (तेन) उस से सुरक्षित अन्नादि से (चिन्वानः) बढ़ता हुआ (तन्वः) शरीर में (निषीद) निवास कर (ते) तेरा (शुक्) शोक उस जंगली ऊंट को (ऋच्छतु) प्राप्त हो और जिस द्वेषीजन से हम लोग (द्विष्मः) अप्रीति करें (तम्) उस को (ते) तेरा (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥ ५० ॥

भावार्थः—हे राजन् ! जिन भेड़ आदि के रोम और त्वचा मनुष्यों के सुख के लिये होती हैं और जो ऊंट भार उठाते हुए मनुष्यों को सुख देते हैं उन को जो दुष्टजन मारा चाहें उन को संसार के दुःखदायी समझो और उनको अच्छे प्रकार दन्ड देना चाहिये ॥ ५० ॥

अज इत्यस्य विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिक्कृतिश्छन्दः।
निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कौनसे पशु न मारने और कौनसे मारने चाहियें
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात्सोऽअपश्यज्जनितारमग्रे । तेन देवा देवतामग्रमायँस्तेन रोहमायन्नुपमेध्यासः । शरभमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद । शरभं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ५१ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! तू जो (हि) निश्चित (अजः) बकरा (अजनिष्ट) उत्पन्न होता है (सः) वह (अग्रे) प्रथम (जनितारम्) उत्पादक को (अपश्यत्) देखता है जिस से (मेध्याः) पवित्र हुए (देवाः) विद्वान् (अग्रम्) उत्तम सुख और (देवताम्) दिव्यगुणों के (उपायन्) उपाय को प्राप्त होते हैं और जिससे (रोहम्) वृद्धियुक्त प्रसिद्धि को (आयन्) प्राप्त होवें (तेन) उस से उत्तम गुणों उत्तम सुख तथा (तेन) उस से वृद्धि को प्राप्त हो जो (आरण्यम्) बनैली (शरभम्) शेही (ते) तेरी प्रजा को हानि देने वाली है उस को (अनुदिशामि) बतलाता हूँ (तेन) उस से बचाए हुए पदार्थ से (चिन्वानः) बढ़ता हुआ (तन्वः) शरीर में (निषीद) निवास कर और (तम्) उस (शरभम्) शल्यकी को (ते) तेरा (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त हो और (ते) तेरे (यम्) जिस शत्रु से हम लोग (द्विष्मः) द्वेष करें उसको (शोकात्) शोकरूप (अग्नेः) अग्नि से (शुक्) शोक अर्थात् शोक से बढ़ कर शोक अत्यन्तशोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥ ५१ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि बकरे और मोर आदि श्रेष्ठ पशु पक्षियों को न मारें और इनकी रक्षा कर के उपकार के लिये संयुक्त करें और जो अच्छे पशुओं और पक्षियों के मारने वाले हों उनको शीघ्र ताड़ना देवें । हां जो खेती को उजाड़ने हारे श्याही आदि पशु हैं उन को प्रजा की रक्षा के लिये मारें ॥ ५१ ॥

त्वं यविष्ठेत्यस्योशना ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर कैसे पशुओं की रक्षा करना और हनना चहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना ॥५२॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ) अत्यन्त युवा ! (त्वम्) तू रक्षा किये हुए इन पशुओं से (दाशुषः) सुखदाता (नॄन्) धर्मरक्षक मनुष्यों की (पाहि) रक्षा कर इन (गिरः) सत्य वाणियों को (शृणुधि) सुन और (त्मना) अपने आत्मा से मनुष्य (उत्) और पशुओं के (तोकम्) बच्चों की (रक्ष) रक्षा कर ॥ ५२ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य मनुष्यादि प्राणियों के रक्षक पशुओं को बढ़ाते हैं और कृपामय उपदेशों को सुनते सुनाते हैं वे आन्तर्य सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥

अपां त्वेमन्नित्यस्योशना ऋषिः । आपो देवताः । पूर्वस्य ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः । सरिरेत्वेति मध्यस्य ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ।
गायत्रेणेत्युत्तरस्य निचृद्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पढ़ने वालों को पढ़ाने वाले क्या उपदेश करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अपां त्वेमन्त्सादयाम्यपां त्वोद्मन्सादयाम्यपान्त्वा भस्मन्सादयाम्यपां त्वा ज्योतिषि सादयाम्यपां त्वायने सादयाम्यर्णवे त्वा सदने सादयामि समुद्रे त्वा सदने सादयामि । सरिरे त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा क्षये सादयाम्यपां त्वा सधिषि सादयाम्यपां त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा सधस्थे सादयाम्यपां त्वा योनौ सादयाम्यपां त्वा पुरीषे सादयाम्यपां त्वा पाथसि सादयामि गायत्रेण त्वा छन्दसा सादयामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि जागतेन त्वा छन्दसा सादयाम्यानुष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि पाङ्क्तेन त्वा छन्दसा सादयामि ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! जैसे शिक्षा करने वाला मैं (अपाम्) प्राणों की रक्षा के निमित्त (एमन्) गमनशील वायु में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थापित करता हूं (अपाम्) जलों की (ओद्मन्) आर्द्रतायुक्त ओषधियों में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थापन करता हूं (अपाम्) प्राप्त हुए काष्ठों में (भस्मन्) राख में (त्वा) तुझ को (सादयामि) संयुक्त करता हूं (अपाम्) व्याप्त हुए बिजुली आदि अग्नि के (ज्योतिषि) प्रकाश में (त्वा) तुझ को (सादयामि) नियुक्त करता हूं (अपाम्) अवकाश वाले (अयने) स्थान में (त्वा) तुझ को (सादयामि) बैठाता हूं (सदने) स्थिति के योग्य (अर्णवे) प्राणविद्या में (त्वा) तुझ को (सादयामि) संयुक्त करता हूं (सदने) गमनशील (समुद्रे) मन के विषय में (त्वा) तुझ को (सादयामि) सम्बद्ध करता हूं (सदने) प्राप्त होने योग्य (सरिरे) वाणी के विषय में (त्वा) तुझ को (सादयामि) संयुक्त करता हूं (अपाम्) प्राप्त होने योग्य पदार्थों के सम्बन्धी (क्षये) घर में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थापित करता हूं (अपाम्) अनेक प्रकार के व्याप्त शब्दों के सम्बन्धी (सधिषि) उस पदार्थ में कि जिससे अनेक शब्दों के समान यह जीव सुनता है अर्थात् कान के विषय में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थित करता हूं (अपाम्) जलों के (सदने) अन्तरिक्षरूप स्थान में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थापित करता हूं (अपाम्) जलों के (सधस्थे) तुल्यस्थान में (त्वा) तुझ को (सादयामि) स्थापित करता हूं (अपाम्) जलों के (योनौ) समुद्र में (त्वा) तुझ को (सादयामि) नियुक्त करता हूं (अपाम्) जलों की (पुरीषे) रेती में (त्वा) तुझ को (सादयामि) नियुक्त करता हूं (अपाम्) जलों के (पाथसि) अन्न में (त्वा) तुझ को (सादयामि) प्रेरणा करता हूं (गायत्रेण) गायत्री छन्द से निकले (छन्दसा) स्वतन्त्र अर्थ के साथ (त्वा) तुझ को (सादयामि) नियुक्त करता हूं (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् मन्त्र से विहित (छन्दसा) शुद्ध अर्थ के साथ (त्वा) तुझ को (सादयामि) नियुक्त करता हूं (जागतेन) जागती छन्द में कहे (छन्दसा) आनन्ददायक अर्थ के साथ (त्वा) तुझ को (सादयामि) नियुक्त करता हूं (आनुष्टुभेन) अनुष्टुप् मन्त्र में कहे (छन्दसा) शुद्ध अर्थ के साथ (त्वा)

तुझ को (सादयामि) प्रेरणा करता हूं और (पाङ्क्तेन) पङ्क्ति मन्त्र से प्रकाशित हुए (छन्दसा) निर्मल अर्थ के साथ (त्वा) तुझ को (सादयामि) प्रेरित करता हूं वैसे ही तू वर्त्तमान रह ॥ ५३ ॥

भावार्थः—विद्वानों को चाहिये कि सब पुरुषों को और सब स्त्रियों को वेद पढ़ा और जगत् के वायु आदि पदार्थों की विद्या में निपुण करके उन को उन पदार्थों से प्रयोजन साधने में प्रवृत्त करें ॥ ५३ ॥

अयं पुर इत्यस्योशना ऋषिः । प्राणा देवताः । स्वराड् ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को सृष्टि से कौन कौन उपकार लेने चाहियें
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अयं पुरो भुवस्तस्य प्राणो भौवायनो वसन्तः प्राणायनो गायत्री वासन्ती गायत्र्यै गायत्रं गायत्रादुपाꣳशुरुपाꣳशोस्त्रिवृत् त्रिवृतो रथन्तरं वसिष्ठऽऋषिः । प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५४ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! (जैसे (अयम्) यह (पुरो भुवः) प्रथम होने वाला अग्नि है (तस्य) उसका (भौवायनः) सिद्ध कारण से रचा हुआ (प्राणः) जीवन का हेतु प्राण (प्राणायनः) प्राणों की रचना का हेतु (वसन्तः) सुगन्धि आदि में वसाने हारा वसन्त ऋतु (वासन्ती) वसन्त ऋतु का जिस में व्याख्यान हो वह (गायत्री) गाते हुए का रक्षक गायत्री-मंत्रार्थ ईश्वर (गायत्र्यै) गायत्री मन्त्र का (गायत्रम्) गायत्री छन्द (गायत्रात्) गायत्री से (उपांशुः) समीप से ग्रहण किया जाय (उपांशोः) उस जप से (त्रिवृत्) कर्म उपासना और ज्ञान के सहित वर्त्तमान फल (त्रिवृतः) उस तीन प्रकार के फल से (रथन्तरम्) रमणीय पदार्थों से तारने हारा सुख और (वसिष्ठः) अतिशय करके निवास का हेतु (ऋषिः) सुख प्राप्त कराने हारा विद्वान् (प्रजापतिगृहीतया) अपने सन्तानों के रक्षक पति को ग्रहण करने वाली (त्वया) तेरे साथ (प्रजाभ्यः) सन्तानोत्पत्ति के लिये (प्राणम्) बलयुक्त जीवन का ग्रहण करते हैं वैसे तेरे साथ मैं सन्तान होने के लिये बल का (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ॥ ५४ ॥

भावार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! तुम को योग्य है कि अग्नि आदि पदार्थों को उपयोग में ला के परस्पर प्रीति के साथ अति विषय सेवा को छोड़ और सब ससार से बल का ग्रहण करके सन्तानों को उत्पन्न करो ॥ ५४ ॥

अयं दक्षिणेत्यस्योशना ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृद्भुरिगतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को ग्रीष्म ऋतु में कैसे वर्त्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो वैश्वकर्मणं ग्रीष्मो मानसस्त्रिष्टुब् ग्रैष्मी त्रिष्टुभः स्वारम् । स्वारादन्तर्यामोऽन्तर्यामात्पञ्चदशः पञ्चदशाद् बृहद् भरद्वाजऽऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५५ ॥

पदार्थः— हे स्त्रि ! जैसे (दक्षिणा) दक्षिण दिशा से (अयम्) यह (विश्वकर्मा) सब कर्मों का निमित्त वायु के समान विद्वान् चलता है (तस्य) उस वायु के योग से (वैश्वकर्मणम्) जिस से सब कर्म सिद्ध होते हैं वह (मनः) विचारस्वरूप प्रेरक मन (मनसः) मन की गर्मी से उत्पन्न के तुल्य (ग्रीष्मः) रसों का नाशक ग्रीष्म ऋतु (ग्रैष्मी) ग्रीष्म ऋतु के व्याख्यान वाला (त्रिष्टुप्) त्रिष्टुप् छन्द (त्रिष्टुभः) त्रिष्टुप् छन्द के (स्वारम्) ताप से हुआ तेज (स्वारात्) और तेज से (अन्तर्यामः) मध्याह्न के प्रहर में विशेष दिन और (अन्तर्यामात्) मध्याह्न के विशेष दिन से (पञ्चदशः) पन्द्रह तिथियों की पूरक स्तुति के योग्य पूर्णमासी (पञ्चदशात्) उस पूर्णमासी से (बृहत्) बड़ा (भरद्वाजः) अन्न वा विज्ञान की पुष्टि और धारण का निमित्त (ऋषिः) शब्दज्ञान प्राप्त कराने हारा कान (प्रजापतिगृहीतया) प्रजापालक पति राजा ने ग्रहण की विद्या से न्याय का ग्रहण करता है वैसे मैं (त्वया) तेरे साथ (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (मनः) विचारस्वरूप विज्ञानयुक्त चित्त का ग्रहण विज्ञान का (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥ ५५ ॥

भावार्थः—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि प्राण का मन और मन का प्राण नियम करने वाला है ऐसा जान के प्राणायाम से आत्मा को शुद्ध करते हुए पुरुषों से सम्पूर्ण सृष्टि के पदार्थों का विज्ञान स्वीकार करें ॥ ५५ ॥

अयं पश्चादित्यस्योशना ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृद् धृतिश्छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

अब स्त्री पुरुष आपस में कैसा आचरण करें यह विषय अगले मंत्र में कहा है ॥

अयं पश्चाद् विश्वव्यचास्तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसं वर्षाश्चाक्षुष्यो जगती वार्षी जगत्याऽऋक्समम् । ऋक्समाच्छुक्रः शुक्रात्सप्तदशः सप्तदशाद्वैरूपं जमदग्निर्ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५६ ॥

पदार्थः—हे उत्तम मुख वाली स्त्री ! जैसे (अयम्) यह सूर्य्य के समान विद्वान् (विश्वव्यचाः) सब संसार को चारों ओर के प्रकाश से व्यापक होकर प्रकट करता (पश्चात्) पश्चिम दिशा में वर्त्तमान (तस्य) उस सूर्य्य का (वैश्वव्यचसम्) प्रकाशक किरणरूप (चक्षुः) नेत्र (चाक्षुष्यः) नेत्र से देखने योग्य (वर्षाः) जिस समय मेघ वर्षते हैं वह वर्षाऋतु (वार्षी) वर्षा ऋतु के व्याख्यान वाला (जगती) संसार में प्रसिद्ध जगती छन्द (जगत्याः) जगती छन्द से (ऋक्समम्) ऋचाओं के सेवन का हेतु विज्ञान (ऋक्समात्) उस विज्ञान से (शुक्रः) पराक्रम (शुक्रात्) पराक्रम से (सप्तदशः) सत्रह तत्वों का पूरक विज्ञान (सप्तदशात्) उस विज्ञान से (वैरूपम्) अनेक रूपों का हेतु जगत् का ज्ञान और जैसे (जमदग्निः) प्रकाश-

स्वरूप (ऋषिः) रूप का प्राप्त कराने हारा नेत्र (प्रजापतिगृहीतया) सन्तानरक्षक पति ने ग्रहण की हुई विद्यायुक्त स्त्री के साथ (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (चक्षुः) विद्यारूपी नेत्रों का ग्रहण करता है वैसे मैं तेरे साथ संसार से बल को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥ ५६ ॥

भावार्थः—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि सामवेद के पढ़ने से सूर्य आदि प्रसिद्ध जगत् को स्वभाव से जान के सब सृष्टि के गुणों के दृष्टान्त से अच्छा देखें और चरित्र ग्रहण करें ॥ ५६ ॥

इदमुत्तरादित्यस्योशना ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब शरद् ऋतु में कैसे वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इदमुत्तरात् स्वस्तस्य श्रोत्रंᳬ सौवᳬ शरच्छ्रौत्र्यनुष्टुप् शारद्यनुष्टुभऽऐडमैडान्मन्थी मन्थिनऽएकविᳬशऽएकविᳬशाद् वैराजं विश्वामित्रऽऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया श्रोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे सौभाग्यवती ! जैसे (इदम्) यह (उत्तरात्) सब से उत्तर भाग में (स्वः) सुखों का साधन दिशारूप है (तस्य) उस के (सौवम्) सुख का साधन (श्रोत्रम्) कान (श्रौत्री) कान की सम्बन्धी (शरत्) शरदृतु (शारदी) शरद् ऋतु के व्याख्यान वाला (अनुष्टुप्) प्रबद्ध अर्थ वाला अनुष्टुप् छन्द (अनुष्टुभः) उस से (ऐडम्) वाणी के व्याख्यान से युक्त मन्त्र (ऐडात्) उस मन्त्र से (मन्थी) पदार्थों के मथने का साधन (मन्थिनः) उस साधन से (एकविंशः) इक्कीस विद्याओं का पूर्ण करने हारा सिद्धान्त (एकविंशात्) उस सिद्धान्त से (वैराजम्) विविध पदार्थों के प्रकाशक (साम) सामवेद के ज्ञान को प्राप्त हुआ (श्वामित्रः) सब से मित्रता का हेतु (ऋषिः) शब्द ज्ञान कराने हारा कान और (प्रजाभ्यः) उत्पन्न हुई बिजुली आदि के लिये (श्रोत्रम्) सुनने के साधन को ग्रहण करते हैं वैसे (प्रजापतिगृहीतया) प्रजापालक पति ने ग्रहण की (त्वया) तेरे साथ में प्रसिद्ध हुई बिजुली आदि से (श्रोत्रम्) सुनने के साधन कान को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥ ५७ ॥

भावार्थः—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या पढ़ और विवाह करके बहुश्रुत होवें और सत्यवक्ता आप्त जनों से सुने विना पढ़ी हुई भी विद्या फलदायक नहीं होती इसलिये सदैव सज्जनों का उपदेश सुन के सत्य का धारण और मिथ्या को छोड़ देवें ॥ ५७ ॥

इयमुपरीत्यस्योशना ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । विराडाकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब हेमन्त ऋतु में किस प्रकार वर्त्तें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इयमुपरि मतिस्तस्यै वाङ्मात्या हैमन्तो वाच्यः पङ्क्तिर्हैमन्ती पङ्क्त्यै निधनवन्निधनवतऽआग्रयणः । आग्रयणात् त्रिणवत्रयस्त्रिᳬशौ त्रिणवत्रयस्त्रिᳬ-

शाभ्या॑ᳫ शाक्वररैवते वि॒श्वक॑र्म॒ऽऋषि॑ः प्र॒जाप॑तिगृहीतया॒ त्वया॒ वाचं॑ गृह्णामि प्र॒जाभ्य॑ः ॥ ५८ ॥

पदार्थ :—हे विद्वान् स्त्री ! जो (इयम्) यह (उपरि) सब से ऊपर विराजमान (मतिः) बुद्धि है (तस्यै) उस (मात्या) बुद्धि का होना वा कर्म (वाक्) वाणी और (वाच्यः) उस का होना वा कर्म (हेमन्तः) गर्मी का नाशक हेमन्त ऋतु (हेमन्ती) हेमन्त ऋतु के व्याख्यान वाला (पङ्क्तिः) पंक्ति छन्द (पङ्क्त्यै) उस पंक्ति छन्द का (निधनवत्) मृत्यु का प्रशंसित व्याख्यान वाला सामवेद का भाग (निधनवतः) उससे (आग्रयणः) प्राप्ति का साधन ज्ञान का फल (आग्रयणात्) उससे (त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ) बारह और तेंतीस सामवेद के स्तोत्र (त्रिणवत्रयस्त्रिंशाभ्याम्) उन स्तोत्रों से (शाक्वररैवते) शक्ति और धन के साधक पदार्थों को जान के (विश्वकर्मा) सब सुकर्मों के सेवने वाला (ऋषिः) वेदार्थ का वक्ता पुरुष वर्त्तता है वैसे मैं (प्रजापतिगृहीतया) प्रजापालक पति ने ग्रहण की (त्वया) तेरे साथ (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (वाचम्) विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त वाणी को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥ ५८ ॥

भावार्थः—स्त्रीपुरुषों को चाहिये कि विद्वानों की शिक्षारूप वाणी को सुन के अपनी बुद्धि बढ़ावें उस बुद्धि से हेमन्त ऋतु में कर्त्तव्य कर्म और सामवेद के स्तोत्रों को जान महात्मा ऋषि लोगों के समान वर्त्ताव कर विद्या और अच्छी शिक्षा से शुद्ध की वाणी का स्वीकार करके अपने सन्तानों के लिये भी इन वाणियों का उपदेश सदैव किया करें ॥ ५८ ॥

इस अध्याय में ईश्वर, स्त्रीपुरुष और व्यवहार का वर्णन करने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जानो ॥

॥ यह तेरहवां (१३) अध्याय समाप्त हुआ ॥



॥ ओ३म् ॥

* अथ चतुर्दशाऽध्यायारम्भः *

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥१॥

य० ३० । ३ ॥

ध्रुवक्षितिरित्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते । त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अब चौदहवें अध्याय का आरम्भ है इस के पहिले मन्त्र में स्त्रियों के लिये उपदेश किया है ॥

ध्रु॒वक्षि॑तिर्ध्रु॒वयो॑निर्ध्रु॒वासि॑ ध्रु॒वं योनि॒मासी॑द साधु॒या । उख्य॑स्य के॒तुं प्र॑थ॒मं जु॑षा॒णा अ॒श्विना॑ध्व॒र्यू सा॑दयतामि॒ह त्वा॑ ॥ १ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! जो तू (साधुया) श्रेष्ठ धर्म के साथ (उख्यस्य) बटलोई में पकाये अन्न की सम्बन्धी और (प्रथमम्) विस्तारयुक्त (केतुम्) बुद्धि को (जुषाणा) प्रीति से सेवन करती हुई (ध्रुवक्षितिः) निश्चल वास करने और (ध्रुवयोनिः) निश्चल घर में रहने वाली (ध्रुवा) दृढ़धर्म्म से युक्त (असि) है सो तू (ध्रुवम्) निश्चल (योनिम्) घर में (आसीद) स्थिर हो (त्वा) तुझको (इह) इस गृहाश्रम में (अध्वर्यू) अपने लिये रक्षणीय गृहाश्रम आदि यज्ञ के चाहने हारे (अश्विना) सब विद्याओं में व्यापक अध्यापक और उपदेशक (सादयताम्) अच्छे प्रकार स्थापित करें ॥ १ ॥

भावार्थः—विदुषी पढ़ाने और उपदेश करने हारी स्त्रियों को योग्य है कि कुमारी कन्याओं को ब्रह्मचर्य अवस्था में गृहाश्रम और धर्म्मशिक्षा दे के इनको श्रेष्ठ करें ॥ १ ॥

कुलायिनीत्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते । ब्राह्मी बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर पूर्वोक्त विषय का अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

कु॒ला॒यिनी॑ घृ॒तव॑ती॒ पुर॑न्धिः स्यो॒ने सी॑द॒ सद॑ने पृथि॒व्याः । अ॒भि त्वा॑ रु॒द्रा वस॑वो गृणन्त्वि॒मा ब्रह्म॑ पीपिहि॒ सौभ॑गाया॒श्विना॑ध्व॒र्यू सा॑दयतामि॒ह त्वा॑ ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (स्योने) सुख करने हारी ! जिस (त्वा) तुझ को (वसवः) प्रथम कोटि के विद्वान् और (रुद्राः) मध्य कक्षा के विद्वान् (इमा) इन (ब्रह्म) विद्याधनों के देने वाले गृहस्थों की (अभि) अभिमुख होकर (गृणन्तु) प्रशंसा करें सो तू (सौभगाय) सुन्दर संपत्ति होने के लिये इन विद्याधन को (पीपिहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हो (घृतवती) बहुत जल और (पुरन्धिः) बहुत सुख धारण करनेवाली (कुलायिनी) प्रशंसित कुल की प्राप्ति से युक्त हुई (पृथिव्याः) अपनी भूमि के (सदने) घर में (सीद) स्थित हो (अध्वर्यू) अपने लिये रक्षणीय गृहाश्रम आदि यज्ञ चाहने वाले (अश्विना) सब विद्याओं में व्यापक और उपदेशक पुरुष (त्वा) तुझको (इह) इस गृहाश्रम में (सादयताम्) स्थापित करें ॥ २ ॥

भावार्थः—स्त्रियों को योग्य है कि साङ्गोपाङ्ग पूर्ण विद्या और धन ऐश्वर्य का सुख भोगने के लिये अपने सदृश पतियों से विवाह करके विद्या और सुवर्ण आदि धन को पाके सब ऋतुओं में सुख देने हारे घरों में निवास करें तथा विद्वानों का संग और शास्त्रों का अभ्यास निरन्तर किया करें ॥ २ ॥

स्वैर्दक्षैरित्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृद् ब्राह्मी बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी पूर्वोक्त विषय को ही अगले मन्त्र में कहा है ॥

स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद देवानाᳬसुम्ने बृहते रणाय । पितेवैधि सूनवऽआ सुशेवा स्वावेशा तन्वा संविशस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! तू जैसे (स्वैः) अपने (दक्षैः) बलों और भृत्यों के साथ वर्तता हुआ (देवानाम्) धर्म्मात्मा विद्वानों के मध्य में वर्त्तमान (बृहते) बड़े (रणाय) संग्राम के लिये (सुम्ने) सुख के विषय (दक्षपिता) बलों वा चतुर भृत्यों का पालन करने हारा होके विजय से बढ़ता है वैसे (इह) इस लोक के मध्य में (एधि) बढ़ती रह (सुम्ने) सुख में (आसीद) स्थिर हो और (पितेव) जैसे पिता (सूनवे) अपने पुत्र के लिये सुन्दर सुख देता है वैसे (सुशेवा) सुन्दर सुख से युक्त (स्वावेशा) अच्छी प्रीति से सुन्दर शुद्ध शरीर वस्त्र अलंकार को धारण करती हुई अपने पति के साथ प्रवेश कर ने हारी होके (तन्वा) शरीर के साथ प्रवेश कर और (अध्वर्यू) गृहाश्रमादि यज्ञ की अपने लिये इच्छा करने वाले (अश्विना) पढ़ाने और उपदेश करने हारे जन (त्वा) तुझ को (इह) इस गृहाश्रम में (सादयताम्) स्थित करें ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । स्त्रियों को चाहिये कि युद्ध में भी अपने पतियों के साथ स्थित रहें । अपने नौकर पुत्र और पशु आदि की पिता के समान रक्षा करें और नित्य ही वस्त्र और आभूषणों से अपने शरीरों को संयुक्त करके वर्तें । विद्वान् लोग भी इन को सदा उपदेश करें और स्त्री भी इन विद्वानों के लिये सदा उपदेश करें ॥ ३ ॥

पृथिव्याः पुरीषमित्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते । स्वराड्ब्राह्मी बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वेऽअभिगृणन्तु देवाः । स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! जो (स्तोमपृष्ठा) स्तुतियों को जानने की इच्छायुक्त तू (इह) इस गृहाश्रम में (पृथिव्याः) पृथिवी की (पुरीषम्) रक्षा (अप्सः) सुन्दररूप और (नाम) नाम और (घृतवती) बहुत घी आदि प्रशंसित पदार्थों से युक्त (असि) है (ताम्) उस (त्वा) तुझको (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (अभिगृणन्तु) सत्कार करें (इह) इसी गृहाश्रम में (सीद) वर्त्तमान रह और जिस (त्वा) तुझ को (अध्वर्यू) अपने लिये रक्षणीय गृहाश्रमादि यज्ञ चाहने वाले (अश्विना) व्यापक बुद्धि बढ़ाने और उपदेश करने हारे (इह) इस गृहाश्रम में (सादयताम्) स्थित करें सो तू (अस्मे) हमारे लिये (प्रजावत्) प्रशंसित सन्तान होने का साधन (द्रविणा) धन (यजस्व) दे ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो स्त्री गृहाश्रम की विद्या और क्रिया-कौशल में विदुषी हों वे ही सब प्राणियों को सुख दे सकती हैं ॥ ४ ॥

अदित्यास्त्वेत्यस्योशना ऋषिः । अश्विनौ देवते । स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी पूर्वोक्त विषय ही अगले मन्त्र में कहा है ॥

अदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयाम्यन्तरिक्षस्य धर्त्रीं विष्टम्भनीं दिशामधिपत्नीं भुवनानाम् । ऊर्मिर्द्रप्सोऽअपामसि विश्वकर्मा तऽऋषिरश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! जो (ते) तेरा (विश्वकर्मा) सब शुभ कर्मों से युक्त (ऋषिः) विज्ञानदाता पति मैं (अन्तरिक्षस्य) अन्तःकरण के नाशरहित विज्ञान को (धर्त्रीम्) धारण करने (दिशाम्) पूर्वादि दिशाओं की (विष्टम्भनीम्) आधार और (भुवनानाम्) सन्तानोत्पत्ति के निमित्त घरों की (अधिपत्नीम्) अधिष्ठाता होने से पालन करने वाली (त्वा) तुझको सूर्य्य की किरण के समान (अदित्याः) पृथिवी के (पृष्ठे) पीठ पर (सादयामि) घर की अधिकारिणी स्थापित करता हूँ जो तू (अपाम्) जलों की (ऊर्मिः) तरङ्ग के सदृश (द्रप्सः) आनन्दयुक्त (असि) है उस (त्वा) तुझ को (इह) इस गृहाश्रम में (अध्वर्यू) रक्षा के निमित्त यज्ञ को करने वाले (अश्विना) विद्या में व्याप्तबुद्धि अध्यापक और उपदेशक पुरुष (सादयताम्) स्थापित करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो स्त्री अविनाशी सुख देनेहारी सब दिशाओं में प्रसिद्ध कीर्ति वाली विद्वान् पतियों से युक्त सदा आनन्दित हैं वे ही गृहाश्रम का धर्म

पालने और उस की उन्नति के लिये समर्थ होती हैं, तेरहवें अध्याय में जो (मधुश्च०) कहा है वहां से यहां तक वसन्त ऋतु के गुणों की प्रधानता से व्याख्यान किया है ऐसा जानना चाहिये ॥ ५ ॥

शुक्रश्चेत्यस्योशना ऋषिः । ग्रीष्मर्तुर्देवता । निचृदुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर भी ग्रीष्म ऋतु का व्याख्यान अगले मन्त्र में कहा है ॥

शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतूऽअग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । येऽअग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवीऽइमे ग्रैष्मावृतू ऽ अभिकल्पमानाऽइन्द्रमिव देवाऽअभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे स्त्रीपुरुषो ! जैसे (मम) मेरे (ज्यैष्ठयाय) प्रशंसा के योग्य होने के लिये जो (शुक्रः) शीघ्र धूली की वर्षा और तीव्र ताप से आकाश को मलीन करने हारा ज्येष्ठ (च) और (शुचिः) पवित्रता का हेतु आषाढ़ (च) ये दोनों मिल के प्रत्येक (ग्रैष्मो) ग्रीष्म (ऋतू) ऋतु कहाते हैं । जिस (अग्नेः) अग्नि के (अन्तःश्लेषः) मध्य में कफ के रोग का निवारण (असि) होता है जिस से ग्रीष्म ऋतु के महीनों से (द्यावापृथिवी) प्रकाश और अन्तरिक्ष (कल्पेताम्) समर्थ होवें (आपः) जल (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (ओषधयः) यव वा सोमलता आदि ओषधियां और (अग्नयः) बिजुली आदि अग्नि (पृथक्) अलग अलग (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें । जैसे (समनसः) विचारशील (सव्रताः) सत्याचरणरूप नियमों से युक्त (अग्नयः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी को (अन्तरा) (ग्रैष्मौ) (ऋतू) (अभिकल्पमानाः) सन्मुख होकर समर्थ करते हुए (देवाः) विद्वान् लोग (इन्द्रमिव) बिजुली के समान उन अग्नियों की विद्या में (अभिसंविशन्तु) सब ओर से अच्छे प्रकार प्रवेश करें वैसे (तया) उस (देवतया) परमेश्वर देवता के साथ तुम दोनों (इमे) इन (द्यावापृथिवी) प्रकाश और पृथिवी को (ध्रुवे) निश्चलस्वरूप से इन का भी (अङ्गिरस्वत्) अवयवों के कारणरूप रस के समान (सीदतम्) विशेष कर के ज्ञान कर प्रवर्त्तमान रहो ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । वसन्त ऋतु के व्याख्यान के पीछे ग्रीष्म ऋतु की व्याख्या करते हैं । हे मनुष्यो ! तुम लोग जो पृथिवी आदि पञ्चभूतों के शरीरसम्बन्धी वा मानस अग्नि हैं कि जिन के विना ग्रीष्म ऋतु नहीं हो सकता उन को जान और उपयोग में ला के सब प्राणियों को सुख दिया करो । ६ ॥

सजूर्ऋतुभिरित्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः । वस्वादयो मन्त्रोक्ता देवताः । सजूर्ऋतुभिरित्यस्य भुरिक्कृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥ सजूर्ऋतुभिरिति द्वितीयस्य स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । सजूर्ऋतुभिरिति तृतीयस्य

निचृदाकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरश्च ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानराया श्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्वसुभिः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजू रुद्रैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूरादित्यैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्विश्वैर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि वा पुरुष ! जिस (त्वा) तुझ को (इह) इस जगत् में (अध्वर्यू) रक्षा करने हारे (अश्विना) सब विद्याओं में व्यापक पढ़ाने और उपदेश करने वाले पुरुष और स्त्री (वैश्वानराय) सम्पूर्ण पदार्थों की प्राप्ति के निमित्त (अग्नये) अग्निविद्या के लिये (सादयताम्) नियुक्त करें और हम लोग भी जिस (त्वा) तुझ को स्थापित करें सो तू (ऋतुभिः) वसन्त और वर्षा आदि ऋतुओं के साथ (सजूः) एकसी तृप्ति वा सेवा से युक्त (विधाभिः) जलों के साथ (सजूः) प्रीतियुक्त (देवैः) अच्छे गुणों के साथ (सजूः) प्रीतिवाली वा प्रीति वाला और (वयोनाधैः) जीवन आदि वा गायत्री आदि छन्दों के साथ सम्बन्ध के हेतु (देवैः) दिव्य सुख देने हारे प्राणों के साथ (सजूः) समान सेवन से युक्त हो । हे पुरुषार्थयुक्त स्त्रि वा पुरुष ! जिस (त्वा) तुझ को (इह) इस गृहाश्रम में (वैश्वानराय) सब जगत् के नायक (अग्नये) विज्ञानदाता ईश्वर की प्राप्ति लिये (अध्वर्यू) रक्षक (अश्विना) सब विद्याओं में व्याप्त अध्यापक और उपदेशक (सादयताम्) स्थापित करें और जिस (त्वा) तुझ को हम लोग नियत करें सो तू (ऋतुभिः) ऋतुओं के साथ (सजूः) पुरुषार्थी (विधाभिः) विविध प्रकार के पदार्थों के धारण के हेतु प्राणों की चेष्टाओं के साथ (सजूः) समान सेवन वाले (वसुभिः) अग्नि आदि आठ पदार्थों के साथ (सजूः) प्रीतियुक्त और (वयोनाधैः) विज्ञान का सम्बन्ध कराने हारे (देवैः) सुन्दर विद्वानों के साथ (सजूः) समान प्रीति वाले हों । हे विद्या पढ़ने के लिये प्रवृत्त हुए ब्रह्मचारिणी वा ब्रह्मचारी ! जिस (त्वा) तुझ को (इह) इस ब्रह्मचर्य्याश्रम में (वैश्वानराय) सब मनुष्यों के सुख के साधन (अग्नये) शास्त्रों के विज्ञान के लिये (अध्वर्यू) पालने हारे (अश्विना) पूर्ण-विद्यायुक्त अध्यापक और उपदेशक लोग (सादयताम्) नियुक्त करें और जिस (त्वा) तुझ को हम लोग स्थापित करें सो तू (ऋतुभिः) ऋतुओं के साथ (सजूः) अनुकूल सेवन वाले (विधाभिः) विविध प्रकार के पदार्थों के धारण के निमित्त प्राण की चेष्टाओं से (सजूः) समान प्रीति वाले (रुद्रैः) प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और जीवात्मा

इन ग्यारहों के (सजूः) अनुसार सेवा करने हारे और (वयोनाधैः) वेदादि शास्त्रों के जनाने का प्रबन्ध करने हारे (देवैः) विद्वानों के साथ (सजूः) बराबर प्रीति वाले हों। हे पूर्णविद्या वाले स्त्री वा पुरुष ! जिस (त्वा) तुझ को (इह) इस संसार में (वैश्वानराय) सब मनुष्यों के लिये पूर्ण सुख के साथ (अग्नये) पूर्ण विज्ञान के लिये (अध्वर्यू) रक्षक (अश्विना) शीघ्र ज्ञानदाता लोग (सादयताम्) नियत करें और जिस (त्वा) तुझ को हम नियुक्त करें सो तू (ऋतुभिः) ऋतुओं के साथ (सजूः) अनुकूल आचरण वाले (विधाभिः) विविध प्रकार की सत्यक्रियाओं के साथ (सजूः) समान प्रीति वाले (आदित्यैः) वर्ष के बारह महीनों के साथ (सजूः) अनुकूल आहारविहार युक्त और (वयोनाधैः) पूर्ण विद्या के विज्ञान और प्रचार के प्रबन्ध करने हारे (देवैः) पूर्ण विद्यायुक्त विद्वानों के (सजूः) अनुकूल प्रीति वाले हों। हे सत्य अर्थों का उपदेश करने हारी स्त्री वा पुरुष ! जिस (त्वा) तुझ को (इह) इस जगत् में (वैश्वानराय) सब मनुष्यों के हितकारी (अग्नये) अच्छी शिक्षा के प्रकाश के लिये (अध्वर्यू) ब्रह्मविद्या के रक्षक (अश्विना) शीघ्र पढ़ाने और उपदेश करने हारे लोग (सादयताम्) स्थित करें और जिस (त्वा) तुझ को हम लोग नियत करें सो तू (ऋतुभिः) काल क्षण आदि सब अवयवों के साथ (सजूः) अनुकूलसेवी (विधाभिः) सुखों में व्यापक सब क्रियाओं के (सजूः) अनुसार होकर (विश्वैः) सब (देवैः) सत्योपदेशक पतियों के साथ (सजूः) समान प्रीति वाले और (वयोनाधैः) कामयमान जीवन का सम्बन्ध कराने हारे (देवैः) परोपकार के लिये सत्य असत्य के जानने वाले जनों के साथ (सजूः) समान प्रीति वाले हों ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस संसार में मनुष्य का जन्म पाके स्त्री तथा पुरुष विद्वान् होकर जिन ब्रह्मचर्य्य-सेवन, विद्या और अच्छी शिक्षा के ग्रहण आदि शुभ गुण कर्मों में आप प्रवृत्त होकर जिन अन्य लोगों को प्रवृत्त करें वे उन में प्रवृत्त होकर परमेश्वर से लेके पृथिवीपर्यन्त पदार्थों के यथार्थ विज्ञान से उपयोग ग्रहण करके सब ऋतुओं में आप सुखी रहें और अन्यों को सुखी करें ॥ ७ ॥

प्राणम्म इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । दम्पती देवते । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्राणम्मे पाह्यपानम्मे पाहि व्यानम्मे पाहि चक्षुर्मऽउर्व्या विभाहि श्रोत्रम्मे श्लोकय । अपः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात् पाहि दिवो वृष्टिमेरय ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे पते वा स्त्रि ! तू (उर्व्या) बहुत प्रकार की उत्तम क्रिया से (मे) मेरे (प्राणम्) नाभि से ऊपर को चलने वाले प्राणवायु की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (अपानम्) नाभि के नीचे गुह्येन्द्रिय मार्ग से निकलने वाले अपान वायु की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (व्यानम्) विविध प्रकार की शरीर की संधियों में रहने वाले व्यान वायु की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (चक्षुः) नेत्रों को (विभाहि) प्रकाशित कर (मे) मेरे (श्रोत्रम्) कानों को (श्लोकय) शास्त्रों के श्रवण से संयुक्त कर (अपः) प्राणों को (पिन्व)

पुष्ट कर (ओषधीः) सोमलता वा यव आदि ओषधियों को (जिन्व) प्राप्त हो (द्विपात्) मनुष्यादि दो पगवाले प्राणियों की (अव) रक्षा कर (चतुष्पात्) चार पग वाले गौ आदि की (पाहि) रक्षा कर और जैसे सूर्य्य (दिवः) अपने प्रकाश से (वृष्टिम्) वर्षा करता है वैसे घर के कार्यों को (एरय) अच्छे प्रकार प्राप्त कर ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। स्त्री पुरुषों को चाहिए कि स्वयंवर विवाह करके अति प्रेम के साथ आपस में प्राण के समान प्रियाचरण, शास्त्रों का सुनना, ओषधि आदि का सेवन और यज्ञ के अनुष्ठान से वर्षा करावें ॥ ८ ॥

मूर्धा वय इत्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः। प्राजापत्यादयो देवताः। पूर्वस्य निचृद्ब्राह्मी पङ्क्तिः। पुरुष इत्युत्तरस्य ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

मूर्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः क्षत्रं वयो मयन्दं छन्दो विष्टम्भो वयोऽधिपतिश्छन्दो विश्वकर्मा वयः परमेष्ठी छन्दो वस्तो वयो विबलं छन्दो वृष्णिर्वयो विशालं छन्दः पुरुषो वयस्तन्द्रं छन्दो व्याघ्रो वयोऽनाधृष्टं छन्दः सिंहो वयश्छदिश्छन्दः पष्ठवाड् वयो बृहती छन्दऽउक्षा वयः ककुप् छन्दऽऋषभो वयः सतोबृहती छन्दः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि वा पुरुष ! (मूर्धा) शिर के तुल्य उत्तम ब्राह्मण का कुल (प्रजापतिः) प्रजा के रक्षक राजा के समान तू (वयः) कामना के योग्य (मयन्दम्) सुखदायक (छन्दः) बलयुक्त (क्षत्रम्) क्षत्रिय कुल को प्रेरणा कर (विष्टम्भः) वैश्यों की रक्षा का हेतु (अधिपतिः) अधिष्ठाता पुरुष नृप के समान तू (वयः) न्याय विनय को प्राप्त हुए (छन्दः) स्वाधीन पुरुष को प्रेरणा कर (विश्वकर्म्मा) सब उत्तम कर्म करने हारे (परमेष्ठी) सब के स्वामी राजा के समान तू (वयः) चाहने योग्य (छन्दः) स्वतन्त्रता को (एरय) बढाइये (वस्तः) व्यवहारों से युक्त पुरुष के समान तू (वयः) अनेक प्रकार के व्यवहारों में व्यापी (विबलम्) विविध बल के हेतु (छन्दः) आनन्द को बढ़ा (वृष्णिः) सुख के सेचने वाले के सदृश तू (विशालम्) विस्तारयुक्त (वयः) सुखदायक (छन्दः) स्वतन्त्रता को बढ़ा (पुरुषः) पुरुषार्थयुक्त जन के तुल्य तू (वयः) चाहने योग्य (तन्द्रम्) कुटुम्ब के धारणरूप कर्म्म और (छन्दः) बल को बढ़ा (व्याघ्रः) जो विविध प्रकार के पदार्थों को अच्छे प्रकार सूंघता है उस जन्तु के तुल्य राजा तू (वयः) चाहने योग्य (अनाधृष्टम्) दृढ़ (छन्दः) बल को बढ़ा (सिंहः) पशु आदि को मारने हारे सिंह के समान पराक्रमी राजा तू (वयः) पराक्रम के साथ (छदिः) निरोध और (छन्दः) प्रकाश को बढ़ा (पष्ठवाट्) पीठ से बोझ उठाने वाले ऊंट आदि के सदृश वैश्य तू (बृहती) बड़े (वयः) बलयुक्त (छन्दः) पराक्रम को प्रेरणा कर (उक्षा) सींचने हारे बैल के तुल्य शूद्र तू (वयः) अति बल का हेतु (ककुप्) दिशाओं और (छन्दः) आनन्द

को बढ़ा (ऋषभः) शीघ्रगन्ता पशु के तुल्य भृत्य तू (वयः) बल के साथ (सतोबृहती) उत्तम बड़ी (छन्दः) स्वतन्त्रता की प्रेरणा कर ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है और पूर्व मन्त्र से एरय पद का अनुवृत्ति आती है। स्त्री पुरुषों को चाहिये कि ब्राह्मण आदि वर्णों को स्वतन्त्र वेदादि शास्त्रों का प्रचार आलस्यादि त्याग और शत्रुओं का निवारण करके बड़े बल को सदा बढ़ाया करे ॥ ९ ॥

अनड्वानित्यस्य विश्वदेव ऋषिः । विद्वांसो देवताः । स्वराड्ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अनड्वान् वयः पंक्तिश्छन्दो धेनुर्वयो जगती छन्दस्त्र्यविर्वयस्त्रिष्टुप् छन्दो दित्यवाड् वयो विराट् छन्दः पंचाविर्वयो गायत्री छन्दस्त्रिवत्सो वयऽउष्णिक् छन्दस्तुर्य्यवाड् वयोऽनुष्टुप् छन्दः ॥ १० ॥

पदार्थः—हे स्त्रि वा पुरुष ! (अनड्वान्) गौ और बैल के समान बलवान् हो के तू (पंक्तिः) प्रकट (छन्दः) स्वतन्त्र (वयः) बल की प्रेरणा कर (धेनुः) दूध देने हारी गौ के समान तू (जगती) जगत् के उपकारक (छन्दः) आनन्द की (वयः) कामना को बढ़ा (त्र्यविः) तीन भेड़ बकरी और गौ के अध्यक्ष के तुल्य वृद्धियुक्त होके तू (त्रिष्टुप्) कर्म्म उपासना और ज्ञान की स्तुति के हेतु (छन्दः) स्वतन्त्र (वयः) उत्पत्ति को बढ़ा (दित्यवाड्) पृथिवी खोदने से उत्पन्न हुए जौ आदि को प्राप्त कराने हारी क्रिया के तुल्य तू (विराट्) विविध प्रकाशयुक्त (छन्दः) आनन्दकारक (वयः) प्राप्ति को बढ़ा (पंचाविः) पंच इन्द्रियों की रक्षा के हेतु ओषधि के समान तू (गायत्री) गायत्री (छन्दः) मन्त्र के (वयः) विज्ञान को बढ़ा (त्रिवत्सः) कर्म उपासना और ज्ञान को चाहने हारे के तुल्य तू (उष्णिक्) दुःखों के नाशक (छन्दः) स्वतन्त्र (वयः) पराक्रम को बढ़ा और (तुर्य्यवाट्) चारों वेदों की प्राप्ति कराने हारे पुरुष के समान तू (अनुष्टुप्) अनुकूल स्तुति का निमित्त (छन्दः) सुखसाधक (वयः) इच्छा को प्रतिदिन बढ़ाया कर ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे खेती करने हारे लोग बैल आदि साधनों की रक्षा से अन्नादि पदार्थों को उत्पन्न करके सब को सुख देते हैं, वैसे ही विद्वान् लोग विद्या का प्रचार करके सब प्राणियों को आनन्द देते हैं ॥ १० ॥

इन्द्राग्नी इत्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः । इन्द्राग्नी देवते । भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्राग्नीऽअव्यथमानामिष्टकां दृꣳहतं युवम् । पृष्ठेन द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षं च विबाधसे ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्राग्नी) बिजुली और सूर्य्य के समान वर्त्तमान स्त्री पुरुषो ! (युवम्) तुम दोनों (अव्यथमानाम्) जमी हुई बुद्धि को प्राप्त होके (इष्टकाम्) ईट के समान गृहाश्रम को (दृंहतम्) दृढ़ करो। जैसे (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि (पृष्ठेन) पीठ से आकाश को बांधे हैं वैसे तुम दुःख और शत्रुओं की बाधा करो। हे पुरुष ! जैसे तू इस अपनी स्त्री की पीड़ा को (विबाधसे) विशेष करके हटाता है वैसे यह स्त्री भी तेरी पीड़ा को हरा करे ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे बिजुली और सूर्य्य जल वर्षा के ओषधि आदि पदार्थों को बढ़ाते हैं वैसे ही स्त्री पुरुष कुटुम्ब को बढ़ावें जैसे प्रकाश और पृथिवी आकाश का आवरण करते हैं वैसे गृहाश्रम के व्यवहारों को पूर्ण करें ॥ ११ ॥

विश्वकर्मेत्यस्य विश्वकर्मर्षिः। वायुर्देवता। विकृतिश्छन्दः। मध्यम स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में उपदेश किया है ॥

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीमन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृᳪहान्तरिक्षं मा हिᳪसीः। विश्वस्मै प्राणायाऽपानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय। वायुष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! (विश्वकर्मा) सम्पूर्ण शुभ कर्म करने में कुशल पति जिस (व्यचस्वतीम्) प्रशंसित विज्ञान वा सत्कार से युक्त (प्रथस्वतीम्) उत्तम विस्तृत विद्या वाली (अन्तरिक्षस्य) प्रकाश के (पृष्ठे) एक भाग में (त्वा) तुझ को (सादयतु) स्थापित करे सो तू (विश्वस्मै) सब (प्राणाय) प्राण (अपानाय) अपान (व्यानाय) व्यान और (उदानाय) उदानरूप शरीर के वायु तथा (प्रतिष्ठायै) प्रतिष्ठा (चरित्राय) और शुभ कर्मों के आचरण के लिये (अन्तरिक्षम्) जलादि को (यच्छ) दिया कर (अन्तरिक्षम्) प्रशंसित शुद्ध किये जल से युक्त अन्न और धनादि को (दृंह) बढ़ा और (अन्तरिक्षम्) मधुरता आदि गुणयुक्त रोगनाशक आकाशस्थ सब पदार्थों को (मा हिंसीः) नष्ट मत कर जिस (त्वा) तुझ को (वायुः) प्राण के तुल्य प्रिय पति (मह्या) बड़ी (स्वस्त्या) सुखरूप क्रिया (छर्दिषा) प्रकाश और (शन्तमेन) अति सुखदायक विज्ञान से तुझ को (अभिपातु) सब ओर से रक्षा करे सो तू (तया) उस (देवतया) दिव्य सुख देने वाली क्रिया के साथ वर्त्तमान पतिरूप देवता के साथ (अङ्गिरस्वत्) व्यापक वायु के समान (ध्रुवा) निश्चल ज्ञान से युक्त (सीद) स्थिर हो ॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पुरुष स्त्री को अच्छे कर्मों में नियुक्त करे वैसे स्त्री भी अपने पति को अच्छे कर्मों में प्रेरणा करे जिस से निरन्तर आनन्द बढ़े ॥ १२ ॥

राज्ञ्यसीत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । दिशो देवताः । विराट् पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

राज्ञ्यसि प्राची दिग्विराडसि दक्षिणा दिक् सम्राडसि प्रतीची दिक् स्वराडस्युदीची दिगधिपत्न्यसि बृहती दिक् ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! जो तू (प्राची) पूर्व (दिक्) दिशा के तुल्य (राज्ञी) प्रकाशमान (असि) है (दक्षिणा) दक्षिण (दिक्) दिशा के समान (विराट्) अनेक प्रकार का विनय और विद्या के प्रकाश से युक्त (असि) है (प्रतीची) पश्चिम (दिक्) दिशा के सदृश (सम्राट्) चक्रवती राजा के सदृश अच्छे सुखयुक्त पृथिवी पर प्रकाशमान (असि) है (उदीची) उत्तर (दिक्) दिशा के तुल्य (स्वराट्) स्वयं प्रकाशमान (असि) है (बृहती) बड़ी (दिक्) ऊपर नीचे की दिशा के तुल्य (अधिपत्नी) घर में अधिकार को प्राप्त हुई (असि) है सो तू सब पति आदि को तृप्त कर ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे दिशा सब ओर से अभिव्याप्त बोध करने हारी चञ्चलतारहित हैं वैसे ही स्त्री शुभ गुण कर्म और स्वभावों से युक्त होवे ॥ १३ ॥

विश्वकर्मेत्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः । वायुर्देवता । स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी उक्त विषय ही अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् । विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ । वायुष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! जिस (ज्योतिष्मतीम्) बहुत विज्ञान वाली (त्वा) तुझ को (विश्वस्मै) सब (प्राणाय) प्राण (अपानाय) अपान और (व्यानाय) व्यान की पुष्टि के लिये (अन्तरिक्षस्य) जल के (पृष्ठे) ऊपरले भाग में (विश्वकर्मा) सब शुभ कर्मों का चाहने हारा पति (सादयतु) स्थापित करे सो तू (विश्वम्) सम्पूर्ण (ज्योतिः) विज्ञान को (यच्छ) ग्रहण कर जो (वायुः) प्राण के समान प्रिय (ते) तेरा (अधिपतिः) स्वामी है (तया) उस (देवतया) देवस्वरूप पति के साथ (ध्रुवा) दृढ़ (अङ्गिरस्वत्) सूर्य्य के समान (सीद) स्थिर हो ॥ १४ ॥

भावार्थः—स्त्री को उचित है कि ब्रह्मचर्य्याश्रम के साथ आप विद्वान् हो के शरीर आत्मा का बल बढ़ाने के लिए अपने सन्तानों को निरन्तर विज्ञान देवे । यहां तक ग्रीष्म ऋतु का व्याख्यान पूरा हुआ ॥ १४ ॥

नभश्चेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । ऋतवो देवताः । स्वराडुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब वर्षा ऋतु का व्याख्यान अगले मन्त्र में कहा है ॥

नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतूऽअग्नेरन्तःश्लेषोसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। येऽअग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवीऽइमे वार्षिकावृतूऽअभिकल्पमानाऽइन्द्रमिव देवाऽअभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे स्त्रीपुरुषो ! तुम दोनों जो (नभः) प्रवर्तित मेघों वाला श्रावण (च) और (नभस्यः) वर्षा का मध्यभागी भाद्रपद (च) ये दोनों (वार्षिकौ) वर्षा (ऋतू) ऋतु के महीने (मम) मेरे (ज्यैष्ठ्याय) प्रशंसित होने के लिये हैं जिन में (अग्नेः) उष्ण तथा (अन्तःश्लेषः) जिन के मध्य में शीत का स्पर्श (असि) होता है जिन के साथ (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि समर्थ होते हैं उन के भोग में तुम दोनों (कल्पेताम्) समर्थ हो जैसे ऋतु योग से (आपः) जल और (ओषधयः) ओषधि वा (अग्नयः) अग्नि (पृथक्) जल से अलग समर्थ होते हैं वैसे (सव्रताः) एक प्रकार के श्रेष्ठ नियम (समनसः) एक प्रकार का ज्ञान देने हारे (अग्नयः) तेजस्वी लोग (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें (ये) जो (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि वर्षा ऋतु के गुणों में समर्थ होते हैं उन को (वार्षिकौ) (ऋतू) वर्षाऋतुरूप (अभिकल्पमानाः) सब ओर से सुख के लिये समर्थ करते हुए विद्वान् लोग (इन्द्रमिव) बिजुली के समान प्रकाश और बल को (तया) उस (देवतया) दिव्य वर्षा ऋतु के साथ (अभिसंविशन्तु) सन्मुख होकर अच्छे प्रकार स्थित होवें (अन्तरा) उन दोनों महीनों में प्रवेश करके (अङ्गिरस्वत्) प्राण के समान परस्पर प्रेमयुक्त (ध्रुवे) निश्चल (सीदतम्) रहो ॥ १५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के समान वर्षा ऋतु में वह सामग्री ग्रहण करें जिस से सब सुख होवें ॥ १५ ॥

इषश्चेत्यस्य विश्वेदेवा ऋषयः । ऋतवो देवताः । भुरिगुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब शरद् ऋतु का व्याख्यान अगले मन्त्र में किया है ॥

इषश्चोर्जश्च शारदावृतूऽअग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । येऽअग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवीऽइमे शारदावृतूऽअभिकल्पमानाऽइन्द्रमिव देवाऽअभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (इषः) चाहने योग्य क्वार महीना (च) और (ऊर्जः) सब पदार्थों के बलवान् होने का हेतु कार्त्तिक (च) ये दोनों (शारदौ) शरद् (ऋतू) ऋतु के महीने (मम) मेरे (जैष्ठ्याय) प्रशंसित सुख होने के लिये होते हैं। जिन के (अन्तःश्लेषः) मध्य में (किञ्चित्) शीतस्पर्श (असि) होता है वे (द्यावापृथिवी) अवकाश और पृथिवी को (कल्पेताम्) समर्थ करें (आपः) जल और (ओषधयः) ओषधियां (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें (सव्रताः) सब कार्यों के नियम करने हारे (अग्नयः) शरीर के अग्नि (पृथक्) अलग (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (ये) जो (अन्तरा) बीच में (समनसः) मन के सम्बन्धी (अग्नयः) बाहर के भी अग्नि (इमे) इन (द्यावापृथिवी) आकाश भूमि को (कल्पेताम्) समर्थ करें (शारदौ) शरद् (ऋतू) ऋतु के दोनों महीनों में (इन्द्रमिव) परमैश्वर्य के तुल्य (अभिकल्पमानाः) सब ओर से आनन्द की इच्छा करते हुए (देवाः) विद्वान् लोग (अभिसंविशन्तु) प्रवेश करें (तया) उस (देवतया) दिव्य शरद् ऋतु रूप देवता के नियम के साथ (ध्रुवे) निश्चल सुख वाले (सीदतम्) प्राप्त होते हैं वैसे तुम लोगों को (ज्यैष्ठ्याय) प्रशंसित सुख होने के लिये भी होने योग्य हैं ॥ १६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो शरद् ऋतु में उपयोगी पदार्थ हैं उन को यथायोग्य शुद्ध करके सेवन करो ॥ १६ ॥

आयुर्म इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । छन्दांसि देवताः । भुरिगतिजगती छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचम्मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानम्मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे स्त्री वा पुरुष ! तू शरद् ऋतु में (मे) मेरी (आयुः) अवस्था की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (प्राणम्) प्राण की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (अपानम्) अपान वायु की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (व्यानम्) व्यान की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (चक्षुः) नेत्रों की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरे (श्रोत्रम्) कानों की (पाहि) रक्षा कर (मे) मेरी (वाचम्) वाणी को (पिन्व) अच्छी शिक्षा से युक्त कर (मे) मेरे (मनः) मन को (जिन्व) तृप्त कर (मे) मेरे (आत्मानम्) चेतन आत्मा की (पाहि) रक्षा कर और (मे) (मेरे) लिये (ज्योतिः) विज्ञान का (यच्छ) दान कर ॥ १७ ॥

भावार्थः—स्त्री पुरुष का और पुरुष स्त्री की जैसे अवस्था आदि की वृद्धि होवे वैसे परस्पर नित्य आचरण करें ॥ १७ ॥

मा च्छन्द इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । छन्दांसि देवताः । भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

स्त्री पुरुषों को कैसे विज्ञान बढ़ाना चाहिये इस विषय का उपदेश
अगले मन्त्र में किया है ॥

मा च्छन्दः प्रमा च्छन्दः प्रतिमा च्छन्दोऽअस्रीवयश्छन्दः पंक्तिश्छन्दऽ-उष्णिक् छन्दो बृहती छन्दोऽनुष्टुप् छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्दस्त्रिष्टुप् छन्दो जगती छन्दः ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (मा) परिमाण का हेतु (छन्दः) आनन्दकारक (प्रमा) प्रमाण का हेतु बुद्धि (छन्दः) बल प्रतिमा जिस से प्रतीति निश्चय की क्रिया हेतु (छन्दः) स्वतन्त्रता (अस्रीवयः) बल और कान्तिकारक अन्नादि पदार्थ (छन्दः) बलकारी विज्ञान (पङ्क्तिः) पांच अवयवों से युक्त योग (छन्दः) प्रकाश (उष्णिक्) स्नेह (छन्दः) प्रकाश (बृहती) बड़ी प्रकृति (छन्दः) आश्रय (अनुष्टुप्) सुखों का आलम्बन (छन्दः) भोग (विराट्) विविध प्रकार की विद्याओं का प्रकाश (छन्दः) विज्ञान (गायत्री) गाने वाले का रक्षक ईश्वर (छन्दः) उसका बोध (त्रिष्टुप्) तीन सुखों का आश्रय (छन्दः) आनन्द और (जगती) जिस में सब जगत् चलता है उस (छन्दः) पराक्रम को ग्रहण कर और जान के सब को सुखयुक्त करो ॥ १८ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य निश्चय के हेतु आनन्द आदि से साध्य, धर्मयुद्ध कर्मों को सिद्ध करते हैं वे सुखों से शोभायमान होते हैं ॥ १८ ॥

पृथिवी छन्द इत्यस्य विश्वदेवर्षिः । पृथिव्यादयो देवताः । आर्षी जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर वही उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षं छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दो वाक् छन्दो मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यं छन्दो गौश्छन्दोऽजाच्छन्दोऽश्वश्छन्दः ॥१९॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! तुम लोग जैसे (पृथिवी) भूमि (छन्दः) स्वतन्त्र (अन्तरिक्षम्) आकाश (छन्दः) आनन्द (द्यौः) प्रकाश (छन्दः) विज्ञान (समाः) वर्ष (छन्दः) बुद्धि (नक्षत्राणि) तारे लोक (छन्दः) स्वतन्त्र (वाक्) वाणी (छन्दः) सत्य (मनः) मन (छन्दः) निष्कपट (कृषिः) जोतना (छन्दः) उत्पत्ति (हिरण्यम्) सुवर्ण (छन्दः) सुख-दायी (गौः) गौ (छन्दः) आनन्द-हेतु (अजा) बकरी (छन्दः) सुख का हेतु और (अश्वः) घोड़े आदि (छन्दः) स्वाधीन हैं वैसे विद्या विनय और धर्म के आचरण विषय में स्वाधीनता से वर्त्तो ॥ १९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । स्त्री पुरुषों को चाहिये कि शुद्ध विद्या क्रिया स्वतन्त्रता से पृथिवी आदि पदार्थों के गुण कर्म और स्वभावों को जान खेती आदि कर्मों से सुवर्ण आदि रत्नों को प्राप्त हों और गौ आदि पशुओं की रक्षा करके ऐश्वर्य्य बढ़ावें ॥ १९ ॥

अग्निर्देवतेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । भुरिग् ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता ॥ २० ॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! तुम लोगों को योग्य है कि (अग्निः) प्रसिद्ध अग्नि (देवताः) दिव्य गुण वाला (वातः) पवन (देवता) शुद्धगुणयुक्त (सूर्य्यः) सूर्य्य (देवता) अच्छे गुणों वाला (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (देवता) शुद्ध गुणयुक्त (वसवः) प्रसिद्ध आठ अग्नि आदि वा प्रथम कक्षा के विद्वान् (देवता) दिव्यगुण वाले (रुद्राः) प्राण आदि ११ ग्यारह वा मध्यम कक्षा के विद्वान् (देवता) शुद्ध गुणों वाले (आदित्याः) बारह महीने वा उत्तम कक्षा के विद्वान् लोग (देवता) शुद्ध (मरुतः) मननकर्त्ता विद्वान् ऋत्विग् लोग (देवता) दिव्य गुण वाले (विश्वे) सब (देवता) अच्छे गुणों वाले विद्वान् मनुष्य वा दिव्य पदार्थ (देवता) देवसंज्ञा वाले हैं (बृहस्पतिः) बड़े वचन वा ब्रह्माण्ड का रक्षक परमात्मा (देवता) (इन्द्रः) बिजुली वा उत्तम धन (देवता) दिव्य गुणयुक्त और (वरुणः) जल वा श्रेष्ठ गुणों वाला पदार्थ (देवता) अच्छे गुणों वाला है इन को तुम निश्चय जानो ॥ २० ॥

भावार्थः—इस संसार में जो अच्छे गुणों वाले पदार्थ हैं वे दिव्य गुण कर्म और स्वभाव वाले होने से देवता कहाते हैं और जो देवतों का देवता होने से महादेव सब का धारक रचक रक्षक सब की व्यवस्था और प्रलय करने हारा सर्वशक्तिमान् दयालु न्यायकारी उत्पत्ति धर्म से रहित है उस सब के अधिष्ठाता परमात्मा को सब मनुष्य जानें ॥ २० ॥

मूर्द्धासीत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । विदुषी देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

विदुषी स्त्री कैसी हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

मूर्द्धासि राड् ध्रुवासि धरुणा धर्त्र्यसि धरणी । आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! जो तू सूर्य के तुल्य (मूर्द्धा) उत्तम (असि) है (राट्) प्रकाशमान निश्चल के समान (ध्रुवा) निश्चल शुद्ध (असि) है (धरुणा) पुष्टि करने हारी (धरणी) आधार रूप पृथिवी के तुल्य (धर्त्री) धारण करने हारी (असि) है उस (त्वा) तुझे (आयुषे) जीवन के लिये उस (त्वा) तुझे (वर्चसे) अन्न के लिये उस (त्वा) तुझे (कृष्यै) खेती होने के लिये और उस (त्वा) तुझ को (क्षेमाय) रक्षा होने के लिये मैं सब ओर से ग्रहण करता हूं ॥ २१ ॥

पदार्थः—जैसे स्थित उत्तमांग शिर से सब का जीवन राज्य से लक्ष्मी खेती से अन्न आदि पदार्थ और निवास से रक्षा होती है सो यह सब का आधारभूत माता के तुल्य मान्य करने हारी पृथिवी है वैसे ही विद्वान् स्त्री को होना चाहिये ॥ २१ ॥

यन्त्रीत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । विदुषी देवता । निचृदुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर स्त्री कैसी होवे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

यन्त्री राड् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवासि धरित्री । इषे त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! जो तू (यन्त्री) यन्त्र के तुल्य स्थित (राट्) प्रकाशयुक्त (यन्त्री) यन्त्र का निमित्त पृथिवी के समान (असि) है (यमनी) आकर्षण शक्ति से नियम करने हारी (ध्रुवा) आकाश-सदृश दृढ़ निश्चल (धर्त्री) सब शुभगुणों का धारण करने वाली (असि) है (त्वा) तुझ को (इषे) इच्छा सिद्धि के लिये (त्वा) तुझ को (ऊर्जे) पराक्रम की प्राप्ति के लिये (त्वा) तुझ को (रय्यै) लक्ष्मी के लिये और (त्वा) तुझ को (पोषाय) पुष्टि होने के लिये मैं ग्रहण करता हूँ ॥ २२ ॥

भावार्थः—जो स्त्री पृथिवी के समान क्षमायुक्त आकाश के समान निश्चल और यन्त्रकला के तुल्य जितेन्द्रिय होती है वह कुल का प्रकाश करने वाली है ॥ २२ ॥

आशुस्त्रिवृदित्यस्य विश्वदेव ऋषिः । यज्ञो देवता । पूर्वस्य भुरिग्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । गर्भा इत्युत्तरस्य भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब संवत्सर कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आशुस्त्रिवृद्भान्तः पञ्चदशो व्योमा सप्तदशो धरुणऽएकविंशः प्रतूर्त्तिरष्टादशस्तपो नवदशोऽभीवर्त्तः सविंशो वर्चो द्वाविंशः सम्भरणस्त्रयोविंशो योनिश्चतुर्विंशः । गर्भाः पञ्चविंशऽओजस्त्रिणवः क्रतुरेकत्रिंशः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशो ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिंशो नाकः षट्त्रिंशो विवर्त्तोऽष्टाचत्वारिंशो धर्त्रं चतुष्टोमः ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग इस वर्त्तमान संवत् में (आशुः) शीघ्र (त्रिवृत्) शीत और उष्ण के बीच वर्त्तमान (भान्तः) प्रकाश (पञ्चदशः) पन्द्रह प्रकार का (व्योमा) आकाश के समान विस्तारयुक्त (सप्तदशः) सत्रह प्रकार का (धरुणः) धारण गुण (एकविंशः) इक्कीस प्रकार का (प्रतूर्त्तिः) शीघ्र गति वाला (अष्टादशः) अठारह प्रकार का (तपः) सन्तापी गण (नवदशः) उन्नीस प्रकार का (अभीवर्त्तः) सन्मुख वर्त्तने वाला गुण (सविंशः) इक्कीस प्रकार

की (वर्चः) दीप्ति (द्वाविंशः) बाईस प्रकार का (सम्भरणः) अच्छे प्रकार धारणकारक गुण (त्रयोविंशः) तेईस प्रकार का (योनिः) संयोग वियोगकारी गुण (चतुर्विंशः) चौबीस प्रकार की (गर्भाः) गर्भ धारण की शक्ति (पञ्चविंशः) पच्चीस प्रकार का (ओजः) पराक्रम (त्रिणवः) सत्ताईस प्रकार का (क्रतुः) कर्म्म वा बुद्धि (एकत्रिंशः) एकती प्रकार की (प्रतिष्ठा) सब की स्थिति का निमित्त क्रिया (त्रयस्त्रिंशः) तेंतीस प्रकार की (ब्रध्नस्य) बड़े ईश्वर की (विष्टपम्) व्याप्ति (चतुस्त्रिंशः) चौंतीस प्रकार का (नाकः) आनन्द (षट्त्रिंशः) छत्तीस प्रकार का (विवर्त्तः) विविध प्रकार से वर्त्तने का आधार (अष्टाचत्वारिंशः) अड़तालीस प्रकार का (धर्त्रम्) धारण और (चतुष्टोमः) चार स्तुतियों का आधार है उस को संवत्सर जानो ॥ २३ ॥

भावार्थः—जिस संवत्सर के सम्बन्धी भूत भविष्यत् और वर्तमान काल आदि अवयव हैं उस के सम्बन्ध से ही ये सब संसार के व्यवहार होते हैं ऐसा तुम लोग जानो ॥ २३ ॥

अग्नेर्भाग इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । मेधाविनो देवताः । भुरिग्विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब मनुष्य किस प्रकार विद्या पढ़ के कैसा आचरण करें
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अ॒ग्नेर्भा॒गो॑सि दी॒क्षाया॒ऽआधि॑पत्यं॒ ब्रह्म॑ स्पृ॒तं त्रि॒वृत्स्तोमः॑ । इन्द्र॑स्य भा॒गो॒ऽसि॒ विष्णो॒राधि॑पत्यं क्ष॒त्रᳪ स्पृ॒तं प॑ञ्चद॒श स्तोमः॑ । नृ॒चक्ष॑सां भा॒गो॒ऽसि धा॒तुराधि॑पत्यं ज॒नित्रᳪ स्पृ॒तᳪ स॑प्तद॒श स्तोमः॑ । मि॒त्रस्य॑ भा॒गो॒ऽसि॒ वरु॑णस्या॒धि॑पत्यं दि॒वो वृ॒ष्टिर्वात॑ स्पृ॒तऽएक॑वि॒ᳪशः स्तोमः॑ ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष ! जो तू (अग्नेः) सूर्य्य का (भागः) विभाग के योग्य संवत्सर के तुल्य (असि) है सो तू (दीक्षायाः) ब्रह्मचर्य्य आदि की दीक्षा का (स्पृतम्) प्रीति से सेवन किये हुए (आधिपत्यम्) (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञ कुल के अधिकार को प्राप्त हो जो (त्रिवृत्) शरीर वाणी और मानस साधनों से शुद्ध वर्त्तमान (स्तोमः) स्तुति के योग्य (इन्द्रस्य) बिजुली वा उत्तम ऐश्वर्य्य के (भागः) विभाग के तुल्य (असि) है सो तू (विष्णोः) व्यापक ईश्वर के (स्पृतम्) प्रीति से सेवने योग्य (क्षत्रम्) क्षत्रियों के धर्म के अनुकूल राजकुल के (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो जो तू (पञ्चदशः) पन्द्रह का पूरक (स्तोमः) स्तुतिकर्त्ता (नृचक्षसाम्) मनुष्यों से कहने योग्य पदार्थों के (भागः) विभाग के तुल्य (असि) है सो तू (धातुः) धारण-कर्त्ता के (स्पृतम्) ईप्सित (जनित्रम्) जन्म और (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो जो तू (सप्तदशः) सत्रह संख्या का पूरक (स्तोमः) स्तुति के योग्य (मित्रस्य) प्राण का (भागः) विभाग के समान (असि) है सो तू (वरुणस्य) श्रेष्ठ जलों के (आधिपत्यम्) स्वामीपन को प्राप्त हो जो तू (वातः स्पृतः) सेवित पवन और (एकविंशः) इक्कीस संख्या का पूरक (स्तोमः) स्तुति के साधन के समान (असि) है सो तू (दिवः) प्रकाशरूप सूर्य्य से (वृष्टिः) वर्षा होने का हवन आदि उपाय कर ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पुरुष बाल्यावस्था से लेकर सज्जनों ने उपदेश की हुई विद्याओं के ग्रहण के लिये प्रयत्न कर के अधिकारी होते हैं वे स्तुति के योग्य कर्मों को कर और उत्तम हो के विधान के सहित काल को जान के दूसरों को जनावें ॥ २४ ॥

वसूनां भाग इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। वस्वादयो लिङ्गोक्ता देवताः। स्वराट् संकृतिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

वसूनां भागोऽसि रुद्राणामाधिपत्यं चतुष्पात् स्पृतं चतुर्विंश स्तोमः। आदित्यानां भागोऽसि मरुतामाधिपत्यं गर्भाः स्पृताः पंचविंश स्तोमः। अदित्यै भागोऽसि पूष्णऽआधिपत्यमोजं स्पृतं त्रिणव स्तोमः। देवस्य सवितुर्भागोऽसि बृहस्पतेराधिपत्यꣳ समीचीर्दिशं स्पृताश्चतुष्टोम स्तोमः ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जो तू (वसूनाम्) अग्नि आदि आठ वा प्रथम कक्षा के विद्वानों का (भागः) सेवने योग्य (असि) है सो (रुद्राणाम्) दश प्राण आदि ग्यारहवां जीव वा मध्यकक्षा के विद्वानों के (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो जो (चतुर्विंशः) चौबीस प्रकार का (स्तोमः) स्तुतिकर्त्ता (आदित्यानाम्) बारह महीनों वा उत्तम कक्षा के विद्वानों के (भागः) सेवने योग्य (असि) है सो तू (चतुष्पात्) गौ आदि पशुओं का (स्पृतम्) सेवन कर (मरुताम्) मनुष्य वा पशुओं के (आधिपत्यम्) अधिष्ठता हो जो तू (पञ्चविंशः) पच्चीस प्रकार का (स्तोमः) स्तुति के योग्य (अदित्यै) अखण्डित आकाश का (भागः) विभाग के के तुल्य (असि) है सो तू (पूष्णः) पुष्टिकारक पृथिवी से (स्पृतम्) सेवने योग्य (ओजः) बल को प्राप्त हो के (आधिपत्यम्) अधिकार को (प्राप्नुहि) प्राप्त हो जो तू (त्रिणवः) सत्ताईस प्रकार का (स्तोमः) स्तुति के योग्य (देवस्य) सुखदाता (सवितुः) पिता का (भागः) विभाग (असि) है सो तू (बृहस्पतेः) बड़ी वेदरूपी वाणी के पालक ईश्वर के दिये हुए (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो जो तू (चतुष्टोमः) चार वेदों से कहने योग्य स्तुतिकर्त्ता है सो तू (गर्भाः) गर्भ के तुल्य विद्या और शुभ गुणों से आच्छादित (स्पृताः) प्रीतिमान् सज्जन लोग जिन को जानते हैं उन (समीचीः) सम्यक् प्राप्ति के साधन (स्पृताः) प्रीति का विषय (दिशः) पूर्व दिशाओं को जान ॥ २५ ॥

भावार्थः—जो सुन्दर स्वभाव आदि गुणों का ग्रहण करते हैं वे विद्वानों के प्यारे होके सब के अधिष्ठाता होते हैं और जो सब के ऊपर अधिकारी हों वे मनुष्यों में पिता के समान वर्त्तें ॥ २५ ॥

यवानां भाग इत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। ऋभवो देवताः। निचृदतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर वह शरद् ऋतु में कैसे वर्त्ते यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

यवा॑नां भा॒गो॑ऽस्यय॑वाना॒माधि॑पत्यं प्र॒जा स्पृ॒ताश्च॑तुश्चत्वारि॒ꣳश स्तोम॑ः।
ऋभूणां भा॒गो॑ऽसि विश्वे॑षां दे॒वाना॒माधि॑पत्यं भू॒तꣳ स्पृ॒तं त्र॑यस्त्रि॒ꣳश स्तोम॑ः
॥ २६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! जो तू (यवानाम्) मिले हुए पदार्थों का सेवन करने हारा शरद् ऋतु के समान (असि) है जो (अयवानाम्) पृथक्-पृथक् धर्म वाले पदार्थों के (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त होकर (स्पृताः) प्रीति से (प्रजाः) पालने योग्य प्रजाओं को प्रेमयुक्त करता है जो (चतुश्चत्वारिंशः) चवालीस संख्या का पूर्ण करने वाला (स्तोमः) स्तुति के योग्य (ऋभूणाम्) बुद्धिमानों के (भागः) सेवने योग्य (असि) है (विश्वेषाम्) सब विद्वानों के (भूतम्) हो चुके (स्पृतम्) सेवन किये हुए (आधिपत्यम्) अधिकार को प्राप्त हो कर जो (त्रयस्त्रिंशः) तेंतीस संख्या का पूरक (स्तोमः) स्तुति के विषय के समान (असि) है सो तू हम लोगों से सत्कार के योग्य है ॥ २६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जो ये पीछे के मन्त्र में शरद् ऋतु के गुण कहे हैं उन का यथावत् सेवन करें। यह शरद् ऋतु का व्याख्यान पूरा हुआ ॥ २६ ॥

सहश्चेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। ऋतवो देवताः। पूर्वस्य भुरिगति जगती छन्दः। निषादः स्वरः। ये अग्नय इत्युत्तरस्य भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अब हेमन्त ऋतु के विधान को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सह॑श्च सह॒स्य॑श्च॒ हैम॑न्तिकावृ॒तूऽअ॒ग्नेर॑न्तःश्ले॒षो॑ऽसि॒ कल्पे॑तां॒ द्यावा॑पृथि॒वी कल्प॑न्ता॒माप॒ऽओष॑धय॒ः कल्प॑न्ताम॒ग्नय॒ः पृथ॒ङ् मम॒ ज्यैष्ठ्या॑य॒ सव्र॑ताः। येऽअ॒ग्नय॒ः सम॑नसोऽन्त॒रा द्यावा॑पृथि॒वीऽइ॒मे हैम॑न्तिकावृ॒तूऽअ॑भि॒कल्प॑माना॒ऽइन्द्र॑मिव दे॒वाऽअ॑भि॒सं॒वि॑शन्तु॒ तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वे सी॑दतम् ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे मित्रजन ! जो (मम) मेरे (ज्यैष्ठ्याय) वृद्ध श्रेष्ठ जनों के होने के लिये (सहः) बलकारी अगहन (च) और (सहस्यः) बल में प्रवृत्त हुआ पौष (च) ये दोनों महीने (हैमन्तिकौ) (ऋतू) हेमन्त ऋतु में हुए अपने चिह्न जानने वाले (अङ्गिरस्वत्) उस ऋतु के प्राण के समान (सीदतम्) स्थिर हैं जिस ऋतु के (अन्तःश्लेषः) मध्य में स्पर्श होता है उस के समान तू (असि) है सो तू उस ऋतु से (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि (कल्पेताम्) समर्थ हों (आपः) जल और (ओषधयः) ओषधियां और (अग्नयः) सफेदाई से युक्त अग्नि (पृथक्) पृथक्-पृथक् (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ऐसा जान (ये) जो (अग्नयः) अग्नियों के तुल्य (अन्तरा) भीतर प्रविष्ट होने वाले (सव्रताः) नियमधारी (समनसः) अविरुद्ध विचार करने वाले लोग (इमे) इन (ध्रुवे) दृढ़ (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि को (कल्पन्ताम्) समर्थित करें (इन्द्रमिव) ऐश्वर्य्य के तुल्य (हैमन्तिकौ)

(ऋतू) हेमन्त ऋतु के दोनों महीनों को (अभिकल्पमानाः) सन्मुख होकर समर्थ करने वाले (देवाः) दिव्य गुण बिजुली के समान (अभिसंविशन्तु) आवेश करें। वे सज्जन लोग (तया) उस (देवतया) प्रकाशस्वरूप परमात्मा देव के साथ प्रेमबद्ध हो के नियम से आहार और विहार कर के सुखी हों ॥ २७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वानों को योग्य है कि यथायोग्य सुख के लिये हेमन्त ऋतु में पदार्थों का सेवन करें और वैसे ही दूसरों को भी सेवन करावें ॥ २७ ॥

एकयेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। ईश्वरो देवता। निचृद्विकृतिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

अब यह ऋतुओं का चक्र किसने रचा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है ॥

एकयास्तुवत प्रजाऽअधीयन्त प्रजापतिरधिपतिरासीत्। तिसृभिरस्तुवत ब्रह्मासृज्यत ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीत्। पञ्चभिरस्तुवत भूतान्यसृज्यन्त भूतानां पतिरधिपतिरासीत्। सप्तभिरस्तुवत सप्त ऋषयोऽसृज्यन्त धाताधिपतिरासीत् ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (प्रजापतिः) प्रजा का पालक (अधिपतिः) सब का अध्यक्ष परमेश्वर (आसीत्) है उस की (एकया) एक वाणी से (अस्तुवत) स्तुति करो और जिसने सब (प्रजाः) प्रजा के लोगों को वेदद्वारा (अधीयन्त) विद्यायुक्त किये हैं जो (ब्रह्मणस्पतिः) वेद का रक्षक (अधिपतिः) सब का स्वामी परमात्मा (आसीत्) है जिसने यह (ब्रह्म) सकलविद्यायुक्त वेद को (असृज्यत) रचा है उस की (तिसृभिः) प्राण उदान और व्यान वायु की गति से (अस्तुवत) स्तुति करो जिस ने (भूतानि) पृथिवी आदि भूतों को (असृज्यन्त) रचा है जो (भूतानाम्) सब भूतों का (पतिः) रक्षक (अधिपतिः) रक्षकों का भी रक्षक (आसीत्) है उस की सब मनुष्य (पञ्चभिः) समान वायु चित्त बुद्धि अहंकार और मन से (अस्तुवत) स्तुति करें जिस ने (सप्तऋषयः) पांच मुख्य प्राण, महत्तत्व समष्टि और अहंकार सात पदार्थ (असृज्यन्त) रचे हैं जो (धाता) धारण वा पोषणकर्त्ता (अधिपतिः) सब का स्वामी (आसीत्) है उस की (सप्तभिः) नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और इच्छा तथा प्रयत्नों से (अस्तुवत) स्तुति करो ॥ २८ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को योग्य है कि सब जगत् के उत्पादक न्यायकर्त्ता परमात्मा की स्तुति करें, सुनें, विचारें और अनुभव करें। जैसे हेमन्त ऋतु में सब पदार्थ शीतल होते हैं वैसे ही परमेश्वर की उपासना करके शान्तिशील होवें ॥ २८ ॥

नवभिरस्तुवतेत्यस्य विश्वदेव ऋषिः। ईश्वरो देवता। पूर्वस्यार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। त्रयोदशभिरित्युत्तरस्य ब्राह्मी जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर वह जगत् का रचने वाला कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

नवभिरस्तुवत पितरोऽसृज्यन्तादितिरधिपत्न्यासीत् । एकादशभिरस्तुवत ऽऋतवोऽसृज्यन्तार्त्तवाऽअधिपतयऽआसन् । त्रयोदशभिरस्तुवत मासाऽअसृज्यन्त संवत्सरोऽधिपतिरासीत् । पञ्चदशभिरस्तुवत क्षत्रमसृज्यतेन्द्रोऽधिपतिरासीत् । सप्तदशभिरस्तुवत ग्राम्याः पशवोऽसृज्यन्त बृहस्पतिरधिपतिरासीत् ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जिस ने (पितरः) रक्षक मनुष्य (असृज्यन्त) उत्पन्न किये हैं जहां (अदितिः) रक्षा के योग्य (अधिपत्नी) अत्यन्त रक्षक माता (आसीत्) होवे उस परमात्मा की (नवभिः) नव प्राणों से (अस्तुवत) गुण प्रशंसा करो जिस ने (ऋतवः) वसन्त आदि ऋतु (असृज्यन्त) रचे हैं जहां (आर्त्तवाः) उन उन ऋतुओं के गुण (अधिपतयः) अपने अपने विषय में अधिकारी (आसन्) होते हैं उस की (एकादशभिः) दश प्राणों और ग्यारहवें आत्मा से (अस्तुवत) स्तुति करो जिस ने (मासाः) चैत्रादि बारह महीने (असृज्यन्त) रचे हैं (पञ्चदशभिः) पन्द्रह तिथियों के सहित (संवत्सरः) संवत्सर (अधिपतिः) सब काल का अधिकारी रचा (आसीत्) है उस की (त्रयोदशभिः) दश प्राण ग्यारहवां जीवात्मा और दो प्रतिष्ठाओं से (अस्तुवत) स्तुति करो जिन से (इन्द्रः) परम सम्पत्ति का हेतु सूर्य्य (अधिपतिः) अधिष्ठाता उत्पन्न किया (आसीत्) है जिस ने (क्षत्रम्) राज्य वा क्षत्रियकुल को (असृज्यत) रचा है उसको (सप्तदशभिः) दश पांव की अंगुली, दो जंघा, दो जानु, दो प्रतिष्ठा और एक नाभि से ऊपर का अङ्ग, इन सत्रहों से (अस्तुवत) स्तुति करो जिस ने (बृहस्पतिः) बड़े बड़े पदार्थों का रक्षक वैश्य (अधिपति.) अधिकारी रचा (आसीत्) है और (ग्राम्याः) ग्राम के (पशवः) गौ आदि पशु (असृज्यन्त) रचे हैं उस परमेश्वर की पूर्वोक्त सब पदार्थों से युक्त होके (अस्तुवत) स्तुति करो ॥ २९ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग जिस ने काल के विभाग करने वाले सूर्य्य आदि पदार्थ रचे हैं उस परमेश्वर की उपासना करो ॥ २९ ॥

नवदशभिरित्यस्य विश्वदेव ऋषिः । जगदीश्वरो देवता । पूर्वस्य ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । पञ्चविंशत्येत्यस्य ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नवदशभिरस्तुवत शूद्रार्य्यावसृज्येतामहोरात्रेऽअधिपत्नीऽआस्ताम् । एकविंशत्यास्तुवतैकशफाः पशवोऽसृज्यन्त वरुणोऽधिपतिरासीत् । त्रयोविंशत्यास्तुवत क्षुद्राः पशवोऽसृज्यन्त पूषाधिपतिरासीत् । पञ्चविंशत्यास्तुवताऽऽरण्याः पशवोऽसृज्यन्त वायुरधिपतिरासीत् । सप्तविंशत्यास्तुवत द्यावापृथिवी व्यैतां वसवो रुद्राऽआदित्याऽअनुव्यायँस्तऽएवाधिपतयऽआसन् ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम जिसने उत्पन्न किये (अहोरात्रे) दिन और रात्रि (अधिपत्नी) सब काम कराने के अधिकारी (आस्ताम्) हैं जिसने (शूद्रार्य्यौ) शूद्र और आर्य्य द्विज ये दोनों (असृज्येताम्) रचे हैं उस की (नवदशभिः) दश प्राण पांच महाभूत मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कारों से (अस्तुवत) स्तुति करो । जिसने उत्पन्न किया (वरुणः) जल (अधिपतिः) प्राण के समान प्रिय अधिष्ठाता (आसीत्) है जिसने (एकशफाः) जुड़े एक खुरों वाले घोड़े आदि (पशवः) पशु (असृज्यन्त) रचे हैं उस की (एकविंशत्या) मनुष्यों के इक्कीस अवयवों से (अस्तुवत) स्तुति करो जिसने बनाया (पूषा) पुष्टिकारक भूगोल (अधिपतिः) रक्षा करने वाला (आसीत्) है जिसने (क्षुद्राः) अतिसूक्ष्म जीवों से लेकर नकुलपर्यन्त (पशवः) पशु (असृज्यन्त) रचे हैं उस की (त्रयोविंशत्या) पशुओं के तेईस अवयवों से (अस्तुवत) स्तुति करो । जिसने बनाया हुआ (वायुः) वायु (अधिपतिः) पालने हारा (आसीत्) है जिसने (आरण्याः) वन के (पशवः) सिंह आदि पशु (असृज्यन्त) रचे हैं (पञ्चविंशत्या) अनेकों प्रकार के छोटे छोटे वन्य पशुओं के अवयवों के साथ अर्थात् उन अवयवों की कारीगरी के साथ (अस्तुवत) प्रशंसा करो जिसने बनाये (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि (ऐताम्) प्राप्त हैं जिस के बनाने से (वसवः) अग्नि आदि आठ पदार्थ वा प्रथम कक्षा के विद्वान् (रुद्राः) प्राण आदि वा मध्यम विद्वान् (आदित्याः) बारह महीने वा उत्तम विद्वान् (अनुव्यायन्) अनुकूलता से उत्पन्न हैं (ते) (एव) वे अग्नि आदि ही वा विद्वान् लोग (अधिपतयः) अधिष्ठाता (आसन्) होते हैं उस की (सप्तविंशत्या) सत्ताईस वन के पशुओं के गुणों से (अस्तुवत) स्तुति करो ॥ ३० ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिसने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र डाकू मनुष्य भी रचे हैं जिसने स्थूल तथा सूक्ष्म प्राणियों के शरीर अत्यन्त छोटे पशु और इन की रक्षा के साधन पदार्थ रचे और जिस की सृष्टि में न्यून विद्या और पूर्ण विद्या वाले विद्वान् होते हैं उसी परमात्मा की तुम लोग उपासना करो ॥ ३० ॥

नवविंशत्येत्यस्य विश्वदेव ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । स्वराड् ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर भी वही उक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नवविंꣳशत्यास्तुवत वनस्पतयोऽसृज्यन्त सोमोऽधिपतिरासीत् । एकत्रिꣳशतास्तुवत प्रजाऽअसृज्यन्त यवाश्चायवाश्चाधिपतयऽआसन् । त्रयस्त्रिꣳशतास्तुवत भूतान्यशाम्यन् प्रजापतिः । परमेष्ठ्यधिपतिरासीत् ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जिन के बनाने से (सोमः) ओषधियों में उत्तम ओषधि (अधिपतिः) स्वामी (आसीत्) है जिसने उन (वनस्पतयः) पीपल आदि वनस्पतियों को (असृज्यन्त) रचा है उस परमात्मा की (नवविंशत्या) उनतीस प्रकार के वनस्पतियों के गुणों से (अस्तुवत) स्तुति करो और जिसने उत्पन्न किये (यवाः) समष्टिरूप बने पर्वत आदि (च) और त्रसरेणु आदि (अयवाः) भिन्न भिन्न प्रकृति के अवयव सत्व रजस् और तमोगुण (च)

तथा परमाणु आदि (अधिपतयः) मुख्य कारणरूप अध्यक्ष (आसन्) हैं उन (प्रजाः) प्रसिद्ध ओषधियों को जिसने (असृज्यन्त) रचा है उस ईश्वर की (एकत्रिंशता) इकत्तीस प्रजा के के अवयवों से (अस्तुवत) प्रशंसा करो। जिस के प्रभाव से (भूतानि) प्रकृति के परिणाम महत्तत्व के उपद्रव (अशाम्यन्) शान्त हों जो (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक (परमेष्ठी) परमेश्वर के समान आकाश में व्यापक हो के स्थित परमेश्वर (अधिपतिः) अधिष्ठाता (आसीत्) है उस की (त्रयस्त्रिंशता) महाभूतों के तेतीस गुणों से (अस्तुवत) प्रशंसा करो ।। ३१ ।।

भावार्थः—जिस परमेश्वर ने लोकों की रक्षा के लिये वनस्पति आदि ओषधियों को रच के धारण और व्यवस्थित किया है उसी की उपासना सब मनुष्यों को करनी चाहिये ।। ३१ ।।

इस अध्याय में वसन्तादि ऋतुओं के गुण-वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की संगति पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ जाननी चाहिये ।।

यह चौदहवां (१४) अध्याय समाप्त हुआ ।।



॥ ओ३म् ॥

* अथ पञ्चदशाऽध्यायारम्भः *



ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥ १ ॥
य० ३० । ३ ॥

अग्ने जातानित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अब पन्द्रहवें अध्याय का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में राजा और राजपुरुषों को क्या २ करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अग्ने जातान् प्रणुदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान्नुद जातवेदः । अधि नो ब्रूहि सुमनाऽअहेडँस्तव स्याम शर्मंस्त्रिवरूथऽउद्भौ ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) राजन् वा सेनापते ! आप (नः) हमारे (जातान्) प्रसिद्ध (सपत्नान्) शत्रुओं को (प्र, नुद) दूर कीजिये । हे (जातवेदः) प्रसिद्ध बलवान् ! आप (अजातान्) अप्रसिद्ध शत्रुओं को (नुद) प्रेरणा कीजिये और हमारा (अहेडन्) अनादर न करते हुए (सुमनाः) प्रसन्नचित्त आप (नः) (प्रति) हमारे प्रति (अधिब्रूहि) अधिक उपदेश कीजिये जिससे हम लोग (तव) आप के (उद्भौ) उत्तम पदार्थों से युक्त (त्रिवरूथे) आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीनों सुखों के हेतु (शर्मन्) घर में (स्याम) सुखी होवें ॥ १ ॥

भावार्थः—राजा आदि न्यायाधीश सभासदों को चाहिये कि गुप्त दूतों से प्रसिद्घ और अप्रद्घि शत्रुओं को निश्चय करके वश में करें और किसी धर्मात्मा का तिरस्कार और अधर्मी का सत्कार भी कभी न करें जिस से सब सज्जन लोग विश्वासपूर्वक राज्य में वसें ॥ १ ॥

सहसा जातानित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सहसा जातान् प्रणुदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व । अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानो वयꣳ स्याम प्रणुदा नः सपत्नान् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) प्रकृष्ट ज्ञान को प्राप्त हुए राजन् ! आप (नः) हमारे (सहसा) बल के सहित (जातान्) प्रसिद्ध हुए (सपत्नान्) शत्रुओं को (प्रणुद) जीतिये और उन (प्रति) (अजातान्) युद्ध में छिपे हुए शत्रुओं के सेवक मित्रभाव से प्रसिद्धों को (नुदस्व) पृथक् कीजिये तथा (सुमनस्यमानः) अच्छे प्रकार विचारते हुए आप (नः) हमारे लिये (अधिब्रूहि) अधिकता से विजय के विधान का उपदेश कीजिये (वयम्) हम लोग आप के सहायक (स्याम) होवें जिन (नः) हमारे (सपत्नान्) विरोध में प्रवृत्त सम्बन्धियों को आप (प्रणुद) मारें उन को हम लोग भी मारें ॥ २ ॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि जो राज्य के सेवक शत्रुओं के निवारण करने में यथाशक्ति प्रयत्न न करें उन को अच्छे प्रकार दण्ड देवें और जो अपने सहायक हों उन का सत्कार करें ॥ २ ॥

षोडशीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । दम्पती देवते । ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब स्त्री पुरुष का धर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

षोडशी स्तोम ओजो द्रविणं चतुश्चत्वारिंꣳश स्तोमो वर्चो द्रविणम् । अग्नेः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वेऽअभि गृणन्तु देवाः । स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्व ॥ ३ ॥

पदार्थः—जो (षोडशी) प्रशंसित सोलह कलाओं से युक्त (स्तोमः) स्तुति के योग्य (ओजः) पराक्रम (द्रविणम्) धन जो (चतुश्चत्वारिंशः) चवालीस संख्या को पूर्ण करने वाला ब्रह्मचर्य का आचरण (स्तोमः) स्तुति का साधन (नाम) प्रसिद्ध (वर्चः) पढ़ना और (द्रविणम्) बल को देती है । जो (अग्नेः) अग्नि की (पुरीषम्) पूर्त्ति को प्राप्त (अप्सः) दूसरे के पदार्थों के भोग की इच्छा से रहित (असि) हो उस (त्वा) पुरुष तथा (ताम्) स्त्री की (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (अभिगृणन्तु) प्रशंसा करें सो तू (स्तोमपृष्ठा) इष्ट स्तुतियों को जनाने वाली (घृतवती) प्रशंसित घी आदि पदार्थों से युक्त (इह) इस गृहाश्रम में (सीद) स्थित हो और (अस्मे) हमारे लिये (प्रजावत्) बहुत सन्तानों के हेतु (द्रविणा) धन को (यजस्व) दिया कर ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सोलह कला रूप जगत् में विद्यारूप बल को फैला और गृहाश्रम करके विद्यादानादि कर्मों को निरन्तर किया करें ॥ ३ ॥

एवश्छन्द इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विद्वांसो देवताः । निचृदाकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि प्रयत्नपूर्वक साधनों से सुख बढ़ावें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

एवश्छन्दो वरिवश्छन्दः शम्भूश्छन्दः परिभूश्छन्दऽआच्छच्छन्दो मनश्छन्दो व्यचश्छन्दः सिन्धुश्छन्दः समुद्रश्छन्दः सरिरं छन्दः ककुप्

छन्द॑स्त्रिक॒कुप् छन्दः॑ का॒व्यं छन्दो॑ऽअङ्कु॒पं छन्दो॑ऽक्षरप॑ङ्क्ति॒श्छन्दः॑ प॒दप॑ङ्क्ति॒श्छन्दो॑ विष्टा॒रप॑ङ्क्ति॒श्छन्दः॑ क्षु॒रश्छन्दो॑ भ्र॒जश्छन्दः॑ ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग उत्तम प्रयत्न से (एवः) आनन्ददायक ज्ञान (वरिवः) सत्यसेवनरूप (छन्दः) सुखदायक (शम्भूः) सुख का अनुभव (छन्दः) आनन्दकारी (परिभूः) सब ओर से पुरुषार्थी (छन्दः) सत्य का प्रकाशक (आच्छत्) दोषों का हटाना (छन्दः) जीवन (मनः) संकल्प विकल्पात्मक (छन्दः) प्रकाशकारी (व्यचः) शुभ गुणों की व्याप्ति (छन्दः) आनन्दकारक (सिन्धुः) नदी के तुल्य चलना (छन्दः) स्वतन्त्रता (समुद्रः) समुद्र के समान गम्भीरता (छन्दः) प्रयोजनसिद्धिकारी (सरिरम्) जल के तुल्य कोमलता (छन्दः) जल के समान शान्ति (ककुप्) दिशाओं के तुल्य उज्ज्वल कीर्ति (छन्दः) प्रतिष्ठा देने वाला (त्रिककुप्) अध्यात्मादि तीन सुखों का प्राप्त करने वाला कर्म (छन्दः) आनन्दकारक (काव्यम्) दीर्घदर्शी कवि लोगों ने बनाया (छन्दः) प्रकाशक विज्ञानदायक (अङ्कुपम्) टेढ़ी गति वाला जल (छन्दः) उपकारी (अक्षरपङ्क्तिः) परलोक (छन्दः) आनन्दकारी (पदपङ्क्तिः) यह लोक (छन्दः) सुखसाधक (विष्टारपङ्क्तिः) सब दिशा (छन्दः) सुख का साधक (क्षुरः) छुरा के समान पदार्थों का छेदक सूर्य्य (छन्दः) विज्ञानस्वरूप (भ्रजः) प्रकाशमय (छन्दः) स्वच्छ आनन्दकारी पदार्थ सुख के लिये सिद्ध करो ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य धर्मयुक्त कर्म में पुरुषार्थ करने से सब के प्रिय होना अच्छा समझते हैं वे सब सृष्टि के पदार्थों से सुख लेने को समर्थ होते हैं ॥ ४ ॥

आच्छच्छन्द इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विद्वांसो देवताः । भुरिगभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि प्रयत्न के साथ स्वतन्त्रता बढ़ावें
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ॒च्छच्छन्दः॑ प्र॒च्छच्छन्दः॑ सं॒यच्छन्दो॑ वि॒यच्छन्दो॑ बृ॒हच्छन्दो॑ रथन्त॒रञ्छन्दो॑ निका॒यश्छन्दो॑ विव॒धश्छन्दो॒ गिर॒श्छन्दो॒ भ्रज॒श्छन्दः॑ स॒ꣳस्तुप् छन्दो॑ऽनु॒ष्टुप् छन्द॒ऽएव॒श्छन्दो॒ वरि॑व॒श्छन्दो॒ वय॒श्छन्दो॑ वय॒स्कृच्छन्दो॒ विष्प॑र्द्धा॒श्छन्दो॑ विशा॒लं छन्द॑श्छ॒दिश्छन्दो॑ दूरोह॒णं छन्द॑स्त॒न्द्रं छन्दो॑ऽअङ्का॒ङ्कं छन्दः॑ ॥ ५ ॥

पदार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि (आच्छत्) अच्छे प्रकार पापों की निवृत्ति करने हारा कर्म (छन्दः) प्रकाश (प्रच्छत्) प्रयत्न से दुष्ट स्वभाव को दूर करने वाला कर्म (छन्दः) उत्साह (संयत) संयम (छन्दः) बल (वियत्) विविध यत्न का साधक (छन्दः) धैर्य्य (बृहत्) बहुत वृद्धि (छन्दः) स्वतन्त्रता (रथन्तरम्) समुद्ररूप संसार से पार करने वाला

पदार्थ (छन्दः) स्वीकार (निकायः) संयोग का हेतु वायु (छन्दः) स्वीकार (विविधः) विशेष करके पदार्थों के रहने का स्थान अन्तरिक्ष (छन्दः) प्रकाशरूप (गिरः) भोगने योग्य अन्न (छन्दः) ग्रहण (अजः) प्रकाशरूप अग्नि (छन्दः) ले लेना (संस्तुप्) अच्छे प्रकार शब्दार्थ सम्बन्धों को जनाने हारी वाणी (छन्दः) आनन्दकारक (अनुष्टुप्) सुनने के पीछे शास्त्रों को जानने हारी मन की क्रिया (छन्दः) उपदेश (एवः) प्राप्ति (छन्दः) प्रयत्न (वरिवः) विद्वानों की सेवा (छन्दः) स्वीकार (वयः) जीवन (छन्दः) स्वाधीनता (वयस्कृत्) अवस्थावर्द्धक जीवन के साधन (छन्दः (ग्रहण (विष्पर्द्धाः) विशेष करके जिससे ईर्ष्या करे वह (छन्दः) प्रकाश (विशालम्) विस्तीर्ण कर्म (छन्दः) ग्रहण करना (छदिः) विघ्नों का हटाना (छन्दः) सुखों को पहुँचाने वाला (दूरोहणम्) दुःख से चढ़ने योग्य (छन्दः) बल (तन्द्रम्) स्वतन्त्रता करना (छन्दः) प्रकाश और (अङ्काङ्कम्) गणितविद्या का (छन्दः) सम्यक् स्थापन करना स्वीकार और प्रचार के लिये प्रयत्न करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ करने से पराधीनता छुड़ा के स्वाधीनता का निरन्तर स्वीकार करें ॥ ५ ॥

रश्मिनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विद्वांसो देवताः । विराडभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

विद्वानों को पदार्थविद्या के जानने का उपाय करना चाहिये
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

रश्मिना सत्याय सत्यं जिन्व प्रेतिना धर्म्मणा धर्मं जिन्वान्वित्या दिवा दिवं जिन्व सन्धिनान्तरिक्षेणान्तरिक्षं जिन्व प्रतिधिना पृथिव्या पृथिवीं जिन्व विष्टम्भेन वृष्ट्या वृष्टिं जिन्व प्रवयाऽह्नाहर्जिन्वानु या रात्र्या रात्रीं जिन्वोशिजा वसुभ्यो वसूञ्जिन्व प्रकेतेनादित्येभ्यऽ आदित्याञ्जिन्व ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! तू (रश्मिना) किरणों से (सत्याय) वर्त्तमान में हुए सूर्य्य के तुल्य नित्य सुख और स्थूल पदार्थों के लिये (सत्यम्) अव्यभिचारी कर्म को (जिन्व) प्राप्त हो (प्रेतिना) उत्तम ज्ञान युक्त (धर्मणा) न्याय के आचरण से (धर्मम्) धर्म को (जिन्व) जान (अन्वित्या) खोज के हेतु (दिवा) धर्म के प्रकाश से (दिवम्) सत्य के प्रकाश को (जिन्व) प्राप्त हो (सन्धिना) सन्धिरूप (अन्तरिक्षेण) प्रकाश से (अन्तरिक्षम्) अवकाश को (जिन्व) जान (पृथिव्या) भूगर्भविद्या के (प्रतिधिना) सम्बन्ध से (पृथिवीम्) भूमि को (जिन्व) जान (विष्टम्भेन) शरीर धारण के हेतु आहार के रस से तथा (वृष्टचा) वर्षा की विद्या से (वृष्टिम्) वर्षा को (जिन्व) जान (प्रवया) कान्तियुक्त (अह्ना) प्रकाश की विद्या से (अहः) दिन को (जिन्व) जान (अनुया) प्रकाश के पीछे चलने वाली (रात्र्या) रात्रि की विद्या से (रात्रीम्) रात्रि को (जिन्व) जान (उशिजा) कामनाओं से (वसुभ्यः) अग्नि आदि आठ वसुओं की विद्या से (वसून्) उन अग्नि आदि वसुओं को (जिन्व) जान और (प्रकेतेन)

उत्तम विज्ञान से (आदित्येभ्यः) बारह महीनों की विद्या से (आदित्यान्) बारह महीनों को (जिन्व) तत्वस्वरूप से जान ॥ ६ ॥

भावार्थः—विद्वानों को चाहिये कि जैसे पदार्थों की परीक्षा से अपने आप पदार्थविद्या को जानें वैसे ही दूसरों के लिये भी उपदेश करें ॥ ६ ॥

तन्तुनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विद्वांसो देवताः । ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

गृहाश्रमी पुरुष को किस साधन से क्या करना चाहिये
यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

तन्तुना रायस्पोषेण रायस्पोषं जिन्व सꣳसर्पेण श्रुताय श्रुतं जिन्वैडेनौषधीभिरोषधीर्जिन्वोत्तमेन तनूभिस्तनूर्जिन्व वयोधसाधीतेनाधीतं जिन्वाभिजिता तेजसा तेजो जिन्व ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! तू (तन्तुना) विस्तारयुक्त (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि से (रायः) धन की (पोषम्) पुष्टि को (जिन्व) प्राप्त हो (संसर्पेण) सम्यक् प्राप्ति से (श्रुताय) श्रवण के लिये (श्रुतम्) शास्त्र के सुनने को (जिन्व) प्राप्त हो (ऐडेन) अन्न के संस्कार और (ओषधीभिः) यव तथा सोमलता आदि ओषधियों की विद्या से (ओषधीः) ओषधियों को (जिन्व) प्राप्त हो (उत्तमेन) उत्तम धर्म के आचरणयुक्त (तनूभिः) शुद्ध शरीरों से (तनूः) शरीरों को (जिन्व) प्राप्त हो (वयोधसा) जीवन के धारण करने हारे (आधीतेन) अच्छे प्रकार पढ़े से (आधीतम्) सब ओर से धारण की हुई विद्या को (जिन्व) प्राप्त हो (अभिजिता) सन्मुख शत्रुओं को जीतने के हेतु (तेजसा) तीक्ष्ण कर्म से (तेजः) दृढ़ता को (जिन्व) प्राप्त हो ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विस्तारयुक्त पुरुषार्थ के ऐश्वर्य को प्राप्त हो के सब प्राणियों का हित सिद्ध करें ॥ ७ ॥

प्रतिपदसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । स्वराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वानुपदस्यनुपदे त्वा संपदसि सम्पदे त्वा तेजोऽसि तेजसे त्वा ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे पुरुषार्थिनि विदुषी स्त्री ! जिस कारण तू (प्रतिपत्) प्राप्त होने के योग्य लक्ष्मी के तुल्य (असि) है इसलिये (प्रतिपदे) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (त्वा) तुझ को जो (अनुपत्) पीछे प्राप्त होने वाली शोभा के तुल्य (असि) है जो उस (अनुपदे) विद्याऽध्ययन के पश्चात् प्राप्त होने योग्य (त्वा) तुझ को जो तू (संपत्) सम्पत्ति के तुल्य (असि) है उस

(सम्पदे) ऐश्वर्य के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (तेजः) तेज के समान (असि) है इसलिये (तेजसे) तेज होने के लिये (त्वा) तुझ को ग्रहण करता हूं ॥ ८ ॥

भावार्थः—सब सुख सिद्ध होने के लिये तुल्य गुण कर्म्म और स्वभाव वाले स्त्री पुरुष स्वयंवर विवाह से परस्पर एक दूसरे का स्वीकार कर के आनन्द में रहें ॥ ८ ॥

त्रिवृदसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । विराड् ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्रिवृद॑सि त्रिवृते॑ त्वा प्रवृद॑सि प्रवृते॑ त्वा विवृद॑सि विवृते॑ त्वा सवृद॑सि सवृते॑ त्वाऽऽक्रमोऽस्याक्रमाय॑ त्वा संक्रमोऽसि संक्रमाय॑ त्वोत्क्रमोऽस्युत्क्रमाय॑ त्वोत्क्रान्तिरस्युत्क्रान्त्यै त्वाऽधिपतिनोर्जोर्जं जिन्व ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! जो तू (त्रिवृत्) सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण के सह वर्त्तमान अव्यक्त कारण का जानने हारा (असि) है उस (त्रिवृते) तीन गुणों से युक्त कारण के ज्ञान के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (प्रवृत्) जिस कार्यरूप से प्रवृत्त संसार का ज्ञाता (असि) है उस (प्रवृते) कार्यरूप संसार को जानने के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (विवृत्) जिस विविध प्रकार से प्रवृत्त जगत् का उपकारकर्त्ता (असि) है उस (विवृते) जगदुपकार के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (सवृत्) जिस समान धर्म के साथ वर्त्तमान पदार्थों का जानने हारा (असि) है उस (सवृते) साधर्म्य पदार्थों के ज्ञान के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (आक्रमः) अच्छे प्रकार पदार्थों के रहने के स्थान अन्तरिक्ष का जानने वाला (असि) है उस (आक्रमाय) अन्तरिक्ष को जानने के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (संक्रमः) सम्यक् पदार्थों को जानता (असि) है उस (संक्रमाय) पदार्थ-ज्ञान के लिये (त्वा) तुझ को जो तू (उत्क्रमः) ऊपर मेघ-मण्डल की गति का ज्ञाता (असि) है उस (उत्क्रमाय) मेघमण्डल की गति जानने के लिये (त्वा) तुझ को तथा हे स्त्री ! जो तू (उत्क्रान्तिः) सम विषम पदार्थों के उल्लंघन के हेतु विद्या को जानने हारी (असि) है उस (उत्क्रान्त्यै) गमनविद्या के जानने के लिये (त्वा) तुझ को सब प्रकार ग्रहण करते हैं (अधिपतिना) अपने स्वामी के सह वर्त्तमान तू (ऊर्जा) पराक्रम से (ऊर्जम्) बल को (जिन्व) प्राप्त हो ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । पृथिवी आदि पदार्थों के गुण कर्म और स्वभावों के जाने विना कोई भी विद्वान् नहीं हो सकता इसलिये कार्य कारण दोनों को यथावत् जान के अन्य मनुष्यों के लिये उपदेश करना चाहिये ॥ ९ ॥

राज्यसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । वसवो देवताः । पूर्वस्य विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अग्नि आदि पदार्थ कैसे गुणों वाले हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा है

राज्ञ्यसि प्राची दिग्वसवस्ते देवाऽअधिपतयोऽग्निर्हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिवृत् त्वा स्तोमः पृथिव्याᳬश्रयत्वाज्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु रथन्तरᳬ साम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा । प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १० ॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! (ते) तेरा (अधिपतिः) स्वामी जैसे जिस के (वसवः) अग्न्यादिक (देवाः) प्रकाशमान (अधिपतयः) अधिष्ठाता हैं वैसे तू (प्राची) पूर्व (दिक्) दिशा के समान (राज्ञी) राणी (असि) है जैसे (हेतीनाम्) वज्रादि शस्त्रास्त्रों का (प्रतिधर्त्ता) प्रत्यक्ष धारण करता (त्रिवृत्) विद्युत् भूमिस्थ और सूर्यरूप से तीन प्रकार वर्त्तमान (स्तोमः) स्तुतियुक्त गुणों से सहित (अग्निः) महाविद्युत् धारण करने वाली है वैसे (त्वा) तुझ को तेरा पति मैं धारण करता हूँ तू (पृथिव्याम्) भूमि पर (अव्यथायै) पीड़ा न होने के लिये (उक्थम्) प्रशंसनीय (आज्यम्) घृत आदि पदार्थों को (श्रयतु) धारण कर (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा के लिये (रथन्तरम्) रथादि से तारने वाले (साम) सिद्धान्त कर्म को (स्तभ्नातु) धारण कर जैसे (अन्तरिक्षे) आकाश में (दिवः) बिजुली का (मात्रया) लेश सम्बन्ध और (वरिम्णा) महापुरुषार्थ से (देवेषु) विद्वानों में (प्रथमजाः) पूर्व हुए (ऋषयः) वेदार्थवित् विद्वान् (त्वा) तुझ को शुभ गुणों से विशालबुद्धि करें (च) और जैसे (अयम्) यह (विधर्त्ता) विविध रीति से धारणकर्त्ता तेरा पति तुझ से वर्त्ते वैसे उस के साथ तू वर्ता कर (च) और जैसे (सर्वे) सब (संविदानाः) अच्छे विद्वान् लोग (नाकस्य) अविद्यमान दुःख के (पृष्ठे) मध्य में (स्वर्गे) जो स्वर्ग अर्थात् अति सुख प्राप्ति (लोके) दर्शनीय है उस में (त्वा) तुझ को (च) और (यजमानम्) तेरे पति को (सादयन्तु) स्थापन करें वैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष वर्त्ता करो ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । पूर्व दिशा इसलिये उत्तम कहाती है कि जिस से सूर्य प्रथम वहां उदय को प्राप्त होता है । जो पूर्व दिशा से वायु चलता है वह किसी देश में मेघ को उत्पन्न करता है किसी में नहीं और यह अग्नि सब पदार्थों को धारण करता तथा वायु के संयोग से बढ़ता है जो पुरुष इन वायु और अग्नि को यथार्थ जानते हैं वे संसार में प्राणियों को सुख पहुँचाते हैं ॥ १० ॥

विराडसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । रुद्रा देवताः । पूर्वस्य भुरिग्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

विराडसि दक्षिणा दिग्रुद्रास्ते देवाऽअधिपतयऽइन्द्रो हेतीनां प्रतिधर्त्ता पञ्चदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याᳬश्रयतु प्रऽउगमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु बृहत्साम

प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा। प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ ११॥

पदार्थः—हे स्त्रि! जो तू (विराट्) विविध पदार्थों से प्रकाशमान (दक्षिणा) (दिक्) दक्षिण दिशा के तुल्य (असि) है जिस (ते) तेरा पति (रुद्राः) वायु (देवाः) दिव्य गुण युक्त वायु (अधिपतयः) अधिष्ठाताओं के समान (हेतीनाम्) वज्रों का (प्रतिधर्त्ता) निश्चय के साथ धारण करने वाला (पञ्चदशः) पन्द्रह संख्या का पूरक (स्तोमः) स्तुति का साधक ऋचाओं के अर्थों का भागी और (इन्द्रः) सूर्य्य (त्वा) तुम को (पृथिव्याम्) पृथिवी में (श्रयतु) सेवन करे (अव्यथायै) मानस भय से रहित तेरे लिये (प्रउगम्) कथनीय (उक्थम्) उपदेश के योग्य वचन को (स्तभ्नातु) स्थिर करे तथा (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा के लिये (बृहत्) बहुत अर्थ से युक्त (साम) सामवेद को स्थिर करे और जैसे (अन्तरिक्षे) आकाशस्थ (देवेषु) कमनीय पदार्थों में (प्रथमजाः) पहिले हुए (ऋषयः) ज्ञान के हेतु प्राण (दिवः) प्रकाशकारक अग्नि के लेश और (वरिम्णा) बहुत्व के साथ वर्त्तमान हैं वैसे विद्वान् लोग (त्वा) तुझ को (प्रथन्तु) प्रसिद्ध करें जैसे (विधर्त्ता) विविध प्रकार के आकर्षण से पृथिवी आदि लोकों का धारण (च) तथा पोषण करने वाला (अधिपतिः) सब प्रकाशक पदार्थों में उत्तम सूर्य (त्वा) तुझ को पुष्ट करे वैसे (संविदानाः) सम्यक् विचारशील विद्वान् लोग हैं (ते) वे (सर्वे) सब (नाकस्य) दुःखरहित आकाश के (पृष्ठे) सेचक भाग में (स्वर्गे) सुखकारक (लोके) जानने योग्य देश में (त्वा) तुझ को (च) और (यजमानम्) यज्ञविद्या के जानने हारे पुरुष को (सादयन्तु) स्थापित करें॥ ११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग वायु के साथ वर्त्तमान सूर्य को और सूर्य वायु की विद्या को जानने वाले विद्वान् का आश्रय कर के इस विद्या को जनावें वैसे स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य के साथ विद्वान् हो के दूसरों को पढ़ावें॥ ११॥

सम्राडसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। आदित्या देवताः। पूर्वस्य निचृद् ब्राह्मी जगती छन्दः। निषादः स्वरः। प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर वे स्त्री पुरुष कैसे हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सम्राडसि प्रतीचीदिगादित्यास्ते देवाऽअधिपतयो वरुणो हेतीनां प्रतिधर्त्ता सप्तदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याᳬश्रयतु मरुत्वतीयमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु वैरूपᳬ साम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु॥ १२॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! जो तू (प्रतीची) पश्चिम (दिक्) दिशा के समान (सम्राट्) सम्यक् प्रकाशित (असि) है उस (ते) तेरा पति (आदित्याः) बिजुली से युक्त प्राण वायु (देवाः) दिव्य सुखदाता (अधिपतयः) स्वामियों के तुल्य (अयम्) यह (सप्तदशः) सत्रह संख्या का पूरक (च) और (स्तोमः) स्तुति के योग्य (वरुणः) जलसमुदाय के समान (हेतीनाम्) बिजुलियों का (प्रतिधर्त्ता) धारण करने वाला (अधिपतिः) स्वामी (त्वा) तुझ को (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (श्रयतु) सेवन करे (अव्यथायै) स्वरूप से अचल तेरे लिये (मरुत्वतीयम्) बहुत मनुष्यों के व्याख्यान से युक्त (उक्थम्) कथनयोग्य वेदवचन तथा (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा के लिये (वैरूपम्) विविध रूपों के व्याख्यान से युक्त (साम) सामवेद को (स्तभ्नातु) ग्रहण करे और जो (दिवः) प्रकाश के (मात्रया) भाग से (वरिम्णा) बहुत्व के साथ (अन्तरिक्षे) आकाश में (प्रथमजाः) विस्तारयुक्त कारण से उत्पन्न हुये (ऋषयः) गतियुक्त वायु (देवेषु) दान के हेतु अवयवों में वर्त्तमान हैं वैसे (त्वा) तुझ को विद्वान् लोग (प्रथन्तु) प्रसिद्ध उपदेश करें। जैसे (विधर्त्ता) जो विविध रत्नों का धारने हारा है (च) यह भी (अधिपतिः) अध्यक्ष स्वामी राजा प्रजाओं को सुख में रखता है वैसे (ते) तेरे मध्य में (सर्वे) सब (संविदानाः) अच्छे प्रकार ज्ञान को प्राप्त हुए (त्वा) तुझ को (च) और (यजमानम्) विद्वानों के सेवक पुरुष को (नाकस्य) दुःखरहित देश के (पृष्ठे) एक भाग में (स्वर्गे) सुखप्रापक (लोके) दर्शनीय स्थान में (सादयन्तु) स्थापित करें ॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग पश्चिम दिशा और वहां के पदार्थों को दूसरों के लिये जानते हैं वैसे स्त्री पुरुष अपने सन्तानों आदि को विद्यादि गुणों से सुशोभित करें ॥ १२ ॥

स्वराडसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। मरुतो देवता। पूर्वस्य भुरिग्ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः। प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर वे दोनों कैसे हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

स्वराडस्युदीची दिङ् मरुतस्ते देवाऽअधिपतयः सोमो हेतीनां प्रतिधर्त्तैकविंशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याᳬं श्रयतु निष्केवल्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु। वैराजᳬंसाम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! जैसे (स्वराट्) स्वयं प्रकाशमान (उदीची) उत्तर (दिक्) दिशा (असि) है वैसा (ते) तेरा पति हो जिस दिशा के (मरुतः) वायु (देवाः) दिव्यरूप (अधिपतयः) अधिष्ठाता हैं उन के सदृश जो (एकविंशः) इक्कीस संख्या का पूरक (स्तोमः) स्तुति का साधक (सोमः) चन्द्रमा (हेतीनाम्) वज्र के समान वर्त्तमान किरणों का (प्रतिधर्त्ता) धारने हारा पुरुष (त्वा) तुझ को (पृथिव्याम्) भूमि में (श्रयतु) सेवन करे (अव्यथायै) इन्द्रियों के भय से रहित तेरे लिये (निष्केवल्यम्) जिस में केवल एक स्वरूप का वर्णन हो वह (उक्थम्) कहने योग्य वेदभाग तथा (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा के लिये (वैराजम्)

विराट् रूप का प्रतिपादक (साम) सामवेद का भाग (स्तभ्नातु) ग्रहण करे (च) और जैसे तेरे मध्य में (अन्तरिक्षे) अवकाश में स्थित (देवेषु) इन्द्रियों में (प्रथमजाः) मुख्य प्रसिद्ध (दिवः) ज्ञान के (मात्रया) भागों से (वरिम्णा) अधिकता के साथ वर्त्तमान (ऋषयः) बलवान् प्राण हैं वैसे (अयम्) यही इन प्राणों का (विघर्त्ता) विविध शीत को धारणकर्ता (च) और (अधिपतिः) अधिष्ठाता है (ते) वे (सर्वे) सब इस विषय में (संविदानाः) सम्यक् बुद्धिमान् विद्वान् लोग प्रतिज्ञा से (त्वा) तुझ को (प्रथन्तु) प्रसिद्ध करें और (नाकस्य) उत्तम सुखरूप लोक के (पृष्ठे) ऊपर (स्वर्गे) सुखदायक (लोके) लोक में (त्वा) तुझ को (च) और (यजमानम्) यजमान पुरुष को (सादयन्तु) स्थित करें ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग आधार के सहित चन्द्रमा आदि पदार्थों और आधार के सहित प्राणों को यथावत् जान के संसारी कार्यों में उपयुक्त करके सुख को प्राप्त होते हैं। वैसे अध्यापक स्त्री पुरुष कन्या पुत्रों को विद्या ग्रहण के लिये उपयुक्त करके आनन्दित करें ॥ १३ ॥

अधिपत्न्यसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। पूर्वस्य ब्राह्मी जगती छन्दः। निषादः स्वरः। प्रतिष्ठित्या इत्युत्तरस्य ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अधिपत्न्यसि बृहती दिग्विश्वे ते देवाऽअधिपतयो बृहस्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ त्वा स्तोमौ पृथिव्याꣳ श्रयतां वैश्वदेवाग्निमारुतेऽउक्थेऽअव्यथायै स्तभ्नीताꣳ शाक्वररैवते सामनी प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानञ्च सादयन्तु॥ १४॥

पदार्थः—हे स्त्रि! जो तू (बृहती) बड़ी (अधिपत्नी) सब दिशाओं के ऊपर वर्त्तमान (दिक्) दिशा के समान (असि) है उस (ते) तेरा पति (विश्वे) सब (देवाः) प्रकाशक सूर्य्यादि पदार्थ (अधिपतयः) अधिष्ठाता हैं। वैसे जो (बृहस्पतिः) विश्व का रक्षक (हेतीनाम्) बड़े लोकों का (प्रतिधर्त्ता) प्रतीति के साथ धारण करने वाले सूर्य्य के तुल्य वह तेरा पति (त्वा) तुझ को (च) और (त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ) त्रिणव और तेंतीस (स्तोमौ) स्तुति के साधन (पृथिव्याम्) पृथिवी में (अव्यथायै) पीड़ा रहितता के लिये (वैश्वदेवाग्निमारुते) सब विद्वान् और अग्नि वायुओं के व्याख्यान करने वाले (उक्थे) कहने योग्य वेद के दो भागों का (श्रयताम्) आश्रय करे और जैसे (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा होने के लिये (शाक्वररैवते) शक्वरी और रेवती छन्द से कहे अर्थों से (सामनी) सामवेद के दो भागों को (स्तभ्नीताम्) संगत करो। जैसे वे (अन्तरिक्षे) अवकाश में (प्रथमजाः) आदि में हुए (ऋषयः) धनञ्जय आदि सूक्ष्म स्थूल वायुरूप प्राण (देवेषु) दिव्य गुण वाले पदार्थों में (दिवः) प्रकाश की (मात्रया) मात्रा और (वरिम्णा) अधिकता से (त्वा) तुझ को प्रसिद्ध करते हैं उन को मनुष्य लोग (प्रथन्तु)

प्रख्यात करें जैसे (अयम्) यह (अधिपतिः) स्वामी (विधर्त्ता) विविध प्रकार से सब को धारण करनेहारा सूर्य है जैसे (संविदानाः) सम्यक् सत्यप्रतिज्ञायुक्त ज्ञानवान् विद्वान् लोग (त्वा) तुझ को (नाकस्य) (पृष्ठे) सुखदायक देश के उपरि (स्वर्गे) सुखरूप (लोके) स्थान में स्थापित करते हैं (ते) वे (सर्वे) सब (यजमानम्) तेरे पुरुष और तुझ को (सादयन्तु) स्थित करें वैसे तुम स्त्री पुरुष दोनों वर्त्ता करो ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सब के बीच की दिशा सब से अधिक है वैसे सब गुणों से शरीर और आत्मा का बल अधिक है ऐसा निश्चित जानना चाहिये ॥ १४ ॥

अयं पुर इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । वसन्त ऋतुर्देवता । विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब किरण आदि के दृष्टान्त से श्रेष्ठ विद्या का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्यौ। पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ। दङ्क्ष्णवः पशवो हेतिः पौरुषेयो वधः प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १५ ॥

पदार्थः—जो (अयम्) यह (पुरः) पूर्वकाल में वर्त्तमान (हरिकेशः) हरितवर्ण केश के समान हरणशील और क्लेशकारी ताप से युक्त (सूर्यरश्मिः) सूर्य की किरणें हैं (तस्य) उनका (रथगृत्सः) बुद्धिमान् सारथि (च) और (रथौजाः) रथ के ले चलने के वाहन (च) इन दोनों के तथा (सेनानीग्रामण्यौ) सेनापति और ग्राम के अध्यक्ष के समान अन्य प्रकार के भी किरण होते हैं उन किरणों की (पुञ्जिकस्थला) सामान्य प्रधान दिशा (च) और (क्रतुस्थला) प्रज्ञाकर्म को जतानेवाली उपदिशा (च) ये दोनों (अप्सरसौ) प्राणों में चलने वाली अप्सरा कहाती हैं जो (दङ्क्ष्णवः) मांस और घास आदि पदार्थों को खाने वाले व्याघ्र आदि (पशवः) हानिकारक पशु हैं उनके ऊपर (हेतिः) बिजुली गिरे । जो (पौरुषेयः) पुरुषों के समूह (वधः) मारने वाले और (प्रहेतिः) उत्तम वज्र के तुल्य नाश करने वाले हैं (तेभ्यः) उन के लिये (नमः) वज्र का प्रहार (अस्तु) हो और जो धार्मिक राजा आदि सभ्य राजपुरुष हैं (ते) वे उन पशुओं से (नः) हम लोगों की (अवन्तु) रक्षा करें (ते) वे (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे रक्षक हम लोग (यम्) जिस हिंसक से (द्विष्मः) विरोध करें (च) और (यः) जो हिंसक (नः) हम से (द्वेष्टि) विरोध करे (तम्) उसको हम लोग (एषाम्) इन व्याघ्रादि पशुओं के (जम्भे) मुख में (दध्मः) स्थापन करें ॥ १५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य के किरण हरे वर्ण वाले हैं उस के साथ लाल पीले आदि वर्ण वाले भी किरण रहते हैं वैसे ही सेनापति और ग्रामाध्यक्ष वर्त्त के रक्षक होवें। जैसे राजा आदि पुरुष मृत्यु के हेतु सिंह आदि पशुओं को रोक के गौ आदि पशुओं की रक्षा करते हैं वैसे ही विद्वान् लोग अच्छी शिक्षा अधर्माचरण से पृथक् रख धर्म में चला

के हम सब मनुष्यों की रक्षा करके द्वेषियों का निवारण करें। यह भी सब वसन्त ऋतु का व्याख्यान है ॥ १५ ॥

अयं दक्षिणेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। ग्रीष्मर्तुर्देवता। प्रकृतिश्छन्दः।
धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वैसा ही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्यौ। मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ यातुधाना हेती रक्षांसि प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे (अयम्) यह (विश्वकर्मा) सब चेष्टारूप कर्मों का हेतु वायु (दक्षिणा) दक्षिण दिशा से चलता है (तस्य) उस वायु के (रथस्वनः) रथ के शब्द के समान शब्द वाला (च) और (रथेचित्रः) रमणीय रथ में चिह्नयुक्त आश्चर्य कार्यों का करने वाला (च) ये दोनों (सेनानीग्रामण्यौ) सेनापति और ग्रामाध्यक्ष के समान वर्त्तमान (मेनका) जिस से मनन किया जाय वह (च) और (सहजन्या) एक साथ उत्पन्न हुई (च) ये दोनों (अप्सरसौ) अन्तरिक्ष में रहने वाली किरणादि अप्सरा हैं जो (यातुधाना) प्रजा को पीड़ा देने वाले हैं उन के ऊपर (हेतिः) वज्र जो (रक्षांसि) दुष्ट कर्म करने वाले हैं उन के ऊपर (प्रहेतिः) प्रकृष्ट वज्र के तुल्य (तेभ्यः) उन प्रजापीड़क आदि के लिये (नमः) वज्र का का प्रहार (अस्तु) हो ऐसा करके जो न्यायाधीश शिक्षक हैं (ते) वे (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें (ते) वे (नः) हमको (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे हम लोग (यम्) जिस दुष्ट से (द्विष्मः) द्वेष करें (च) और (यः) जो दुष्ट (नः) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करे (तम्) उस को (एषाम्) इन वायुओं के (जम्भे) व्याघ्र के समान मुख में (दध्मः) धारण करते हैं वैसा प्रयत्न करो ॥ १६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो स्थूल सूक्ष्म और मध्यस्थ वायु से उपयोग लेने को जानते हैं वे शत्रुओं का निवारण करके सब को आनन्दित करते हैं। यह भी ग्रीष्म ऋतु का शेष व्याख्यान है ऐसा जानो ॥ १६ ॥

अयं पश्चादित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। वर्षर्त्तुर्देवता। विराट् कृतिश्छन्दः।
निषादः स्वरः ॥

फिर वैसा ही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अयं पश्चाद् विश्वव्यचास्तस्य रथप्रोतश्चासमरथश्च सेनानीग्रामण्यौ। प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ। व्याघ्रा हेतिः सर्पाः प्रहेतिस्तेभ्यो

नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (अयम्) यह (पश्चात्) पीछे से (विश्वव्यचाः) विश्व में व्याप्त बिजुलीरूप अग्नि है उस के (सेनानीग्रामण्यौ) सेनापति और ग्रामपति के समान (रथप्रोतः) रमणीय तेजःस्वरूप में व्याप्त (च) और (असमरथः) जिस के समान दूसरा रथ न हो वह (च) ये दोनों (प्रम्लोचन्ती) अच्छे प्रकार सब ओषधि आदि पदार्थों को शुष्क कराने वाली (च) तथा (अनुम्लोचन्ती) पश्चात् ज्ञान का हेतु प्रकाश (च) ये दोनों (अप्सरसौ) क्रियाकारक आकाशस्थ किरण हैं जैसे (हेतिः) साधारण वज्र के तुल्य तथा (प्रहेतिः) उत्तम वज्र के समान (व्याघ्राः) सिंहों के तथा (सर्पाः) सर्पों के समान प्राणियों को दुःखदायी जीव हैं (तेभ्यः) उन के लिये (नमः) वज्रप्रहार (अस्तु) हो और जो इन पूर्वोक्तों से रक्षा करें (ते) वे (नः) हमारे (अवन्तु) रक्षक हों (ते) वे (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें तथा (ते) वे हम लोग (यम्) जिस से (द्विष्मः) द्वेष करें (च) और (यः) जो दुष्ट (नः) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करे जिस को हम (एषाम्) इन सिंहादि के (जम्भे) मुख में (दध्मः) धरें (तम्) उस को वे रक्षक लोग भी सिंहादि के मुख में धरें ॥ १७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यह वर्षा ऋतु का शेष व्याख्यान है। इस में मनुष्यों को नियमपूर्वक आहार विहार करना चाहिये ॥ १७ ॥

अयमुत्तरादित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। शरदृतुर्देवता। भुरिगतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर भी वैसा ही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अयमुत्तरात् संयद्वसुस्तस्य तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीग्रामण्यौ। विश्वाची च घृताची चाप्सरसावापो हेतिर्वातः प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (अयम्) यह (उत्तरात्) उत्तर दिशा से (संयद्वसुः) यज्ञ को संगत करने हारे के तुल्य शरद् ऋतु है (तस्य) उस के (सेनानीग्रामण्यौ) सेनापति और ग्रामाध्यक्ष के समान (तार्क्ष्यः) तीक्ष्ण तेज को प्राप्त कराने वाला आश्विन (च) और (अरिष्टनेमिः) दुःखों को दूर करने वाला कार्त्तिक (च) ये दोनों (विश्वाची) सब जगत् में व्यापक (च) और (घृताची) घी वा जल को प्राप्त कराने वाली दीप्ति (च) ये दोनों (अप्सरसौ) प्राणों की गति हैं जहां (आपः) जल (हेतिः) वृद्धि के तुल्य वर्त्तने और (वातः) प्रिय पवन (प्रहेतिः) अच्छे प्रकार बढ़ाने हारे के समान आनन्ददायक होता है उस वायु को जो लोग युक्ति के साथ सेवन करते हैं (तेभ्यः) उनके लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो (ते) वे (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें (ते) वे (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें (ते)

वे हम (यम्) जिससे (द्विष्मः) द्वेष करें (च) और (यः) जो (नः) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करे (तम्) उस को (एषाम्) इन जल वायुओं के (जम्भे) दुःखदायी गुणरूप मुख में (दध्मः) धरें वैसे तुम लोग भी वर्त्तो ॥ १८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । यह शरद् ऋतु का शेष व्याख्यान है । इस में भी मनुष्यों को चाहिये कि युक्ति के साथ कार्यों में प्रवृत्त हों ॥ १८ ॥

अयमुपरीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । हेमन्तर्तुर्देवता । निचृत्कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर भी वैसा ही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अ॒यमु॒पर्य॒र्वाग्व॑सु॒स्तस्य॑ सेन॒जिच्च॑ सु॒षेण॑श्च सेनानीग्राम॒ण्यौ᳖ । उ॒र्वशी॑ च पू॒र्वचि॑त्तिश्चाप्स॒रसा॑वव॒स्फूर्ज॑न् हे॒तिर्वि॒द्युत्प्रहे॑ति॒स्तेभ्यो॒ नमो॑ऽअस्तु॒ ते नो॑ऽवन्तु॒ ते नो॑ मृडयन्तु॒ ते यं द्वि॒ष्मो यश्च॑ नो॒ द्वेष्टि॒ तमे॑षां॒ जम्भे॑ दध्मः ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (अयम्) यह (उपरि) ऊपर वर्त्तमान (अर्वाग्वसुः) वृष्टि के पश्चात् धन का हेतु है (तस्य) उस के (सेनजित्) सेना से जीतने वाला (च) और (सुषेणः) सुन्दर सेनापति (च) ये दोनों (सेनानीग्रामण्यौ) सेनापति और ग्रामाध्यक्ष के तुल्य वर्त्तमान अगहन और पौष महीने (उर्वशी) बहुत खाने का हेतु आन्तर्य दीप्ति (च) और (पूर्वचित्तिः) आदि ज्ञान का हेतु (च) ये दोनों (अप्सरसौ) प्राणों में रहने वाली (अवस्फूर्जन्) भयंकर घोष करते हुए (हेतिः) वज्र के तुल्य (विद्युत्) बिजुली के चलाने हारे और (प्रहेतिः) उत्तम वज्र के समान रक्षक प्राणी हैं (तेभ्यः) उन के लिये (नमः) अन्नादि पदार्थ (अस्तु) मिलें (ते) वे (नः) हम लोगों की (अवन्तु) रक्षा करें (ते) वे (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे हम लोग (यम्) जिस दुष्ट से (द्विष्मः) द्वेष करें (च) और (यः) जो (नः) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करे (तम्) उस को हम लोग (एषाम्) इन हिंसक प्राणियों के (जम्भे) मुख में (दध्मः) धरें । वैसे तुम लोग भी उस को धरो ॥ १९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । यह भी हेमन्त ऋतु की शेष व्याख्या है । मनुष्यों को चाहिये कि इस ऋतु का युक्ति से सेवन करके बलवान् हों ॥ १९ ॥

अग्निर्मूर्द्धेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्यों को किस प्रकार बल बढ़ाना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अ॒ग्निर्मू॒र्द्धा दि॒वः क॒कुत्पतिः॑ पृथि॒व्याऽअ॒यम् । अ॒पाꣳरेता॑ꣳसि जिन्वति ॥ २० ॥

पदार्थः—जैसे हेमन्त ऋतु में (अयम्) यह प्रसिद्ध (अग्निः) अग्नि (दिवः) प्रकाश और (पृथिव्याः) भूमि के बीच (मूर्द्धा) शिर के तुल्य सूर्य्यरूप से वर्त्तमान (ककुत्पतिः) दिशाओं का रक्षक हो के (अपाम्) प्राणों के (रेतांसि) पराक्रमों को (जिन्वति) पूर्णता से तृप्त करता है वैसे ही मनुष्यों को बलवान् होना चाहिये ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि युक्ति से जाठराग्नि को बढ़ा संयम से आहार विहार करके नित्य बल बढ़ाते रहें ॥ २० ॥

अयमग्निरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः। मूर्धा कवी रयीणाम् ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (अयम्) यह (अग्निः) हेमन्त ऋतु में वर्त्तमान (सहस्रिणः) प्रशस्त असंख्य पदार्थों से युक्त (शतिनः) प्रशंसित गुणों के सहित अनेक प्रकार वर्त्तमान (वाजस्य) अन्न तथा (रयीणाम्) धनों का (पतिः) रक्षक (मूर्द्धा) उत्तम अङ्ग के तुल्य (कविः) समर्थ है वैसे ही तुम लोग भी हो ॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्या और युक्ति से सेवन किया अग्नि बहुत अन्न धन प्राप्त कराता है वैसे ही सेवन किया पुरुषार्थ मनुष्यों को ऐश्वर्यवान् कर देता है ॥ २१ ॥

त्वामग्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् ! जैसे (अथर्वा) रक्षक (वाघतः) अच्छी शिक्षित वाणी से अविद्या का नाश करने हारा बुद्धिमान् विद्वान् पुरुष (पुष्करात्) अन्तरिक्ष के (अधि) बीच तथा (मूर्ध्नः) शिर के तुल्य वर्त्तमान (विश्वस्य) सम्पूर्ण जगत् के बीच अग्नि को (निरमन्थत) निरन्तर मन्थन करके ग्रहण करे वैसे ही (त्वाम्) तुझ को मैं बोध कराता हूं ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के समान आकाश तथा पृथिवी के सकाश से बिजुली का ग्रहण कर आश्चर्य रूप कर्मों को सिद्ध करें ॥ २२ ॥

भुव इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः । दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् ! जैसे यह प्रत्यक्ष अग्नि (नियुद्भिः) संयोग विभाग कराने हारी क्रिया तथा (शिवाभिः) मङ्गलकारिणी दीप्तियों के साथ वर्त्तमान (भुवः) प्रगट हुए (यज्ञस्य) कार्यों के साधक संगत व्यवहार (च) और (रजसः) लोकसमूह को (नेता) आकर्षण करता हुआ सम्बन्ध कराता है और (यत्र) जिस (दिवि) प्रकाशमान अपने स्वरूप में (मूर्द्धनिम्) उत्तमाङ्ग के तुल्य वर्त्तमान सूर्य को धारण करता तथा (हव्यवाहम्) ग्रहण करने तथा देने योग्य रसों को प्राप्त कराने वाली (स्वर्षाम्) सुखदायक (जिह्वाम्) वाणी को (चकृषे) प्रवृत्त करता है वैसे तू शुभ गुणों के साथ (सचसे) युक्त होता और सब विद्याओं को (दधिषे) धारण कराता है ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे ईश्वर ने नियुक्त किया हुआ अग्नि सब जगत् को सुखकारी होता है वैसे ही विद्या के ग्राहक अध्यापक लोग सब मनुष्यों को सुखकारी होते हैं ऐसा सब को जानना चाहिये ॥ २३ ॥

अबोधीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् । यह्वाऽइव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (समिधा) प्रज्वलित करने के साधनों से यह (अग्निः) अग्नि (अबोधि) प्रकाशित होता है (आयतीम्) प्राप्त होते हुए (उषासम्) प्रभात समय के (प्रति) समीप (जनानाम्) मनुष्यों की (धेनुमिव) दूध देने वाली गौ के समान है । जिस अग्नि के (यह्वा इव) महान् धार्मिक जनों के समान (प्र) उत्कृष्ट (वयाम्) व्यापक सुख की नीति को (उज्जिहानाः) अच्छे प्रकार प्राप्त करते हुए (प्र) उत्तम (भानवः) किरण (नाकम्) सुख को (अच्छ) अच्छे प्रकार (सिस्रते) प्राप्त करते हैं उस को तुम लोग सुखार्थसंयुक्त करो ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे दुग्ध देने वाली सेवन की हुई गौ दुग्धादि पदार्थों से प्राणियों को सुखी करती है और जैसे आप्त विद्वान् विद्यादान से अविद्या का निवारण कर मनुष्यों की उन्नति करते हैं वैसे ही यह अग्नि है ऐसा जानना चाहिये ॥ २४ ॥

अवोचामेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे । गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ॥ २५ ॥

पदार्थः—हम लोग जैसे (गविष्ठिरः) किरणों में रहने वाली विद्युत (दिवीव) सूर्यप्रकाश के समान (उरुव्यंचम्) विशेष करके बहुतों में गमनशील (रुक्मम्) सूर्य का (अश्रेत्) आश्रय करती है वैसे (मेध्याय) सब शुभ लक्षणों से युक्त पवित्र (वृषभाय) बली (वृष्णे) वर्षा के हेतु (कवये) बुद्धिमान् के लिये (वन्दारु) प्रशंसा के योग्य (वचः) वचन को और (अग्नौ) जाठराग्नि में (नमसा) अन्न आदि से (स्तोमम्) प्रशस्त कार्यों को (अवोचाम) कहें ॥ २५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । विद्वानों को चाहिये कि सुशील शुद्धबुद्धि विद्यार्थी के लिये परम प्रयत्न से विद्या देवें जिससे वह विद्या पढ़ के सूर्य के प्रकाश में घटपटादि को देखते हुए के समान सब को यथावत् जान सकें ॥ २५ ॥

अयमिहेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठोऽअध्वरेष्वीड्यः । यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥ २६ ॥

पदार्थः—जो (इह) इस जगत में (अध्वरेषु) रक्षा के योग्य व्यवहारों में (ईड्यः) खोजने योग्य (यजिष्ठः) अतिशय करके यज्ञ का साधक (होता) घृतादि का ग्रहणकर्त्ता (प्रथमः) सर्वत्र विस्तृत (अयम्) यह प्रत्यक्ष अग्नि (धातृभिः) धारणशील पुरुषों ने (धायि) धारण किया है (यम्) जिस को (वनेषु) किरणों में (चित्रम्) आश्चर्यरूप से (विभ्वम्) व्यापक अग्नि को (विशेविशे) समस्त प्रजा के लिये (अप्नवानः) रूपवान् (भृगवः) पूर्णज्ञानी (विरुरुचुः) विशेष करके प्रकाशित करते हैं उस अग्नि को सब मनुष्य स्वीकार करें ॥ २६ ॥

भावार्थः—विद्वान् लोग अग्निविद्या को आप धार के दूसरों को सिखावें ॥ २६ ॥

जनस्येत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

जनस्य गोपाऽअजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे । घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्विभाति भरतेभ्यः शुचिः ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (जनस्य) उत्पन्न हुए संसार का (गोपाः) रक्षक (जागृविः) जागने रूप स्वभाव वाला (सुदक्षः) सुन्दर बल का हेतु (घृतप्रतीकः) घृत से बढ़ने हारा (शुचिः) पवित्र (अग्निः) बिजुली (नव्यसे) अत्यन्त नवीन (सुविताय) उत्पन्न करने योग्य ऐश्वर्य के लिये (अजनिष्ट) प्रकट हुआ है और (बृहता) बड़े (दिविस्पृशा) प्रकाश में स्पर्श से (भरतेभ्यः) सूर्यों से (द्युमत्) प्रकाशयुक्त हुआ (विभाति) शोभित होता है उस को तुम लोग जानो ॥ २७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो ऐश्वर्य्य प्राप्ति का विशेष कारण सृष्टि के सूर्यों का निमित्त बिजुली रूप तेज है उसको जान के उपकार लिया करें ॥ २७ ॥

त्वामग्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वाम॑ग्ने॒ऽअङ्गि॑रसो॒ गुहा॑ हि॒तमन्व॑विन्दञ्छिश्रिया॒णं वने॑वने । स जा॑यसे म॒थ्यमा॑नः॒ सहो॑ म॒हत् त्वामा॑हुः॒ सह॑सस्पु॒त्रम॑ङ्गिरः ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (अङ्गिरः) प्राणवत्प्रिय (अग्ने) विद्वन् ! जैसे (सः) वह (मथ्यमानः) मथन किया हुआ अग्नि प्रसिद्ध होता है वैसे तू विद्या से (जायसे) प्रकट होता है जिस को (महत्) बड़े (सहः) बलयुक्त (सहसः) बलवान् वायु से (पुत्रम्) उत्पन्न हुए पुत्र के तुल्य (वनेवने) किरण किरण वा पदार्थ पदार्थ में (शिश्रियाणम्) आश्रित (गुहा) बुद्धि में (हितम्) स्थित हितकारी (त्वाम्) उस अग्नि को (आहुः) कहते हैं (अङ्गिरसः) विद्वान् लोग (अन्वविन्दन्) प्राप्त होते हैं उस का बोध (त्वाम्) तुझे कराता हूँ ॥ २८ ॥

भावार्थः—अग्नि दो प्रकार का होता है । एक मानस और दूसरा बाह्य, इस में आभ्यन्तर को युक्त आहार विहारों से और बाह्य को मन्थनादि से सब विद्वान् सेवन करें वैसे इतर जन भी सेवन किया करें ॥ २८ ॥

सखा इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग कैसे होके अग्नि को जानें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सखा॑यः॒ सं वः॑ स॒म्यञ्च॒मिषँ॒ स्तोमं॑ चा॒ग्नये॑ । वर्षि॑ष्ठाय क्षि॒तीना॑मू॒र्जो नप्त्रे॒ सह॑स्वते ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे (सखायः) मित्रो ! (क्षितीनाम्) मननशील मनुष्य (वः) तुम्हारे (ऊर्जः) बल के (नप्त्रे) पौत्र के तुल्य वर्त्तमान (सहस्वते) बहुत बल वाले (वर्षिष्ठाय) अत्यन्त बड़े (अग्नये) अग्नि के लिये जिस (सम्यञ्चम्) सुन्दर सत्कार के हेतु (इषम्) अन्न को (च) और (स्तोमम्) स्तुतियों को (समाहुः) अच्छे प्रकार कहते हैं वैसे तुम लोग भी उस का अनुष्ठान करो ॥ २९ ॥

भावार्थः—यहां पूर्व मन्त्र से (आहुः) इस पद की अनुवृत्ति आती है । कारीगरों को चाहिये कि सब के मित्र होकर विद्वानों के कथनानुसार पदार्थविद्या का अनुष्ठान करें । जो बिजुली कारणरूप बल से उत्पन्न होती है वह पुत्र के तुल्य है और जो सूर्य्यादि के सकाश से उत्पन्न होती है सो पौत्र के समान है ऐसा जानना चाहिये ॥ २९ ॥

संसमिदित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

वैश्य को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सꣳसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य्यऽआ । इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्याभर ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे (वृषन्) बलवान् (अग्ने) प्रकाशमान (अर्यः) वैश्य ! जो तू (संसमायुवसे) सम्यक् अच्छे प्रकार सम्बन्ध करते हो (इडः) प्रशंसा के योग्य (पदे) प्राप्ति के योग्य अधिकार में (समिध्यसे) सुशोभित होते हो (सः) सो तू (इत्) ही अग्नि के योग से (नः) हमारे लिये (विश्वानि) सब (वसूनि) धनों को (आभर) अच्छे प्रकार धारण कर ॥ ३० ॥

भावार्थः—राजाओं से रक्षा प्राप्त हुए वैश्य लोग अग्न्यादि विद्याओं के लिये और अपने राजपुरुषों के लिये सम्पूर्ण धन धारण करें ॥ ३० ॥

त्वामित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग अग्नि से क्या सिद्ध करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः । शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोढवे ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे (पुरुप्रिय) बहुतों के प्रसन्न करने हारे वा बहुतों के प्रिय (चित्रश्रवस्तम) आश्चर्य्यरूप अन्नादि पदार्थों से युक्त (अग्ने) तेजस्वी विद्वन् ! (विक्षु) प्रजाओं में (हव्याय) स्वीकार के योग्य अन्नादि उत्तम पदार्थों को (वोढवे) प्राप्ति के लिये जिस (शोचिष्केशम्) सुखाने वाली सूर्य की किरणों के तुल्य तेजस्वी (त्वाम्) आपको (जन्तवः) मनुष्य लोग (हवन्ते) स्वीकार करते हैं उसी को हम लोग भी स्वीकार करते हैं ॥ ३१ ॥

भावार्थः—मनुष्य को योग्य है कि जिस अग्नि को जीव सेवन करते हैं उस से भार पहुँचाना आदि कार्य भी सिद्ध किया करें ॥ ३१ ॥

एना व इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

एना वोऽअग्निं नमसोर्जो नपातमाहुवे । प्रियं चेतिष्ठमरतिᳬ स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (वः) तुम्हारे लिये (एना) उस पूर्वोक्त (नमसा) ग्रहण के योग्य अन्न से (नपातम्) दृढ़ स्वभाव (प्रियम्) प्रीतिकारक (चेतिष्ठम्) अत्यन्त चेतनता कराने हारे (अरतिम्) चेतनता रहित (स्वध्वरम्) अच्छे रक्षणीय व्यवहारों से युक्त (अमृतम्) कारणरूप से नित्य (विश्वस्य) सम्पूर्ण जगत् के (दूतम्) सब ओर चलनेहारे (अग्निम्) बिजुली को और (ऊर्जः) पराक्रमों को (आहुवे) स्वीकार करूं वैसे तुम लोग भी मेरे लिये ग्रहण करो ॥ ३२ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! हम लोग तुम्हारे लिये जो अग्नि आदि की विद्या प्रसिद्ध करें उनको तुम लोग भी स्वीकार करो ॥ ३२ ॥

विश्वस्य दूतमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वस्य दूतममृतं विश्वस्य दूतममृतम् । स योजतेऽअरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत् स्वाहुतः ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (विश्वस्य) सब भूगोलों के (दूतम्) तपाने वाले सूर्य्यरूप (अमृतम्) कारणरूप से अविनाशिस्वरूप (विश्वस्य) सम्पूर्ण पदार्थों को (दूतम्) ताप से जलाने वाले (अमृतम्) जल में भी व्यापक कारणरूप अग्नि को स्वीकार करूं वैसे (विश्वभोजसा) जगत् के रक्षक (अरुषा) रूपवान् सब पदार्थों के साथ वर्त्तमान है (सः) वह योजते युक्त करता है जो (स्वाहुतः) अच्छे प्रकार ग्रहण किया हुआ (दुद्रवत्) शरीरादि में चलता है (सः) वह तुम लोगों को जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (आहुवे) इस पद की अनुवृत्ति आती है तथा (विश्वस्य दूतममृतम्) इन तीन पदों की दो वार आवृत्ति से स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकार के अग्नि का ग्रहण होता है । वह सब अग्नि कारणरूप से नित्य है ऐसा जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

स दुद्रवदित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्ष्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

स दुद्रवत् स्वाहुतः स दुद्रवत् स्वाहुतः । सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवᳬ राधो जनानाम् ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (सः) वह अग्नि (स्वाहुतः) अच्छे प्रकार बुलाये हुए मित्र के समान (दुद्रवत्) चलता है तथा (सः) वह (स्वाहुतः) अच्छे प्रकार निमन्त्रण किये विद्वान् के तुल्य (दुद्रवत्) जाता है (सुब्रह्मा) अच्छे प्रकार चारों वेदों के ज्ञाता (यज्ञः) समागम के योग्य (सुशमी) अच्छे शान्तिशील पुरुष के समान जो (वसूनाम्) पृथिवी आदि वसुओं और (जनानाम्) मनुष्यों का (देवम्) अभीप्सित (राधः) धनरूप है उस अग्नि को तुम लोग उपयोग में लाओ ॥ ३४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो वेगवान् अन्य पदार्थों को वेग देने वाला शान्तिकारक पृथिव्यादि पदार्थों का प्रकाशक अग्नि है उसका विचार क्यों न करना चाहिये ॥ ३४ ॥

अग्ने वाजस्येत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह अग्नि कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने॒ वाज॑स्य॒ गोम॑त॒ऽईशा॑नः सहसो यहो । अ॒स्मे धे॑हि जातवे॒दो महि॒ श्रवः॑ ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे (सहसः) बलवान् पुरुष के (यहो) सन्तान ! (जातवेदः) विज्ञान को प्राप्त हुए (अग्ने) तेजस्वी विद्वान् आप अग्नि के तुल्य (गोमतः) प्रशस्त गौ और पृथिवी से युक्त (वाजस्य) अन्न के (ईशानः) स्वामी समर्थ हुए (अस्मे) हमारे लिए (महि) बड़े (श्रवः) धन को (धेहि) धारण कीजिये ॥ ३५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। अच्छी रीति से उपयुक्त किया अग्नि बहुत धन देता है ऐसा जानना चाहिये ॥ ३५ ॥

स इधान इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सऽइ॑धा॒नो वसु॑ष्क॒विर॒ग्निरी॒डेन्यो॒ गि॒रा । रे॒वद॒स्मभ्यं॑ पुर्वणीक दीदिहि ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे (पुर्वणीक) बहुत सेना वाले राजपुरुष विद्वान् ! (गिरा) वाणी से (ईडेन्यः) खोजने योग्य (वसुः) निवास का हेतु (कविः) समर्थ (इधानः) प्रदीप्त (सः) उन पूर्वोक्त (अग्निः) के समान (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (रेवत्) प्रशंसित धनयुक्त पदार्थों को (दीदिहि) प्रकाशित कीजिये ॥ ३६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् को चाहिये कि अग्नि के गुण कर्म और स्वभाव के प्रकाश के तुल्य मनुष्यों के लिये ऐश्वर्य की उन्नति करे ॥ ३६ ॥

क्षपो राजन्नित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः । स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे (तिग्मजम्भः) तीक्ष्ण अवयवों के चलाने वाले (राजन्) प्रकाशमान (अग्ने) विद्वान् जन ! (सः) सो पूर्वोक्त गुणयुक्त आप जैसे तीक्ष्ण तेजयुक्त अग्नि (क्षपः) रात्रियों (उत) और (वस्तोः) दिन के (उत) ही (उषसः) प्रभात और सायंकाल के प्रकाश को उत्पन्न करता है वैसे (त्मना) तीक्ष्ण स्वभाव युक्त अपने आत्मा से (रक्षसः) दुष्ट जनों को रात्रि के समान (प्रतिदह) निश्चय करके भस्म कीजिये ॥ ३७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि जैसे प्रभात दिन और रात्रि का निमित्त अग्नि को जानते हैं वैसे राजा न्याय के प्रकाश और अन्याय की निवृत्ति का हेतु है ऐसा जानें ॥ ३७ ॥

भद्रो न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

भद्रो नोऽअग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रोऽअध्वरः । भद्राऽउत प्रशस्तयः ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे (सुभग) सुन्दर ऐश्वर्य वाले विद्वान् पुरुष ! जैसे (आहुतः) घर्म्म के तुल्य सेवन किया मित्ररूप (अग्निः) अग्नि (भद्रः) सेवने योग्य (भद्रा) कल्याणकारी (रातिः) दान (भद्रः) कल्याणकारी (अध्वरः) रक्षणीय व्यहार (उत) और (भद्राः) कल्याण करने वाली (प्रशस्तयः) प्रशंसा होवें वैसे आप (नः) हमारे लिये हूजिये ॥ ३८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि जैसे विद्या से अच्छे प्रकार सेवन किये जगत् के पदार्थ सुखकारी होते हैं वैसे आप्त विद्वान् लोगों को भी जानें ॥ ३८ ॥

भद्रा उतेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

भद्राऽउत प्रशस्तयो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्य्ये । येना समत्सु सासहः ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे (सुभग) शोभन सम्पत्ति वाले पुरुष ! आप (येन) जिस से हमारे (वृत्रतूर्य्ये) युद्ध में (भद्रम्) कल्याणकारी (मनः) विचारशक्तियुक्त चित्त (उत) और (भद्राः) कल्याण करने हारी (प्रशस्तयः) प्रशंसा के योग्य प्रजा और जिस से (समत्सु) संग्रामों में (सासहः) अत्यन्त सहनशील वीर पुरुष हों वैसा कर्म (कृणुष्व) कीजिये ॥ ३९ ॥

भावार्थः—यहां (सुभग, नः) इन दो पदों की अनुवृत्ति पूर्व मन्त्र से आती है । विद्वान् राजा को चाहिये कि ऐसे कर्म का अनुष्ठान करे जिस से प्रजा और सेना उत्तम हों ॥ ३९ ॥

येनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

येना समत्सु सासहोऽव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धताम् । वनेमा तेऽअभिष्टिभिः ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे (सुभग) सुन्दर लक्ष्मीयुक्त पुरुष ! आप (येन) जिस के प्रताप से हमारे (समत्सु) युद्धों में (सासहः) शीघ्र सहना हो उस को तथा (भूरि) बहुत प्रकार (शर्धताम्) बल करते हुए (स्थिरा) स्थिर सेना के साधनों को (अवतनुहि) अच्छे प्रकार बढ़ाइये (ते) आप की (अभिष्टिभिः) इच्छाओं के अनुसार वर्त्तमान हम लोग उस सेना के साधनों का (वनेम) सेवन करें ॥ ४० ॥

भावार्थः—यहां भी (सुभग, नः) इन दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है । विद्वानों को उचित है कि बहुत बलयुक्त वीर पुरुषों का उत्साह नित्य बढ़ावें जिससे ये लोग उत्साही हुए राज और प्रजा के हितकारी काम किया करें ॥ ४० ॥

अग्नि तमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः । अस्तमर्वन्तऽ आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिनऽइषꣳ स्तोतृभ्यऽआ भर ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! (यः) जो (वसुः) सर्वत्र रहने वाला अग्नि है (यम्) जिस (अग्निम्) वाणी के समान अग्नि को (धेनवः) गौ (अस्तम्) घर को (यन्ति) जाती हैं तथा जैसे (नित्यासः) कारणरूप से विनाश रहित (वाजिनः) वेग वाले (आशवः) शीघ्रगामी (अर्वन्तः) घोड़े (अस्तम्) घर को प्राप्त होते हैं वैसे मैं (तम्) उस पूर्वोक्त अग्नि को (मन्ये) मानता हूं और (स्तोतृभ्यः) स्तुतिकारक विद्वानों के लिये (इषम्) अच्छे अन्नादि पदार्थों को धारण करता हूं वैसे ही तू उस अग्नि को (आभर) धारण कर ॥ ४१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । अध्यापक लोग विद्यार्थियों के प्रति ऐसा कहें कि जैसे हम लोग आचरण करें वैसा तुम भी करो । जैसे गौ आदि पशु दिन में इधर

उधर भ्रमण कर सायङ्काल अपने घर आके प्रसन्न होते हैं वैसे विद्या के स्थान को प्राप्त होके तुम भी प्रसन्न हुआ करो ॥ ४१ ॥

सोऽअग्निरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सोऽअग्निर्यो वसुर्गृण सं यमायन्ति धेनवः । समर्वन्तो रघुद्रुव सꣳ सुजातासः सूरयऽइषꣳस्तोतृभ्यऽआ भर ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे विद्यार्थी विद्वान् पुरुष ! जैसे मैं (यः) जो (वसुः) निवास का हेतु (अग्निः) अग्नि है उस की (गृणे) अच्छे प्रकार स्तुति करता हूं (यम्) जिस को (धेनवः) वाणी (समायन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं और (रघुद्रवः) धीरज से चलने वाले (अर्वन्तः) प्रशंसित ज्ञानी (सुजातासः) अच्छे प्रकार विद्याओं में प्रसिद्ध (सूरयः) विद्वान् लोग (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने हारे विद्यार्थियों के लिये (इषम्) ज्ञान को (सम्) अच्छे प्रकार धारण करते हैं और जैसे (सः) वह पढ़ानेहारा ईश्वरादि पदार्थों के गुण वर्णन करता है वैसे तू भी इन पूर्वोक्तों को (समाभर) ज्ञान से धारण कर ॥ ४२ ॥

भावार्थः—अध्यापकों को चाहिये कि जैसे गौ अपने बछड़ों को तृप्त करती हैं वैसे विद्यार्थियों को प्रसन्न करें और जैसे घोड़े शीघ्र चल के पहुंचाते हैं वैसे विद्यार्थियों को सब विद्याओं के पार शीघ्र पहुँचावें ॥ ४२ ॥

उभे इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वह क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीषऽआसनि । उतो नऽउत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पतऽइषꣳ स्तोतृभ्यऽआ भर ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे (सुश्चन्द्र) सुन्दर आनन्ददाता अध्यापक पुरुष ! आप (सर्पिषः) घी के (दर्वी) चलाने पकड़ने की दो कर्छी से (श्रीणीषे) पकाने के समान (आसनि) मुख में (उभे) पढ़ने पढ़ाने की दो क्रियाओं को (आभर) धारण कीजिये । हे (शवसः) बल के (पते) रक्षकजन तू (उक्थेषु) कहने सुनने योग्य वेदविभागों में (नः) हमारे (उतो) और (स्तोतृभ्यः) विद्वानों के लिये (इषम्) अन्नादि पदार्थों को (उत्पुपूर्याः) उत्कृष्टता से पूरण कर ॥ ४२ ॥

भावार्थः—जैसे ऋत्विज् लोग घृत को शोध कर्छी से अग्नि में होम कर और वायु तथा वर्षाजल को रोगनाशक करके सब को सुखी करते हैं वैसे ही अध्यापक लोगों को चाहिये कि

विद्यार्थियों के मन अच्छी शिक्षा से शोध कर उन को विद्यादान देके आत्माओं को पवित्र कर सब को सुखी करें ॥ ४३ ॥

अग्ने तमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने॒ तम॒द्याश्वं॒ न स्तोमैः॒ क्रतुं॒ न भ॒द्रꣳ हृ॑दि॒स्पृश॑म् । ऋ॒ध्यामा॑ त॒ऽओहैः॑ ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अध्यापक जन ! हम लोग (ते) आप से (ओहैः) विद्या का सुख देने वाले (स्तोमैः) विद्या की स्तुतिरूप वेद के भागों से (अद्य) आज (अश्वम्) घोड़े के (न) समान (भद्रम्) कल्याणकारक (क्रतुम्) बुद्धि के (न) समान (तम्) उस (हृदिस्पृशम्) आत्मा के साथ गन्ध करने वाले विद्याबोध को प्राप्त हो के निरन्तर (ऋध्याम) वृद्धि को प्राप्त हों ॥ ४४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। अध्येता लोगों को चाहिये कि जैसे अच्छे शिक्षित घोड़े से अभीष्ट स्थान में शीघ्र पहुंच जाते हैं जैसे विद्वान् लोग सब शास्त्रों के बोध से युक्त कल्याण करने हारी बुद्धि से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष फलों को प्राप्त होते हैं वैसे उन अध्यापकों से पूर्ण विद्या पढ़ प्रशंसित बुद्धि को पा के आप उन्नति को प्राप्त हों तथा वेद के पढ़ाने और उपदेश से अन्य सब मनुष्यों की भी उन्नति करें ॥ ४४ ॥

अधा हीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर वह कैसा हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अधा॒ ह्य॑ग्ने॒ क्रतो॑र्भ॒द्रस्य॒ दक्ष॑स्य सा॒धोः । र॒थीर्ऋ॒तस्य॑ बृह॒तो ब॒भूथ॑ ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् जन ! जैसे तू (भद्रस्य) आनन्दकारक (दक्षस्य) शरीर और आत्मा के बल से युक्त (साधोः) अच्छे मार्ग में प्रवर्त्तमान (ऋतस्य) सत्य को प्राप्त हुए पुरुष की (बृहतः) बड़े विषय वा ज्ञानरूप (क्रतोः) बुद्धि से (रथीः) प्रशंसित रमणसाधन यानों से युक्त (बभूथ) हूजिये वैसे (अध) मङ्गलाचरणपूर्वक (हि) निश्चय करके हम भी होवें ॥ ४५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे शास्त्र और योग से उत्पन्न हुई बुद्धि को प्राप्त हो के विद्वान् लोग बढ़ते हैं वैसे ही अध्येता लोगों को भी बढ़ाना चाहिये ॥ ४५ ॥

एभिर्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

एभिर्नोऽअर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वर्ण ज्योतिः। अग्ने विश्वेभिः सुमनाऽअनीकैः ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्याप्रकाश से युक्त पुरुष ! आप (नः) हमारे लिये (विश्वेभिः) सब (अनीकैः) सेनाओं के सहित राजा के तुल्य (सुमनाः) मन से सुखदाता (भव) हूजिये (एभिः) इन पूर्वोक्त (अर्कैः) पूजा के योग्य विद्वानों के सहित (नः) हमारे लिये (ज्योतिः) ज्ञान के प्रकाशक (अर्वाङ्) नीचों को उत्तम करने को जानने वाले (स्वः) सुख के (न) समान हूजिये ॥ ४६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे राजा अच्छी शिक्षा बलयुक्त सेनाओं से शत्रुओं को जीत के सुखी होता है वैसे ही बुद्धि आदि गुणों से अविद्या से हुए क्लेशों को जीत के मनुष्य लोग सुखी होवें ॥ ४६ ॥

अग्निꣳ होतारमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्निꣳ होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुꣳ सूनुꣳ सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्। यऽऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा। घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाऽऽजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (ऊर्ध्वया) ऊर्ध्वगति के साथ (स्वध्वरः) शुभ कर्म करने से अहिंसनीय (देवाच्या) विद्वानों के सत्कार के हेतु (कृपा) समर्थ क्रिया से (देवः) दिव्य गुणों वाला पुरुष (शोचिषा) दीप्ति के साथ (आजुह्वानस्य) अच्छे प्रकार हवन किये (सर्पिषः) घी और (घृतस्य) जल के सकाश से (विभ्राष्टिम्) विविध प्रकार की ज्योतियों को (अनुवष्टि) प्रकाशित करता है उस (होतारम्) सुख के दाता (जातवेदसम्) उत्पन्न हुए सब पदार्थों में विद्यमान (सहसः) बलवान् पुरुष के (सूनुम्) पुत्र के समान (वसुम्) धनदाता (दास्वन्तम्) दानशील (जातवेदसम्) बुद्धिमानों में प्रसिद्ध (अग्निम्) तेजस्वी अग्नि के (न) समान (विप्रम्) आप्त ज्ञानी का मैं (मन्ये) सत्कार करता हूं वैसे तुम लोग भी उस को मानो ॥ ४७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे अच्छे प्रकार सेवन किये विद्वान् लोग विद्या धर्म और अच्छी शिक्षा से सब को आर्य करते हैं वैसे युक्ति से सेवन किया अग्नि अपने गुण कर्म और स्वभावों से सब के सुख की उन्नति करता है ॥ ४७ ॥

अग्ने त्वन्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने त्वं नो अन्तमऽउत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः । वसुरग्निर्वसुश्रवाऽअच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिन्दाः । तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् ! (त्वम्) आप जसे यह (वसुः) धनदाता (वसुश्रवाः) अन्न और धन का हेतु (अग्निः) अग्नि (रयिम्) धन को (दाः) देता है वैसे (नः) हमारे (अन्तमः) अत्यन्त समीप (त्राता) रक्षक (वरूथ्यः) श्रेष्ठ (उत) और (शिवः) मङ्गलकारी (भव) हूजिये । हे (शोचिष्ठ) अतितेजस्वी (दीदिवः) बहुत प्रकाशों से युक्त वा कामना वाले विद्वान् ! जैसे हम लोग (त्वा) तुझ को (सखिभ्यः) मित्रों से (सुम्नाय) सुख के लिये (नूनम्) निश्चय (ईमहे) मांगते हैं वैसे (तम्) उस तुझ को सब मनुष्य चाहें जैसे मैं (द्युमत्तमम्) प्रशंसित प्रकाशों से युक्त तुझ को (अच्छ) अच्छे प्रकार (नक्षि) प्रकार (नक्षि) प्राप्त होता हूं वैसे तू हम को प्राप्त हो ॥ ४८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मित्र अपने मित्रों को चाहते और उन की उन्नति करते हैं वैसे विद्वान् सब का मित्र सब को सुख देवे ॥ ४८ ॥

येन ऋषय इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

येनऽऋषयस्तपसा सत्रमायन्निन्धानाऽअग्निꣳ स्वराभरन्तः । तस्मिन्नहं निदधे नाकेऽअग्निं यमाहुर्मनवः स्तीर्णबर्हिषम् ॥ ४९ ॥

पदार्थः—(येन) जिस (तपसा) धर्मानुष्ठानरूप कर्म से (इन्धानाः) प्रकाशमान (स्वः) सुख को (आभरन्तः) अच्छे प्रकार धारण करते हुए (ऋषयः) वेद का अर्थ जानने वाले ऋषि लोग (सत्रम्) सत्य विज्ञान से युक्त (अग्निम्) विद्युत् आदि अग्नि को (आयन्) प्राप्त हों (तस्मिन्) उस कर्म के होते (नाके) दुःखरहित प्राप्त होने योग्य सुख के निमित्त (मनवः) विचारशील विद्वान् लोग (यम्) जिस (स्तीर्णबर्हिषम्) आकाश को आच्छादन करने वाले (अग्निम्) अग्नि को (आहुः) कहते हैं उस को (अहम्) मैं (नि, दधे) धारण करता हूं ॥ ४९ ॥

भावार्थः—जिस प्रकाश से वेदपारग विद्वान् लोक सत्य का अनुष्ठान कर बिजुली आदि पदार्थों को उपयोग में लाके समर्थ होते हैं उसी प्रकार मनुष्यों को समृद्धियुक्त होना चाहिये ॥४९॥

तं पत्नीभिरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वानों को कैसा होना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

तं पत्नीभिरनु गच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः। नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठेऽअधि रोचने दिवः ॥ ५० ॥

पदार्थः—हे (देवाः) विद्वान् लोगो ! जैसे तुम लोग (तम्) उस पूर्वोक्त अग्नि को (गृभ्णानाः) ग्रहण करते हुए (दिवः) प्रकाशयुक्त (सुकृतस्य) सुन्दर वेदोक्त कर्म (अधि) में वा (रोचने) रुचिकारक (तृतीये) विज्ञान से हुए (पृष्ठे) जानने को इष्ट (लोके) विचारने वा देखने योग्य स्थान में वर्त्तमान (पत्नीभिः) अपनी-अपनी स्त्रियों (पुत्रैः) वृद्धावस्था में हुए दुःख से रक्षक पुत्रों (भ्रातृभिः) बन्धुओं (उत, वा) और अन्य सम्बन्धियों तथा (हिरण्यैः) सुवर्णादि के साथ (नाकम्) आनन्द को प्राप्त होते हो वैसे इन सब के सहित हम लोग भी (अनु, गच्छेम) अनुगत हों ॥ ५० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग अपनी स्त्री, पुत्र, भाई, कन्या, माता, पिता, सेवक और परोसियों को विद्या और अच्छी शिक्षा से धर्मात्मा पुरुषार्थी करके सन्तोषी होते हैं वैसे ही सब मनुष्यों को होना चाहिये ॥ ५० ॥

आ वाच इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

ईश्वर के तुल्य राजा को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ वाचो मध्यमरुहद्भुरण्युरयमग्निः सत्पतिश्चेकितानः। पृष्ठे पृथिव्या निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ॥ ५१ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! (चेकितानः) विज्ञानयुक्त (सत्पतिः) श्रेष्ठों के रक्षक आप (वाचः) वाणी के (मध्यम्) बीच हुए उपदेश को प्राप्त हो के जैसे (अयम्) यह (भुरण्युः) पुष्टिकर्त्ता (अग्निः) विद्वान् (पृथिव्याः) भूमि के (पृष्ठे) ऊपर (निहितः) निरन्तर स्थिर किया (दविद्युतत्) उपदेश से सब को प्रकाशित करता और धर्म पर (आ, रुहत्) आरूढ़ होता है उस के साथ (ये) जो लोग (पृतन्यवः) युद्ध के लिये सेना की इच्छा करते हैं उन को (अधस्पदम्) अपने अधिकार से च्युत जैसे हों वैसा (कृणुताम्) कीजिये ॥ ५१ ॥

भावार्थः—विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि जैसे ईश्वर ब्रह्माण्ड में सूर्यलोक को स्थापन करके सब को सुख पहुँचाता है। वैसे ही राज्य में विद्या और बल को धारण कर शत्रुओं को जीत के प्रजा के मनुष्यो का सुख से उपकार करें ॥ ५१ ॥

अयमग्निरित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

धर्मात्माओं के तुल्य अन्य लोगों को वर्तना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अयमग्निर्वीरतमो वयोधाः सहस्रियो द्योततामप्रयुच्छन्। विभ्राजमानः सरिरस्य मध्यऽउप प्र याहि दिव्यानि धाम ॥ ५२ ॥

पदार्थः—जो (अयम्) यह (वीरतमः) अपने बल से शत्रुओं को अत्यन्त व्याप्त होने तथा (वयोधाः) सब के जीवन को धारण करने वाला (सहस्रियः) असंख्य योद्धाजनों के समान योद्धा (सरिरस्य) आकाश के (मध्ये) बीच (विभ्राजमानः) विशेष करके विद्या और न्याय से प्रकाशित सो (अप्रयुच्छन्) प्रमादरहित होते हुए (अग्निः) अग्नि के तुल्य सेनापति आप (द्योतताम्) प्रकाशित हूजिये और (दिव्यानि) अच्छे (धाम) जन्म कर्म और स्थानों को (उप, प्र, याहि) प्राप्त हूजिये ॥ ५२ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि धर्मात्मा जनों के साथ निवास कर प्रमाद को छोड़ और जितेन्द्रियता से अवस्था बढ़ा के विद्या और धर्म के अनुष्ठान से पवित्र होके परोपकारी होवें ॥ ५२ ॥

संप्रच्यवध्वमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

स्त्री पुरुष कैसे विवाह करके क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सम्प्रच्यवध्वमुप संप्रयाताग्ने पथो देवयानान् कृणुध्वम् । पुनः कृण्वाना पितरा युवानान्वातांश्सीत् त्वयि तन्तुमेतम् ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग विद्याओं को (उपसंप्रयात) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ (संप्रच्यवध्वम्) सम्यक् चलो, धर्म को (देवयानान्) धार्मिकों के (पथः) मार्गों से (कृणुध्वम्) करो । हे (अग्ने) विद्वान् पितामह ! (त्वयि) तुम्हारे बने रहते ही (पितरा) रक्षा करने वाले माता पिता तुम्हारे पुत्र आदि ब्रह्मचर्य्य को (कृण्वाना) करते हुए (युवाना) पूर्ण युवावस्था को प्राप्त हो और स्वयंवर विवाह कर (पुनः) पश्चात् (एतम्) गर्भाधानादि रीति से यथोक्त (तन्तुम्) सन्तान को (अन्वातांसीत्) अनुकूल उत्पन्न करें ॥ ५३ ॥

भावार्थः—कुमार स्त्री पुरुष धर्मयुक्त सेवन किये ब्रह्मचर्य्य से पूर्ण विद्या पढ़ आप धार्मिक हो पूर्ण युवावस्था की प्राप्ति में कन्याओं की पुरुष और पुरुषों की कन्या परीक्षा कर अत्यन्त प्रीति के साथ चित से परस्पर आकर्षित होके अपनी इच्छा से विवाह कर धर्मानुकूल सन्तानों को उत्पन्न और सेवा से अपने माता पिता का सन्तोष कर के आप्त विद्वानों के मार्ग से निरन्तर चलें और जैसे धर्म के मार्गों को सरल करें वैसे ही भूमि जल और अन्तरिक्ष के मार्गों को भी बनावें ॥ ५३ ॥

उद्बुध्यस्वेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वही पूर्वोक्त विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

उद् बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳ सृजेथामयं च । अस्मिन् सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ ५४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अच्छी विद्या से प्रकाशित स्त्री वा पुरुष ! तू (उद्बुध्यस्व) अच्छे प्रकार ज्ञान को प्राप्त हो सब के प्रति (प्रति, जागृहि) अविद्यारूप निद्रा को छोड़ के विद्या से चेतन हो (त्वम्) तू स्त्री (च) और (अयम्) यह पुरुष दोनों (अस्मिन्) इस वर्त्तमान (सधस्थे) एक स्थान में और (उत्तरस्मिन्) आगामी समय में सदा (इष्टापूर्त्ते) इष्ट सुख विद्वानों का सत्कार, ईश्वर का आराधन, अच्छा सङ्ग करना और सत्यविद्या आदि का दान देना यह इष्ट और पूर्णबल, ब्रह्मचर्य्य, विद्या की शोभा, पूर्ण युवा अवस्था, साधन और उपसाधन यह सब पूर्त्त इन दोनों को (सं, सृजेथाम्) सिद्ध किया करो (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (च) और (यजमानः) यज्ञ करने वाले पुरुष, तू इस एक स्थान में (अधि, सीदत) उन्नति पूर्वक स्थिर होओ ॥ ५४ ॥

भावार्थः—जैसे अग्नि सुगंधादि के होम से इष्ट सुख देता और यज्ञकर्त्ता जन यज्ञ की सामग्री पूरी करता है वैसे उत्तम विवाह किये स्त्री पुरुष इस जगत् में आचरण किया करें। जब विवाह के लिये दृढ़ प्रीति वाले स्त्री पुरुष हों तब विद्वानों को बुला के उन के समीप वेदोक्त प्रतिज्ञा करके पति और पत्नी बनें ॥ ५४ ॥

येन वहसीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ५५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष वा विदुषी स्त्री ! तू (देवेषु) विद्वानों में (स्वः) सुख को (गन्तवे) प्राप्त होने के लिये (येन) जिस प्रतिज्ञा किये कर्म से (सहस्रम्) गृहाश्रम के असंख्य व्यवहारों को (वहसि) प्राप्त होते हो तथा (येन) जिस विज्ञान से (सर्ववेदसम्) सब वेदों में कहे कर्म को यथावत् करते हो (तेन) उससे (इमम्) इस गृहाश्रमरूप (यज्ञम्) संगति के योग्य यज्ञ को (नः) हम को (नय) प्राप्त कीजिये ॥ ५५ ॥

भावार्थः—विवाह की प्रतिज्ञाओं में यह भी प्रतिज्ञा करानी चाहिये कि हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों जैसे अपने हित के लिये आचरण करो वैसे हम माता पिता आचार्य्य और अतिथियों के सुख के लिये भी निरन्तर वर्त्ताव करो ॥ ५५ ॥

अयं त इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽअरोचथाः । तं जानन्नग्नऽआ रोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥ ५६ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् वा विदुषि ! (अयम्) यह (ते) तेरा (ऋत्वियः) ऋतु अर्थात् समय को प्राप्त हुआ (योनिः) घर है (यतः) जिस विद्या के पठन पाठन से (जातः) प्रसिद्ध हुआ वा हुई तू (अरोचथाः) प्रकाशित हो (तम्) उस को (जनन्) जानता वा जानती हुई (आ, रोह) धर्म पर आरूढ़ हो (अथ) इसके पश्चात् (नः) हमारी (रयिम्) सम्पत्ति को (वर्धय) बढ़ाया कर ॥ ५६ ॥

भावार्थः—स्त्री पुरुष से विवाह में यह भी दूसरी प्रतिज्ञा करानी चाहिये कि जिस ब्रह्मचर्य और जिस विद्या के साथ तुम दोनों स्त्री पुरुष कृतकृत्य होते हो उस उस को सदैव प्रचारित किया करो और पुरुषार्थ से धनादि पदार्थ को बढ़ा के उस को अच्छे मार्ग में खर्च किया करो । यह सब हेमन्त ऋतु का व्याख्यान पूरा हुआ ॥ ५६ ॥

तपश्चेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । शिशिरर्त्तुर्देवता । स्वराडुत्कृतिश्छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में शिशिर ऋतु का वर्णन किया है ॥

तप॑श्च तप॒स्य॒श्च शैशि॑रावृ॒तूऽअ॒ग्नेर॑न्तःश्लेषो॒ऽसि॒ कल्पे॑तां॒ द्यावा॑पृथि॒वी कल्प॑न्ता॒माप॒ऽओष॑धय॒ः कल्प॑न्ताम॒ग्नय॒ः पृथ॒ङ् मम॒ ज्यैष्ठ्या॑य॒ सव्र॑ताः । येऽअ॒ग्नय॒ः सम॑नसोऽन्त॒रा द्यावा॑पृथि॒वीऽइ॒मे शैशि॑रावृ॒तूऽअ॑भि॒कल्प॑माना॒ऽइन्द्र॑मिव दे॒वाऽअ॑भि॒संवि॑शन्तु॒ तया॑ दे॒वत॑याऽङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वे सी॑दतम् ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे ईश्वर ! (मम) मेरी (ज्यैष्ठ्याय) ज्येष्ठता के लिये (तपः) ताप बढ़ाने का हेतु माघ महीना (च) और (तपस्यः) तापवाला फाल्गुन मास (च) ये दोनों (शैशिरौ) शिशिर ऋतु में प्रख्यात (ऋतू) अपने चिह्नों को प्राप्त करने वाले सुखदायी होते हैं । आप जिनके (अग्नेः) अग्नि के भी (अन्तःश्लेषः) मध्य में प्रविष्ट (असि) हैं उन दोनों से (द्यावापृथिवी) आकाश भूमि (कल्पेताम्) समर्थ हों (आपः) जल (ओषधयः) ओषधियां (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (सव्रताः) एक प्रकार के नियमों में वर्त्तमान (अग्नयः) विद्युत् आदि अग्नि (पृथक्) अलग-अलग (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें (ये) जो (समनसः) एक प्रकार के मन के निमित्तवाले हैं वे (अग्नयः) विद्युत् आदि अग्नि (इमे) इन (द्यावापृथिवी) आकाश भूमि के (अन्तरा) बीच में होने वाले (शैशिरौ) शिशिर ऋतु के साधक (ऋतू) माघ फाल्गुन महीनों को (अभिकल्पमानाः) समर्थ करते हैं । उन अग्नियों को (इन्द्रमिव) ऐश्वर्य के तुल्य (देवाः) विद्वान् लोग (अभिसंविशन्तु) ज्ञानपूर्वक प्रवेश करें । हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों (तया) उस (देवतया) पूजा के योग्य सर्वत्र व्याप्त जगदीश्वर देवता के साथ (अङ्गिरस्वत्) प्राण के समान वर्त्तमान इन आकाश भूमि के तुल्य (ध्रुवे) दृढ़ (सीदतम्) स्थिर होओ ॥ ५७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि सब ऋतुओं में ईश्वर से ही सुख चाहें ईश्वर विद्युत् अग्नि के बीच व्याप्त हैं इस कारण सब पदार्थ अपने-अपने नियम से

कार्य में समर्थ होते हैं विद्वान् लोग सब वस्तुओं में व्याप्त बिजुलीरूप अग्नियों के गुण दोष जानें स्त्री पुरुष गृहाश्रम में स्थिरबुद्धि होके शिशिर ऋतु के सुख को भोगें ॥ ५७ ॥

परमेष्ठीत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । विदुषी देवता । भुरिग् ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

स्त्री को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् । विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ । सूर्यस्तेऽधिपतिस्तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ ५८ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! (परमेष्ठी) महान् आकाश में व्याप्त होकर स्थित परमेश्वर (ज्योतिष्मतीम्) प्रशस्त ज्ञानयुक्त (त्वा) तुझ को (दिवः) प्रकाश के (पृष्ठे) उत्तम भाग में (विश्वस्मै) सब (प्राणाय) प्राण (अपानाय) अपान और (व्यानाय) व्यान आदि की यथार्थ क्रिया होने के लिये (सादयतु) स्थित करे । तू सब स्त्रियों के लिये (विश्वम्) समस्त (ज्योतिः) ज्ञान के प्रकाश को (यच्छ) दिया कर जिस (ते) तेरा (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी (अधिपतिः) स्वामी है (तया) उस (देवतया) अच्छे गुणोंवाले पति के साथ वर्त्तमान (अङ्गिरस्वत्) सूर्य के समान (ध्रुवा) दृढ़ता से (सीद) स्थिर हो ॥ ५८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा तथा वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिस परमेश्वर ने जो शरद ऋतु बनाया है उस की उपासनापूर्वक इस ऋतु को युक्ति से सेवन करके स्त्री पुरुष सदा सुख बढ़ाया करें ॥ ५८ ॥

लोकं पृणेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम् । इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनावसीषदन् ॥ ५९ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! (त्वम्) तू इस (लोकम्) लोक तथा परलोक को (पृण) सुखयुक्त कर (छिद्रम्) अपनी न्यूनता को (पृण) पूरी कर और (ध्रुवा) निश्चलता से (सीद) घर में बैठ (अथो) इसके अनन्तर (इन्द्राग्नी) उत्तम धनी ज्ञानी तथा (बृहस्पतिः) अध्यापक (अस्मिन्) इस (योनौ) गृहाश्रम में (त्वा) तुझ को (असीषदन्) स्थापित करें ॥ ५९ ॥

भावार्थः—अच्छी चतुर स्त्री को चाहिये कि घर के कार्यों के साधनों को पूरे करके सब कार्यों को सिद्ध करें। जैसे विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुषों की गृहाश्रम के कर्त्तव्य कर्मों में प्रीति हो वैसा उपदेश किया करे ॥ ५९ ॥

ताऽअस्येत्यस्य प्रियमेधा ऋषिः। आपो देवताः। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अब राजा प्रजा का धर्म अगले मन्त्र में कहा है ॥

ताऽअस्य सूददोहसः सोमंꣳ श्रीणन्ति पृश्नयः। जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वारोचने दिवः ॥ ६० ॥

पदार्थः—जो विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त (देवानाम्) विद्वानों के (जन्मन्) जन्म विषय में (पृश्नयः) पूछने हारी (सूददोहसः) रसोइया और कार्य्यों के पूर्ण करने वाले पुरुषों से युक्त (त्रिषु) वेदरीति से कर्म उपासना और ज्ञानों तथा (दिवः) सब के अन्तःप्रकाशक परमात्मा के (रोचने) प्रकाश में वर्त्तमान (विशः) प्रजा हैं (ताः) वे (अस्य) इस सभाध्यक्ष राजा के (सोमम्) सोमवल्ली आदि ओषधियों के रसों से युक्त भोजनीय पदार्थों को (आ) सब ओर से (श्रीणन्ति) पकाती हैं ॥ ६० ॥

भावार्थः—प्रजापालक पुरुषों को चाहिये कि सब प्रजाओं को विद्या और अच्छी शिक्षा के ग्रहण में नियुक्त करें और प्रजा भी स्वयं नियुक्त हों इस के विना कर्म उपासना ज्ञान और ईश्वर का यथार्थ बोध कभी नहीं हो सकता ॥ ६० ॥

इन्द्रं विश्वा इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः। रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम् ॥ ६१ ॥

पदार्थः—(विश्वाः) सब (गिरः) विद्या और शिक्षा से युक्त वाणी (समुद्रव्यचसम्) आकाश के तुल्य व्याप्तिवाले (रथीनाम्) शूरवीरों में (रथीतमम्) उत्तम शूरवीर (वाजानाम्) विज्ञानी पुरुषों के (सत्पतिम्) सत्य व्यवहारों और (विद्वानों) के रक्षक तथा प्रजाओं के (पतिम्) स्वामी (इन्द्रम्) परम संपत्तियुक्त सभापति राजा को (अवीवृधन्) बढ़ावें ॥ ६१ ॥

भावार्थः—राजा और प्रजा के जन राजधर्म से युक्त ईश्वर के समान वर्त्तमान न्यायाधीश सभापति को निरन्तर उत्साह देवें, ऐसे ही सभापति इन प्रजा और राज के पुरुषों को भी उत्साही करें ॥ ६१ ॥

प्रोथदश्व इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट्त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् । आदस्य वातोऽअनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥ ६२ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! आप (यवसे) भूसा आदि के लिये (अश्वः) घोड़े के (न) समान प्रजाओं को (प्रोथत्) समर्थ कीजिये (यदा) जब (महः) बड़े (संवरणात्) आच्छादन से (अविष्यन्) रक्षा आदि करते हुए (व्यस्थात्) स्थित होवें (आत्) पुनः (अस्य) इस (ते) आप का (व्रजनम्) चलने तथा (कृष्णम्) आकर्षण करने वाला (शोचिः) प्रकाश (अस्ति) है (अध) इस के पश्चात् (स्म) ही आप का (वातः) चलने वाला भृत्य (अनु, वाति) पीछे चलता है ॥ ६२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे रक्षा करने से घोड़े पुष्ट होकर कार्य्य सिद्ध करने में समर्थ होते हैं वैसे ही न्याय से रक्षा की हुई प्रजा सन्तुष्ट होकर राज्य को बढ़ाती हैं ॥ ६२ ॥

आयोष्ट्वेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विदुषी देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

विदुषी स्त्री को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

आयोष्ट्वा सदने सादयाम्यवतश्छायायाᳬ समुद्रस्य हृदये । रश्मीवतीं भास्वतीमा या द्यां भास्या पृथिवीमोर्वन्तरिक्षम् ॥ ६३ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! (या) जो तू (द्याम्) प्रकाश (पृथिवीम्) भूमि और (अन्तरिक्षम्) आकाश को (उरु) बहुत (आ, भासि) प्रकाशित करती है उस (रश्मीवतीम्) शुद्ध विद्या के प्रकाश से युक्त (भास्वतीम्) शोभा को प्राप्त हुई (त्वा) तुझ को (आयोः) न्यायानुकूल चलने वाले चिरंजीवी पुरुष के (सदने) स्थान में और (अवतः) रक्षा आदि करते हुए के (छायायाम्) आश्रय में (आ, सादयामि) अच्छे प्रकार स्थापित तथा (समुद्रस्य) अन्तरिक्ष के (हृदये) बीच (आ) शुद्ध प्रकार से मैं स्थित कराता हूं ॥ ६३ ॥

भावार्थः—हे स्त्रि ! अच्छे प्रकार पालने हारे पति के आश्रयरूप स्थान में समुद्र के तुल्य चञ्चलतारहित गम्भीरतायुक्त प्यारी तुझ को स्थित करता हूं । तू गृहाश्रम के धर्म का प्रकाश कर पति आदि को सुखी रख और तुझ को भी पति आदि सुखी रक्खें ॥ ६३ ॥

परमेष्ठीत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । परमात्मा देवता । आकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

स्त्री पुरुष परस्पर कैसे हों यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं दिवं यच्छ दिवं दृꣳह दिवं मा हिꣳसीः । विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय । सूर्यस्त्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ ६४ ॥

भावार्थ—हे स्त्रि ! (परमेष्ठी) परमात्मा (विश्वस्मै) समग्र (प्राणाय) जीवन के सुख (अपानाय) दुःखनिवृत्ति (व्यानाय) नाना विद्याओं की व्याप्ति (उदानाय) उत्तम बल (प्रतिष्ठायै) सर्वत्र सत्कार और (चरित्राय) श्रेष्ठ कर्मों के अनुष्ठान के लिये (दिवः) कमनीय गृहस्थ व्यवहार के (पृष्ठे) आधार में (प्रथस्वतीम्) बहुत प्रसिद्ध प्रशंसा वाली (व्यचस्वतीम्) प्रशंसित विद्या में व्याप्त जिस (त्वा) तुझ को (सादयतु) स्थापित करे सो तू (दिवम्) न्याय के प्रकाश को (यच्छ) दिया कर (दिवम्) विद्यारूप सूर्य को (दृह) दृढ़ कर (दिवम्) धर्म के प्रकाश को (मा, हिंसीः) मत नष्ट कर (सूर्यः) चराचर जगत् का स्वामी ईश्वर (मह्या) बड़े अच्छे (स्वस्त्या) सत्कार (शन्तमेन) अतिशय सुख और (छर्दिषा) सत्यासत्य के प्रकाश से (त्वा) तुझ को (अभिपातु) सब ओर से रक्षा करे वह तेरा पति और तू दोनों (तया) उस (देवतया) परमेश्वर देवता के साथ (अङ्गिरस्वत्) प्राण के तुल्य (ध्रुवे) निश्चल (सीदतम्) स्थिर रहो ॥ ६४ ॥

भावार्थः—परमेश्वर आज्ञा करता है कि जैसे शिशिर ऋतु सुखदायी होता है वैसे स्त्री-पुरुष परस्पर सन्तोषी हों सब उत्तम कर्मों का अनुष्ठान कर और दुष्ट कर्मों को छोड़ के परमेश्वर की उपासना से निरन्तर आनन्द किया करें ॥ ६४ ॥

सहस्रस्येत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । विद्वान् देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि सहस्रस्योन्मासि साहस्रोऽसि सहस्राय त्वा ॥ ६५ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष वा विदुषी स्त्रि ! जिस कारण तू (सहस्रस्य) असंख्यात पदार्थों से युक्त जगत के (प्रमा) प्रमाण यथार्थ ज्ञान के तुल्य (असि) है (सहस्रस्य) असंख्य विशेष

पदार्थों के (प्रतिमा) तोलनसाधन के तुल्य (असि) है (सहस्रस्य) असंख्य स्थूल वस्तुओं के (उन्मा) तोलने की तुला के समान (असि) है (साहस्रः) असंख्य पदार्थ और विद्याओं से युक्त (असि) है इस कारण (सहस्राय) असंख्यात प्रयोजनों के लिये (त्वा) तुझ को परमात्मा व्यवहार में स्थित करे ॥ ६५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यहां पूर्वमन्त्र से परमेष्ठी, सादयतु इन दो पदों की अनुवृत्ति आती है। तीन साधनों से मनुष्यों के व्यवहार सिद्ध होते हैं। एक तो यथार्थविज्ञान, दूसरा पदार्थ तोलने के लिये तोल के साधन बाट और तीसरा तराजू आदि। यह शिशिर ऋतु का वर्णन पूरा हुआ ॥ ६५ ॥

इस अध्याय में ऋतुविद्या का प्रतिपादन होने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये।

॥ यह पन्द्रहवां (१५) अध्याय पूर्ण हुआ ॥

